प्रकाशक—
फर्म-बाबू बैजनाथप्रसाद
राजादरवाजा, बनारस सिटी

राधेश्य

भूमिका।

ावोंत्तम रत्नागार महाभारत विश्व में सर्वमान्य तथा
ग्रन्थ है। हिन्दूमात्र उसे अपना गौरवदायी पञ्चम वेद
: श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। महाभारत, ज्ञानरत्नों
क्षय-भंडार तथा काव्य-कला का अटूट कोष है।
, दण्डि, माघ, भवभूति तथा कालिदास प्रभृति
वियों के काव्य का सूत्र है। वास्तव में आर्य जाति के
ा अचल स्तम्भ है।

ठकों! महाभारत पाँच हजार वर्ष पूर्व के आर्य जाति
ाणिक इतिहास है। इसमें ज्ञान, वैराग्य, योग,
ा, भक्ति, धर्म, सत्य, सदाचरण और नीति का विषद
। उस काल की सभ्यता, रहन-सहन आचार-
तथा वर्ण-व्यवस्था का पूर्ण वर्णन है। यह आद्योपांत
की तेजस्विता तथा वीर आत्माओं क्षत्रियों की वीरता
और गंभीरता से ओत-प्रोत है। ओह! इसके पद-पद
ा टपकती है। इसका पन्ना-पन्ना वीर रस से भरा है।
ओं! अपनी उस वीर कीर्ति को स्मरण कर!

ं व्यास ने अद्भुत बुद्धि बल एवं अपार पांडित्य का
दिया है। संसार का कोई भी इतिहास इसकी
हीं कर सकता। इसके प्रधान पात्रों का चरित्र-
के सत्य-संकल्प, निस्सीम साहस, शौर्य्य-वीर्य्य-
वलक्षण राजनीति तथा अद्भुत बल-विक्रम कितना
और हृदयाकर्षक है। भीष्म, द्रोण, कर्ण तथा
भीमार्जुन की वीरता कितनी रोमांचकारी तथा नसों में

प्रथम संस्क

विद्युत शक्ति भरने वाली है। निःसन्देह उनकी कथा पढ़कर मृतप्राय: शरीरों में भी नवजीवन का संचार हो जाता है।

भगवान श्रीकृष्ण, धर्मात्मा युधिष्ठिर और महात्मा विदुर का चरित्र बल कितना उच्च है। महात्मा भीष्म की अलौकिक पितृभक्ति, वीरवर एकलव्य की गुरु सेवा तथा दानी कर्ण का महादान कितना महान तथा उत्कृष्ट है। वास्तव में महाभारत हिन्दुओं के विराट रूप का जीवात्मा है। भूमण्डल के समस्त तत्वज्ञानी तार्किक विद्वान जिस गीता रत्नको शिरसा-वद्य समझते हैं—संसार जिसकी उपासना कर रहा है वह गीता रत्न भी इसी ज्ञानकोष का अंश है। ओ हिन्दुओं ! यह तुम्हारे पुराने कला-कौशल रहन-सहन, आचार-विचार, ऐश्वर्य—प्रभुत्व तथा एकाधिपत्य का पुनीत इतिहास है। शोक ! आज तुम इससे वंचित हो रहे हो। अपने पूर्वजों की पुनीत कीर्तियों को स्मरण कर इसे धारण करो। फिर संसार की कोई भी शक्ति तुम्हारे पूर्वजों की कीर्तियों को कलंक की कालिमा से कलुषित नहीं कर सकती।

महाभारत बड़ा विस्तृत और कठिन ग्रन्थ है। यह विशद अठारह पर्वों में समाप्त हुआ है। आप्त पुरुषों का कथन है कि रत्न भाण्डागार महाभारत ज्ञान रत्नों से शून्य नहीं है, कोई तत्व ऐसा नहीं जो इसमें न हो तथापि इसका अध्ययन वे ही कर सकते हैं जो संस्कृत के अच्छे पण्डित हैं। परन्तु वर्तमान निर्धन भारत उसे मोल लेने में भी असमर्थ है। जिससे हिन्दू समाज अधिक अंश में इस ज्ञान-रत्न से वंचित रहता है। ओह ! ऐसे उपादेय ग्रन्थ से

वञ्चित रहना कितना परितापपूर्ण तथा कलंक की बात है।

भारत की अन्यान्य भाषाओं में इस उपादेय ग्रन्थ के कितने ही अनुवाद हो गये हैं। परन्तु उस भाषा में जिसे राष्ट्र भाषा बनाने के लिये मर रहे हैं एकाधही अनुवाद प्रकाशित हुये हैं-इतने पर भी उसे पढ़ने के लिये दीर्घकाल और अधिक मुद्राकी आवश्यकता है। हाँ! तीन-चार संक्षिप्त संस्करण निकले हैं-उनकी भी वही दशा है-किसी ने चित्रों से सुन्दर बनाने की चेष्टा है—किसी ने पन्नों को कम रंग कर ही मोटा बनाने का उद्योग किया है—किसी ने बाल की खाल खींचा है और किसीने तो यहाँ तक कि इत्र निकाल कर ही लोक प्रिय करने की चेष्टा की है।

प्रस्तुत-पुस्तक महाभारत प्रणेता महर्षि व्यास के चौवीस सहस्त्र श्लोकों का मूल आख्यान है-इसमें न तो कुछ अनाव-श्यक वर्णन बाहुल्य ही आया है और न बाल की खाल ही निकाली गई है। सर्वत्र भाषा-सौष्ठव, सरलता, तथा महत्व पूर्ण भागों का विवेचन करते हुये आवश्यक वर्णन किया गया है। इसमें आदि काल से द्वापर पर्य्यन्त चन्द्रवंश का वंश वृक्ष तथा तत्कालीन साम्राज्यों का विशद वर्णन आया है। आशा है इसके द्वारा प्रेमी पाठकों को पाठ में अधिक सहा-यता मिलेगी। मेरा सादर अनुरोध है कि प्रत्येक हिन्दू-मात्र इसे धारण कर अपने वीर धीर पराक्रमी एवं गंभीर कर्मवीर पूर्वजों की दिगन्त व्यापिनी कीर्ति का विस्तार करे।

काशी
सम्वत् १९९३

स्वामी विश्वनाथ।

❀ विषय-सूची ❀

[१—आदि-पर्व ।]

सं०	विषय	पृष्ठ
१	आदि कथा।	१
२	चन्द्रवंश का विस्तार।	४
३	यदु पुरु और कुरुवंश।	१०
४	यदु और पुरुवंश का विस्तार।	१४
५	शान्तनु और गङ्गा।	१८
६	देवव्रत का जन्म।	२१
७	भुवनमोहिनी सत्यवती।	२६
८	देवव्रत की भीष्म प्रतिज्ञा।	२९
९	भीष्म द्वारा काशीराज की कन्याओं का हरण।	३४
१०	भीष्म-परशुराम संग्राम।	३८
११	शिखण्डिनी का जन्म।	४२
१२	वेदव्यास द्वारा कुरुवंश की रक्षा।	४४
१३	धृतराष्ट्र पाण्डु और विदुर।	४९
१४	गांधारी, कुन्ती, माद्री और पाराशवी।	४०
१५	महाबली पाण्डु का दिग्विजय और वैराग्य।	५५
१६	कौरव-पाण्डव का जन्म।	५९
१७	पाण्डु की मृत्यु।	६६
१८	कौरव-पाण्डवों का बाल्यकाल।	७२
१९	राजपुत्रों की अस्त्र-शिक्षा।	८०
२०	महर्षि द्रोण।	८३
२१	एकलव्य की गुरु-भक्ति।	९२
२२	अस्त्र-विद्या की परीक्षा और कर्णार्जुन-विवाद।	९६
२३	आचार्य्य की गुरु-दक्षिणा।	११२
२४	कौरवों का द्वेष।	११६
२५	धृतराष्ट्र पुत्रों का षड्यन्त्र।	१२१

२६—लाक्षा-गृह से मुक्ति । १२४
२७—हिडिम्ब-वध । १३०
२८—एकचक्रा नगरी में और वकासुर संग्राम । १३६
२९—चित्ररथ की मैत्री । १४१
३०—द्रौपदी स्वयंवर और विवाह । १४५
३१—इन्द्रप्रस्थ का राज्य । १५२
३२—अर्जुन का नियम भङ्ग और ब्रह्मचर्य-पालन । १५७
३३—उलूपी और चित्राङ्गदा । १६०
३४—सुभद्रा हरण । १६३
३५—खाण्डव-दाह । १६६

[२—सभा-पर्व ।]

३६—सभा-भवन निर्माण और राजसूय-यज्ञ का विचार । १६९
३७—जरासन्ध वध । १७३
३८—पांडवों का दिग्विजय । १७९
३९—यज्ञारम्भ । १८२
४०—शिशुपाल-वध । १८५
४१—दुर्योधन का अपमान । १९०
४२—द्यूत-रण निमन्त्रण । १९५
४३—द्रौपदी-चीर-हरण । २००
४४—वनवास और पाण्डवों की भयंकर प्रतिज्ञा । २०६

[३—वन-पर्व ।]

४५—पाण्डव-वन-गमन और धृतराष्ट्र का शोक । २०९
४६—अक्षयस्थाली की प्राप्ति । २१४
४७—धृतराष्ट्र-विदुर विवाद, पुनर्मिलन और कर्णादि की कुटिलता २१८
४८—श्रीकृष्ण मिलन । २२३
४९—युधिष्ठिर और द्रौपदी । २२६
५०—महर्षि व्यास जी का उपदेश । २३२
५१—हिमालय गमन और अर्जुन की कठिन तपस्या । २३४

५२—मदन-मद-भञ्जन और इन्द्रार्जुन सम्वाद। २३६
५३—किरातार्जुन-युद्ध और पशुपतास्त्र-प्राप्ति। २४०
५४—अर्जुन का स्वर्ग-गमन। २४३
५५—अर्जुन के विरह में दुखी पाण्डव। २४९
५६—पाण्डवों की तीर्थयात्रा। २५२
५७—सहस्र-दल कमल की खोज में। २५६
५८—द्वैत-वन में। २६१
५९—भुजङ्गराज और धर्मराज। २६३
६०—काम्यक-वन में श्रीकृष्ण-मिलन और मार्कण्डेयजी का उपदेश। २६६
६१—द्रौपदी और सत्यभामा सम्वाद। २७०
६२—चित्ररथ द्वारा कौरवों का बन्ध और पाण्डवों द्वारा मोक्ष। २७२
६३—कर्ण का दिग्विजय और वैष्णव महायज्ञ। २७९
६४—कर्ण का आसुर महाव्रत और इन्द्र की याचना। २८३
६५—द्रौपदी-हरण और जयद्रथ की कठिन तपस्या। २८७
६६—युधिष्ठिर-यक्ष संवाद। २९१
६७—अज्ञातवास की योजना। २९६

[४—विराट-पर्व।]

६८—पाण्डवों का अज्ञातवास अर्थात् विराट नगर में। २९७
६९—वल्लभ का उत्कर्ष। ३०२
७०—कृष्णा का अपमान। ३०४
७१—कीचक-वध। ३०९
७२—गन्धर्वों का भय। ३१७
७३—कौरवों की गोष्ठी। ३१९
७४—त्रिगर्त्तराज सुशर्मा का पराजय। ३२३
७५—उत्तर रण-यात्रा। ३२७
७६—वीभत्सु-विजय। ३३४
७७—पाण्डवों का प्रकट होना। ३४८
७८—उत्तरा-परिणय। ३५०

[५—उद्योग-पर्व ।]

७९—पाण्डव मित्रों की गोष्ठी अर्थात् परामर्श सभा । ३५३
८०—रण-निमन्त्रण । ३५८
८१—पाण्डवों का सन्धि-सन्देश । ३६४
८२—भगवान श्रीकृष्ण और पाण्डव । ३७२
८३—श्रीकृष्ण और पतिव्रता कृष्णा । ३७६
८४—भगवान श्रीकृष्ण का दौत्य । ३७८
८५—माता कुन्ती और महाबली कर्ण । ३८४
८६—कुरुक्षेत्र की समर-भूमि । ३८९
८७—महर्षि व्यास का आशीर्वाद और दिव्यचक्षु की प्राप्ति । ३९२

[६—भीष्म-पर्व ।]

८८—महासमर का आरम्भ और अर्जुन का मोह । ३९४
८९—गीतोपदेश । ४०१
९०—महासमर का श्रीगणेश और युधिष्ठिर की शिष्टता । ४३३
९१—युद्ध का पहला दिन । ४३९
९२—युद्ध का दूसरा दिन । ४४२
९ —युद्ध का तीसरा दिन । ४४६
९४—भीषण समर और इरावान वध । ४४९
९५—कृष्ण की प्रतिज्ञा भङ्ग । ४५२
९६—भीष्म का अन्त । ४५५
९७—शर-शैय्या पर । ४५८
९८—कर्ण की सहृदयता । ४६१

[७—द्रोण-पर्व ।]

९९—द्रोण का सेनापतित्व और युधिष्ठिर को पकड़ने की प्रतिज्ञा । ४६३
१००—त्रिगर्त्तों का पराजय और भगदत्त-वध । ४६९
१०१—दुर्भेद्य चक्रव्यूह-निर्माण और अभिमन्यु की रण यात्रा । ४७४
१०२—अभिमन्यु-वध । ४७९
१०३—उत्तरा-विलाप और श्रीकृष्ण का ज्ञानोपदेश । ४८०

१०४—अर्जुन की भयंकर प्रतिज्ञा और जयद्रथ-वध। ४८६
१०५—महाबली घटोत्कच का अन्त। ४९२
१०६—द्रुपद-विराट-वध। ४९५
१०७—द्रोण-वध। ४९७
[८—कर्ण-पर्व।]
१०८—कर्ण का सेनापतित्व और शल्य का सारथ्य। ५०३
१०९—अर्जुन भर्त्सना। ५१५
११०—भीम का भयंकर संग्राम और दुःशासन-वध। ५२२
१११—कर्णार्जुन महासमर और दुर्योधन की युद्धलिप्सा। ५२६
११२—कर्ण-वध ५३०
[९—शल्य-पर्व।]
११३—समराग्नि की ज्वाला और शल्य की आहुति। ५३९
११४—महायुद्ध का अन्त। ५४५
११५—दुर्योधन पलायन। ५४८
११६—युयुत्सु की शिष्टता। ५५०
११७—दुर्योधन की खोज में। ५५२
११८—भीम दुर्योधन का गदा युद्ध और दुर्योधन वध। ५५५
११९—अश्वत्थामा का सेनापतित्व। ५६०
[१०—सौप्तिक-पर्व।]
१२०—प्रतिशोध का भयानक संकेत। ५६३
१२१—गुरुपुत्र की नीचता। ५६७
१२२—दुर्योधन की मृत्यु। ५७०
१२३—भयङ्कर शोक और द्रौपदी की क्रोधाग्नि। ५७२
१२४—अलौकिक क्षमा। ५७५
[११—स्त्री-पर्व।]
१२५—कौरवकुल में महाशोकाग्नि और विलाप। ५७७
१२६—महाबली धृतराष्ट्र का क्रोध। ५८०
१२७—गांधारी का शाप। ५८३
१२८—अन्त्येष्टि-क्रिया। ५८७

[१२—शान्ति-पर्व ।]

१२९—धर्मराज का वैराग्य । ५८९.

१३०—रामराज्य की स्थापना । ५९४

१३१—भीष्म का उपदेश । ५९७.

[१३—अनुशासन-पर्व ।]

१३२—पितामह का उपदेश । ६०१

१३३—पितामह भीष्म का प्राण-त्याग । ६०४

१३४—महर्षि व्यास का आदेश । ६०६

१३५—श्रीकृष्ण का द्वारिका-गमन । ६०७

[१४—अश्वमेध-पर्व ।]

१३६—परिक्षित का जन्म । ६०९

१३७—अश्वमेध-यज्ञ । ६१३

१३८—यज्ञ की समाप्ति । ६१७.

[१५—आश्रमवासिक पर्व ।]

१३९—वन-गमन । ६१९.

१४०—विदुर का शरीर त्याग । ६२७

१४१—वनवासियों का स्वर्ग-गमन । ६३०.

[१६—मौषल पर्व ।]

१४२—यदुवंश-संहार । ६३३

१४३—श्रीकृष्ण लीला संवरण । ६३७

[१७—महाप्रस्थानिक पर्व ।]

१४४—महाप्रस्थान । ६४०.

१४५—धर्मराज की परीक्षा । ६४१

[१८—स्वर्गारोहण पर्व ।]

१४६—स्वर्ग में । ६४३.

महाभारत कालीन भारत
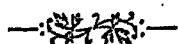
महाभारत की प्रचण्ड अग्नि में बड़े-बड़े वीरों की आहुति हो गई। देखते ही देखते अठारह दिनों में ही अठारह अक्षौहिणी सेना नष्ट हो गई। वास्तव में महाभारत ही भव्य भारत के कल्पान्त का कारण हुआ।

महाभारत के समय भारत में भिन्न-भिन्न राज्य स्थापित थे। उनमें कुरुराज्य, शूरसेन राज्य, पांचाल राज्य, मत्स्य राज्य, मगध राज्य, अङ्गराज्य, काशीराज्य, कोशल राज्य, सिन्धुसौवीर राज्य, गान्धार राज्य, मद्र राज्य, चेदिराज्य, अवन्ति राज्य, त्रिगर्त्तराज्य, विदेह राज्य, विदर्भ राज्य, प्राग् ज्योतिष, कांबोज, कैरल और कुमारी प्रसिद्ध थे। इन सब राज्यों ने महाभारत में भाग लिया था इसके अतिरिक्त पृथ्वी के सम्पूर्ण बड़े-बड़े राजे सम्मिलित हुये थे।

१—जिस सेना में २१८७० हाथी, २१८७० रथें, ६५६१० घोड़े तथा १०९४५० सैनिक हों उसे अक्षौहिणी कहते हैं। संयुक्त संख्या २१८७०० हो।

महाभारत के रचयिता महर्षि व्यास और ऋषि-गण।

श्री विश्वेश्वर प्रेस, काशी में मुद्रित।

* श्रीहरिः *

महाभारत

आदि पर्व

आदि कथा।

करोड़ों वर्ष व्यतीत हुये उस पवित्र स्वर्ण युग में जिस समय जीवन का आद्यन्त रहित तत्वज्ञान समुन्नति के उच्च शिखर पर आलोकित हो रहा था, उस देवयुग में जब पृथ्वी नर देवों से सुशोभित हो रही थी द्वापर के इस पवित्र कथा का सूत्राधार प्रकट हुआ।

वह स्वर्णयुग सचमुच अनुपम देवयुग था। पृथ्वी स्वर्ग से कम न थी, मानव अमरों की समानता करने वाले थे तथा गृहदेवियाँ लक्ष्मी, पार्वती और सरस्वती को भी शिक्षा देने वाली थीं। महर्षिगण क्षण में सृष्टि की रचना करने वाले तथा वीरगण आकाश और पृथ्वी को एक करने वाले थे—निःसन्देह वसुन्धरा अपने ऐश्वर्य्य से त्रैलोक्य को चकित कर रही थी। ठीक उसी उज्वल अतीत के विस्तृत क्षेत्र में हमारी पवित्र कथा का वंश वृक्ष अंकुरित हुआ था।

हमारी पवित्र कथा चन्द्रवंश[1] की आदि कथा है। इसी

१—चन्द्रमा का वंश अर्थात् जो कुल चन्द्रमा से चला हो।

पवित्र वंश में बड़े-बड़े महावीर और महात्मा उत्पन्न हुये। एक से एक बढ़कर महर्षियों के समान कठिन तपस्या करने वाले राजर्षि जन्म धारण किये तथा सहस्रों शूरवीर प्रगट हो भूमण्डल पर एक छत्र शासन किये। इतना ही नहीं—इसी पवित्र वंश के महापुरुष[1] अपने अखण्ड तप के बलसे ब्रह्मर्षियों में भी पूज्य हुये।

यह आज की नहीं बहुत पुरानी कल्पारंभ की कथा है। सृष्टि-काल में इसका बीजारोपन हुआ था। ब्रह्म के पवित्र मन से उत्पन्न होने वाला अमृतदाता चन्द्रमा ही इसका कारण था। उसी के द्वारा संसार में चन्द्रवंशकी सृष्टि हुई।

पवित्र चन्द्रवन्श की कथा महाभारत में लिखी है। इसकी रचना त्रिकालज्ञ महर्षि[2] बादरायण (व्यास) ने की है। महाभारत चन्द्रवंशके वीरों का अपूर्व इतिहास है। संसार इसी

१—इसी चन्द्रवंश में महर्षि विश्वामित्र बड़े प्रतापी ऋषि हुये—राजर्षि होते हुये इन्होंने अपने तपोबल के द्वारा ब्रह्मर्षि पद प्राप्त किया था। महर्षि विश्वामित्र ने अपने योगबल द्वारा अद्भुत चमत्कार दिखलाकर संसार को चकित कर दिया। मनुष्य क्या? देवताओं और पराक्रमी दानवों को भी विवश कर वशीभूत कर लिया था।

२—अद्रिका बड़ी रूपवती अप्सरा थी। एक समय उसे शापके कारण स्वर्ग से भ्रष्ट होकर मृत्यु लोक में मत्स्य योनि धारण करना पड़ा। वह निरन्तर कालिन्दी के जल प्रवाह में विचरण किया करती थी। अद्रिका स्वाभाविक सुन्दरी थी, मत्स्य वेश में रहने पर भी लोगों को आकर्षित कर लेती थी। दैवात एकदिन राजा उपरिचर ने उसे यमुना में विचरण

के द्वारा पवित्र चन्द्रवंश के महापुरुषों का हाल जानता है। इसीमें चन्द्रवंशी कौरव-पाण्डवों के भीषण युद्ध का वर्णन है।

करते हुये देखा—जिससे उसका वीर्यपात हो गया। अद्रिका उपरिचर के वीर्य से गर्भवती हो गई।

एक दिन यमुना के जलप्रवाह में विचरण करती हुई अचानक वह मछुओं के जाल में फँस गई। जब लोगों ने उसे चीरा तब उसके उदर से एक सुन्दर बालक और एक बालिका निकली।

यह बात घर २ बिजली के समान फैल गई, सभी आश्चर्य्य चकित हो उठे और इस विचित्र व्यापार को देखने के लिये दौड़ पड़े। कुछ ही देर बाद यह बात महीप उपरिचर के कानों में भी जा पहुँची उसने उस बालक को मँगा कर स्वयं पाला-पोसा। बड़े होने पर वही बालक प्रतापी महीप मत्स्य के नाम से विख्यात हुआ।

कन्या का पालन पोषण धीवरराज ने किया। उसका नाम मत्स्य-गंधा था। उसके शरीर से मछली की गंध निकला करती थी। धीवर लोग उसे योजनगंधा कह कर भी पुकारते थे। बहुत दिनों के बाद जब मत्स्यगंधा कुछ बड़ी हुई तब यमुना में नाव पर यात्रियों को चढ़ा कर पार उतारने लगी। दैवात एक दिन प्रातःकाल पार जाने के लिये महर्षि पराशर आ पहुँचे। इन्हीं पराशर और मत्स्यगंधा के संयोग से वेदव्यास का जन्म हुआ। पराशर के संयोग से मत्स्यगंधा के शरीर से पद्मपुष्प की सुगंध निकलने लगी। मछली की गन्ध दूर हो गई। मत्स्यगंधा ही आगे चलकर परम रूपवती सत्यवती हुई—

चन्द्रवंश का विस्तार ।

—*—*—

उस उज्ज्वल अतीत काल में—जब कल्पारम्भ हो रहा था ब्रह्मा मानसी सृष्टि में लगे थे चन्द्रमा अपनी सुन्दरता से लोकों को मोहित कर रहा था। कलाधार की अपार सुन्दरता ने सुन्दरी गुरु-पत्नी को आकर्षित कर लिया। महात्मा चन्द्रमा को विवश हो वचन बद्ध होना पड़ा। अन्त में देवताओं के गुरु बृहस्पति की सुन्दरी स्त्री और अमीकर के समागम से बुध का आविर्भाव हुआ।

बुध भी चन्द्रमा के समान ही तेजस्वी और सुन्दर था। उसकी अपार सुन्दरता को देख इक्ष्वाकु की बहन त्रैलोक्य सुन्दरी इला मोहित हो उठी। दोनों का विवाह सम्बन्ध हो गया। कुछ दिनों के बाद इला के गर्भ से एक परम तेजस्वी अत्यन्त रूपवान बालक उत्पन्न हुआ। देवताओं ने उसे पुरुरवा के नाम से पुकारा।

पुरुरवा बाल्यकाल से ही तेजस्वी था, आगे चलकर वह बड़ा ऐश्वर्य्यवान तथा प्रतापी हुआ। इसके प्रताप और ऐश्वर्य्य को देख देवताओं की भुवन-मोहिनी अप्सरा उर्वशी आसक्त हो गई। पुरुरवा भी उर्वशी के रूप पर मोहित हो गया। इस प्रकार उस ने सुन्दरी उर्वशी को रख लिया।

धीरे-धीरे वर्षों बीत गये। प्रतापी पुरुरवा अनुपम सुन्दरी के साथ बहुत दिन सुख पूर्वक जीवन व्यतीत किया—उसके

शासन काल में राजधानी अलका और अमरा से कम न थी, पृथ्वी, आकाश, पाताल तथा भुवनों एवं लोकों की सारी सम्पत्ति प्रतिष्ठान नगरी की समानता नहीं कर सकती थी।

इसी उर्वशी के द्वारा पुरुरवा के ५ पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुये। इसी वंश में विश्वामित्र हुये—जिन्होंने अपने तप के बल से ब्रह्मत्व प्राप्त किया। आगे चलकर इसी वंश में महीप ययाति हुये जिनसे पुरुवंश का विस्तार हुआ।

प्रिय पाठकों ! पुरुरवा से ही पृथ्वी पर चन्द्रवंश की वृद्धि हुई। पुरुरवा के ५ पुत्रों ने सहस्रों सन्तानों को उत्पन्न किया। आज लाखों की संख्या में चन्द्रवन्शी क्षत्रिय कहलाने वाले इन्हीं पुरुरवा के वंशज हैं। महर्षि व्यास ने इन्हीं पुरुरवा के वंशजों की वीरता, धीरता, गम्भीरता तथा कर्तव्य परायणता का वर्णन महाभारत में किया है।

सहस्रों वर्ष पश्चात् इसी पवित्र कुल में महीप ययाति का जन्म हुआ। उस नरदेव ने कच[1] द्वारा शापित ब्रह्मा के

१—ब्रह्मा से भृगु की उत्पत्ति हुई और भृगु से शुक्राचार्य्य हुये। शुक्राचार्य्य ने राजा प्रियव्रत की कन्या उर्जस्वती से विवाह किया। उससे देवयानी नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई। देवयानी त्रैलोक्य सुन्दरी थी, महर्षि शुक्राचार्य्य उसे बहुत मानते थे।

महर्षि शुक्र दानवों के आचार्य्य थे, इन्होंने दानवों की रक्षा के लिये संजीवनी विद्या का आविष्कार किया था, उस अद्भुद् विद्या के प्रताप से दानव बड़े बलवान हो गये, देवता बार २ हारने लगे। दानवों का असीम साहस देख इन्द्र वरुणादि थर्रा उठे।

पौत्र भृगुकुल कमल शुक्राचार्य्य की कन्या देवयानी से विवाह किया। दानवेन्द्र वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा देवयानी की चेरी होकर अपनी सखियों के साथ ययाति के यहाँ गई थी।

देवताओं ने अपनी पराजय देख बृहस्पति के पुत्र कच को संजीवनी विद्या सीखने के लिये शुक्राचार्य्य के पास भेजा। कच बुद्धिमान, विनम्र तथा सदाचारी बालक था, गुरु के पास रहकर संजीवनी विद्या सीखने लगा। दानव इस व्यापार से बड़े क्रोधित हुये—उन्होंने कई बार कच को मार डाला—परन्तु शुक्राचार्य्य ने अपने तपोबल तथा सञ्जीवनी विद्या से उसे पुनः जीवित कर दिया।

देवयानी कच के सरल स्वभाव पर मुग्ध होगई। जब कच संजीवनी विद्या सीख कर देवलोक जाने लगा तब देवयानी ने उससे अपना अभिप्राय प्रकट किया—देवयानी की मनोभिलाषा सुन महात्मा कच ने कहा—देवयानी! तुम तो हमारी बहन हो, जिन शुक्राचार्य्य से तुम्हारा जन्म हुआ है-वही हमारे ज्ञानदाता हुये हैं—हमारा तुम्हारा सम्बन्ध कैसे हो सकता है? तुम्हीं सोचो।

परन्तु यह बात देवयानी के मनमें नहीं गड़ी। वह कच के इस शुष्क व्यवहार से क्षुब्ध हो उठी। उस त्रैलोक्य मोहिनी ने बिना विचारे कच को शाप दिया कि जा—मेरे पिता के पास जो संजीवनी विद्या तुमने पढ़ी है—वह तेरे लिये व्यर्थ होगी।

देवयानी के भयंकर शाप को सुन कच घबरा गया—परन्तु अब क्या होता है? उसने गंभीरता पूर्वक कहा देवयानी! तुम्हारा शाप स्वीकार करता हूँ, यह विद्या मेरे लिये व्यर्थ होगी परन्तु मैं जिसे इस विद्या को

ययाति प्रजा पालक महीप था, राज्य में सर्वत्र शान्ति थी, प्रतापी ययाति प्रजाओं पर देवेन्द्र के समान शासन करता था। पृथ्वी प्रचुर अन्न देती थी, लोग सात्विक

पढ़ाऊँगा—उसके लिये तो उपयोगी होगी ? जा—मैं भी यह शाप देता हूँ कि तुझे कोई ब्राह्मण वर नहीं मिलेगा।

महात्मा कच का शाप सत्य हुआ। देवयानी को कोई ब्राह्मण वर नहीं मिला। बहुत दिनों के बाद एक बार जब दानवराज वृषपर्वा की कन्या देवयानी के साथ सहेलियों को लेकर जंगल में विहार करने गई थी, किसी बात में उसकी देवयानी से वादा विवाद हो गया, शर्मिष्ठा (वृषपर्वा की कन्या) उसे उस निर्जन वन के एक अन्ध कूप में ढ़केल कर चली आई।

देवयानी उसी अन्ध कूप में पड़ी २ सिसक रही थी कि अचानक प्रतिष्ठान नगरी का चन्द्रवंशी राजा ययाति आखेट करता हुआ उस ओर आ निकला। कुँये के भीतर से रोने की आवाज़ आते सुन वह चकित हो गया और घोड़े से उतर अनुसंधान करने के लिये आगे बढ़ा। कुँये पर पहुँचते ही उसने देखा—अप्सराओं, देववधुओं तथा यक्ष-बालाओं को लज्जित करने वाली एक विश्व-विमोहिनी तरुणी कुँये में पड़ी २ सिसक रही है।

ययाति का हृदय उमड़ पड़ा, देवयानी की अनुपम सुन्दरता ने उसे दास बना दिया—उसने तत्काल हाथ पकड़ कर देवयानी को कुँयें से निकाल लिया—देवयानी अपने उद्धारकर्ता की मुक्तकंठ से प्रशंसा करने लगी। वह महीप ययाति को लेकर पिता शुक्राचार्य्य के पास गई और रो २ कर दानव-नन्दिनी वृषपर्वा की कथा सुना गई। शुक्राचार्य्य

वृत्ति धारण करने वाले थे, प्रत्येक वर्ण तथा आश्रम अपने नियमों पर अटल थे, सर्वत्र सुखशान्ति का साम्राज्य था।

कहीं रोग और दोष नहीं थे, प्रजायें असत्य भाषण करना दोष समझती थीं। सभी धैर्य्य धारण करने वाले थे, क्षमा को ही परम धन तथा मुख्य ज्ञान-धन जानते थे, मन के बुरे विचारों को रोकना ही तप का अर्थ समझते थे, वचन, मन और कर्म से चोरी न करना, किसी को दुःख न देना तथा किसी का बुरा विचार न करना ही सिद्धान्त मानते थे। महीप ययाति का शासन काल पुरन्दर से कम न था।

इस भाँति महीप ययाति देवयानी के साथ सुख पूर्वक निवास करते हुये दिवस व्यतीत करने लगे।

को भी शर्मिष्ठा के व्यवहार पर असन्तोष हुआ। उन्होंने देवयानी का सम्बन्ध महीप ययाति से कर दिया। शर्मिष्ठा अपनी दासियों के साथ देवयानी की चेरी बना कर भेजी गई। ययाति ने देवयानी के अतिरिक्त और किसी सुन्दरी से सम्बन्ध नहीं करने की प्रतिज्ञा की।

चन्द्रवंश प्रवर्तक भगवान शेष शैयापर।

श्री विश्वेश्वर प्रेस, काशी में मुद्रित।

चन्द्रवंश का वंशवृक्ष।
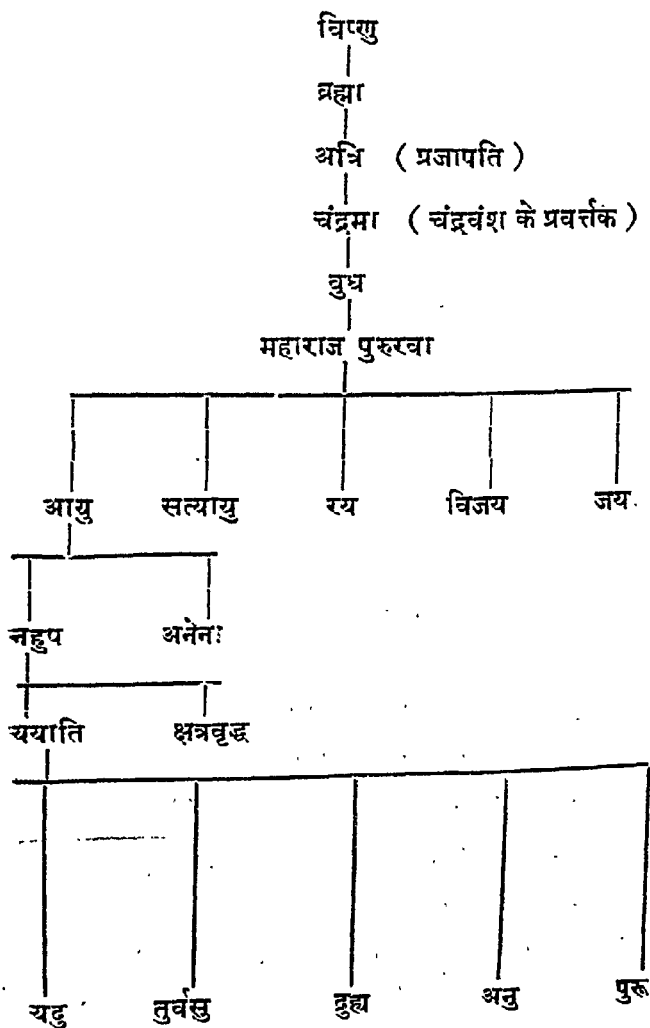
यदु-पुरु और कुरु वंश।

—*-*—

महात्मा ययाति का राम राज्य देवताओं को मोहित कर रहा था। पृथ्वी उन्नति की दौड़ में स्वर्ग को पीछे कर रही थी—सर्वत्र सुख-शांति का साम्राज्य था त्रिताप भयभीत हो भाग गया था तथा आधि-व्याधियाँ मानवों के प्रताप से दूर हो चुकी थीं, निःसन्देह अघ-ओघ नरों के तेज के प्रज्वलित शिखा में भस्म हो गये थे।

महीप ययाति के ५ बड़े प्रतापी पुत्र हुये-प्रत्येक पुत्र के द्वारा एक-एक वंश की वृद्धि हुई-जेठा पुत्र यदु था-इसी से यदुवंश का प्रादुर्भाव हुआ। द्वितीय कुमार तुर्वसु ने यवन वंश पर राज्य किया, तृतीय पुत्र द्रुह्य से भोजवंश, चतुर्थ राजकुमार अनु ने म्लेच्छ वंश पर शासन किया तथा सब से छोटे पुत्र पुरु से पौरव वंश (पुरु वंश) चला।

महात्मा ययाति के समय में चन्द्रवंश से ५ शाखायें फूटीं १ यदुवंश, २ तुर्वसुवंश, ३ भोजवंश, ४ अनुवंश और ५ पुरुवंश। इन में दो वंश बड़ा प्रसिद्ध हुआ यदुवंश और पुरुवंश। राजा ययाति यद्यपि जेठे पुत्र से अप्रसन्न हो क्रोध

१—राजा ययाति अपने ज्येष्ठ कुमार यदु से सदैव अप्रसन्न रहा करते थे। अप्रसन्नता का प्रधान कारण यह था कि यदु ने राजाके माँगने पर अपनी जवानी नहीं दी थी। उसकी कथा इस प्रकार है—

महीप ययाति शुक्राचार्य्य के सामने की हुई प्रतिज्ञा भूल गये।

में आकर शाप दे दिये थे कि जा ! क्षत्रियों के कुल से पतित होजा—तथापि यदु के वंशजों ने अपनी अनन्त महिमा बढ़ाई।

अंधक-भोज, वृष्णि, सत्राजित, वसुदेव आदि वीर इसी यादववंश में उत्पन्न हुये थे—आगे चलकर परम ऐश्वर्य्यशाली भगवान श्री कृष्ण ने इसी वंश में जन्म धारण किया। योगी

शर्मिष्ठा के अपार रुपजाल ने इन्हें मोहित कर लिया। दानवेन्द्र-नन्दिनी की मनोहर मूर्ति उन के हृदय में वस गई—उन्होंने अपनी मनोकामना की पूर्ति के लिये शर्मिष्ठा से गंधर्व विवाह कर लिया—अब क्या? देवयानी से लुक छिप कर शर्मिष्ठा से प्रेम करने लगे।

अन्त में—ययाति के दुष्कर्म को देवयानी ने जान लिया। वह अपना घोर अपमान कैसे सह सकती थी? तत्काल उठ खड़ी हुई और पिता शुक्राचार्य्य के पास जा पहुँची। शुक्राचार्य्य भी पुत्री के मुख से ययाति का दुष्कर्म सुन क्रोधित हो शाप दिये—नराधम! कामी महीप! जा! वृद्ध होजा। तेरी इन्द्रिय शक्ति रहित हो जायगी। अब तू काम के योग्य न रहेगा।

ययाति इस भयंकर शाप से घबड़ा उठा। उसे मुक्ति की युक्ति नहीं दिखलाई दी—अन्त में लाचार हो उसने अपने को महर्षि शुक्राचार्य्य के शरण में डाल दिया—राजा के विनम्र व्यवहार से महर्षि का क्रोध कुछ शान्त हुआ—अन्त में अनेक अनुनय विनय करने पर उन्होंने कहा जा—युवापन के लिये पुत्रों से याचना कर।

महीप ययाति पुत्रों के योग्य होने पर युवापन की याचना करने लगा, सब से पहले उसने यदु से ही याचना की। यदु अपने कामी पिता की अनाधिकार चेष्टा सुन कोरा जवाब दिया—शेष पुत्रों ने

राज श्रीकृष्ण के अवतार ने यदुवंश (यादव वंश) के गौरव को बढ़ा दिया।

राजा ययाति पुरु को अधिक मानते थे। पुत्र भी सच्चा पितृ भक्त था, उसने पिता को प्रसन्न रखने के लिये अपनी जवानी दे दी थी। पितृ भक्त पुरु अहर्निश पिता की प्रसन्नता में लगा रहता था। यही कारण था कि ययाति ने ज्येष्ठ पुत्र के रहते पुरु को राज्य का उतराधिकारी बनाया।

पुरु के वंशजों ने कम प्रसिद्धि नहीं पाई। इसी वंशमें आगे चलकर सम्राट भरत उत्पन्न हुये-जब-तक पृथ्वी रहेगी, सूर्य्य और चन्द्रमा अपने आलोक से लोकों को आलोकित करते रहेंगे, भरत का नाम स्वर्णाक्षरों में चमकता रहेगा। उसी

भी यदु का ही अनुकरण किया—केवल एक पुरुही इस बात के लिये तैयार हुआ।

बिना आगा पीछा सोचे, पितृ-भक्त पुरु ने अपनी जवानी पिता को दे दी, ययाति अपने कनिष्ट पुत्र के व्यवहार से अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने बहुत वर्षों तक पुरु के युवापन से आनन्द उठाया। अन्त में ऋषियों के उपदेश के द्वारा ययाति को विषयों से विरक्ति हो गई।

इसी कारण राजा यदु से अप्रसन्न रहा करते थे। पुरुने उनकी आज्ञा का पालन किया था। अतः वे उसे सब से अधिक मानते थे—यहाँ तक कि सबसे छोटा रहने पर भी उसे उत्तराधिकारी घोषित किये। महीप ययाति के पश्चात् पुरु ही राजसिंहासन पर बैठा।

भरत के नाम से आज भी आर्य्यों का पवित्र देश भारतवर्ष कहला रहा है ।

सहस्रों वर्ष बाद इसी पुरु के पवित्र कुल में महाराज कुरु हुये, इसी महाबली कुरु ने सम्पूर्ण दिशाओं को अपने अधिकार में कर बड़े-बड़े यज्ञों के द्वारा देवता और पितरों को सन्तुष्ट किया था—इस के जन्म धारण करने से इस वंश का गौरव और भी बढ़ा। यहाँ तक कि पुरुवंश कुरुवंश के नाम से विख्यात हो गया ।

कुरुवंशने चन्द्रवंश को उन्नति के सर्वोच्च स्थान पर पहुँचा दिया। विदूरथ, सार्वभौम, अराधि, अयुतायु, अक्रोधन आदि महा पराक्रमी महीपों ने इसके गौरव को खूब बढ़ाया ।

द्वापर कुरुवंश के विस्तार का युग है, इसी युग में कुरुवंशियों ने सार्वभौम शासन किया था। इसी पवित्र काल में महाबली पाण्डव और कौरव हुये थे, जिनके द्वारा भयङ्कर महाभारत की सृष्टि हुई थी ।

यदुवंश का विस्तार।

महाराज यदु — सतयुग

क्रोष्टा		सहस्रजित	नल	रघु
वृजिनिवन्त	परावृत	त्रेता युग में।		
स्वाही	ज्यामक	क्रथ भीम	एकादशरथ	
रुद्गु	विदर्भ	कुन्ति	शकुनि	
चित्ररथ	—*—	धृष्ट	करम्भ	
शशिविन्दु		निर्वावृत	देवराय	
पृथुद्रावा		विदूरथ	देवक्षत्र	
अन्तर		दशरथ	देवन	
सुयज्ञ		व्योम	मधु	
उशना		जीमूत	पुरुवस	
शिनेयु		विकृति	पुरोद्धन्त	
मरुत		भीमरथ	पुरुद्धन्त	
कम्बल भरिष		रथवर(नवरथ)	जन्तु (अंश)	
रुक्मकवच		दशरथ	सत्वन्त	
			—*—	

द्वापर युगमें।

भीष्म सात्वत
भजिन
देवावृध
वभ्रु
मार्त्तिकावत
अंधक (महाभोज)
वृष्णि
कुकर
वृष्णि (धृष्णु)
कपोतरोमन
विलोमन (तित्तिरी)
नल (नन्दनोदर दुन्दुभि)
अभिजित
पुनर्वसु
आहुक
देवक
उग्रसेन
कंस
भजमान
विदूरथ
गजोधियेय शूर
शोणाश्व
शमिन
प्रतिक्षत्र
स्वयंभोज
हृदीक
कृतवर्मन
देवाई
अन्यपुत्र
कम्बलवर्हिष
असमौजस्

द्वापर युग में।

- भीम सात्वत
  - वृष्णि
    - पहलीपत्नी गांधारीसे
      - सुमित्र
        - निघ्न
          - प्रसेन
          - सत्राजित
            - भंगकार
              - सभाक्ष
    - द्वितीय पत्नी माद्री से
      - युधाजिन्
        - पृश्नि
          - श्वफल्क
            - अक्रूर
              - देववन्त
              - उपदेय
          - चित्रक
            - पृथुआदि
      - देवमीढ़
        - १रानी
          - शूर
            - वसुदेव
              - बलराम
              - कृष्ण
        - २रानी
          - पर्यन्य
            - उपनन्द
            - अभिनंद
            - नंद
              - कृष्ण
            - सन्नन्द
            - नन्दन
          - अजन्य
          - राजन्य
      - अनमित्र
        - शिनि
          - सत्यक
            - युयुधनि
              - असङ्ग
                - युगन्धर

पुरुवंश का विस्तार ।

महाराज पुरु
सत्ययुग में ।
जनमेजय
प्रचिन्वन्त
प्रवीर
मनस्यु
अभयद
सुधन्वा (धुन्ध)
वहुगव
समयाति
अहेयाति
रौद्राश्व
ऋचेयु
मतिनार
तन्शु
,,
,,
त्रेत्रायुग में ।
दुष्यन्त
भरत
भरद्वाज
वितथ
भुवमन्यु
वृहक्षत्र
सुहोत्र
हस्ति
अजमीढ़
,,
,,
,,
ऋक्ष
,,
संबरण
,,
कुरु
द्वापरयुग में ।
परीक्षित (प्रथम)
जनमेजय
विदूरथ
सार्वभौम
जयतसेन
अराधि
महाभौम
अयुतायु
अक्रोधन
देवातिथि
ऋक्ष द्वीतिंय
भीमसेन प्रथम
दिलीप
प्रतीप
शान्तनु

शान्तनु और गङ्गा।

—**—

सुदूर पूर्व काल में जब द्वापर का चतुर्थ चरण चञ्चल गति से आगे बढ़ रहा था—उस पवित्र कुरुकुल में प्रतापी प्रतीप का जन्म हुआ। महाबली प्रतीप वास्तव में एक उच्च आत्मदर्शी महात्मा था। वह अहिर्निशि तत्वज्ञान में लगा रहता था अतः जीवन काल में ही उसे राज्य से घृणा हो गई। उस महापुरुष ने अपने योग्य कुमार शान्तनु को राज्य का उत्तराधिकारी बना, आप विरागी हो—तपस्या के लिये भयङ्कर निर्जन बन में चला गया।

महाराज शान्तनु अपने पूर्वपुरुषों के समान ही योग्य शासक हुये, अपनी तपस्या तथा विनीत,—न्याय प्रियता से शीघ्र लोक-प्रिय होने में इन्हें अधिक समय नहीं लगा। राज्य में सर्वत्र आनन्द मङ्गल था, वसुन्धरा धन-धान्य पूर्णा थी, वृक्ष सर्वदा फल देने वाले थे, गौयें कामधेनु के समान इच्छायें पूर्ण करने वाली थीं, प्रकृति सुखदायिनी थी तथा दिशायें सौम्य थीं;—निःसन्देह महात्मा शन्तनु का राज्य "राम-राज्य" से कम न था।

महीप शान्तनु को आखेट का व्यसन था। वह प्रायः राज्य कार्य्य से निवृत होते ही आखेट के लिये निकल जाया करते थे। इसी हेतु उन्होंने पतित पावनी भागीरथी के रमणीक तट पर एक सुन्दर प्रासाद बनवा रक्खा था। वह कभी-कभी

वहीं ठहर कर प्रजाओं की रक्षा के लिये भयङ्कर हिंसक वन पशुओं का वध किया करते थे।

वर्षों पश्चात् एक दिन जब महाबली शान्तनु सहस्रों क्रूर हिंसक वन-पशुओं को मारकर अपने रमणीक स्थान की ओर लौट रहे थे कि अचानक उन्होंने अप्सराओं को मोहित करने वाली एक अनिन्द्य सुन्दरी तरुणी को अपनी ओर देखते हुये देखा। उस निर्जनस्थल में—गङ्गा के रमणीक तट पर अद्वीतिय भुवन मोहिनी त्रैलोक्य सुन्दरी को देख चकित हो उठे।

सुन्दरी की मनोहर मूर्ति, उसका सुन्दर स्वरूप, आकर्षक वेश तथा उसकी बाँकी झाँकीने जादूका काम किया। राजा शान्तनु का मन हाथ से जाता रहा, वह उसके अपार रूप राशि-पर मोहित हो उठे और अत्यन्त निकट जाकर प्रेम पूर्वक बोले—

हे सुभगे! तुम कौन हो? देवता, दानव, गन्धर्व अथवा मनुष्य? तुम ने किस जाति में जन्म लेकर उसे अलंकृत किया है? सुशोभित कर गौरव को बढ़ाया है। हे सुमुखी! तुम्हारी भुवन मोहिनी मूर्ति मेरे हृदय में बस गई है—तुम्हारे इस मनोहर वेष ने मेरे मन को हर लिया है। हे सयानी! हम तुम्हें अपने हृदय की रानी बनाना चाहते हैं,—तुम्हारी क्या इच्छा है? हे वरानने! यथोचित उत्तर देकर हमारी उत्सुकता को मिटाओ, मेरे चञ्चल हृदय को शांति दो।

राजा की प्रिय वाणी सुनकर सुन्दरी मुस्कराती हुई बोली—हे नरदेव! जब आपके हृदय में मेरे प्रति इतना अनु-

राग है, प्रेम है तथा इतनी अनुकम्पा है तो मैं आप से किस प्रकार विमुख हो सकती हूँ, मैं आपकी सहधर्मिणी होने को प्रस्तुत हूँ—किन्तु इसके पूर्व आप को एक प्रतिज्ञा करनी होगी। महाराज! मैं जो काम करूँ,—चाहे वह अच्छा हो अथवा बुरा, आप को हस्ताक्षेप करने का अधिकार न होगा। यदि आप मेरे कार्य में हस्ताक्षेप करेंगे अर्थात् अपने प्रण से विचलित होंगे तो निश्चय ही मैं आपको त्याग कर चली जाऊँगी।

महीप शान्तनु उस भुवन-मोहिनी के अद्वीतीय रूप पर पूर्ण रूप से मोहित हो चुके थे, काम ने उनके ज्ञान को हर लिया था, उनमें शुभा-शुभ विचारने की बुद्धि नहीं रह गई थी। उन्होंने बिना विचारे ही तत्काल उस सुन्दरी की बात मान ली। अब क्या था? राजा उसे राजधानी में ले आये और पाटरानी बना सुख-पूर्वक समय व्यतीत करने लगे।

देवव्रत का जन्म ।

—**—

सर्वत्र आनन्द की घटायें घिर रही थीं, राजा शान्तनु अपनी प्यारी रानी गङ्गा के साथ सुख पूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे थे। कुछ ही दिनों के बाद गङ्गा के गर्भ से एक सुन्दर बालक उत्पन्न हुआ। परन्तु उस सुन्दरी ने तत्काल उस नवजात शिशु को गङ्गा में बहा दिया। यद्यपि गङ्गा के व्यवहार से महीप शान्तनु को दुःख हुआ, परन्तु प्रतिज्ञा बद्ध होने के कारण मौन हो जाना पड़ा।

इसी प्रकार गङ्गा के गर्भ से क्रमशः सात बालक उत्पन्न हुये। परन्तु उन सबों को उत्पन्न होते ही गङ्गा के प्रवाह में बहा आई। शान्तनु उसके अनुचित व्यवहार पर कुछ बोल नहीं सकते थे, क्योंकि उन्हें इस बात का भय था कि रोकने पर निश्चय ही मुझे त्याग कर चली जायगी। राजा को रोकने का साहस न था, परन्तु रानी के दुर्व्यवहार के कारण उनका क्रोध भीतर ही भीतर बढ़ रहा था।

कुछ दिनों के बाद रानी के गर्भ से एक और तेजस्वी बालक उत्पन्न हुआ। रानी उसे भी गङ्गा में फेंकने चली—यह देखकर राजा का हृदय फट गया, पुत्र शोक ने उन्हें विह्वल कर दिया, वह अधीर हो रानी के पीछे-पीछे दौड़ पड़े और भागीरथी के निकट पहुँचते ही बोल उठे—सुन्दरी! ठहर जा! इस बालक की हत्या न कर, इसे गङ्गा के गर्भ में न डाल।

रानी रुक गई। पुत्र प्रेम में तन्मय होने के कारण शान्तनु अपनी की हुई प्रतिज्ञा भूल गये और क्रोधावेश में गरज उठे—पुत्र घातिनी! तुम कौन हो? निष्ठुरा! यह क्या करती है? क्या तुम्हें दया नहीं आती? इतना सुन्दर रूप होते हुये तुम्हारे ये कुकृत्य! खबरदार! इस बालक को कदापि गङ्गा में फेंकने न दूँगा।

राजा की बातें सुन सुन्दरी ने कहा—हे पुत्र की कामना करने वाले राजन्! ठीक है। आप के कहने से मैं इस पुत्र को जल में नहीं डालूंगी परन्तु आप के वचन के अनुसार अब मैं विदा होती हूँ, मेरा कार्य समाप्त हो गया—अब मैं नहीं ठहर सकती। आज तक आप के पास बड़े आनन्द पूर्वक रही हूँ—मैं प्रसन्न हूँ। लीजिये अब मैं स्पष्ट कह देती हूँ—मेरे त्याग से आप को दुःखी नहीं होना चाहिये।

राजन्! मैं महर्षि जन्हु की कन्या हूँ, महर्षि वशिष्ठ के शाप से भयभीत हो तेजस्वी वसुओं ने मेरे पास आकर प्रार्थना की—कि देवी! हम आठो वसुओं को महर्षि वशिष्ठ ने मृत्यु-लोक में जन्म लेने के लिये शाप दिया है अतः तुम मेरी माता होने की कृपा करो। हम सबों को अपने पवित्र उदर से उत्पन्न कर महर्षि के शाप से छुड़ाओ। उसी समय उन सबों ने यह भी कहा था कि हम लोगों को मृत्युलोक के दुःखों से बचाना अर्थात् उत्पन्न होते ही नाश कर देना।

राजन्! हम ने उन वसुओं की बातें मान ली, और उनके हित-साधन के लिये मानवी रूप धारण कर तुम्हारे

पास आई क्योंकि हमने इस कार्य्य के लिये कुरुवंश को ही योग्य समझा। धीरे-धीरे वसु एक २ कर उत्पन्न हुए और हमने उनमें से सात को गङ्गा के पवित्र गर्भ में डाल दिया। यह आठवाँ 'द्यु' नामक वसु है, इसी के अपराध से वशिष्ठ ने सबों को शाप दिया था। यह बहुत दिनों तक पृथ्वी पर रहकर अक्षय कीर्ति फैलायेगा। आप शोक न कीजिये, आप को वसुओं के पिता होने का गौरव प्राप्त हुआ है। मैं स्वयं इस बालक का पालन-पोषण करूँगी।

राजा से ऐसी बातें कह महर्षि जन्हु की कन्या गङ्गा नवजात शिशु को लेकर अन्तर्ध्यान हो गई। प्यारी पत्नी और पुत्र का वियोग असह्य हो गया। शान्तनु अत्यन्त दुःखी हो गये, धीरे-धीरे उन्होंने अपने को प्रजा पालन में लगा दिया। इस प्रकार वह अपार दुःख जाता रहा। महात्मा शान्तनु को शान्ति पूर्वक राज्य करते वर्षों बीत गये।

महीप शान्तनु ने बड़ी योग्यता से प्रजाओं का पालन किया देश-देश में इनके न्याय-प्रियता की चर्चा फैल गई। इनकी विनम्रता तथा बुद्धिमता पर मुग्ध होकर पृथ्वी के समस्त नर-पालों ने आधीनता स्वीकार कर ली। महाराज शान्तनु ने अपने सद्गुणों के द्वारा विश्व की आत्मा पर अधिकार कर लिया।

एक समय चक्रवर्ती सम्राट शान्तनु आखेटके लिये निकले, भयानक वन में उन्हें एक मृगी दिखलाई पड़ी, उन्होंने तत्काल बाण चला दिया, पैने बाण के आघात से हिरणी छटपटाती

हुई भागी। सम्राट शान्तनु भी उसका पीछा करते हुये जाह्नवी के तट पर जा पहुँचे।

भागीरथी के उपकूल पर पहुँचते ही सम्राट ने देखा कि गङ्गा एक दम सूखी पड़ी हैं। राजा यह आश्चर्यदायी व्यापार देख कि कर्तव्य विमूढ़ के समान हो गये—उन्हें अपार विस्मय हुआ वह इस अद्भुत रहस्य का कारण ढूँढ़ने लगे। राजा वार-वार आश्चर्य्य चकित हो इधर-उधर देखने लगे।

इतने में ही उनकी दृष्टि एक देवताओं के समान रूप वाले तेजस्वी वालक पर पड़ी—जो पावस की मूसलाधार वृष्टि के समान वाण वरसा रहा था। उस तेजस्वी वालक की वाण वर्षा ने गङ्गा की धारा को रोक दिया था। उसकी वीरता तथा अस्त्र-चतुरता देख सम्राट आश्चर्य्य चकित हो उठे।

यह वालक वही 'द्यु' नामक आठवाँ वसु था जो गङ्गा के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। राजा को देखते ही उसने पहचान लिया और तत्काल अन्तर्ध्यान हो माता के पास जाकर सब हाल कह सुनाया। यह विचित्र व्यापार देख राजा शन्तनु विस्मय मे डूब गये और मन ही मन सोचने लगे। उसी समय गङ्गा मानवी रूप धारण कर पुत्र के साथ प्रगट हुई और वोली—महाराज ! आप के पुत्र देवव्रत को हमने यत्न से पाल पोस कर योग्य वना दिया है। वड़े-वड़े ऋषियों, वशिष्ठ, वृहस्पति, शुक्राचार्य्य तथा परशुराम आदि आचार्यों ने इसे वेद-वेदाङ्ग एवं अस्त्र-शस्त्रों की शिक्षा भली-भाँति दी है। यह सभी प्रकार की विद्याओं तथा कला-कौशलों को जान चुका

है संसार मे कोई ऐसी विद्या नही है जो इसे नहीं आती हो। अब आप अपने सर्व गुण सम्पन्न पुत्र को लीजिये—

सम्राट शान्तनु ऐसे तेजस्वी, सर्वगुण सम्पन्न विद्वान पुत्र को पाकर गद्‌गद्‌ हो उठे। देवव्रत को पाकर उनका हृदय खिल गया। राजा अत्यन्त आनन्द में मग्न हो गये। सम्राट शान्तनु पुत्र देवव्रतके साथ राजधानी में आये और उसे अपना युवराज बनाकर प्रेम-पूर्वक प्रजाओं का पालन करने लगे। राजा के इस कार्य से प्रजायें अत्यन्त प्रसन्न हुईं।

देवव्रत वड़ा योग्य वालक था, इसके सद्‌गुणों पर प्रजायें मोहित हो उठीं। इसकी वीरता, धीरता और गम्भीरता देख वड़े-वड़े शूर सामन्त नतमस्तक हो गये तथा इसकी आज्ञा पर आत्मोत्सर्ग करने के लिये कटिवद्ध रहने लगे। ब्राह्मण, ऋषि और देवता सभी देवव्रत के गुणों से सन्तुष्ट हो गये। राज्य में कोई ऐसा व्यक्ति न था जो राजकुमार की प्रशंसा न करता हो। केवल राज्य ही नहीं दूर-दूर देशों में देवव्रत के गुणों की चर्चा होने लगी सभी इस बालक की वीरता एवं बुद्धिमत्ता की प्रशंसा करने लगे।
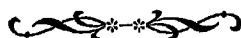
भुवन मोहिनी सत्यवती।

—*—*—

कुरुकुल की राजधानी हस्तिना-नगरी की अनुपम सुन्दरता देख देवताओं की प्यारी नगरी अमरा लज्जित हो उठी, शान्तनु का राम राज्य अवलोक एक बार फिर देवताओं का मन मृत्युलोक में जन्म लेने का हुआ। सुर-रमणियाँ, यक्ष-बालायें तथा अप्सरस-कन्यायें स्वर्ग तुल्य हस्तिना नगरी की शोभा देखने के लिये विमानों पर चढ़ २ कर आने लगीं। इस प्रकार कुछ दिन आनन्द में व्यतीत हुये।

इसके पश्चात्—एक दिन सम्राट कालिन्दी के उपकूल पर भ्रमण कर रहे थे कि अचानक एक अद्भुद सुगन्ध आई, उन्होंने पहले कभी ऐसी सुगन्ध नहीं देखी थी, वह मनही मन विचारने लगे कि यह अभूतपूर्व मनोहर सुगन्ध कहाँ से आ रही है? उन्होंने देर तक अनुसंधान किया, अन्त मे खोजते-खोजते उन्हें मालूम हुआ कि वह अनुपम सुन्दरी देवरूप-धारिणी धीवर-राज की कन्या के शरीर की सुगन्ध है।

राजा अत्यन्त आश्चर्य्य में पड़ गये और उसके निकट जाकर मीठे शब्दों में बोले—हे मृगलोचनी! तुम कौन हो? यहाँ क्यों आई हो? हे सुन्दरी! यहाँ क्या करती हो?

राजा की प्यारी बातें सुन रम्भोरू भुवन मोहिनी ने कहा—महाराज! मैं धीवर राज की पुत्री हूँ, मुझे लोग सत्यवती

कहते हैं, मैं पिता की आज्ञा से यहाँ पवित्र जमुना के इस घाट पर नाव चलाया करती हूँ।

कन्या की अनुपम सुन्दरता देख अद्भुद् रूप सौन्दर्य्य को निहार उसके मनोहर वेश को अवलोक शन्तनु का मन मोहित हो गया। कन्या की आकर्षक रूप छटा तथा आश्चर्य्य कारक सुवास ने सम्राट को डाँवा-डोल कर दिया, शान्तनु के हृदय में उस सर्वांग सुन्दरी के साथ विवाह करने की कामना बलवती हो उठी। वह तत्काल धीवर के पास गये और अपनी मनो-भिलाषा कह सुनाये।

सम्राट शान्तनु की बातें सुन बुद्धिमान धीवर गम्भीरता पूर्वक बोला—महाराज! मेरा अहोभाग्य है, इससे और बढ़ कर मेरे लिये सुख और सन्तोष की क्या बात होगी कि आप महाराज—सम्राट होकर मेरी कन्या को राज महिषी बनाना चाहते हैं। परन्तु मेरी एक अभिलाषा है—विनय है जिसे पूर्ण करने के लिये आपको प्रतिज्ञा करनी होगी। सत्यवती के गर्भ से जो बालक उत्पन्न हो वही राज्य का उत्तराधिकारी होगा। विवाह के पूर्व आपको प्रतिज्ञा के बन्धन में बँधना पड़ेगा।

महाराज शान्तनु के सामने बड़ी विकट समस्या आ गई। वह सत्यवती के मनोहर रूप पर अत्यन्त आसक्त हो चुके थे परन्तु इधर योग्य पुत्र के स्नेह पाश में इस प्रकार बँधे थे कि धीवर-राज को बिना उत्तर दिये ही चुपचाप हस्तिनापुर लौट आये। राजा के मन में इस बात से बड़ा दुःख हुआ,

वह उस सर्वांग-सुन्दरी सत्यवती को नहीं भुला सके, उस कृशोदरीकी मनोहर मूर्ति उनके हृदयमें बस गई थी, अनिन्द्य सुन्दरी, कमल-नयनी बिम्बाधरी पर राजा का मन गड़ गया था। उस विश्वमोहिनी मृगलोचनी के बिना राजा को अत्यन्त कष्ट होने लगा—इस प्रकार मानसिक क्लेश के कारण वह दिन रात उदास रहने लगे।

राजा की उदासी ने हलचल पैदा कर दी, राजा की चिन्ता ने राज-कर्मचारियों को चिन्तित कर दिया, धीरे-धीरे राज प्रबन्ध में त्रुटि होने लगी।

राजा की गंभीर स्थिति देख मंत्रियों को भय हुआ, वे बड़ी योग्यता से शासन की बागडोर हाथ में ले पूर्ववत राज-काज सम्हालने लगे, परन्तु राजा की उदासी उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई, वह असह्य मानसिक पीड़ा से व्यथित रहने लगे।

देवव्रत की भीषण प्रतिज्ञा ।

प्यारे पिता की ऐसी दशा देख पितृभक्त देवव्रत चिन्तित हो उठे। एक दिन एकान्त में उन्होंने पिता से इस का कारण पूछा। राजा अपने प्यारे सुयोग्य पुत्र से सत्यवती की बातें कैसे कह सकते थे? वह उदास हो मौन हो रहे।

पिता को मौन होते देख देवव्रत की अधीरता और बढ़ गई—उनका गला भर गया—राज कुमार विनय पूर्वक पुनः बोले—देव! आप संकोच को त्याग कर कहिये—मैं आप का दास हूँ, आप क्यों चिन्तित रहा करते हैं? प्राण रहते मैं आप के दुःखो को दूर करूंगा।

हे पिता! मैं आप की आज्ञा से अग्नि में कूदने को तैयार हूं, आप की सन्तुष्टता के लिये दानवों और देवताओं को परास्त कर सकता हूँ, आप की शान्ति के लिये काल को भी दण्ड दे सकता हूँ इतना ही नहीं—लोक, तलातल, भुवन तथा अवनी और अम्बर को एक कर सकता हूँ, कहिये—अपनी उदासी का कारण स्पष्ट कहिये। आप का प्यारा पुत्र देवव्रत आज्ञापालन के लिये तैयार है।

देवव्रत की वीरोचित बातें सुन पिता का हृदय उमड़ पड़ा। राजा ने बहुत देर के बाद प्यारे पुत्र से इस प्रकार कहा—प्रिय पुत्र! तुम्हीं एकमात्र कुरुवंश के रक्षक हो, हमारे अकेले पुत्र हो। फिर भी तुम सदैव वीरता के कामों में

लगे रहते हो; तात! यदि तुम्हारा किसी प्रकार अनिष्ट हो अथवा तुम पर कोई विपत्ति आजाय तो वंश की क्या दशा होगी? प्यारे पुत्र! इसी चिन्ता से मैं सदैव चिन्तित रहा करता हूँ।

पिता की बातों से देवव्रत को सन्तोष नहीं हुआ। उन्हें सन्देह हो गया कि पिताजी ने दुःख का यथार्थ कारण नहीं बतलाया। वह पिता के दुःख का वास्तवि कारण जानने के के लिये व्यग्र हो उठे। सोचते २ राजकुमार पिता के उस वृद्ध मंत्री के पास गये जो राजा के साथ धीवर-राज के यहाँ गया था। वृद्ध मन्त्री ने सत्यवती की सारी घटना साफ २ कह सुनाई।

अब क्या था? योग्य पुत्र ने पिता के दुःख के वास्तविक कारण को जान लिया। पितृभक्त देवव्रत तत्काल मंत्रियों, शूर सामन्तों तथा आत्मिय जनों के साथ धीवरराज के घर पहुँचे और अपने आने का समाचार कह सुनाये। धीवरराज राजकुमार की बातें सुन सम्मान पूर्वक बोला—

हे कुरुकुल कमल दिवाकर! हे वीर श्रेष्ठ! हे सत्य प्रतिज्ञ महावीर! सत्यवती का सम्राट के साथ सम्बन्ध होना आप के स्वार्थ त्याग पर ही अवलम्बित है। हे शस्त्र-धर! आप सम्राट के एकलौते पुत्र हैं। सभी बातें आप ही के हाथ मे हैं। देखिये—महर्षि पराशर ने सत्यवती के के साथ विवाह करने की कई वार इच्छा प्रकट की थी परन्तु मैंने अस्वीकार कर दिया। हे शान्तनुनन्दन! मैं आप से

सम्बन्ध तोड़ना नहीं चाहता। परन्तु मेरी प्रतिज्ञा है कि हमारी कन्या के गर्भ से उत्पन्न हुई संतान ही राज्य का उत्तराधिकारी हो—यह आप के ही त्याग पर निर्भर है।

हे राज-कुल-दीपक! आप के इतना त्याग करने पर भी मैं देखता हूं कि शान्ति नहीं रह सकती। इससे तो और भी घोर शत्रुता तथा विद्रोह होने का डर है। हमारी कन्या के सन्तानों की रक्षा कभी नहीं हो सकेगी। इस सम्बन्ध में यही एक दोष है। राजकुमार! कहिये! ऐसी दशा में मैं कैसे सत्यवती को दे सकता हूँ?

पितृभक्त देवव्रत धीवर की बात समझ गये, वह पिता को सुखी रखना चाहते थे उन्हें अपने स्वार्थ और सुख की चिन्ता नहीं थी उन्होंने सभी सभासदों के सामने कहा—हे धीवरराज! भयभीत न हो। डर का कोई कारण नहीं, हमने तुम्हारी मनोभिलाषा जान ली। हम तुम्हारी बात मानने लिये तैयार हैं। आज स्वजनों, शूर सामन्तों, वृद्ध मंत्रियों तथा तुम्हारे परिवार के सामने प्रतिज्ञा करते हैं कि तुम्हारी कन्या के गर्भ से जो पुत्र होगा वही इस राज्य का उत्तराधिकारी होगा।

राजकुमार की प्रतिज्ञा सुन—धीवर अत्यन्त आनन्दित हुआ और बोला—

हे वीर श्रेष्ठ! हे दृढ़ प्रतिज्ञ! एक बात और कहना है- सभी आपकी सत्यता को जानते हैं। निश्चय—आप सत्यवती के सन्तान को सिंहासन पर बिठायेंगे। आप की प्रतिज्ञा

कभी असत्य नहीं हो सकती। तथापि मुझे भय है कि आगे चल कर आप के वंशज विपरीत कार्य्य न करें अर्थात् आपकी प्रतिज्ञा को न मानें—तब क्या उपाय होगा ?

धीवर की बातें सुन देवव्रत बोले—धीवर श्रेष्ठ! तुम ठीक कहते हो। मैं राज्य का अधिकार तो त्याग ही चुका हूँ, अर्थात् पूर्व ही कह चुका हूँ कि सत्यवती के पुत्र को राजगद्दी पर बिठाऊँगा। अब हम विश्वेश को साक्षी कर दूसरी प्रतिज्ञा करते हैं कि आजन्म विवाह न करेंगे, आमरण नैष्ठिक ब्रह्मचारी रह कर प्रतिज्ञा की पूर्ति करेंगे। धीवर-राज! इस प्रकार सत्यवती के सन्तानों को किसी प्रकार का भय नहीं रह जायगा।

धीवर राज! मेरी यह प्रतिज्ञा अटल है। सूर्य शीतल हो जाय, चन्द्रमा अग्नि बरसाने लगे, तथा रत्नेश मर्य्यादा को छोड़ दे तो छोड़ दे परन्तु मैं अपनी की हुई प्रतिज्ञा को नहीं छोड़ सकता।

देवव्रत की विकट प्रतिज्ञा को सुन कर लोग धन्य २ कहने लगे। उपस्थित जनता विमुग्ध हो गई। देवव्रत के अलौकिक स्वार्थ-त्याग और पितृभक्ति को देख देवता आकाश से पुष्प बरसाने लगे। ऐसा भीषण प्रण करने के कारण लोग-उस समय से देवव्रत को भीष्म कहने लगे।

देवव्रत ने कैसा स्वार्थ त्याग किया। पिता की प्रसन्नता के लिये अपने स्वार्थ पर इस तरह पानी डाल दिया। निःसन्देह देवव्रत ने उदारता और पितृभक्ति की हद कर दी। जब

तक सूर्य और चन्द्र पृथ्वी पर विद्यमान रहेंगे—जब तक मायापति की माया साकार रूप धारण किये रहेगी, देवव्रत की कीर्ति चमकती रहेगी। सभी लोग उस नरदेव के गुणों की गाथा गाते रहेंगे।

प्रिय पाठकों! महात्मा देवव्रत की पितृभक्ति से शिक्षा ग्रहण करो, उस महात्माने पिता के सुख के लिये अपने सुखों की तिलांजुलि देदी, पिता को सन्तुष्ट रखने के लिये—चक्रवर्ती राज्य की चिन्ता नहीं की, ओह! पूर्व पुरुषों की संचित अपार सम्पत्ति को ठुकरा दी, क्या विश्व में इससे भी बढ़ कर त्याग और तप का उदाहरण अन्यत्र कहीं मिल सकता है? महात्मा देवव्रत वास्तव में द्वापर का श्रवण था।

धीवर की मनोकामना पूर्ण हो गई। उसका अभीष्ट सिद्ध हो गया-अब उसने सम्राट के साथ अपनी कन्या का सम्बन्ध करना निश्चय किया। अत्यन्त प्रसन्न होकर उसने तत्काल सत्यवती को भीष्म के सिपुर्द कर दिया। भीष्म उस रूपवती मृगलोचनी को पिता के पास ले आये और उन्हें सन्तुष्ट कर स्वयं भी सन्तुष्ट हुये।

महात्मा शान्तनु भीष्म के स्वार्थत्याग को देख अत्यन्त प्रसन्न हुये। भीष्म ने उनका कितना बड़ा प्रिय कार्य्यकिया! उन्होंने कहा–प्यारे पुत्र! तुम्हारी मृत्यु इच्छा से ही होगी। तुझ पर कालका वश न चलेगा। मेरे आशीर्वादसे जब तुम चाहोगे तभी मरोगे।

भीष्म द्वारा काशीराज की कन्याओं का हरण ।

परम रूपवती सत्यवती को पाकर महात्मा शान्तनु अत्यन्त प्रसन्न हुये। उन्होंने विधि पूर्वक उस विश्व-मोहिनी से विवाह किया और सुख पूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे। कुछ दिनों के बाद सत्यवती के गर्भ से दो पुत्र उत्पन्न हुये। चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य। महाव्रती भीष्म ने दोनों भाइयों की शिक्षा-दीक्षा का प्रवन्ध स्वयं अपने हाथों में रक्खा।

एका-एक हस्तिना-नगरी शोक सागर में डूब गई—महात्मा शान्तनु परलोक वासी होगये। भीष्म ने माता सत्यवती की राय से चित्राङ्गद को राज सिंहासन पर बैठाया। चित्राङ्गद भीष्म की सहायता से राज-काज देखने लगे।

महावीर चित्राङ्गद के शासन काल में गन्धर्व राज चित्रांगद ने हस्तिना-नगरी पर आक्रमण किया था। सरस्वती के तट पर दोनों सेनायें डटी थीं। पराक्रमी गन्धर्वों और महावली मानवों का भयङ्कर युद्ध था। पृथ्वी वीरों के रक्त से लाल हो गई थी। उसी भीषण समर में महावली चित्राङ्गद गन्धर्वराज चित्राङ्गद के हाथ से मारे गये।

विचित्रवीर्य उस समय वालक थे। महामति भीष्म ने उन्हीं को राज सिंहासन पर बैठाया। धीरे-धीरे वह राज-काज समझने लगे। महात्मा भीष्म की शिक्षा से वह थोड़े ही

दिनों में योग्य हो गये। इस प्रकार कुछ ही दिनों के बाद विचित्रवीर्य युवावस्था में पदार्पण किये, यह देख भीष्म को उनके विवाह की चिन्ता हुई।

उसी समय काशी-नरेश को तीन कन्याओं का स्वयंबर हो रहा था। काशीराज की अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका नाम की तीनों कन्यायें सुन्दरी, सुशीला और सर्वगुण युक्ता थीं। भीष्म ने अच्छा अवसर देख, विचित्रवीर्य तथा शूर-सामन्तों को ले काशी के लिये प्रस्थान किया।

काशी पहुँचकर भीष्म ने देखा कि विवाह की इच्छा रखने वाले सहस्रों राजा देश-देशान्तरों से आकर एकत्र हुये हैं। स्वयंवर सभा भाँति २ की मणियों से सजायी गयी है। सभा मण्डप सुगन्धित द्रव्यों से परिपूर्ण होरहा है। तीनों सुन्दरी राजकुमारियाँ स्वयम्वर सभा में घूम-घूम कर अपूर्व सौजन्य सुधा की वर्षा कर रही हैं।

महामति भीष्म ने सोचा—इतने राजाओं के रहने पर स्वयम्वर की रीति से मनोरथ सफल हो या न हो? सन्देह है। अतः उन्होंने बल पूर्वक तीनों कन्याओं को उठा कर रथ पर बिठा लिया और हस्तिनानगरी की ओर ले चले।

स्वयम्बर में आये हुये राजाओं ने इसमें अपना अपमान समझा। उनसे यह भीष्म का अन्याय नहीं देखा गया। सभी मरने-मिटने के लिये तैयार हो गये। वह मङ्गल, सुखदायी धाम देखते ही देखते श्मशान से बढ़कर भयङ्कर हो गया। रथों के निर्घोष और कोदण्डों के टङ्कोर से दिशायें

पूर्ण हो गई। महीपों ने भीष्म के रथ को चारो ओर से घेर लिया।

अब क्या था? भयंकर युद्ध छिड़ गया।

राजाओं का दल वीरता पूर्वक बाणों की वर्षा करने लगा, कुछ ही काल में महाव्रती भीष्म का रथ दिव्य शरों से ढँक गया। सहस्रों शत्रुओं को एक साथ ही इस प्रकार आक्रमण करते देख उन्हों ने हँसते हुये धनुष उठा लिया, और क्षण मात्र में उन के बाणों को काट दिशाओं को निर्मल कर दिया। क्या भयंकर वातूल के सन्मुख कभी तूल के टुकड़े रुक सकते हैं?

महात्मा भीष्म की माता गंगा ने इन्हें बाल्यकाल में युद्ध की अच्छी शिक्षा दी थी, परशुराम, शुक्राचार्य्य आदि आचार्य्यों ने एकसे एक बढ़कर भयंकर अस्त्रों का उपयोग बतलाया था, महाबली भीष्म उन्हीं अमोघ अस्त्रों से काम लेने लगे। कुछ ही क्षण पश्चात् इनके अमोघ पैने बाणों की मार से महीपों का दल विचलित हो उठा। इस ब्रह्मचारी के कठिन प्रहारों ने बड़े बड़े धीर धीरधारियों को अधीर बना दिया।

महाबली भीष्म अखण्ड ब्रह्मचारी थे, उनके सन्मुख इन राजाओं की क्या गिनती थी? सभी पतङ्ग रूप हो उनके क्रोध ज्वाल में भस्म होने लगे—कुछ ही देर बाद सबों को परास्त कर भीष्म निर्भयता पूर्वक आगे बढ़े। उनकी अलौकिक वीरता देख शत्रु भी मुक्त कण्ठ हो प्रशंसा करने लगे।

इधर भीष्म हस्तिनापुर पहुँचे। बड़ा समारोह हुआ।

उन्होंने माता सत्यवती की सलाह से कन्याओं के विवाह का आयोजन आरम्भ किया। यह देख बड़ी कन्या अम्बा लज्जा पूर्वक भीष्म के पास आकर बोली—हे वीर श्रेष्ठ ! मैंने मन ही मन शाल्व-राज को अपना पति मान ली थी, और उन्होंने भी मुझ से विवाह के लिये प्रार्थना की थी। स्वयम्वर में मैं निश्चय ही उनके गले में जयमाल डालती। ऐसी दशा में आप को क्या करना उचित है ?

धर्मात्मा भीष्म बड़े सङ्कट मे पड़े। अम्बिका और अम्बालिका का विवाह विचित्रवीर्य से हो गया। पश्चात् अम्बा अपनी धाय और एक वृद्ध ब्राह्मणके साथ सम्मान पूर्वक शाल्व-राज के पास भेजी गई। परन्तु शाल्वनरेशने अम्बा को अस्वीकार कर दिया। उसने कहा—स्वयम्वर में जिसने तुम्हें हरण किया है वही तुम्हारा पति है तुम उसी के पास जाओ।

शाल्वराज के कठोर वचन सुनकर अम्बा झुँझला उठी—वह तत्काल वहाँ से चल दी, भीष्म के पास आने का उसे साहस नहीं हुआ और न लज्जा के कारण पिता के ही घर जा सकी। वह बार-बार पिता भीष्म और शाल्व राज को धिक्कारने लगी। इस प्रकार अभिमानिनी अम्बा अनाथिनी हो गली-गली रोती हुई घूमने लगी।

भीष्म-परशुराम संग्राम ।

प्रतापी भीष्म के दुर्व्यवहार से अम्बा क्षुब्ध हो उठी—वह भीष्म को ही सभी अनर्थों की जड़ समझ प्रतिशोध का मार्ग ढूँढ़ने लगी। उसे बड़ा क्रोध आया। उसने भीष्म से बदला लेने के लिये संकल्प कर लिया और दूसरे ही दिन से एक एक कर, तपस्वियों के आश्रम में मन्तव्य की सिद्धि के लिये जाने-आने लगी।

धीरे-धीरे कुछ दिन बीत गये। एक दिन एक आश्रम में जब वह ऋषियों के सन्मुख अपनी करुण कथा कह रही थी कि अचानक उसके नाना महर्षि होत्रवाहन आ पहुँचे। उन्होंने अम्बा की कथा बड़े दुःख से सुनकर अनुमति दी कि तुम आचार्य्य परशुरामजी की शरण में चलो। तुम्हारी करुण कथा सुन कर वह अवश्य दया करेंगे तथा निर्दय हृदय वाले दुर्व्यवहारी भीष्म को उचित दण्ड देंगे। पुत्री ! महात्मा परशुराम हमारे भाई हैं और वह भीष्मके गुरु हैं। तुम चिन्ता न करो।

इस प्रकार कह कर राजर्षि होत्रवाहन अम्बा को लेकर महर्षि जामदग्न्य के पास पहुँचे। अम्बा चरणों में जा गिरी और रोते-रोते बोली—नाथ ! इस घोर दुःख, अपार शोक तथा अनन्त यंत्रणा से मेरी रक्षा कीजिये।

महात्मा जामदग्न्य अपने भाई की दौहित्री को इस

प्रकार दुःख से व्यग्र होते देख द्रवित हो उठे। उन्होंने प्रेम पूर्वक कहा—राजपुत्री! चिन्ता न करो, तुम क्यों इतना अधीर हो रही हो? अपने विपत्ति और शोक का कारण बताओ—निःसन्देह हम तुम्हारे कष्टों को दूर कर देंगे।

महात्मा जामदग्न्य की बातें सुन अम्बा को कुछ धैर्य हुआ—परन्तु वह पूर्ववत ही बिलखती हुई अपनी आद्योपान्त करूण कथा सुना गई। अम्बा की करूण कहानी ने परशुराम जी के हृदय को पानी कर दिया। वह दया और स्नेह से द्रवित हो बोल उठे—

राजनन्दिनी! तुम्हारी क्या इच्छा है? यदि तुम चाहो तो शाल्वराज से तुम्हारा विवाह करा दें, अथवा भीष्म को ही क्षमा याचना के लिये बाध्य करें। बोलो—राजपुत्री! तुम्हारी क्या अभिलाषा है! हम वही करेंगे—जो तुम कहोगी।

अभिमानिनी अम्बा ने कहा—नाथ! शाल्वराज ने मुझे लौटा दिया है। अब मैं पुनः उसके पास नहीं जा सकती। देव! मेरे इन सब दुःखों का कारण तथा अनर्थों की जड़ एकमात्र भीष्म ही है, उसे प्राणदण्ड मिलने पर ही मेरे ये दुःख और शोक दूर हो सकेंगे।

महात्मा परशुराम ने अम्बा की भयंकर मनोकामना को सुन—पहले तो उसे बहुत समझाया-बुझाया, परन्तु उसे अपने विचार पर दृढ़ देख अन्त में लाचार हो वचन

की पूर्ति के लिये साथ लेकर उन्हें हस्तिनापुर जाना पड़ा। महात्मा जामदग्न्य राजनन्दिनी अम्बा को लेकर कुरु क्षेत्र में आये और अपने आगमन की सूचना महाबली भीष्म को दिये। महामति भीष्म यह सुनते ही अत्यन्त प्रसन्न हो उठे और तत्काल गुरुदेव के पास जा पहुँचे। महात्मा जामदग्न्य शिष्य भीष्म की विधि पूर्वक पूजा ग्रहण कर बोले—

देवव्रत! तुम इस कन्या के साथ विवाह कर लो। तुम ने बाराजोरी इसे हरण किया है, अपनी पत्नी बनाकर इसके घोर अपमान को दूर करो। महात्मा जामदग्न्य को रुद्र रूपधारण करते देख भीष्म नम्रता पूर्वक बोले—नाथ! हमने नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने का प्रण किया है। हे ब्रह्मर्षि! यह हमारी प्रतिज्ञा है कि कभी विवाह न करेंगे। कहिये— अपनी प्राणप्रिय प्रतिज्ञा को हम कैसे तोड़ सकते हैं?

भीष्म को विमुख होते देख जामदग्न्य. उबल पड़े, तत्काल उनका प्रलयकारी रोष प्रकट हो गया, वह क्रोध से जल उठे, उनकी आँखें अँगारेके समान दहक उठीं, भुजायें फड़कने लगीं तथा उष्ण निःश्वांस से दिशायें तप्त हो गईं। वह गरजते हुये बोल उठे—

भीष्म! गुरू आज्ञा की अवहेलना! क्या तू मुझे नहीं जानता। मैं वही सहस्त्राबाहू की भुजाओं को छेदने वाला हूँ एक नहीं इक्कीस बार इस पृथ्वी का भार हटाने वाला हूँ,

व्यर्थ काल न बुला, मेरी अवज्ञा का परिणाम प्राणदण्ड है। समझ ले—

आचार्य्य को क्रोधित देख भीष्म उनके चरणों में जा गिरे- और नम्रता पूर्वक प्रार्थना करने लगे, उन्होंने आचार्य्य को शांति पूर्वक सन्तुष्ट करने की चेष्टा की, परन्तु सब निष्फल हुआ—अन्त मे गुरु के साथ युद्ध करना ही पड़ा।

कुरुक्षेत्र के मैदान में गुरु-शिष्य का भयङ्कर संग्राम छिड़ गया, घात-प्रतिघात से दिशायें रव पूर्ण हो गईं। कोदण्डों के टङ्कार से पृथ्वी और आकाश एक हो गया। भयङ्कर अस्त्रों के परिचालन से लोक तथा भुवनादि व्यग्र हो गये। पृथ्वी थर्रा गई तथा दिग्पाल काँप उठे।

दोनों महावली थे, रणकला विशारद थे, आजन्म ब्रह्म- चारी थे—तथा अखण्ड तपधारी थे। गुरु—शिष्य का यह घमासान युद्ध सत्ताइस दिनों तक लगातार चलता रहा। 'द्यु' वसु का अपूर्व तेज देख तथा शस्त्रास्त्र चलाने की निपुणता अवलोक महावली जामदग्न्य दंग हो गये। उन्होंने बड़े बड़े अस्त्र शस्त्रों का प्रयोग किया परन्तु भीष्म के आगे उनकी एक नहीं चली। उन्हें विवश हो पराजित होना पड़ा।
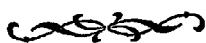
शिखण्डिनी का जन्म।

इधर महाबली जामदग्न्य ब्रह्मचारी भीष्म से पराजित हो अम्बा से दीनता पूर्वक बोले—राजपुत्री! मैं विवश हूँ, तुम्हारे लिये हमने कुछ उठा नहीं रक्खा, जहाँ तक संभव था हमने किया, किन्तु महा पराक्रमी शिष्य ने मुझे पराजित कर दिया। अब तुम और किसी महात्मा की सहायता से अपना अभीष्ट सिद्ध करो।

महात्मा परशुराम को ऐसे कहते देख अम्बा बोली। देव! जब आप ही उस महा पराक्रमी को वशीभूत नहीं कर सके तो विश्व में और कौन ऐसा वीर है जो उसे जीत सके? अब मैं किसी और महापुरुष से सहायता की याचना नहीं करूँगी, स्वयं अपने बल पर भीष्म के नाश का साधन बनूंगी। नाथ! अन्यत्र जाना मैं व्यर्थ समझती हूँ।

प्रयास निष्फल देख राजनन्दिनी क्षुब्ध हो उठी, उसके कमल नेत्र अग्नि बरसाने लगे, वह त्रैलोक्य सुन्दरी एकाएक रणचण्डी के समान भयंकर हो गई। उसने क्रोधावेश में कड़कते हुये प्रतिज्ञा की—भीष्म! ठहरजा! तेरे कुकृत्य का फल मिलेगा, मेरे द्वारा तेरा सर्वनाश होगा। इस प्रकार दृढ़ संकल्प कर वह अनाथ बाला उसी वन में तपस्या के लिये बैठ गई।

धीरे-धीरे दिन, सप्ताह, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, और सम्वत्सर बीतने लगे। उस देवी ने वर्षों निराहार तपस्या की। शीत, घाम, और, वर्षा, के दुखों को सहकर उग्र तप

करती रही। अम्बा के प्रबल तप को देख-देख देवता गन्धर्व किन्नरादि भयभीत हो गये, इन्द्र थर्रा उठे तथा दानवादि भी व्यग्र हो रहे। अम्बा के अखण्ड तप के बलसे दुर्गम गहन मंगलदायी हो गया। सर्वत्र ऋद्धियां और सिद्धियाँ आ बसीं।

इस प्रकार अम्बा के घोर तप को देखकर भगवान व्योमकेश अत्यन्त प्रसन्न हो प्रकट हुये और बोले—भद्रे! क्या चाहती है? वर माँग! मैं तुझ से अत्यन्त सन्तुष्ट हूँ।

अम्बा ने कहा—भगवान! मैं चाहती हूँ कि मेरे द्वारा भीष्म का वध हो।

शंकर ने कहा—एवमस्तु। जा ऐसाही होगा!

इस प्रकार महादेव से वर प्राप्त कर अम्बा अत्यन्त प्रसन्न हुई—उसकी भावना फलवती हुई—उसे निश्चय हो गया कि अब मैं भीष्म से बदला ले सकूँगी। मेरे द्वारा भीष्म का निधन हो सकेगा। शंकर भगवान का वचन मिथ्या नहीं हो सकता!

प्रिय पाठकों। इसके पश्चात् दृढ़ प्रतिज्ञ अम्बा वहीं एक चिता तैयार कर उसमें अग्नि डाल आप बैठ गई—देखते ही देखते उस अनुपम सुन्दरी का शरीर भस्म हो गया। दूसरे जन्म में वह पांचाल देशके राजा द्रुपद की कन्या शिखण्डिनी हुई, आगे चलकर वही एक दानव के वर प्रभाव से स्त्री से पुरुष हो महाभारत के विकट संग्राम में महात्मा भीष्म की मृत्यु का कारण हुई।

वेदव्यास द्वारा कुरुवंश की रक्षा।

इधर हस्तिनानगरी में महा मङ्गल मच रहा था। सत्यवती राज-माता होकर आनन्द मना रही थी, प्रजायें आनन्द में विभोर हो एक स्वर से यश गाण कर रही थीं। दास-दासियाँ, ब्राह्मण भाँट तथा बंदीजन अयाचक हो हित-कामना कर रहे थे तथा देवता और पितर सन्तुष्ट हो मङ्गल मना रहे थे। राजधानी में सर्वत्र सुख-शांति की अटूट धारा बह रही थी।

विचित्रवीर्य परम सुन्दरी रानियों (अम्बिका, अम्बालिका) को पाकर अत्यन्त प्रसन्न थे। उन्हें किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं थी। महामति भीष्म जिसके रक्षक हों—क्या उसे स्वप्न में भी भय अथवा दुःख हो सकता है? कदापि नहीं। विचित्रवीर्य अपनी प्यारी रानियों के साथ सुख-पूर्वक दिन बिताने लगे।

धीरे-धीरे विना किसी विघ्न-वाधा के सात आठ वर्ष वीत गये। महात्मा विचित्रवीर्य प्यारी रानियों के प्रेम में पूर्ण रूप से आसक्त हो गये। उन्होंने ब्रह्मचर्य अर्थात् वीर्य रक्षा का ध्यान भुला दिया। अतः कुछ ही दिनो के वाद वीर्य—हीनता के कारण उन्हें राज-यक्ष्मा अर्थात् राजरोग क्षय ने पकड़ लिया। क्षय अपने मित्र का विना क्षय किये नहीं रहता। अतः उनके मित्र क्षय ने युवापन में ही उनकी जान ले ली।

शोक ! विचित्रवीर्य को आकाल मृत्यु ने हस्तिनानगरी को शोक सागर में डाल दिया। प्रजायें अनाथ हो आर्त-नाद करने लगीं। पति वियोग व्यथिता रानियां हाय! हाय! कर विलाप करने लगी। माता सत्यवती भी पुत्र शोक से व्याकुल हो उठी, महामति भीष्म भी विचित्रवीर्य को आकाल मृत्यु से चिन्तित हो उठे। सम्पूर्ण राज्य में शोक और दुःख की काली घटायें घिर गईं।

बड़े संकट का समय था। सत्यवती के दोनों पुत्र निःसन्तान ही चल बसे थे। राज्य की रक्षा कैसे होगी? महाबली भीष्म अपनी अटल टेक पर डटे थे। आमरण ब्रह्मचर्य धारण करने की प्रतिज्ञा कर चुके थे। कुरुकुल के लिये बड़ी कठिन समस्या आ गई। राज्य की रक्षा के लिये सत्यवती ने विवाह करने के हेतु भीष्म से अनुरोध किया परन्तु वह दृढ़ प्रतिज्ञ अपने संकल्प पर डटा रहा।

एक दिन भीष्म को व्यग्र तथा चिन्तित देख सत्यवती ने कहा—पुत्र! बड़ी कठिन समस्या है। युक्तियाँ काम नहीं देतीं। कुरुवंश की कैसे रक्षा की जाय? आज मैं तुम से एक पुरानी गुप्त कथा कहती हूँ, सुनो—जब मैं बालिका थी, तब पिता की आज्ञा से बिना उतराई लिये हुये लोगों को नाव पर बिठा कर यमुना पार किया करती थी। संयोगवश एक दिन महर्षि पराशर आये, उन्होंने मुझे एक पुत्र दिया। वह बालक मेरे गर्भ से यमुना के द्वीप में उत्पन्न हुआ। इस लिये उसका नाम द्वैपायन पड़ा। बालककाल में मेरे शरीर से

मछली की गंध निकला करती थी, परन्तु उन्हीं महात्मा के संयोग से वह दुर्गन्ध जाती रही। यह अत्यन्त मनोहर सुगन्ध उन्हीं तपोनिष्ठ महात्मा की दी हुई है।

हे वीर श्रेष्ठ! द्वैपायन बड़ा बुद्धिमान और पण्डित हुआ। उसने वेदों के पृथक पृथक विभाग किये। इस लिये उसका नाम वेदव्यास हुआ। द्वीप से विदा होते समय उसने मुझसे कहा था—माता! जब कभी विपत्ति (संकट) आ पड़े तो मेरा स्मरण करना। महामति भीष्म! क्या इस विपत्ति की निवृत्ति के लिये उसका स्मरण करना चाहिये?

भीष्म अपने भाई वेदव्यास का वृतान्त सुन अत्यन्त प्रसन्न हो उन्हें शीघ्र स्मरण करने के लिये माता से अनुरोध किये। माता सत्यवती ने वेदव्यास का स्मरण किया। स्मरण करते ही तत्काल उनके सन्मुख आ उपस्थित हुये और बोले—माता! क्या संकट है? बोलो—मैं तुम्हारे दुःखों को दूर करूंगा।

सत्यवती कुलनाश की आद्योपान्त घटना कह सुनाई। द्वैपायन ने बड़े ध्यान पूर्वक उसे सुनकर कहा—माता! कुरु कुल का नाशनहीं होसकता। मैं विचित्रवीर्य की दोनों स्त्रियों को पुत्र देकर नाश होते हुए कुरुकुल को बचा लूंगा। तुम हमारे भाई विचित्रवीर्य की स्त्रियों को एक एक कर सेवा के लिये मेरे पास भेजो। यदि वे प्रसन्नता पूर्वक हमारी सेवा कर सकेंगी तो निश्चय ही पुत्रवती होंगी।

वेदव्यास की बातों से सत्यवती अत्यन्त प्रसन्न हुई। वह

तत्काल पुत्र वधुओं के पास जाकर व्यासदेव की बातें कह सुनाई। दोनों रानियाँ सेवा के लिये तैयार हो गईं। रानियों ने समझा था कि हमारे पति के बड़े भाई वेदव्यास जी का स्वरूप महात्मा भीष्म तथा सुन्दर राजाओं के समान ही होगा। इससे अत्यन्त प्रसन्न हो सेवा के लिये प्रस्तुत होगईं।

सत्यवती ने सबसे पहले अम्बिका को भेजा—अम्बिका प्रसन्न होती हुई चली, वहाँ पहुँचते ही वह व्यास जी के भयंकर वेश को देख डर गई, उनकी लंबी लंबी-जटायें, लाल-लाल आँखे तथा बेतरह काला शरीर देख डरके मारे आँखें मूंद ली। यह देख व्यास जी ने कहा जा! तुझे एक पुत्र होगा। परन्तु तेरे आँख मूँदने के कारण वह जन्मान्ध होगा।

इसके अनन्तर सत्यवती ने महा सुन्दरी अम्बालिका को भेजा। अम्बालिक भी वेदव्यास के विकट रूप को देख भय-भीत हो गई। मारे डर के उसका शरीर पीला पड़ गया। व्यास जी ने प्रसन्न होकर कहा—जा तुझे भी एक पुत्र होगा परन्तु मेरे रूप के भय से तेरा शरीर पीतवर्ण हो गया है इस लिये बालक पाण्डु वर्ण का होगा।

दोनों बहुओं के इस प्रकार खंडित वर पाते देख सत्यवती ने पुनः जेठी बहू अम्बिका को व्यास जी के पास जाने के लिये कहा—वह विशेष भयभीत हो चुकी थी, वह किसी प्रकार जाने के लिये तैयार नहीं हुई। उसने एक दासी को अपने कपड़े—गहने पहना कर व्यासदेव के पास भेज दिया। दासी ने द्वैपायन की भली-भाँति सेवा की इससे व्यास देव

प्रसन्न होकर बोले—सुन्दरी ? तूने मुझे अत्यन्त सन्तुष्ट किय है, जा ! तुझे भी एक सर्वगुण सम्पन्न महा सुन्दर धार्मिक बुद्धिमान पुत्र उत्पन्न होगा ।

इस प्रकार वरदान दे महर्षि व्यास माता से बोले माता ! मैंने तुम्हारी इच्छा के अनुसार भाई विचित्रवीर्य की स्त्रियों को पुत्र का वर दिया है, निःसन्देह मेरे कथनानुसार वे सन्तानवती होंगी । अब तुम चिन्ता और शोक को त्याग दो, इन भावी सन्तानों के द्वारा महाराज कुरु का पवित्र वंश नष्ट नहीं हो सकता ।

धर्मात्मा पुत्र की बातें सुन माता सत्यवती गद् गद् हो उठी और प्रेम पूर्वक बोली—पुत्र ! तुम बड़े कठिन समय में काम आये । तुम्हीं कहो—ऐसे विकट समय में और कौन सहायक हो सकता था ? निःसन्देह तुमने कुरु कुल की डूबती हुई तरणी को किनारे लगा दिया है ।

इसके पश्चात् महात्मा बादरायण माता तथा महामति भीष्म से मिलकर पुनः तपस्या के लिये चले गये ।

यथा समय अम्बिका के गर्भ से जन्मान्ध धृतराष्ट्र, अम्बालिका के गर्भ से पाण्डु वर्ण वाले पाण्डु तथा दासी के गर्भ से महात्मा विदुरजी जन्म लिये । तीनों सगे भाई की तरह राज-भवन में रहने लगे ।

सर्वत्र आनन्द छा गया, राजा-प्रजा सभी प्रसन्न हो उठे । तीनों कुमारों से भावी आशंका जाती रही ।
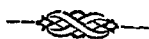
धृतराष्ट्र-पाण्डु और बिदुर ।

धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर के जन्म ने ध्वंस होते हुये कुरुकुलकी रक्षा करली। शोक की भयावनी काली घटायें हट गईं। देखते-ही-देखते कुरुकुलाम्बर निर्मल होगया। धृतराष्ट्र पाण्डु और विदुर को देख प्रजायें प्रसन्न हो उठीं। सत्यवती और विचित्रवीर्य की रानियाँ कम प्रसन्न नहीं हुई। महामति भीष्म की भी चिन्ता जाती रही।

सर्वत्र मंगल मच गया। राज्य में सुख—ऐश्वर्य भी वृद्धि होने लगी, देवराज समय पर वृष्टि करने लगे। पृथ्वी सस्य श्यामला हो उठी, कला-कौशलों की उन्नति होने लगी, विद्या और व्यापारकी दिन-दिन वृद्धि हो चली। प्रजायें धर्म पर डट गईं। लोग अनन्द पूर्वक स्वच्छन्दता से कालयापन करनेलगे।

धीरे-धीरे तीनों कुमार बड़े हुये। महर्षि व्यास के वर-दान से धृतराष्ट्र जन्मांध हुये थे, पाण्डु पीतवर्ण के थे तथा विदुर सुन्दर शरीर और सुन्दर बुद्धि वाले थे। महात्मा भीष्म तीनों कुमारोंको पुत्रकी तरह माननेलगे। समय पर वेद विधि के अनुसार सभी संस्कार कराये तथा बड़े होनेपर स्वयं युद्ध—विद्या, राजनीति तथा धर्म शास्त्र की शिक्षा दिये। कुछ ही दिनों में तीनों राजकुमार सभी विद्याओं में प्रवीण होगये। धृतराष्ट्र बड़े बलवान हुये, पाण्डु अस्त्र-शस्त्र विद्या में निपुण तथा विदुर राजनीति और धर्मशास्त्र में सर्व श्रेष्ठ हुये। तीनों राजकुमारों की समानता करनेवाला संसार में कोई न था।

गाँधारी, कुन्ती, माद्री और पाराशवी।

तीनों कुमारों को युवावस्था में पदार्पण करते देख महामति भीष्म सत्पात्र कन्याओं को ढूढ़ने के यत्न में लग गये। कुछ दिनों के बाद उन्होंने सुना कि गान्धार देश के राजा सुवल की कन्या गान्धारी बड़ी रूपवती और बुद्धिमती है। महात्मा भीष्म ने रुपवती सुलक्षणा गाँधारी के साथ धृतराष्ट्र का विवाह करना निश्चित कर महावली गाँधार नरेश सुवल के पास अपना दूत भेजा।

महावली धृतराष्ट्र को जन्मान्ध जान पहले तो महीप सुवल ने आगा पीछा किया, परन्तु पीछे कुरुकुल का गौरव ध्यान कर तथा धृतराष्ट्र के अनन्त वल और पराक्रम को देख पुत्री देना स्वीकार कर लिया। महावली सुवल ने अपने पुत्र शकुनि के साथ गांधारी को हस्तिनापुर भेज दिया। महामति भीष्म की आज्ञा से शुभ लग्न में गाँधारी का विवाह महावली धृतराष्ट्र के साथ हो गया।

गाँधारी बड़ी प्रतिव्रता थी, उसने अपने पति को जन्मान्ध देख अपनी आँखों में भी पट्टी चढ़ा ली, वह भी धृतराष्ट्र ही की तरह अन्धी बनी रही, उस सती ने यह प्रण किया कि मैं कभी पति से अच्छी दशा में नहीं रहूँगी—उस देवीने यावत् जीवन अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया।

सुलक्षणा गान्धारी बड़ी सुशीला थी, वह अपने सदगुणों से सवों को सन्तुष्ट रखती थी, सवों को प्रसन्न रखती तथा

यथोचित सेवा किया करती थी, सभी उसकी बड़ाई किया करते थे। दास-दासियाँ प्रसन्न रहती थीं, ब्राह्मण भाट तथा याचक गण उसकी जय मनाया करते थे। वास्तव में गांधारी ने अपने सद्गुणों से सबों को वशीभूत कर लिया था।

उसी समय यदुकुल-मणि महाराज शूरसेन की कन्या पृथा का स्वयंवर होने वाला था। पृथा के रूप और गुण की चर्चा सर्वत्र फैल रही थी। देश देशान्तरों के राजा उससे विवाह करने की कामना करके स्वयंवर में पहुँचने लगे। महामति भीष्म को भी यह समाचार मिला—उन्होंने महा धनुर्धर पाण्डु को बुलाकर पृथा के स्वयंवर में जाने के लिये कहा—

भोजराज कुन्ति महाराज शूरसेन के फुफेरे भाई (बुआ के पुत्र) थे। उनके निःसन्तान होने के कारण महाराज शूरसेन ने प्रतिज्ञा की थी कि हम अपनी पहली सन्तान तुम्हें देंगे। इसी सिद्धान्त पर जेठी कन्या पृथा भोजराज कुन्ति के यहाँ भेज दी गई। पृथा का पालन पोषण भोजराज के ही यहाँ हुआ। इसी से पृथा का दूसरा नाम कुन्ती पड़ा।

भोजराज कुन्ति बड़े अतिथि सेवक थे, उनके यहाँ बरा-बर ऋषि—मुनि, तपस्वी तथा विद्वान लोग आया करते थे। कुन्ती भी कुछ बड़ी होने पर अपने धर्म पिता के साथ अतिथि-सेवा में लगी रहती थी। एक बार महातेजस्वी दुर्वासा ऋषि आये। वह बालिका कुन्ती की सेवा—शुश्रूषा तथा भक्तिभाव से अत्यन्त प्रसन्न हो एक महामंत्र दे बोले—पुत्री! तुम्हारी

सेवा से सन्तुष्ट होकर मैं यह महामंत्र देता हूँ इस महामंत्र का उच्चारण कर तुम जिस देवता का स्मरण करोगी—वह तत्काल तुम्हारे पास आकर उपस्थित होगा और तुम्हें एक पुत्र का वर देगा। इस प्रकार वर देकर दुर्वासा चले गये।

कुन्ती उस समय छोटी वालिका थी। वाल्यकाल की चपलता के कारण वह उस मंत्र की परीक्षा के लिये तैयार हो गई। विधि पूर्वक उसने मंत्र को पढ़ कर सूर्य्यदेव का स्मरण किया। महा तेजस्वी दुर्वासा के अमोघ मंत्र के वल से सूर्य्य भगवान दिशाओं एवं विदिशाओं को आलोकित करते हुये कुंती के पास आ खड़े हुये। मंत्र का आश्चर्य जनक वल देख कुन्ती आश्चर्य चकित तथा सशंकित हो गई।

सूर्य्य नारायण को सन्मुख देख कुन्ती को ध्यान आया, अव उसे अपनी अज्ञानता जान पड़ी। बिचारी वड़ी लज्जित हुई और हाथ जोड़ कर वोली—हे सूर्य्य देव! आप मेरा अपराध क्षमा करें। हम से बाल्य स्वभावके क़ारण ऐसी वड़ी भूल हुई है। वालिका कुंती की बातें सुन सूर्य्यदेव ने कहा—

मृगलोचनी? तुमने कोई भूल नहीं की है। सुन्दरी! महर्षि दुर्वासा के मंत्रके प्रभाव से तुम्हें एक पुत्र होगा। तुम भय न करो।

सूर्य्य देव की वातें सुन कुन्ती बड़ी दुःखी हुई, वह अभी कुमारी थी, कन्या थी, पुत्र होने क़ी वात सुन कर उसे बड़ा दुःख हुआ। भगवान भानु ने उसे चिन्तित और व्यग्र देख मधुर वचनों में शान्त्वना देते हुये कहा—सुन्दरी! भयभीत

न हो—मेरे वर प्रसाद से तुम्हारा कुमारीपन नष्ट न होगा। तुम्हारा पुत्र दिव्य कुण्डल और अभेद्य कवच धारण कर जन्म लेगा। जब तक उसके शरीर पर दिव्य कुण्डल और अभेद्य कवच रहेगा—कोई उसे विजय नहीं कर सकेगा। इतना कह कर भगवान दिवाकर आकाश में उठ गये।

कुछ दिनों के बाद कुंती के गर्भसे कुण्डल कवच धारण किये हुये एक तेजस्वी बालक उत्पन्न हुआ। कुंती बड़े फेर में पड़ी, लोक-लज्जा के मारे सूर्य्य के दिये हुये उस पुत्ररत्न को—उस नवजात शिशुको—नदी के प्रवाह में डाल आई।

बालक बहता-बहता बहुत दूर निकल गया। अचानक कुरुराज के सारथी अधिरथ की दृष्टि उस पर पड़ी। अधिरथ नदी के प्रवाह से सद्यजात बालक को निकाल घर पर ले आया। उस सुन्दर कुण्डल-कवच-धारी तेजस्वी बालक को देख उसकी स्त्री राधा अत्यन्त प्रसन्न हो उठी। दोनों—स्त्री पुरुष पुत्रके समान उसका पालनपोषण करने लगे। बालक का नाम वसुसेन रखा गया। आगे चल कर महाभारत के रणक्षेत्र में—वही तेजस्वी बालक महावीर कर्ण के नाम से विख्यात हुआ।

इसी कुमारी कुन्ती का स्वयंबर था। भोजराज कुन्ति ने यह प्रतिज्ञा की थी कि रुपवती कुन्ती जिसे वरण करेगी उसके साथ विवाह कर देंगे। स्वयंबर में एक से एक सुन्दर बलवान्, गुणवान एवं प्रतापी राजा एकत्र हुये थे, महारथी पाण्डु भी भीष्म कोआज्ञा से स्वयंबर में जा डटे थे।

पाण्डु के तेजके आगे सभी राजाओं का तेज मन्द पड़ गया। कुन्ती पाण्डु की अपार सुन्दरता देख मोहित हो उन के गले में जयमाला डाल दी। अब क्या था? प्रतिज्ञा के अनुसार भोजराज कुन्ति ने कुन्ती का विवाह महावली पाण्डु से कर दिया। यथा समय बड़े धूमधाम के साथ कुन्ती सहित पाण्डु हस्तिनापुर में प्रवेश किये—समस्त नगरी में आनन्द छा गया।

इस के पश्चात् मद्रदेश के राजा शल्य की बहन माद्री से भी महावली पाण्डु का विवाह हुआ। माद्री अनिन्द्य सुन्दरी थी। वह जैसी रुपवती थी वैसी ही गुणवती भी थी, पाण्डु दोनों स्त्रियों को पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुये।

महात्मा विदुर दासी पुत्र थे, तथापि महामति भीष्म उन्हें राज कुमारों के समान ही मानते थे। विदुर जी ने अपने सद्गुणों के कारण सबों के हृदय पर अपना अधिकार कर लिया था। लोग पीछे से भी उनकी प्रशंसा किया करते थे। धृतराष्ट्र और पाण्डु उन्हें सहोदर भाई के समान मानते थे। प्रजायें, विदुर को प्यार करने में सौभाग्य समझती थीं। महामति भीष्म ने महात्मा विदुर को भी विवाह के योग्य समझ राजा देवक की परम रुपवती सुलक्षणा कन्या पाराशवी को निश्चय किया। इस प्रकार महात्मा भीष्म की अनुमतिसे विदुरजी का पाराशवी के साथ विधि पूर्वक विवाह होगया। तीनों कुमार सपत्निक हो आनन्द पूर्वक रहने लगे।

महाबली पाण्डु का दिग्विजय ।
और वैराग्य ।

—*—*—

ज्येष्ठ कुमार धृतराष्ट्र जन्मान्ध थे अतः सभी मंत्रियों तथा प्रजाओं ने भीष्म की सम्मति से धनुर्धर पाण्डु को राज सिंहासन पर बैठाया। महात्मा पाण्डु जैसे अस्त्र-शस्त्र विद्या में निपुण थे वैसे ही प्रजापालन और नीति में भी चतुर थे। महा नीतिज्ञ महात्मा विदुर बराबर राज-काज में सहायता दिया करते थे। महाबली धृतराष्ट्र भी अपने तेजस्वी भाई पाण्डु को कम नहीं मानते थे। इस प्रकार महात्मा भीष्म कुरु वंश की बेल को फलते-फूलते देख अत्यन्त सन्तुष्ट हुये।

धीरे-धीरे दीर्घ काल आनन्द में व्यतीत हुआ। इसके अनन्तर महाबली धनुर्धर पाण्डु महात्मा भीष्म की आज्ञा से दिग्विजय के लिये निकले। महावीर पाण्डु के संकेत से कुरु कुलकी अपार चतुरंगिणी वाहिनी पृथ्वी और आकाश को एक करती हुई चल पड़ी। बड़े-बड़े शूर सामन्त, अश्वारोही, रथी तथा महारथी भयंकर टङ्कोर करते हुये निकल पड़े। महाबली पाण्डु की विशाल वाहिनी देख बड़े बड़े महीपों का वज्र हृदय दहल गया। जो जो अभिमानी राजे लड़ने के लिये सामने आये उन्हें इस महावीर ने या तो बरबस वशीभूत किया अथवा क्षणमात्र में सुरलोक भेज दिया।

महावली पाण्डु ने वड़ा पराक्रम दिखलाया। एक ओर से पृथ्वी के दूसरे छोर तक अपने वाहूवल से विजय दण्ड स्थापित कर दिया—सारी पृथ्वी के राजाओं को वशीभूत कर अपना मित्र वना लिया, जिन जिन राजाओं ने आधीनता स्वीकार करना वन्द कर दिया था उन्हें पुनः अपने वल-कौशल से राज्य में मिला लिया। इस प्रकार चारो दिशाओं पर उसका अधिकार हो गया। महात्मा पाण्डु के प्रताप से राजा भरत और कुरु की कीर्ति पुनः उज्ज्वल हो उठी।

महावीर पाण्डु अपने वाहूवल से सम्पूर्ण पृथ्वी को जीत हस्तिनापुर लौटे। पाण्डु के लौटने का समाचार सुनकर महामति-भीष्म अत्यन्त प्रसन्न हुये और आगे जा कर मिले।

महामति भीष्म को देख पाण्डु चरणों में सिर रख दिये। प्यारे भतीजे की नम्रता देख भीष्म गद्गद् हो उठे और हृदय से लगा लिये। यह दृश्य देख नगर निवासी अत्यन्त आनन्दित हो गये। महात्मा पाण्डु ने असंख्य धन राशि जिसे दिग्विजय में प्राप्त किया था दान कर नगर में प्रवेश किया।

इस प्रकार दिग्विजयी महावीर पाण्डु हस्तिना नगरी में सुख पूर्वक रहने लगे। कुछ दिनों के वात वह अपनी दोनों सुन्दरी रानियों को लेकर विहार तथा आखेट के लिये—हिमालय के दक्षिणी रमणीक तराई में गये। वहाँ उन्हें सव प्रकार का सुख प्राप्त था। महामति भीष्म प्रतापी

पाण्डु को बहुत मानते थे। दिन रात उनके सुख साधन में लगे रहते थे।

एक दिन महात्मा पाण्डु आखेट के लिये विकट बन में गये—उन्होंने देखा कि एक हिरन और हिरणी का जोड़ा विहार कर रहा है। राजा ने तत्काल वाण चला दिया। हिरन पैने वाण के अघात से गिर पड़ा और छटपटा कर मानव स्वर में रो पड़ा। महात्मा पाण्डु यह विचित्र व्यापार देख भय-भीत हो दंग रह गये।

वास्तव में वह मृगों का जोड़ा नहीं था—एक ऋषि कुमार स्त्री सहित मृगों का रुप धारण कर विहार कर रहा था। पाण्डु को ज्ञात हो गया कि हमने आज बड़ा अनर्थ कर डाला। मृग के धोखे में ऋषि कुमार को मारा। इधर ऋषि कुमार का प्राण निकलने लगा, वह मृत्यु की पीड़ा से चिल्ला उठा।

पाण्डु भयभीत होते हुये ऋषिकुमार के पास पहुँचे और हाथ जोड़ कर नम्रता पूर्वक—क्षमा माँगने लगे। पाण्डु के कातर बचन को सुनकर ऋषिकुमार ने कहा—महावीर! आपने मुझे अन्जान में मारा है। मैं आपको दोष नहीं देता, परन्तु उज्ज्वल और निष्कलंक कुल में जन्म लेकर ऐसा आपने क्यों किया? विहार करते हुये मृग पर बाण क्यों चलाया। ब्रह्महत्या का पाप आपको नहीं लग सकता। परन्तु इस निर्दयता का दण्ड भोगना पड़ेगा। पाण्डु! मैं शाप देता हूँ कि—आपकी मृत्यु भी इसी प्रकार होगी। आपने निष्ठु-

रता से काम लिया है। आपके कर्म का यही उचित दण्ड है। इतना कह कर ऋषिकुमार ने शरीर त्याग दिया।

ऋषिकुमार के भयंकर शापने पाण्डु को विचलित कर दिया। वह थर्रा उठे। उनका अन्तःकरण विषयों से फिर गया। महात्मा पाण्डु का एकाएक कायापलट हो गया। उन्होंने अपने को विरागी बना लिया। इन्द्रियों को वशीभूत कर घोर तपस्या में लगा दिया।

बात की बात में यह दुःखदायी समाचार हस्तिनानगरी में जा पहुँची। सभी इस अकास्मिक शोक पर आँसू बहाने लगे। महात्मा भीष्म भी क्षण भर के लिये विचलित हो उठे। इस समाचार से महात्मा विदुर अत्यन्त दुःखी हुये। शोकार्त महाबली धृतराष्ट्र ने बड़ी कठिनता से किसी प्रकार राजकाज सम्हाला।

महाबली पाण्डु उसी रम्य तराई में पर्णकुटी बना कर तपस्या करने लगे। उन्होंने अपने तपोबल से मन रूपी बन को शुद्ध कर लिया तथा योगाग्नि के द्वारा दुर्वासना रूपी तृण को भष्म कर दिया। कुछ ही काल के पश्चात राजर्षि पाण्डु योगबल से ब्रह्मर्षियों के समान तेजधारी हो गये।

कौरव-पाँडवों का जन्म ।

महात्मा पाण्डु के अखण्ड तप से हिमगिरि की दिशायें सौम्य हो गईं। ब्रह्मर्षियों की उग्र तपस्या ने उस निर्जन वन खंड को अनुपम मनोरम तथा स्वाभाविक सुन्दर और आकर्षक बना दिया। वृक्ष सदैव फल-फूल देने लगे, नदियाँ जल-पूरित रहने लगीं तथा गिरि-निर्झर सदैव कलकल शब्द करते हुये निर्मल—अमृत तुल्य जल बहाने लगे। भाँति-भाँति के मधुर शब्द करने वाले सुन्दर पक्षी आ गये तथा मनोहर चंचल मृगों का दल स्वतंत्रता पूर्वक निवास करने लगा। तपस्वी पाण्डु के प्रताप से भयानक हिंसक वन-जन्तु भी अपनी निर्दयता त्याग शान्ति पूर्वक आश्रम में विचरण करने लगे।

इस भाँति उस शांतिदायी तपोवन में—महात्मा पाण्डु राज सुख को त्याग कठिन तपस्या में लग हो गये। उनकी योगाग्नि के द्वारा संचित पाप रूपी तृण भस्म हो गये। वह सदैव वल्कल वस्त्र धारण करते तथा कन्दमूल खाकर जीवन निर्वाह करते थे। इधर कुन्ती और माद्री रात-दिन पति सेवा में लीन रहकर अपने जीवन को सार्थक करती थीं।

धीरे-धीरे वर्षों बीत गये, एक दिन शतश्रृंग गिरि पर रहने वाले महर्षि गण एकत्र हो ब्रह्माजी के दर्शन की इच्छा

से ब्रह्मलोक जाने लगे। महात्मा पाण्डु भी उनके पास आये और साथ ले चलने के लिये अनुरोध किये। महर्षियों ने उन्हें अयोग्य समझ अर्थात् संतान हीन व्यक्ति सशरीर स्वर्ग नहीं जा सकता, कहा—राजर्षि! ब्रह्मलोक का मार्ग बड़ा कठिन है, भयंकर विघ्नों का सामना करना है, आप को बहुत कष्ट उठाना पड़ेगा। इस प्रकार कहकर ऋषियों ने टाल दिया।

ऋषियों ने यद्यपि संकोचवश स्पष्ट नहीं कहा—तथापि पाण्डु उनके मन की बात जान गये, अपने संतान हीन होने का उन्हें बड़ा दुःख हुआ। इस प्रकार वह चिन्ता के आखेट होते हुये आश्रम में लौट आये।

सन्तान हीन पति को शोक सागर में डूबे देख कुन्ती के के हृदय में बड़ी चोटलगी। वह दुःखित हो उन्हें एकान्त में ले गई और महर्षि दुर्वासा के अमोघ मंत्र की कथा कह सुनाई। दिव्य मन्त्र की कथा सुनकर महात्मा पाण्डु अत्यन्त प्रसन्न हो बोले—कल्याणी! दुर्वासा जी के मंत्र से सहायता लेनी चाहिये, तुम पुत्र काममा के लिये देवताओं में पूज्य धर्मराज का स्मरण करो, निःसन्देह उनके प्रसाद से धर्मात्मा पुत्र होगा।

पति की आज्ञानुसार कुन्ती ने मंत्र का उच्चारण कर धर्मराज का स्मरण किया। तत्काल धर्मराज प्रकट हुये और अपने ही समान एक सर्वगुण सम्पन्न पुत्र होने का वर दिये। इस प्रकार धर्मराज के प्रभाव से युधिष्ठिर का जन्म हुआ।

कुछ दिनों के बाद बलवान पुत्र की इच्छा से महात्मा पाण्डु ने मंत्री के द्वारा वायु का स्मरण करने के लिये कहा— कुन्ती ने स्वामी की आज्ञाके अनुसार भगवान पवनदेव से एक पुत्र प्राप्त किया। उसका नाम भीमसेन रक्खा गया। अन्त में तीसरे वार इन्द्रदेव का आह्वान करने से महाप्रतापी अर्जुन की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार सर्वगुण सम्पन्न तीन पुत्रों को पाकर राजर्षि पाण्डु अत्यन्त सन्तुष्ट हुये।

इसके अनन्तर—महात्मा पाण्डु के कहने से कुन्ती ने माद्री के लिये पुत्र दायक—दुर्वासा के महामंत्रों का उच्चारण किया—कुन्ती के कहने पर कि किसी एक देवता का स्मरण करो—माद्री ने एक साथही दोनों अश्विनीकुमारों का स्मरण किया। दोनों अश्विनी कुमारों के प्रभाव से माद्री को एक साथ ही सर्वगुण सम्पन सुन्दर नकुल और सहदेव नाम के दो पुत्र हुये।

इस प्रकार देवताओं के प्रसाद से पाण्डु के पाँच पुत्र हुये। देवताओं के अंश से उत्पन्न होने के कारण पांचो स्वाभाविक सुन्दर और सुलक्षण थे। उनमें अनन्त शक्ति और और असाधारण योग्यता थी पाण्डु पुत्र होने के कारण पाँचो पांडव कहलाने लगे।

नक्षत्रबली तेजस्वी पुत्रों के उत्पन्न होने से दिशायें पुलकित हो उठीं, एक से एक बढ़कर शुभ शकुन होने लगे। पाँचो कुमारों का बन में ही पालन पोषन होने लगा। जङ्गल मङ्गल धाम बन गया। प्रत्येक ठौर ऋद्धियाँ और सिद्धियाँ

सेवा करने लगीं। सर्वत्र आनन्द ही आनन्द छा गया। महात्मा पाण्डु के प्रतापी पुत्रों ने देवता, ऋषि, तथा ऋषि-पत्नियों के मन को मोहित कर लिया। सभी इन कुमारों को प्राण से बढ़कर मानने लगे।

इधर जब भ्रातृ-वियोग से दुःखी धृतराष्ट्र बड़ी कठिनता से राज-काज सँभाल रहे थे। जब महामति भीष्म और महात्मा विदुर महाराज पाण्डुके लिये चिन्ता कर रहे थे तथा हस्तिनानगरीकी प्रजायें विलाप कर रही थीं अचानक एक दिन भूख प्यास से व्याकुल महर्षि वेद-व्यास आ पहुँचे। महारानी गंधारी ने उनकी बड़ी सेवा-शुश्रूषा की। गान्धारी की अनुपम भक्ति तथा सेवा से महर्षि वादरायण अत्यन्त प्रसन्न हो बोले—कल्याणी! वर माँग! क्या चाहती हो? जो कुछ माँगोगी,—मैं वही दूँगा।

महर्षि की बातें सुन गान्धारी अत्यन्त प्रसन्न हुई, उसने कहा—हे ऋषिराज! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो यह वर दीजिये कि मुझे पति के समान १०० गुणवान तथा बलवान पुत्र हों। महर्षि वेद-व्यास तथास्तु! कह कर चले गये।

यथा समय गान्धारी गर्भवती हुई—परन्तु दो वर्ष बीतने पर भी बालक उत्पन्न नहीं हुआ। उसी समय हिमालय के रम्य तपोपन से पाण्डु के ज्येष्ठ कुमार युधिष्ठिर के जन्म का समाचार मिला। गान्धारी ईर्ष्या से जल उठी, क्योंकि वह जानती थी कि ज्येष्ठ कुमार ही राज्य का उत्तराधिकारी होता है। मारे क्रोध से उसने एक घूंसा पेट पर ही जमा दिया।

जिससे अकाल में ही गर्भपात हो गया। अभी बालक के अङ्ग-प्रत्यङ्ग बन भी नहीं पाये थे, केवल मांस का लोथड़ा था।

गांधारी अपनी मूर्खता पर विलाप करने लगी, उसे अपार शोक हुआ वह फूट-फूट कर रोने लगी। कुछ देर के बाद जब उस गर्भ को फेंकने के लिये तैयारी करने लगी कि अचानक महर्षि वेद-व्यास आये। गांधारी रोते-रोते आद्योपान्त घटना कहकर बोली—देव ! आपने मुझे १०० पुत्र होने के लिये वर दिया है अतः मेरी रक्षा कीजिये।

गांधारी के विलाप से महर्षि बादरायण का हृदय पिघल गया। वह बोले—पुत्री ! शोक न कर। समय के पूर्व उत्पन्न होने पर भी तुम्हारी सन्तान नष्ट न होगी। मेरा वचन अमोघ है, इसी मांस के लोथड़े से १०० बलवान तेजस्वी पुत्र होंगे।

इस प्रकार गांधारी को शान्त्वना दे महर्षि व्यास देव ने घी से भरे १०० घड़े लाने की आज्ञा दी। इधर उन्होंने मांस पिंड पर जल छिड़क एक सौ टुकड़े किये। तदनन्तर एक-एक टुकड़े को एक एक घड़े में डाल दिये। सभी घड़ों में टुकड़े डाल देने पर विदित हुआ कि भूल से एक टुकड़ा अधिक कट गया है, अर्थात् सौ नहीं, एक सौ एक टुकड़े हो गये हैं। इस अधिक टुकड़े को देख गांधारी के मन में कन्या प्राप्त करने की अभिलाषा हुई—इसे ज्ञात कर व्यास देव ने एक और घड़ा मँगा कर उस टुकड़े को डाल दिया।

इस प्रकार सभी घड़ों को बन्द कर बोले—पुत्री ! इन

घड़ों को अलग स्थान पर रखवा, इन्हें दो वर्ष के बाद खोलना, तू निर्भय और निश्चिन्त रह! मेरे आशीर्वाद से तुम्हें १०० पुत्र और एक कन्या होगी। इतना कह कर तपोनिष्ट महर्षि व्यास चले गये।

इसके पश्चात ठीक दो वर्ष बाद जिस समय महाराज पाण्डु के द्वितीय पुत्र प्रतापी भीमसेन का जन्म हुआ, उसी समय पहले घड़े से दुर्योधन उत्पन्न हुआ।

दुर्योधन के उत्पन्न होते ही दिशायें मलीन हो गईं, पृथ्वी भावी आशंका से काँप गई, तथा अम्बर सिहर उठा। एक नहीं अनेकों बड़े २ अपशकुन होने लगे। इस प्रकार भयङ्कर अमङ्गल चिन्हों को देख राज-पुरुष तथा राज-मन्त्री घबरा गये और प्रजायें भयभीत हो गईं।

इस प्रकार अपशकुनों से सबों को व्यग्र तथा चिन्तातुर देख महात्मा विदुर ने धृतराष्ट्र से कहा—महाराज! इन अपशकुनों का परिणाम भयंकर जान पड़ता है। इन अमंगल सूचक चिन्हों से भविष्य में बड़ी हानि होगी। निश्चय ही इनके द्वारा अनिष्ट की सम्भावना जान पड़ती है। अतः आप इस पुत्र का त्याग कर भावी विपत्ति से लोगों को बचा लें।

धृतराष्ट्र कुछ देर तक महात्मा विदुर की बातें सोचते रहे परन्तु पुत्र प्रेम ने उन्हें वैसा करने नहीं दिया। उन्होंने दुर्योधन का त्याग नहीं किया।

इसके पश्चात् उन घड़ों से धीरे-धीरे दुःशासन, विकर्ण आदि सौ पुत्र तथा दुःशला नाम की एक रूपवती कन्या

उत्पन्न हुई। धृतराष्ट्र के सभी पुत्र कौरव नाम से विख्यात हुये। इन बालकों का पालन-पोषण राजभवन में होने लगा। इसी समय धृतराष्ट्र की उपपत्नी से भी युयुत्सु नाम का एक पुत्र हुआ।

---

१ धृतराष्ट्र के सौ पुत्र हुये—

१ दुर्योधन २ दीर्घवाहु ३ दुःशासन ४ दुःशह ५ दुःशल ६ जलसन्ध ७ सम ८ सह ९ विन्द १० अनुविन्द ११ दुर्धर्ष १२ सुवाहु १३ दुष्प्र-धर्षण १४ दुर्मर्पण १५ दुर्मुख १६ दुष्कर्ण १७ कर्ण १८ विविंशति १९ विकर्ण २० शल २१ सत्व २२ सुलोचन २३ चित्र २४ उपचित्र २५ चित्रा-क्ष २६ चारुचित्र २७ शरासन २८ दुर्मद २९ दुर्विगाह ३० विवित्सु ३१ विकटानन ३२ ऊर्णनाभ ३३ सुनाभ ३४ नन्द ३५ उपनन्द ३६ चित्रवाण ३७ चित्रवर्ण ३८ सुदर्श ३९ दुर्विमोच्न ४० अयोवाहु ४१ महा-वाहु ४२ चित्रांग ४३ चित्रकुण्डन ४४ भीमवेग ४५ भीमवल ४६ वलव-र्धन ४८ उग्रायुध ४९ सुषेण ५० कुण्डधार ५१ महोदर ५२ चित्रायुध ५३ निषङ्गी ५४ पाशी ५५ वृन्दारक ५६ दृढ़वर्मा ५७ दृढ़क्षत्र ५८ सोम कीर्ति ५९ अनूदर ६० दृढ़सन्ध ६१ जरासन्ध ६२ सलसन्ध ६३ सद ६४ सुवाक ६५ उग्रश्रवा ६६ उग्रसेन ६७ सेनानी ६८ दुष्पराजय ६९ अपराजित ७० कुण्डशायी ७१ विशालाक्ष ७२ दुराधर ७३ दृढ़हस्त ७४ सुहस्त ७५ वातवेग ७६ सुवर्चस ७७ आदित्यकेतु ७८ वह्वाशी ७९ नागदत्त ८० अग्रयान ८१ क़वची ८२ क्रथन, ८३ कुण्डी ८४ कुण्डधार ८५ धनुर्धर ८६ उग्र ८७ भीमरथ ८८ वीरवाहु ८९ अलोलुप ९० अभय ९१ रौद्रकर्मा ९२ दृढ़रथाश्रय ९३ अनाधृष्य ९४ कुंडभेदी ९५ विरावी ९६ दीर्घलोचन ९७ प्रमथ ९८ प्रमाथी ९९ दीर्घरोम १०० वीर्यवान।

पाण्डु की मृत्यु।
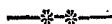
दिन जाते अधिक समय नहीं लगते। इस प्रकार वर्षों बीत गये। काल के प्रबल झोंके ने समय को पलट दिया, धीरे-धीरे महात्मा पाण्डु ऋषि-कुमार के शाप को भूल गये।

उसी समय पृथ्वी पर वसंतका आगमन हुआ। ऋतुराजने अपने प्रताप से उस रम्य तपोवन को नन्दनकानन से बढ़कर सुन्दर तथा हृदयाकर्षक बना दिया। सर्वत्र लतायें पुष्पित हो गयीं—भाँति २ के पुष्प-वृक्ष फूलों से लद गये, सरोवरों में कमल और कुमुद खिल उठे। मालती, चम्पा, रसाल, कचनार आदि दूर-दूर तक अपनी सुगंध फैलाने लगे, पक्षियाँ कलरव करने लगीं तथा भौंरे गुंजारने लगे। इस प्रकार सारा वन शोभित हो उठा।

मधुमास की मन-मोहक छवि ने पाण्डु को मोहित कर लिया। वह अपनी प्यारी सुन्दरी रानी माद्री को लेकर वन में विहारके लिये निकल पड़े। इस समय उन्हें अपूर्व सुख का अनुभव हुआ। वह गद्गद् हो उठे। प्रकृति की अद्भुत सुन्दरता तथा त्रैलोक्य सुन्दरी माद्री के संग ने उनके अन्तरकली को खिला दिया। सुन्दर काल में—उस मनोहर स्थान में मनोहर रूपवती पत्नी के संग से महात्मा पाण्डु को अकथनीय परमानन्द प्राप्त हुआ। इस प्रकार विहार करते-करते अचानक ऋषिकुमार के शाप से महात्मा पाण्डु इस लोक से चल बसे।

पति का शरीर इस प्रकार अचानक प्राणहीन होते देख माद्री पर वज्र सा गिरा। वह दौड़ कर पति के निर्जीव शरीर से लिपट गई और जोर-जोर से रो-रो कर विलाप करने लगी। माद्री का रोना सुन उसके दोनों पुत्र, कुंती तथा कुंती के तीनों पुत्र दौड़ते हुये उसके पास आये—इस प्रकार कुंती को दौड़ते आते देख माद्री ने रोते हुये दुःख पूर्वक कहा—

आर्य्ये ! आओ ! बच्चों को वहीं छोड़ तुम अकेली मेरे पास आओ।

कुन्ती उत्सुकता पूर्वक बालकों को वहीं रोक माद्री के पास गई—पति के निर्जीव शरीर को देख वह भी सिर पीट कर विलाप करने लगी। दोनों सुन्दरियों के करुण—क्रन्दन से दिशायें शोक पूरित होगई। बनस्थली भहर उठी, आश्रम के सभी पशु-पक्षी शोकित हो उठे। इस प्रकार विलाप करते-करते दुःख वेग कुछ कम होने पर कुन्ती ने माद्री से कहा—बहन ! भावी बड़ी बलवान होती है—जो कुछ होने को था वह हो गया, अब शोक को त्यागो, लो ! इन बालकों की रक्षा करो। मैं पति के साथ जाउँगी।

कुन्ती की बातें सुन माद्री ने कहा— हे बहन ! ऐसा न कहो। स्वामी ने मेरे ही संग से प्राण त्याग किया है अतः कृपा कर मुझे ही प्राणनाथ के साथ जाने दो। मैं आप से बढ़कर इन बालकों की रक्षा नहीं कर सकूँगी।

इस प्रकार कह कर रोती हुई माद्री पुनः महात्मा

पाण्डु के प्राणहीन शरीर से लिपट गई और प्राण छोड़ दिये।

राजर्षि पाण्डु और उनकी पत्नी माद्री के एक साथ ही परलोक गमन की बात सुन आश्रम में शोक छा गया। उस आश्रम के वनवासी ऋषि—मुनि एकत्र हो सोचने लगे कि क्या करना चाहिये? सबने यह विचारा कि महात्मा पाण्डु आज तक हम लोगों के आश्रम में रहे, अतः उनकी स्त्री, पुत्र और मृतक शरीर को राजधानी हस्तिनापुर पहुँचाना हमलोगों का कार्य्य है। यह सोच कर महर्षियों ने पाण्डु और माद्री के शरीर, पाँचों पाण्डवों और सद्यजात विधवा कुन्ती को लेकर हस्तिनानगरी की यात्रा की। यद्यपि कुन्ती के शोक का ठिकाना नहीं था, तथापि वह पुत्रों का मुख देख तथा बहुत दिनों बाद अपने परिवार के लोगों को देखने की लालसा से उस अपार शोक को दबा कर प्राण-हीन शरीर के समान जा रही थी।

यथा समय महर्षियों का समुदाय हस्तिना नगरी के पास पहुँचा, समाचार सुनते ही महामति भीष्म, माता सत्यवती, महाबली धृतराष्ट्र, महात्मा विदुर, दुर्योधनादि बालक, नगर निवासी तथा प्रजाजन आगे बढ़कर ऋषियों से मिले और उन्हें सादर लिवा लाये। महामति भीष्म स्वयं उन ऋषियों के पैर धोये, और प्रेम पूर्वक उनकी यथोचित पूजा कर उन्हें सन्तुष्ट किये। इस प्रकार महात्मा भीष्म की सेवा से सन्तुष्ट हो ऋषियों ने राजर्षि पाण्डु और माद्री के स्वर्ग गमन की सम्पूर्णकथा कह सुनाई। पश्चात्, सभी

राजा—रानी के मृतक शरीर, पाँचों पाँडवों और कुन्ती को महामति भीष्म के सिपुर्द कर अपने पवित्र आश्रम को लौटे।

हस्तिनानगरी शोक सागर में डूब गई। अपने दिग्विजयी राजर्षि महीप के विछोह से प्रजायें अधीर हो उठीं—आबाल-वृद्ध नर—नारी इस शोक से आँसू बहाने लगे।

इसके अनन्तर महात्मा विदुर ने महाराज धृतराष्ट्र की आज्ञा से राजर्षि पाण्डु और माद्री के अन्तिम संस्कार की शास्त्रोचित व्यवस्था की। सभी सगे सम्बन्धी, ज्ञाति-बान्धव तथा मन्त्रीगण एकत्र हुये। सबों ने राजर्षि पाण्डु और उनकी पत्नी माद्री के शवों को पुष्पों और बहुमूल्य वस्त्रों से अलंकृत कर उत्तम रथी पर सजाया। इस प्रकार ज्ञाति-बान्धवों ने रथी को सजा भक्ति-भाव पूर्वक अपने कन्धों पर रखकर श्मशान में ले चले। आगे-आगे श्वेत वस्त्र धारण किये याज्ञिक ब्राह्मण आहुति देते जाते थे, दोनों ओर ज्ञाति बान्धव, मंत्री गण तथा शूर-सामन्त, कोई सफेद चर्म्म धारण किये, कोई हाथ में चामर लिये तथा कोई सफेद फूलों की माला लिये जा रहे थे, पीछे-पीछे अगणित शोक विह्वल प्रजायें आ रहीं थीं। इस प्रकार गंगा के किनारे पहुँच कर सबों ने अर्थी रक्खी।

विद्वान वैदिकोंने वेद-विधिके अनुसार प्रेतकार्य्य कराया। राजर्षि पाण्डु और रानी माद्री के मृत शरीर को श्वेत वस्त्र पहनाया गया। केशर, कस्तूरी, अगर और चन्दन आदि सुगंधित लेप लगाये गये—तथा श्वेत पुष्प की मालायें

पहनायी गईं । प्रेत कार्य्य हो चुकने पर उनके घृत से भींगे हुये शरीरों को एक साथ ही चन्दन की चिता पर रक्खा गया। इस प्रकार कपूर, घृत और सुगन्धित द्रव्यों से चिता को प्रज्वलित कर दोनों शव दाह किये गये।

अपने प्यारे पुत्र और सुन्दरी बहू को एक साथ ही चिता पर जलते देख पाण्डु की माता अम्बालिका का हृदय टुकड़े-टुकड़े हो गया, वह पृथ्वी पर गिर पड़ी और सिर पीट-पीट कर विलाप करने लगी। अपनी सास को इस प्रकार विलाप करते देख कुन्ती भी अधीर हो रो पड़ी, उन दोनों को रोते देख सभी रोने लगे, कोई भी शोक वेग को नहीं रोक सका। इस प्रकार प्रजाओं, पुरजनों, मंत्रियों, आत्मिय वान्धवों तथा दास दासियों के करुण क्रन्दन से श्मशान शोक पूरित हो गया।

चारो ओर दुःख शोक और उदासीनता दिखलाई पड़ने लगीं' सभी लोग शोक सागर में डूबने लगे।

इस प्रकार दुःख से व्यग्र होते हुये पाण्डवों ने शास्त्र विधि के अनुसार तिलाञ्जलि दी।

कुछ देर के वाद शोक का वेग कम होने पर सभी राजर्षि पाण्डु के छोटे-छोटे पुत्रों, विधुरा कुन्ती तथा शोक विह्वला माता अम्बालिका को समझाने लगे। महामति भीष्म और महात्मा विदुर ने संसार की अनित्यता का उपदेश देते हुए कहा—संसार नश्वर है, यह मनुष्यों का पंचभौतिक शरीर क्षण भंगुर है। इसके लिये सोच न करना चाहिये। संसार

अगन है—आकर चले जाना ही इसका अर्थ है। आप लोग शोक को त्यागिये। सभी लोग एकत्र हो महात्मा पाण्डु की सद्गति के लिये भगवान से प्रार्थना कीजिये। इस प्रकार बहुत समझाने बुझाने पर दुःख का वेग कुछ कम हुआ।

दश दिन व्यतीत होने पर ज्ञाति-बान्धवों ने एकत्र हो दशाह सम्बन्धिनी क्रिया की। पश्चात् सूतक दूर होने पर भीष्म और धृतराष्ट्र सबों को लेकर हस्तिनापुर लौटे। राजधानी में आने पर महात्मा पाण्डु का श्राद्ध किया गया।

पाण्डु का श्राद्ध हो चुकने पर माता सत्यवती ने अपनी पुत्रवधू अंबिका को बुलाकर कहा—पुत्री! बड़े दुःख की बात है, यह अपार शोक सहा नहीं जाता, इतने पर भी हमने पुत्र व्यास के मुँह से सुना है कि तुम्हारे जेठे पोते के जन्म कालमें अनेक अशकुन होने परभी जब उसका त्याग नहीं किया गया, तब कुरुवंश शीघ्र ही भयानक विपत्ति में फँसेगा। तब और क्या सुख पूर्वक रह सकूँगी? कदापि नहीं। छोड़ो! इस दुःख सागर परिवार को त्यागो। चलो? पुत्र शोक से दुखी अम्बालिका को लेकर किसी रमणीक तपोभूमि में जावसें। वहीं सच्ची शान्ति मिलेगी।

धृतराष्ट्र की माता अम्बिका सहमत हो गई। सत्यवती अपनी दोनों बहुओं को लेकर निर्जन रमणीक बनमें चली गई और कठिन तपस्या करने लगी। इस प्रकार तपस्या करते-करते शरीर त्यागकर देवलोक को प्राप्त हुई।
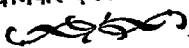
कौरव-पाण्डवों का बाल्यकाल।

पाँचो पाँडव और दुर्योधन आदि सौ भाई राज सुखों का भोग करते हुये चन्द्रमा के समान दिन-दिन बढ़ने लगे। सभी एक साथ रहते और आपस में कौतुक से खेलते कूदते थे, प्रजायें इन सुन्दर बालकों को देख-देख प्रसन्न हो जाती थीं, माता कुन्ती अपने होनहार पुत्रों को देख बहुत कुछ पति वियोग को भूल चुकी थी। इस प्रकार धीरे-धीरे कुछ काल बीत गया।

पाँचों पाण्डव साधु-स्वभाव के थे, उनमें युधिष्ठिर तो बड़े ही सच्चरित्र और शांति प्रकृति के थे। इसके विपरीत कौरव लोग स्वाभाविक मतिमन्द, क्रूर, विलास-प्रिय और ईर्ष्यालु थे। यद्यपि महामति भीष्म समदर्शिता से दोनों बालकों की देख-रेख रखते थे, किन्तु शिष्टता और सरलता के कारण पाण्डवों पर उनका विशेष अनुराग था।

धीरे-धीरे सभी बालक कुछ बड़े हुये। उन सबोंमें पांडवों का ही तेज अधिक जान पड़ने लगा। खेल कूद में भी उन्हीं की बाजी रहने लगी, हार-जीत के खेलों में प्रायः पाण्डव ही जीतते थे, कसरत या बलके कामों में भी उन्हीं का नम्बर आगे रहता था, क्योंकि बल में दूसरे पाण्डव भीमसेन सबसे अधिक थे। कौरवों को उनसे सदा ही हार खानी पड़ती थी।

भीमसेन बड़े बली थे। कौतुक पूर्वक जिस कार्य को कर

डालते थे वह कौरवोंसे नहीं किया होता था। विना परिश्रम दोन्दो कौरवों को पकड़ कर एक दूसरेके साथ रगड़ कर पीस डालते थे। बालों को पकड़ एक ही झटके में धरती पर गिरा देते थे तथा स्नान करते समय उन्हें पकड़-पकड़ कर डुबकियाँ लगाया करते थे। इतना ही नहीं—जब कौरव गण पेड़ पर चढ़ जाते थे तो आप इतने जोरसे वृक्षकी डालियों को हिलाते थे कि सभी धड़ाम-धड़ाम पके फल के समान धरती पर आ गिरते थे। इसके अतिरिक्त अर्जुन, नकुल और सहदेव भी उन सबों से तेज ही थे।

आपस में खेलते समय भीमसेन उन्हें बहुत तङ्ग किया करते थे। यद्यपि भीम के व्यवहार से दुर्योधन बहुत चिढ़ता था, परन्तु उनके बलके सन्मुख उसकी एक नहीं चलती थी, भीम का बल-पराक्रम और अटूट साहस देख उसे बड़ी ईर्ष्या हुई। उसने सोचा कि इस प्रकार तो भीम से बदला लिया नहीं जा सकता क्योंकि बल पूर्वक उसको हराना कठिन ही नहीं वरन् पूर्ण असम्भव है। अतः कौशल पूर्वक कपट कर हराना चाहिये। यदि भीम पर चाल चल गई तो शेष पाण्डवों को सभी मिलकर बात की बात में आधीन कर लेंगे। इनका बल बढ़ने नहीं देना चाहिये, अभी से ही यदि हम इन्हें दबाये न रहेंगे तो आगे-चलकर ये लोग मुझे राज-सुख से वंचित कर देंगे। इस प्रकार सोच विचार कर दुर्योधन उसी दिन से भीम के घात में लग गया।

इस प्रकार सोचते-सोचते उसे एक युक्ति सूझ पड़ी,

वह तत्काल पिता के पास गया और बोला—पिता जी ! हम लोग गङ्गा के तट पर विहार के लिये जाना चाहते हैं, आप वहाँ खेल-कूद का स्थान, शिविर तथा अन्यान्य आवश्यक वस्तुओं का प्रबन्ध करा दीजिये। धृतराष्ट्र दुर्योधन को बहुत मानते थे, उसके इतना कहते ही उन्होंने मन्त्रियोंको गङ्गा के रमणीक तट पर सुन्दर स्थान बनाने की अनुमति दे दी।

विहार की तैयारी कराकर दुर्योधन भाइयों के पास आकर बोला—भाइयों ! बड़ा सुहावना समय है, चलो हम लोग गङ्गा के रमणीक तट पर जल-विहार करने तथा वन और उपवन की सुन्दर शोभा देखने चलें।

पाँचो पांडव सीधे-सादे थे। वे छल कपट नहीं जानते थे। उन्हें स्वप्न में भी भ्रम नहीं था कि दुर्योधन हमारे साथ विश्वासघात करेगा। अतः वे चलने के लिये तैयार हो गये। सभी राजकुमार, रथ-घोड़े और हाथियों पर बैठकर गङ्गा के पवित्र तट पर पहुँचे।

वहाँ पहुँचते ही राजकुमारों ने देखा कि गङ्गा के पवित्र रमणीक तट पर कपड़ों का एक सुन्दर नगर का नगर बसा हुआ है। भाँति-भाँति के कपड़ों की अटारियाँ बनी हैं, तथा एक से एक सुन्दर फाटक बने हैं, जगह-जगह पर फौवारे चल रहे हैं तथा थोड़ी-थोड़ी दूर पर खेल-कूद के सुन्दर मैदान बने हैं। नगर के चारो ओर बाजारें लगी हैं तथा बीच में सुन्दर-सुन्दर फूलों की वाटिकायें शोभित हो हो रही हैं। सभी राजकुमार इस मनोहर दृश्य को देख

अत्यन्त आनन्दित हुये और प्रसन्नता पूर्वक परस्पर प्रशंसा करते हुये घूम-घूम कर बाजार देखने लगे। पश्चात् सुन्दर फूलों और मनोहर निर्मल सरोवरों से पूर्ण वाटिका की शोभा देख-देख सभी राजकुमार शिविरों में लौटे।

कुछ देर विश्राम लेने पर सभी भोजन करने के लिये बैठे—अनेक प्रकार के षटरस भोजन बनाये गये थे, सभी लोग आपस में एक दूसरे से भोजनों की प्रशंसा करते हुये खाने लगे—इस प्रकार भोजन करते समय दुष्ट दुर्योधन ने भीम को विष की मिठाई खिला दी—भीमसेन साफ हृदय के आदमी थे, उन्हें स्वप्न में भी यह ध्यान नहीं था कि दुर्योधन मेरा नाश करना चाहता है अतः उन्होंने अंजान में विष की मिठाइयाँ खाली।

विष की मिठाइयाँ भीमसेन के खा लेने पर दुर्योधन मन ही मन अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने समझ लिया कि अब मेरा अर्थ सिद्ध हो गया। अब क्या! विना परिश्रम महाकंटक दूर हुआ। इस प्रकार भोजन से निवृत हो कौरवों और पाण्डवों ने घंटों जल—विहार किया। धीरे-धीरे भगवान भुवन भाष्कर पश्चिम जलधि में जा पहुँचे। देखते ही देखते दिनका अवसान हो गया।

सन्ध्या होते देख—सभी राजकुमार जल से बाहर हो उत्तम वस्त्र धारण कर शिविर की ओर विश्राम के लिये चले। उधर भीमसेन विष के प्रभाव से भागीरथी के तट पर ही पड़े रह गये। भयंकर विष ने उनके शरीर को निर्जीव सा

बना दिया। उनमें हाथ पैर हिलाने की भी शक्ति नहीं रह गई थी। दुर्योधन दूर से ही यह देख रहा था। जल-विहार समाप्त होते ही जब सभी राजकुमार अपने-अपने शिविर में चले गये तब वह भीम के निकट आया और उन्हें लताओं के द्वारा मजबूती से बाँध गंगा के गर्भ में डाल दिया। इस प्रकार यह भयंकर पाप कर्म कर पापात्मा दुर्योधन प्रसन्नता पूर्वक—शिविर को लौटा।

चेतना हीन भीम उसी प्रकार लता-पत्रों से बँधे-बँधाये गंगाके भीतर ही भीतर बहते हुये नागलोक जा पहुँचे। वहाँ के विषधर सर्पों ने इन्हें देख बड़ा क्रोध किया, वे अपने पैने विषैले दाँतों से इन्हें काटने लगे। विषैले सर्पों के विषने मिठाई के विष को मार दिया, अब क्या था! विष दूर होते ही भीमसेन की संज्ञा पुनः जागृत हो गई। अपने को ऐसी अवस्था में देख उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने तत्काल एक ही झटके में उन लताओं को तोड़ दिया जिनसे दुष्ट दुर्योधन ने उन्हें बाँधा था। इस प्रकार मुक्त हो जाने पर उन भयंकर सर्पों की ओर मुड़े जो इन्हें अपने पैने दाँतों से काट रहे थे।

इस प्रकार अपना संहार होते देख नाग लोग बेतरह डर गये, किसी का साहस भीमसेन को काटने का नहीं हुआ। सभी मारे डर के भागकर अपने राजा वासुकि के पास पहुँच कर बोले—

हे नागराज? एक विचित्र घटना सुनिये, आज तक

ऐसी बात कभी नहीं हुई। आज देवताओं के समान महासुन्दर एक बलवान राजकुमार लताओं से बँधा हुआ निर्जीव अवस्था में मृत्युलोक से अचानक हमारे राज्य में आया है। हम लोग उसे काटने लगे। हम लोगों के काटते ही वह जी उठा ओर बात की बात में बन्धन तोड़ हम लोगों का संहार करने लगा। राजन्! वह राजकुमार इतना बली है कि हमलोग कुछ नहीं कर सके।

नागराज वासुकि—अपने वीर नागों के मुँह से ऐसी बात सुन उसे देखने के लिये आये। उन्होंने आते ही भीमसेन को पहचान लिया। पाठकों! कुन्ति भोज इन्हीं नागराज वासुकि के दौहित्र थे और भीमसेन कुन्तिभोज के दौहित्र थे! नागराज अपने दौहित्र के दौहित्र को देख अत्यन्त प्रसन्न हुये और बड़ा आदर-सत्कार कर राज-भवन में लिवा ले आये। उन्होंने शरीर से विष दूर होने के लिये अमृत पात्र से लेकर एक दिव्यौषधि पिलाई, जिससे भीमसेन के शरीर से विष का सम्पूर्ण प्रभाव दूर हो गया, अमृत पूर्ण औषधि सेवन करने के पश्चात नागों ने उन्हें एक दिव्य सेज पर सुलाया, जिस पर सोते ही उन्हें गहरी नींद आ गई।

इधर सवेरा होते ही सभी राजकुमार भाँति-भाँति की क्रीड़ायें तथा विहारसे निवृत हो पुनः पूर्ववत् रथ, हाथी और घोड़ों पर चढ़-चढ़ कर राजधानी को लौटे–भाइयों ने भीमसेन को न देख समझ लिया कि घर चले आये होंगे। केवल दुर्योधन ही इसका यथार्थ कारण जानता था। वह पापात्मा

सब भाइयों के साथ अत्यन्त प्रसन्न होता हुआ नगर में शीघ्र आया।

धर्मात्मा युधिष्ठिर भीमको न देख जल्दी-जल्दी माता के पास पहुँचे और चरण छू कर भीमका समाचार पूछे—माता ने कहा—नहीं! भीम तो अभी नहीं आया है। युधिष्ठिरकी बातें सुन कुन्ती को संदेह हुआ। उसने शीघ्र ही चारों भाइयों को भीम की खोज के लिये भेजा—परन्तु वे सभी घूम-फिर कर निराश हो लौट आये। भीम के न मिलने से माता कुन्ती अत्यन्त चिन्तित हुई, और विलाप करने लगी। इस प्रकार कुन्ती को व्यग्र देख महात्मा विदुर ने यह कहते हुये शान्त्वना दी कि भीम कुशल पूर्वक लौट आवेंगे। तुम्हारे पुत्र दीर्घायु हैं तुम चिन्ता न करो।

उधर भीम आठ दिनों तक सोते ही रहे। जब उनकी निद्रा भंग हुई तब उठकर वासुकि नागराज के पास गये। नागराज उन्हें स्वस्थ्य देख प्रसन्नता पूर्वक बोले—हे महाबाहो! हमारी औषधि के प्रभाव से तुम्हारे शरीर में दश हजार हाथियों का बल होगा। लो! मैं तुम्हें दिव्य जल देता हूँ तुम इससे स्नान कर घर जाओ। वहाँ तुम्हारे विना तुम्हारी माता और चारो भाई अत्यन्त चिन्तित और दुखित हो रहे हैं। भीमसेन उस दिव्य जलसे स्नान कर श्वेत वस्त्र तथा श्वेत पुष्प की माला पहने, नागों ने विधि पूर्वक उनकी पूजा की, भीमसेन उनकी पूजा ग्रहण कर हस्तिनापुर लौटे।

भीम को देखते ही माता और भाइयों ने उन्हें गलेसे

लगा लिया। पश्चात् उन्होंने दुर्योधन की बातें भाइयों से बतादी। कौरवों के इस रहस्य को सुन पाण्डवों ने सदैव सावधान रहने का निश्चय किया, तथा इस गुप्त भेद को भी छिपा रक्खा।

दुर्योधन भीम को देखते ही दङ्ग हो गया, उसकी बोली बन्द हो गई। वह बहुत डरा समझ गया कि मेरा भण्डा फोर हो गया। उसी दिन से वह भीम से बहुत डरकर दूर दूर रहने लगा, उसे भय था कि भीम इस बार अवश्य पीटेगा और अच्छी तरह पीटेगा, क्योंकि हमने उसके साथ बड़ा दुर्व्यवहार किया है।

दुर्योधन सन्मुख में भीम का कुछ नहीं कर सकता था, इसलिये उसने लोगों से चुगली खानी आरम्भ की। वह नित्य धृतराष्ट्र के पास जाकर एक न एक पांडवों की शिकायत करनें लगा। धृतराष्ट्र कभी-कभी दुर्योधन की बातें मान जाने लगे परन्तु महात्मा विदुर उन्हें सत्यासत्य का ज्ञान प्राप्त करा देते थे जिससे धृतराष्ट्र अंजान में अन्याय न कर सके।

धीरे २ इसी प्रकार कुछ काल समाप्त हुआ। कौरव अपनी नीचता से बाज नहीं आये। अनायास अपकर्म में आगे बढ़ते गये। इस प्रकार दुरात्मा कौरवों का दल रात-दिन पांडवों के अनिष्ट में लगे रहने लगा।

राजपुत्रों की अस्त्र-शिक्षा।
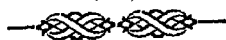
प्रिय पाठकों! हम पूर्व ही लिख आये हैं कि पाण्डव सरलचित, उदार स्वभाव तथा बड़े धर्मात्मा थे। उन्हें किसी प्रकार का मद नहीं था। वे पाँचों भाई देव-बालकों के समान उत्तम गुणों से युक्त थे। प्रजायें उन्हें प्रेम से चाहती थीं तथा मंत्रीगण उनकी सर्वदा प्रशंसा किया करते थे। इसके विपरीत कौरव गण ऐश्वर्य्य के मद में मतवाले हो गये। पूज्य गुरुजनों का ध्यान, सेवा, उपकार, दया, धर्म और सत्य उनके हृदय में नहीं उदय हुये।

देखो! कौरव और पांडव दो प्रात्रों में एक ही शिक्षा दी गई—दोनों एक ही स्थान में रहे तथा एक ही अन्न जल के पाले-पोसे गये, परन्तु एक प्रशान्त हृदय, सदाचारी, सद्विचारी तथा कर्त्तव्य परायण हुआ और दूसरा कपटाचारी आलसी, अबोध, अभिमानी और धूर्त बना। भीष्म आदि गुरुजन कौरवों के इन आचरणों से दुःखी थे।

बालकों के कुछ बड़े होने पर महामति भीष्म ने उनकी शिक्षा के लिये कृपाचार्य्य को नियुक्त किया। महर्षि कृपा-

---

१ एक समय सम्राट शान्तनु आखेट के लिये गये थे, भयानक वन में उनके सभी साथी छूट गये, उनका एक सेवक भूलता-भटकता महर्षि शरद्वान के आश्रम की ओर निकल गया। वहाँ उसने एक बालक और बालिका को उस निर्जन वन में पड़े हुये देखा। पास ही धनुष-बाण

चार्य्य बड़े सुयोग्य शिक्षक थे, उन्होंने अस्त्र-शस्त्र की कुशलता के कारण आचार्य्य की पदवी प्राप्त की थी, सभी राजकुमार उन्हीं के पास शिक्षा पाने लगे।

कृपाचार्य्य बड़े प्रेम से पढ़ाते थे। वेद-वेदांग तथा अस्त्र-शस्त्र की उत्तम शिक्षा देते थे, धीरे-धीरे अनेक देशों के राजकुमार आ आकर उनसे अस्त्र-शस्त्र विद्या सीखने लगे। चारो दिशाओं में इनकी कीर्ति फैल गई।

पाँचों पाण्डव बड़े परिश्रम से वेद-वेदांग पढ़ने लगे, वे

और मृगछाला देखकर अनुमान किया कि यह बालक और बालिका किसी धनुर्वेदज्ञ ब्राह्मण के हैं। अचानक राजा भी उस ओर आ निकला, महात्मा शान्तनु ने दोनों को राजधानी में लाकर अपने सन्तान के समान ही पालन-पोषण किया। बालक का नाम कृप तथा बालिका का कृपी रक्खा गया। वास्तव में दोनों महर्षि शरद्वान की सन्तान थे, महर्षि शरद्वान ने तप में विघ्न होने के भय से इन दोनों को उस भयङ्कर बन में छोड़ दिया था। पीछे महर्षि शरद्वान को जब यह पता चला कि उनका महाराज शान्तनु के यहाँ पालन-पोषण हो रहा है तब वह आये और पुत्र को अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा दिये। कृप बाल्यकाल से ही होनहार थे, पिता के बताये हुये सम्पूर्ण अस्त्रों का प्रयोग शीघ्र समझ गये और उपयोग में लाने लगे। ये कुछ ही दिनों में शस्त्र परिचालन में बड़े कुशल होगये। इन्होंने अपने उद्योग से आचार्य्य की उपाधि प्राप्त की। इन्हें लोग कृपाचार्य्य कहने लगे। महामति भीष्म ने इन्हीं को राजकुमारों की शिक्षा के लिये नियुक्त किया। इनकी बहन कृपी का विवाह महर्षि द्रोण से हुआ था।

अपना एक क्षण भी व्यर्थ नहीं गँवाते थे। दिन-रात गुरु सेवा में लीन रहकर शास्त्र-वेद तथा पुराण के आवश्यक ज्ञानों को प्राप्त करने में लगे रहते थे। कृपाचार्य्य भी उनके उत्तम गुणों को देख प्रसन्नता पूर्वक पढ़ाते तथा कृपा रखते थे। दुर्य्योधनादि एक सौ भाई बड़े उग्र और अभिमानी थे, उनका मन पढ़ने में नहीं लगता था, वे सदैव खेल-कूद, व्यर्थ वादा-विवाद तथा लड़ाई झगड़ा में अपना अमूल्य समय व्यतीत करते थे। यही कारण था कि वे पाण्डवों के समान गुण-वान, वलवान तथा वुद्धिमान नहीं हो सके।

सत्य है, वाल्यकाल ही सुधार का समय है, उस समय जिधर झुकाव होगा, मनुष्य वैसा ही वन जायगा।

कौरवों की मनोवृति दूषित होगई। वे स्वाभाविक दुष्ट और दुर्गुणी वन गये। माता पिता ने लाड़-प्यार के कारण डाँट डपट नहीं की। फल क्या हुआ? दुख और शोक! आजन्म धृतराष्ट्र और गान्धारी को यह फल भोगना पड़ा। इस प्रकार वाल्य काल में ज्ञानोपार्जन नहीं करने से कौरव उन्नति के मार्ग पर नहीं वढ़ सके। वे वड़े वेग से पतन की ओर वढ़ने लगे। यद्यपि कुछ दिनों के वाद वड़े-बूढ़ों ने रोकना चाहा परन्तु नहीं रोक सके। क्या वृक्ष की मोटी शाखायें कभी नम्र हो सकती हैं? कदापि नहीं।

——*—*——

महर्षि द्रोण ।

—:*:—

आचार्य्य कृप के पास रह कर बालकों को शिक्षा प्राप्त करते कुछ समय बीत गये। धीरे-धीरे सबों ने अस्त्र-शस्त्र की यथा शक्ति साधारण योग्यता प्राप्त कर ली। जब सभी राजकुमार अस्त्र-शस्त्र चलाने की विद्या थोड़ी बहुत प्राप्त कर चुके तब महात्मा भीष्म उनकी उच्च शिक्षा के लिये एक पूर्ण योग्य आचार्य्य की खोज में लग गये। महात्मा भीष्म ऐसे गुरू की खोज में लगे जो अस्त्र विद्या में पूर्ण पण्डित हो, महा पराक्रमी और बली हो तथा जिसे सम्पूर्ण धनुर्वेद का ज्ञान हो!

कुछ दिनों के बाद एक दिन जब सभी राजकुमार नगर के बाहर गेंद खेल रहे थे। खेलते-खेलते अचानक गेंद पास के कुएँ में जा गिरा, सभी राजकुमार निकालने के लिये दौड़ पड़े। यद्यपि कुआँ सूखा था, उसमें जल न था तथापि अनेक यत्न करने पर भी राजकुमार उसे नहीं निकाल सके।

गेंद न निकलने से बालकों का खेल बन्द हो गया। सभी बहुत दुखी हुये तथा लज्जित हो एक दूसरे का मुँह देखने लगे, परन्तु किसी में यह साहस न था कि कुएँ से गेंद निकाल ले, सभी हताश हो कुएँ के चारो ओर खड़े होकर नीचे झाँकने लगे। इसी समय अचानक उस ओर से एक दुबला पतला कृष्णवर्ण का तपस्वी ब्राह्मण आ निकला।

सभी राजकुमार उसे घेर लिये और गेंद निकाल देने के लिये आग्रह करने लगे।

राजकुमारों को इस प्रकार आग्रह करते देख ब्राह्मण देवता बोले—शोक! तुम लोग इस गेंद के लिये व्यग्र हो रहे हो? तुम्हारे क्षत्रिय होनेको धिक्कार है। छिः! इतना भी नहीं कर सकते। इतना कहकर पुनः ब्राह्मण देवता मुसकुरा कर बोले—यदि तुम लोग हमें उत्तम भोजन कराओ तो हम अभी इन मुट्ठी भर तिनकों केसहारे तुम्हारे गेंद को कुएँसे निकाल दूँ।

यह कहकर उस तपस्वी ब्राह्मण ने एक मुट्ठी तिनकों को उठाया। एक सींक के द्वारा गेंद को छेद दिया पश्चात् दूसरी सींक से पहली सींक के ऊपरी नोक को छेदा। इस प्रकार एक के द्वारा दूसरी सीकों को छेद कर उस तपस्वी ने क्षणमात्र में ही कूएँ तक सीकों की रस्सी बना दी। अब क्या था? गेंद अनायास निकाल लिया गया। सभी राजकुमार ब्राह्मणके विचित्र व्यापार को देख दङ्ग रह गये। लोगों के विस्मय का ठिकाना न रहा।

गेंद पाकर सभी राजकुमार अत्यन्त प्रसन्न हुये, और तपस्वी ब्राह्मण को प्रणाम कर बोले—हे विप्रवर! आप कौन हैं? आज तक हम लोगों ने ऐसी शक्ति नहीं देखी। महात्मन्! कहिये, हम आपकी कौनसी सेवा करें।

राजकुमारों को इस प्रकार कहते सुन तपस्वी ब्राह्मण ने कहा—राजकुमारों! तुम लोग जाकर हमारा समाचार महात्म भीष्म से कहो—वे अवश्य मुझे पहचान लेंगे।

तपस्वी ब्राह्मण के इस प्रकार कहने पर सभी राजकुमार दौड़ते हुये महात्मा भीष्म के पास आये और क्रमसे सभी बातें कह सुनाये। महात्मा भीष्म बालकों के मुँह से ऐसी बातें सुन विचार किये कि द्रोणाचार्य्य के अतिरिक्त इतना बड़ा धनुर्धर और कौन ब्राह्मण हो सकता है ? ऐसा अनुमान कर महामति भीष्म ने उन्हें आदर पूर्वक बुलवा भेजा। ब्राह्मण के राज भवनमें पधारने पर महामति भीष्मने आदर सहित प्रणाम किया तथा बड़े प्रेम-पूर्वक उत्तम आसन पर बिठला कर मीठे बचनों में पूछा—महात्मन ! कृपया नाम-धाम बतलाइये और इस हस्तिना नगरी में पधारने का कारण कहिये !

महामति भीष्म के मधुर बचनों को सुन तपस्वी ब्राह्मण गद्गद् हो बोले—महात्मन ! मैं महर्षि भरद्वाज का पुत्र हूँ, मेरा नाम द्रोण है। मैं महर्षि अग्निवेश के पास रहकर धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त करता था, उसी समय पाञ्चाल देश का राजकुमार द्रुपद भी वहीं ब्रह्मचर्य्याश्रम में रहकर विद्या सीखता था। हम लोग बहुत काल तक कठोर व्रत धारण कर धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त करते रहे। बहुत दिन तक एक साथ रहने के कारण द्रुपद से हमारी घनिष्ठता बढ़ गई। एक दिन वह हमसे बोले—

भाई द्रोण ! हमारे पिता पांचाल देश के राजा हैं। वह मुझे बहुत प्यार करते हैं। एक दिन हम अवश्य पांचाल के राज सिंहासन पर बैठेंगे,—उस समय हम दोनों राज्य के सुखों को भोगेंगे।

महात्मन्! इस प्रकार गुरुकुल में रहकर द्रुपद राजधानी को लौट गये और अपने पिता के बाद राजसिंहासन पर बैठे। मैं भी आश्रम से निकल कर महर्षि शरद्वान की कन्या कृपी से विवाह किया। कुछ ही दिनों के बाद उसके गर्भ से महातेजस्वी अश्वत्थामा नाम का एक पुत्र उत्पन्न हुआ। यद्यपि इस बात से हम स्त्री-पुरुष अत्यन्त प्रसन्न हुये, परन्तु शोक! दरिद्रतावश उस सन्तान का उचित पालन न कर सके।

धीरे-धीरे बालक अश्वत्थामा कुछ बड़ा हुआ। एक दिन पड़ोस के बालक को दूध पीते देख उसे भी दूध पीने की इच्छा हुई। उसके माँगने पर हम ने दूध के लिये गौ की तलाश की परन्तु दुर्भाग्यवश कहीं गौ न मिली। बालकों ने अश्वत्थामा को आँटा घोल कर पिला दिया और कहा कि यही दूध है। वह विश्वास करपी लिया और बाल नृत्य में मग्न हो गया,-किन्तु लड़के उसकी अज्ञानता और हमारी दरिद्रता पर धिक्कार देने लगे।

अपनी दरिद्रता देख तथा बालकों के विद्रूप की हँसी सुन मुझे बड़ा दुःख हुआ। परन्तु लाचार था। दरिद्रता के कारण सगे सम्बन्धियों ने पहले ही छोड़ दिया था। यद्यपि कभी-कभी मुझे अन्न-जल के लिये भी कष्ट उठाना-पड़ता था परन्तु अपनी स्वतंत्रता को हमने छोड़ना उचित नहीं समझा। भाँति-भाँति के कष्टों को सहकर भी हमने किसी की दासता नहीं की। महात्मन्! प्रिय पुत्र की

दुर्दशा देख सहसा मुझे बाल-सखा द्रुपद की याद आई। साथही उनके राजा होने की बात सुनकर मैं और भी प्रसन्न हुआ कि वहाँ जाने से अवश्य मेरे कष्ट दूर हो जायेंगे।

इस प्रकार बालपन की बातें तथा बाल-सखा द्रुपद की प्रतिज्ञा याद करते हुये हम पत्नी और पुत्र को लेकर पांचाल देश की राजधानी में पहुँचे। तुरतही राजसभा में जा उपस्थित हुये और द्रुपद को देखते ही प्रेम पूर्वक मिले। महात्मन्! हमने बाल-स्मृति के अनुसार द्रुपद को गले लगाकर कहा—देखो! तुम्हारा बालसखा द्रोण आ गया है।

मेरे इस प्रकार प्रेम दर्शाने पर भी उसने मेरा अनादर किया। उसने कहा—हे ब्राह्मण! तुमने मुझे क्या समझ कर अपना बालसखा बनाया? एक अवस्था में रहने से मित्रता होती है। अवस्था भेद से मित्रता में भी भेद हो जाता है। क्या पण्डित के साथ मूर्ख की, धनवान के साथ कंगाल की तथा राजा के साथ साधारण प्रजा की मित्रता हो सकती है? तुम प्रतिज्ञा की बात कहते हो वह भी मुझे ज्ञात नहीं। हाँ! तुम ब्राह्मण हो और इतनी दूर से आये हो-यदि तुम्हारी इच्छा हो तो ठहर जाओ, थोड़ी देर में भोजन करके जाना।

महाबली भीष्म! द्रुपद ने कितना अनुचित व्यवहार किया। हम उसे अपना भाई, सहायक तथा मित्र समझ कर गये थे परन्तु उसने मुझे इस प्रकार दुरदुरा दिया।

महाबाहो! द्रुपद के इस व्यवहार से मुझे बड़ा क्रोध हुआ। यद्यपि मैं उस भयंकर क्रोधको हर-गरल-पान के समान पी गया परन्तु मैंने इस अपमान का बदला लेने के लिये उसी क्षण प्रतिज्ञा भी की। इस प्रकार हम और अधिक देर वहाँ नहीं ठहरे, तत्काल चल दिये। द्रुपद से किस प्रकार बदला लें? यही सोचकर हम यहाँ तक आये हैं और स्त्री-पुत्र सहित कृपाचार्य के यहाँ ठहरें हैं। कहिये! अब आप क्या आज्ञा देते हैं।

भीष्म अत्यन्त प्रसन्न होते हुये आदर पूर्वक बोले—भगवन्? हमारे अहो भाग्य हैं जो यहाँ आपके चरण कमल पधारे हैं। इस विशाल कुरु-राज्यको आप अपना ही समझिये। ब्राह्मण-श्रेष्ठ! हम लोग आप के ही सेवक हैं। कृपा करके प्रत्यञ्चा को धनुष पर से उतारिये और तूणीर की डोरी खोल दीजिये। यहीं आराम से रहिये और कुरुकुल राजकुमारों को शिष्य बनाइये।

महामति भीष्म के शिष्टाचार से अत्यन्त प्रसन्न हो द्रोण बोले—महावीर! यदि राजकुमार हमें प्रसन्न रक्खेंगे तो हम उनको धनुर्वेद की उत्तम से उत्तम शिक्षा देंगे। भगवान परशुराम ने हमें अच्छी तरह धनुर्वेद की शिक्षा दी है, उनके पास जितने दिव्य अस्त्र-शस्त्र थे वे भी हमें प्राप्त हैं। निश्चय ही हम इन राजकुमारों को योग्य बना देंगे।

---

१ एक बार महर्षि परशुराम ने अपना सम्पूर्ण धन ब्राह्मणों को बाँटने का संकल्प किया। यह सुन पृथ्वी के ब्राह्मण एकत्र हुये और अपार

महात्मा भीष्म ने महर्षि द्रोण को आदर पूर्वक राज-भवन में रक्खा। पश्चात् राजकुमारों को उनके सिपुर्द कर अमित धन-धान्य दिया। जिससे महर्षि द्रोणकी आर्थिक कठिनाईयाँ जाती रहीं।

धनुर्विद्या—विशारद वीरवर महर्षि द्रोण महामति भीष्म के आग्रह से हस्तिना नगरी में रुक गये। कुछ दिन राज-भवन में रखकर महात्मा भीष्म ने उनके रहने के लिये एक भव्य भवन बनवा दिया। इस प्रकार कौरव और पांडव शिक्षा प्राप्त करने के लिये महर्षि द्रोण के हाथ में सौंपे गये।

प्रथम दिन द्रोण ने सभी शिष्यों को बुलाकर कहा—राजकुमारों! हम तुम लोगोंको सभी विषय की उचित शिक्षा देंगे। परन्तु इस बात को स्वीकार करो कि शिक्षा समाप्त होने पर मनोवाञ्छित गुरु दक्षिणा देंगे।

ब्राह्मण-श्रेष्ट की बातें सुन सभी चुप हो रहे, केवल अर्जुन आगे बढ़कर बड़े उत्साह से बोले—भगवन्! मुझे मान्य है। मैं आपकी मनो-कामना पूर्ण करने में कोई बात उठा न रक्खूँगा। अर्जुन का यह उत्साह भरा वीरोचित उत्तर सुन

धनराशि दान में पाकर अयाचक हो गये। द्रोण भी पीछे पहँचे।..उन्हें देख परशुराम जी ने कहा—हे ब्राह्मण-श्रेष्ठ! अब हमारे पास धन नहीं है केवल ये दिव्यास्त्र और शरीर हैं। कहो क्या चाहते हो? उन्होंने कहा—प्रभो! मैं केवल इन दिव्यास्त्रों को ही चाहता हूँ। उन्होंने महात्मा द्रोण की प्रार्थना स्वीकार कर सम्पूर्ण दिव्य अस्त्र-शस्त्र प्रदान किये।

महर्षि द्रोण अत्यन्त प्रसन्न हुये और उन्हें विशेष रूचि से शस्त्र-विद्या सिखाने लगे।

धीरे-धीरे सभी राज-कुमार शस्त्र-विद्या की उच्च शिक्षा पाने लगे। अधिरथ द्वारा पालित कुन्ती-कुमार वसुसेन भी आचार्य्य से युद्ध-विद्या सीखने लगे। कुछ दिनों के बाद धनुर्वेद की शिक्षा में अर्जुन ने असाधारण योग्यता प्राप्त कर ली, कोई उनकी बराबरी करने वाला नहीं रहा, अश्वत्थामा भी राज-कुमारोंके साथ ही साथ शिक्षा पाते थे, तीक्ष्ण बुद्धि वाले अर्जुन अपनेअभ्यास के द्वारा उनसे भी बढ़ जाने का उद्योग करने लगे।

अर्जुन को अश्वत्थामा से भी बढ़ते देख महामति द्रोणने एक विचित्र युक्ति निकाली।

नित्य प्रातः काल पाठ के पूर्व प्रत्येक बालक को एक-एक छोटे मुँह की कलशी देकर जमुना से जल मँगाने लगे। अश्वत्थामा को चौड़े मुँहकी कलशी देने लगे। जिससे अश्वत्थामा शीघ्र जल भर कर आ जाय, और कुछ अधिक पढ़ ले। अर्जुन गुरुद्रोण के इस रहस्य को जान गयें और अश्वत्थामा के साथ ही वरुणास्त्र द्वारा अपनी कलशी भर कर आने लगें,—जिससे अश्वत्थामा उनसे नहीं बढ़ सके। राज-कुमारों में केवल कर्ण को छोड़ कर और कोई अर्जुन की समानता का नहीं रहा।

महात्मा द्रोण अर्जुन से अधिक प्रसन्न रहा करते थे, इस प्रकार अश्वत्थामा की समता करते देख अत्यन्त प्रसन्न हो

प्रेम से शिक्षा देने लगे। अर्जुन ने स्वयं लक्ष्यवेध और शब्द वेध का अभ्यास करना आरम्भ कर दिया। अभ्यास से क्या नहीं होता? अर्जुन अभ्यास के द्वारा अन्धेरे में भी अर्थात् बिना निशाना देखे हुये भी लक्ष्य वेध करने लगे।

शस्त्र-विद्या में प्रिय शिष्य अर्जुन का इतना प्रेम और उत्साह देख महर्षि द्रोण ने गले लगा कर कहा—पुत्र! हम तुझसे प्रसन्न हैं। हम तुम्हें ऐसी शिक्षा देंगे कि तुम पृथ्वी पर अद्वितीय वीर होगे। विश्व में तुम्हारी समानता करने वाला कोई न रहेगा।

इस भाँति माहात्मा द्रोण सभी शिष्यों को शस्त्र-विद्या की शिक्षा देते हुये रथ, घोड़े और हाथी पर चढ़कर युद्ध करने की शिक्षा देना आरम्भ किये। साथ ही खड्ग, तोमर, परशु, मुद्गर, प्राश, शक्ति और गदा आदि मुख्य-मुख्य शस्त्रों का चलाना सिखलाने लगे।

प्रिय पाठकों! दिन-दिन राजकुमारों की योग्यता बढ़ते देख महामति भीष्म, महाबली धृतराष्ट्र महात्मा विदुर तथा राज-पुरुषों के प्रसन्नता का ठिकाना न रहा, सभी गुरु द्रोण की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करने लगे। प्रजायें, दास-दासियाँ, इष्ट-मित्र तथा ज्ञाति-बान्धव भी राजपुत्रों को योग्य होते देख अत्यन्त आनन्दित हुये।

एकलव्य की गुरु-भक्ति।

—:※:—

कुछ ही दिनों में महात्मा द्रोण की कीर्ति दिशाओं में फैल गई। देश-देशान्तरों से सहस्त्रों राजकुमार धनुर्विद्या सीखने के लिये आने लगे। धीरे-धीरे कुछ ही दिनों में द्रोणाचार्य्य का ब्रह्मचर्य्याश्रम वीर राजकुमारों से भर गया। सभी आ आकर अस्त्र-शस्त्र चलाना सीखने लगे।

ठीक उसी समय निषाद-पति हिरण्यधनु का लड़का एकलव्यभी वाण-विद्याकी शिक्षा प्राप्त करने के लिये महर्षि द्रोणके के पास आया। परन्तु द्रोण ने उसे शिष्य बनाना अस्वीकार कर दिया। उन्होंने सोचा कि यह निषाद है—व्याधा है। इसे राजकुमारों के साथ शिक्षा देना ठीक नहीं। बेचारा एकलव्य निराश हो महात्मा द्रोण के चरणों में सिर झुका कर चला गया।

एकलव्य अपने धुन का बड़ा पक्का था। उसने द्रोणाचार्य्य को अपना गुरु मान लिया था, आचार्य्य ने यद्यपि उसे ठुकरा दिया, परन्तु इस दृढ़ प्रतिज्ञ महात्मा बालक ने अपने संकल्प को नहीं ठुकराया। महात्मा द्रोण को ही गुरु मान कर भयानक वन में पहुँचा और वहीं उनकी मूर्ति बना स्वयं वाण-विद्या का अभ्यास करने लगा। श्रद्धा, विश्वास, प्रेम और लगन ने उसकी मनोकामना सिद्ध कर दी, वह विना किसी के सिखलाये लक्ष्यवेध और शब्दवेध चलाने लगा। कुछ ही दिनों में वह सिद्ध हस्त हो गया।

कुछ दिनों के बाद महर्षि द्रोण से आज्ञा लेकर सभी राजकुमार मृगों का आखेट करने के लिये वन में गये। राजकुमारों के साथ बहुत से शिकारी कुत्ते भी थे। भयङ्कर वन में आगे बढ़ते-बढ़ते सभी उसी स्थान के निकट पहुँच गये जहाँ पर एकलव्य द्रोण की मूर्ति बना अभ्यास कर रहा था। अचानक उनका एक शिकारी कुत्ता उसी ओर आ निकला, वह एकलव्य के भयानक स्वरूप को देख भूकने लगा। एकलव्य ने शांति भङ्ग होते देख एक साथ ही सात बाण कुत्ते के मुँह में मार कर उसका भूकना बन्द कर दिया।

एक साथही सात बाण मुँह में घुस जाने से कुत्ता भयभीत हो भागा और राजकुमारों के पास आ पहुँचा। राजपुत्रों ने बाण चलाने की इस अद्भुत क्रिया को देख बड़ा आश्चर्य्य किया और सभी उस शिकारी को खोजने के लिये निकल पड़े। बहुत ढूँढ़ते-ढूँढ़ते अन्त में उन लोगों ने देखा कि एक स्थान पर महात्मा द्रोण की मिट्टी की मूर्ति बनी है, पास ही में उन लोगों ने कृष्ण मृगचर्म पहिरे हुए एक काले आदमी को बाण वर्षा करते देखा—राजपुत्र गण उस मलीन देहवाले कृष्ण-मृग-चर्मधारी हिरण्यधनुसुत एकलव्य को नहीं पहचान सके। उन्होंने बड़े कौतुक पूर्वक उसका परिचय पूछा—

राजपुत्रों के पूछने पर उसने कहा—मैं निषादराज का पुत्र तथा महात्मा द्रोण का शिष्य हूँ, यहाँ रहकर धनुर्वेद का अभ्यास कर रहा हूँ।

राजकुमारों ने लौटकर सभी वृत्तान्त आचार्य्य द्रोण से कहा—महात्मा द्रोण शिष्यों के मुँह से ऐसी बातें सुनकर अत्यन्त विस्मित हुये। आचार्य्य को इस प्रकार देख वीर अर्जुन ने कहा—भगवन्! आपने तो केवल मुझे ही सर्व-श्रेष्ठ शिक्षा देने के लिये कहा था, परन्तु मैं देखता हूँ कि आप का शिष्य एकलव्य हम से भी अधिक सिद्धहस्त हो गया है। यह क्या बात है? कहिये—

इतना कहने पर भी आचार्य्य इस भेद को नहीं समझ सके। वह दूसरे ही दिन सारा मर्म जानने के लिये अर्जुन को साथ लेकर आये। एकलव्य अभ्यास कर रहा था, द्रोणको देखते ही वह साष्टांग गिर पड़ा। पश्चात् उठकर अनेक प्रकार से विनय करता हुआ बोला—भगवन्! मैं आपका दास एकलव्य हूँ। आपको ही गुरु मानकर मैं बाण विद्या का अभ्यास कर रहा हूँ। इतना कहकर एकलव्य ने आचार्य्य को उत्तम आसन पर विठाया और उनकी यथोचित पूजा कर हाथजोड़कर बोला—भगवन्! आज्ञा कीजिये। मैं और क्या सेवा करूँ।

एकलव्य की बातें सुन आचार्य्य ने हँसते हुये कहा—वीरवर! क्या सचमुच तुम हमें गुरु समझते हो? यदि सत्य है तो तुम्हें गुरु दक्षिणा देनी चाहिये। आचार्य्य के कहने पर एकलव्य ने उत्तर दियाः—भगवन्! गुरु के लिये संसार में कुछ भी अदेय नहीं है, हम शरीर तक देने के लिये तैयार हैं, आज्ञा कीजिये आप क्या चाहते हैं?

महर्षि द्रोण ने निर्दयता पूर्वक कहा—वीरवर ! तुम अपने दहिने हाथ का अँगूठा काट कर दे दो, हम इसे ही गुरु दक्षिणा समझेंगे।

एकलव्य सच्चा वीर था। उसने विना आगा पीछा सोचे ही खड्ग से अँगूठा काटकर गुरु के चरणों के निकट रख दिया। ओह! कितना बड़ा त्याग!

प्रिय पाठकों! एकलव्य की शिष्यता पर विचार करो, जिन द्रोण ने उसे दुरदुरा कर अपने पास से हटा दिया था, जिसने उसे नीच जानकर शास्त्र विद्या सिखाने से इन्कार किया था, फिर भी वह कर्मिष्ठ वीर विचलित नहीं हुआ। द्रोण को गुरु मान चुका था, अतः उन्हीं पर विश्वास कर शास्त्राध्ययन करने लगा और यथेष्ठ सफलता भी प्राप्त की।

एकलव्य ने गुरु-भक्ति की हद कर दी, क्या इससे भी कहीं श्रेष्ठ उदाहरण मिल सकता है? आचार्य्य ने क्या किया था? क्या किसी प्रकार का ज्ञान दिया था? फिर भी एकलव्य ने क्या किया? आश्चर्य्य! यदि वह द्रोण की शिक्षा पाता तो निःसन्देह अद्वितीय वीर होता।

आचार्य्य अर्जुन को मानते थे, अतः उनकी प्रसन्नता के लिये एकलव्य से ऐसी गुरु-दक्षिणा माँगे। वीर एकलव्य का अँगूठा कट जाने से बाण चलाने की पहली की सी शक्ति नहीं रह गई।

अस्त्र-विद्या की परीक्षा।
और
कर्णार्जुन-विवाद

—※—※—
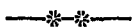
राजकुमारों की शिक्षा पूर्ववत् चल रही थी। सभी दिन-दिन यथाशक्ति उन्नति कर रहे थे। महमति भीष्म, महावली धृतराष्ट्र, महात्मा विदुर, मंत्रीगण, शूर-सामन्त तथा पुर-जन राजकुमारों की योग्य शिक्षा देख मन ही मन अत्यन्त प्रसन्न होते तथा महात्मा द्रोण के गुणों की प्रशंसा करते थे। धीरे-धीरे सभी राजकुमार अपनी कर्मिष्ठता के अनुसार योग्य और प्रवीण हुये।

वाण विद्या में अर्जुन अद्वितीय हुये। उनकी समानता करने वाला कोई नहीं रहा। ज्येष्ठ पाण्डु युधिष्टिर रथ पर वैठ कर युद्ध करने की क्रिया में निपुण हुये तथा भीम और दुर्य्योधनने गदा-युद्ध की दक्षता प्राप्त की। माद्री-कुमार नकुल और सहदेव तलवार चलाने में विशेष कुशल तथा प्रवीन हुये। आचार्य्यपुत्र अश्वत्थामा सभी विद्याओं में श्रेष्ठ रहे। सभी वालक एक से एक वढ़ कर गुणवान, वलवान एवं वुद्धिमान हुये—इस प्रकार अस्त्र-शस्त्राध्ययन करते कुछ काल वीत गये।

एक दिन द्रोणाचार्य्य ने राजकुमारों की परीक्षा लेने का विचार किया। उन्होंने एक कृत्रिम नीले रंग की चिड़िया

सामनेके वृक्षकी ऊँची डाली पर रख दी और सब शिष्यों को बुलाकर कहा—राजपुत्रों! देखो! सामने वह चिड़िया है। उसी को वाण से बेधना है। तैयार हो जाओ। इसके बाद महात्मा द्रोण ने पहले युधिष्ठिर को बुलाया और धनुष सज्जित करने के लिये कहा। युधिष्ठिर आचार्य की आज्ञा पाते ही धनुष पर बाण रखकर तैयार हो गये।

युधिष्ठिर को प्रस्तुत देख आचार्य ने कहा—धर्मपुत्र! उस चिड़िया को देखते हो जिसके सिरको तुम्हें बेधना है?

युधिष्ठिर ने कहा—जी हाँ? देखता हूँ। तब द्रोणाचार्य ने पूछा—क्या तुम इस वृक्षको, मुझे तथा अपने सहपाठियों को भी देखते हो जो यहाँ खड़े हैं? आचार्य्य की बातें सुन युधिष्ठिर ने नम्रता पूर्वक उत्तर दिया—भगवन्! मैं इस वृक्ष को, आपको तथा खड़े हुये इन राजपुत्रों को देख रहा हूँ।

युधिष्ठिर की बातों से द्रोणाचार्य्य को असन्तोष हुआ। उन्होंने कहा—धर्मपुत्र! तुम इस लक्ष्य को नहीं बेध सकोगे, इतना कह कर उन्होंने युधिष्ठिर को वहाँ से हट जाने के लिये कहा।

इसके पश्चात् उन्होंने दुर्य्योधनादि सभी शिष्यों को क्रमशः निशाने के सामने खड़ा किया और सभी से वही प्रश्न पूछा। सभी राज कुमारों ने युधिष्ठिर के समान ही उत्तर दिया। आचार्य राजकुमारों के उत्तर को सुन कर अत्यन्त दुःखी हुये और सब का तिरस्कार कर निशाने के सामने से हटा दिये।

अन्त में द्रोण ने अर्जुन को बुलाया और निशाने के सामने खड़ा कर कहा—अर्जुन! तुम्हें इस निशाने को वेधना होगा। धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाओ और निशाने की तरफ वाण तानो, पश्चात् हमारे प्रश्नों का उत्तर दे आज्ञा पाते ही निशाने को वेधो।

आचार्य्य की आज्ञा पाते ही अर्जुन तैयार हो गये, शीघ्र धन्वा पर वाण चढ़ा कर एकटक निशाने की ओर देखने लगे। उसी समय आचार्य्य ने मुसकराते हुये पूछा—

पुत्र! सामने का वृक्ष, उस पर रक्खी हुई चिड़िया, हम और ये राजपुत्र सब तुम्हें दिखलाई पड़ते हैं या नहीं?

अर्जुन ने कहा—महात्मन्! मुझे तो कोई नहीं दिखलाई पड़ता, न आप देख पड़ते हैं, न वृक्ष दिखलाई पड़ता है और न हमारे भाई ही दिखाई देते हैं।

अर्जुन की बातें सुन आचार्य्य प्रसन्न होकर पुनः बोले—अर्जुन! क्या तुम्हें पूरी चिड़िया दिखाई दे रही है? अर्जुन ने कहा—भगवन्! मुझे तो केवल चिड़िया का सिर दिखलाई दे रहा है और कोई अंग—प्रत्यंग नहीं देख पड़ता। यह सुनकर द्रोण अत्यन्त प्रसन्न हुये और बोले-अच्छा! तो लक्ष्य वेध करो।

आचार्य्य की आज्ञा पाते ही अर्जुन ने तत्काल वाण चला दिया, निशाना भरपूर बैठा, सिर कटी हुई चिड़िया पृथ्वी पर आ गिरी, महात्मा द्रोण प्रिय शिष्य अर्जुन की बुद्धिमानी देख अत्यन्त प्रसन्न हुये और गले से लगा लिये।

इसके कुछ दिनों के बाद एक बार आचार्य्य सभी शिष्यों को लेकर पतित पाविनी भागीरथी में स्नान करने गये। स्नान करते समय एक मगर ने आचार्य्य का पैर पकड़ लिया। महात्मा द्रोण यदि चाहते तो बात की बात में उस मगर से अपना पैर छुड़ा लेते, परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। शिष्यों की परीक्षा लेने के लिये चिल्लाना आरम्भ किया। आचार्य्य का चिल्लाना सुन और शिष्य तो भौचक हो इधर-उधर ताकने लगे परन्तु अर्जुन ने तत्काल तरकस से पाँच तीर निकाल धनुष पर रख मगर पर चला दिया, जिस की मार से व्यग्र हो कर मगर चिंघाड़ता हुआ आचार्य्य को छोड़ भाग खड़ा हुआ।

अर्जुन की विपत्ति में धैर्य्य धारण करने की शक्ति तथा निवृत्ति की अद्भुत युक्ति एवं वीरता देख आचार्य्य गद्गद् हो उठे और जल से बाहर हो अर्जुन को हृदय से लगा लिये। उन्होंने सोचा कि अर्जुन अवश्य हमारा कार्य्य करेगा। निश्चय ही द्रुपद को परास्तकर हमारी मनोवाञ्छा पूर्ण करेगा। इस प्रकार हर्षित होते हुये उन्होंने कहा—हे महाबाहो! मैं तुझ से बहुत सन्तुष्ट हूँ, तुमने मुझे अत्यन्त प्रसन्न किया है। मैं तुम्हें यह ब्रह्मशिरा नाम का एक अस्त्र देता हूँ। यह अमोघ अस्त्र है, इसकी वार कभी खाली नहीं जाती, विश्व में इसे कोई नहीं रोक सकता। परन्तु—पुत्र! इस महा अस्त्र को कभी मनुष्य पर नहीं चलाना, क्योंकि मनुष्य इसका तेज नहीं सह सकेगा, इसके तेज से दिशायें अग्नि

मय हो जायेगी। अतः मनुष्य को छोड़ कर और कोई यदि तुम पर प्रहार करे तो तुम इसे काम में लाना। निःसन्देह तुम्हारे शत्रु का संहार हो जायगा।

अर्जुन ने भक्ति-भाव पूर्वक आचार्य्य के चरणों में सिर झुकाकर इस दिव्यास्त्र को प्राप्त किया तथा अपने को कृतार्थ माना।

धीरे-धीरे कुछ काल वीतने पर जव सभी राजकुमार शस्त्र—विद्या में पारंगत हो गये। महर्षि द्रोण महामति भीष्म तथा महाराज धृतराष्ट्र के सन्मुख राज दर्वार में वोले—महाराज! राजपुत्र गण शस्त्रास्त्र—विद्या में निपुण हो गये हैं, यदि आज्ञा हो तो सभी अपनी-अपनी सीखी हुई शस्त्र विद्या का परिचय दें। अव उनकी विद्या समाप्त हो गई है।

आचार्य्य द्रोण की वातें सुन महावली धृतराष्ट्र अत्यन्त प्रसन्न हो कृतज्ञता प्रकट करते हुये वोले—भगवन्! यह सव आपकी ही कृपा का फल है। हम लोग आपके ऋणी हैं। आपने हमारा वहुत वड़ा कार्य्य किया है। वतलाइये, राजकुमारों की परीक्षा किस प्रकार हो? मुझे आपकी वातें सुनकर वड़ा हर्ष हो रहा है। नेत्र न होने से मैं यह अपूर्व समारोह नहीं देख सकूंगा, फिर भी सुनकर ही सन्तुष्ट हो लूंगा।

इस प्रकार आचार्य से कहकर महावली धृतराष्ट्र ने सामने वैठे हुये महात्मा विदुर से कहा—भाई! राजपुत्रों की

शस्त्र-परीक्षा के लिये आचार्य्य के कथनानुसार शीघ्र सुन्दर रङ्ग-भूमि की रचना कराओ ।

महात्मा विदुर ने शीघ्र रङ्ग-भूमि के बनवाने का काम आरम्भ कर दिया। इस कार्य्य के लिये एक लम्बा-चौड़ा मैदान निश्चित किया गया। उसमें सुन्दर चहार दिवारियाँ बनाई गई, तथा चारों दिशाओं में चार बड़े-बड़े रत्न-जटित फाटक लगाये गये। बीच में दर्शकों के लिये उत्तम मणि-माणिकों से जड़े हुये मंच और एक से एक विशाल मंचपरचे गये। स्त्रियाँ और बालकों के लिये भी सुन्दर स्थान का प्रबन्ध किया गया।

धीरे-धीरे परीक्षा का दिन निकट आने लगा। चारों ओर वन्दनवार, तोरण, ध्वजा और पताकायें लगाई गईं, स्थान-स्थान पर रङ्ग-बिरंगे फूलों के गमले सजाये गये तथा मंचों और शिविरों में हीरे मोती और लालों की जड़ाई की गई, इस प्रकार की अपूर्व सजावट से रङ्गभूमि की शोभा और बढ़ गई।

आज परीक्षा का दिन आ उपस्थित हुआ। रङ्ग-भूमि पुरवासियों तथा प्रजाओं से भर गई, देश-देशान्तरों के दर्शकों के समुदाय से दर्शक मण्डप शोभित हो उठा। ठीक समय पर महामति भीष्म और महाबली धृतराष्ट्र विदुर तथा मंत्रियों के साथ आकर बैठे। महारानी कुन्ती और गान्धारी भी अपनी-अपनी दासियों के साथ आईं और यथा-योग्य स्थान पर बैठ गईं। धीरे-धीरे रङ्गभूमि दर्शकों से एक दम भर

गई। कहीं तिलभर भी स्थान नहीं बचा। इस प्रकार दर्शकों की रेल-पेल में बड़ा कोलाहल हुआ।

परीक्षा समय निकट आतेही मधुर बाजे बजने लगे, देखते ही देखते महासागर की लहरों का सा कोलाहल जाता रहा। दर्शक वृन्द कौतूहल पूर्वक शान्त हो गये, सबों का ध्यान मधुर वाद्य की ओर आकर्षित था, कोई चूँ तक नहीं कर सका। उसी समय महर्षि द्रोण श्वेत वस्त्र धारण किये पुत्र अश्वत्थामा के साथ रङ्गभूमि में प्रवेश किये।

गुरु द्रोण की आज्ञा पाते ही सभी राजकुमार शस्त्रास्त्र सज्जित हो युधिष्ठिर को आगे किये हुये रङ्गभूमि में उतरे। देखते ही देखते रङ्गभूमि वीरों के शस्त्रों की झङ्कार से गूँज उठी। इसके अनन्तर राजपुत्रों ने आचार्य की आज्ञा से अपने-अपने हाथ की कुशलता दिखलाई, कुछ ही क्षण में दिशायें अस्त्रों से पूर्ण हो गई। चारों ओर अस्त्र ही अस्त्र देख पड़ने लगे।

भयङ्कर अस्त्रों को आकाश में मँडराते देख बहुत से दर्शक डर के मारे अपना-अपना शिर नीचा कर आखें मूँद लिये। बहुत तो इतने डर गये कि आकाश की ओर देखना ही छोड़ दिये। इस प्रकार कुछ देर तक हाथ की सफाई दिखा सभी राजपुत्र घोड़ों की पीठ पर चढ़े और स्थिर लक्ष्यवेध करने लगे पश्चात् चलते हुये निशानों को बेध कर पृथ्वी पर गिराने लगे। राजकुमारों का यह कौशल देख सभी बार-बार प्रशंसा करने लगे।

इस प्रकार राजकुमारों ने अपने-अपने अद्भुत करतब दिखाये। पश्चात् शीघ्रगामी रथों पर आरूढ़ हुये और एक गोलाकार स्थान में बड़े वेगसे घुमाने लगे। दर्शक गण उनके रथ चलाने तथा घोड़ों को वश में रखने की बुद्धिमानी देख अत्यन्त प्रसन्न हुये।

अब रथों को छोड़ राजपुत्रों ने तलवारों से काम लिया, सभी एक साथही खड्गों को उठा लिये। चमकीली तलवारों की चमक से दिशायें चमक उठीं। देखते ही देखते परस्पर भयङ्कर द्वन्द युद्ध होने लगा। दर्शकों का समुदाय यह विचित्र व्यापार देख विस्मय और आश्चर्य में पड़ गया।

खड्ग युद्ध समाप्त होते ही गदा युद्ध होने लगा। भीम और दुर्योधन आमने-सामने आ डटे और मैदान में मण्डलाकार घूमकर पैंतरा बदलने लगे। भीम और दुर्योधन गदा युद्ध में समान ही बलवान थे। दोनों एक दूसरे को हराने की चेष्टा करने लगे। भयङ्कर गदा घात से दिशायें प्रतिध्वनित हो उठीं। भीम और दुर्योधन के भयङ्कर संग्राम ने दर्शकों को आकर्षित कर लिया। सभी अपने-अपने पक्ष के वीर को बढ़ावा देने लगे। अब क्या था? बहादुरों का रक्त उबल पड़ा। भीम और दुर्योधन परस्पर प्राणपन से भिड़ गये। आचार्य्य यह देख डरे कि कहीं अनर्थ न हो जाय। अतः उन्होंने अश्वत्थामा को भेज कर गदायुद्ध बन्द करा दिया।

प्रिय पाठकों! रङ्ग-भूमि में जो बातें होती थीं इधर

महात्मा विदुर धृतराष्ट्र को सुनाते जाते थे और उधर माता कुन्ती महारानी गांधारी को कहती जाती थीं।

गदायुद्ध बन्द होते ही बाजा बन्द कराकर आचार्य्य रङ्ग-भूमि में पधारे और बोले—

हे दर्शकों। आप लोगों ने हमारे शिष्यों की योग्यता भली भाँति देखली। मैं अपने शिष्यों में अर्जुन को ही श्रेष्ठ समझता हूँ अतः अब आप लोग उसके शस्त्र कुशलता को देखें—

उसी क्षण आचार्य की आज्ञा से महा धनुर्धर अर्जुन रंगभूमि में आये। उनके आते ही दर्शकों का ध्यान आकर्षित हो गया। चारो ओर से शंखध्वनि होने लगी तथा एक साथ ही बाजे बजने लगे।

रंगस्थली अर्जुन के जय निनाद से गूँज उठी, सभी एक स्वर से बोल उठे, यही कुन्ती नन्दन तृतीय पाण्डव अर्जुन हैं। यही अस्त्र-विद्या जानने वालों में श्रेष्ठ तथा अद्वितीय धनुर्धर हैं। यही सभी कुमारों में योग्य तथा श्रेष्ठ हैं—इत्यादि कह-कह कर सभी प्रशंसा करने लगे। कुन्ती अपने पुत्र की ऐसी प्रशंसा सुन अत्यन्त प्रसन्न हुई।

महाबली अर्जुन ने अब अपना अस्त्र कौशल दिखलाना आरम्भ किया। देखते ही देखते आग्नेय अस्त्र से उन्होंने अग्नि पैदा की और कुछ ही क्षण में उसे वरुणास्त्र द्वारा बुझा दिया। पश्चात् महा धनुर्धर पाण्डु नन्दन ने वायव्यास्त्र के द्वारा प्रचण्ड वातूल (आँधी) चला कर तत्काल

ही पार्जन्यास्त्र से आकाश को जीमूतों से भर दिया। इसके पश्चात् कौतुक पूर्वक भौमास्त्र द्वारा पृथ्वी को फाड़ दिया तथा पर्वतास्त्र के प्रहार से पर्वतों को उखाड़ लिया। इस प्रकार क्षण में इन भयंकर कर्मों को कर महावली अर्जुन ने तुरत ही अन्तर्द्धान अस्त्र द्वारा सवों को अन्तर्हित भी कर दिया। सभी क्षणमात्र में न मालूम कहाँ चले गये? अर्जुन का विचित्र कौशल देख सभी वाह! वाह! करने लगे।

इसके पश्चात् महावली पाण्डु-नन्दन ने एक से एक बढ़कर अद्‌भुत् कृत्य किया। ऐसे-ऐसे कसरतों को कर दिखाया जिन्हें देख लोग दंग हो रहे। इतने वेग और स्फूर्ति से अपना कार्य दिखाने लगे कि दर्शकों को कभी उनका शरीर छोटा और कभी वड़ा दिखलाई पड़ने लगा। उनका कौशल देख सभी आश्चर्य चकित हो उठे। कभी रथके उपर बैठे दिखाई पड़ते और कभी रथ के भीतर। अभी-अभी-रथ में बैठे थे और तत्काल भूमि पर खड़े दिखाई देने लगे। इसी प्रकार अद्‌भुत् कलाप्रदर्शन करते हुये महावली अर्जुन ने लक्ष्य वेध की कला का प्रदर्शन करना आरम्भ किया। चलते हुये निशानों को वेधने लगे, एकही बार में हिलते हुये लोहे के वने शूकर के मुँह में पाँच पाँच बाण मारने लगे तथा लट-कटे हुये वैल की सींग के भीतर इक्कीस-इक्कीस बाण छेदने लगे। इस प्रकार महावली अर्जुन ने धीरे-धीरे तीर तलवार और गदा चलाने की एक नहीं—सैकड़ों, एक से एक विचित्र करतवें दिखाई। जनता विमुग्ध हो गई, भीष्म, धृत-

राष्ट्र तथा विदुर महात्मा द्रोण की वार-वार प्रशंसा करने लगे।

इन आश्चर्य भरी घटनाओं के हो चुकने पर सभा भंग होने के समय जब दर्शक लोग जाने की तैयारी कर रहे थे, सहसा रंगभूमिके फाटक पर वड़ा गोल-माल मचा। साथ ही किसी वीर पुरुष के ताल ठोकने की आवज सुनाई दी। सभी लोग उत्सुकता पूर्वक उस ओर देखने लगे। सबों ने देखा कि दुर्योधन सौ भाइयों के सहित सूर्य के समान महा तेजस्वी कुंडल—कवच धारी एक महा पुरुष को लिये आगे वढ़ा आ रहा है।

प्रिय पाठकों! दिव्य कवच—कुंडल धारी इस महावीर को आप लोग भूले न होंगे। वह तेजस्वी महावीर कुन्ती पुत्र कर्ण (वसुसेन) था।

दर्शक गण उस अपार तेजस्वी को देख सहम गये तथा इस वात को जानने के लिये उत्सुक हो उठे कि सूर्य सदृश तेजवान यह कौन वीर है?

इसी समय कर्ण रंगभूमि के वीच में पहुँच ताल ठोक कर खड़ा हो गया। पश्चात् बड़े गर्व के साथ एक वार चारो ओर देखा और आचार्य कृप, द्रोण तथा महामति भीष्म को तिरस्कार पूर्वक प्रणाम किया। अनन्तर आगे वढ़ कर अर्जुन को सम्बोधन कर वोला—हे अर्जुन! अपनी प्रशंसा सुनकर तुम बड़े प्रसन्न मालूम होते हो! तुम समझते होगे कि इस प्रशंसा के हमीं पात्र हैं। इस में गर्व की कोई वात नहीं, अभी

जो कुछ तुमने हस्तकौशल कर दिखाया है हम भी उसे क्षण मात्र में करके दिखा सकते हैं।

कर्ण की अभिमान भरी बातों को सुन कर दर्शकों को बड़ा विस्मय हुआ। सभी लोग उसी ओर उत्सुकता पूर्वक देखने लगे। दुर्योधन ईर्ष्या वश अर्जुन की प्रशंसा सुन-सुन कर जल रहा था—परन्तु इस समय वसुसेन को अपना साथी पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

इसके पश्चात् कर्णने उन सब कामों को अच्छी तरह कर दिखाया जिन्हें कुछ समय पहले वीर अर्जुन ने किया था, कर्ण की सिद्ध हस्तता देख दर्शकों को बड़ा आश्चर्य हुआ।

कर्ण की अद्‌भुत् वीरता देख—दुर्योधन मारे आनन्द के फूल उठा और उठ कर उसे गले से लगाकर बोला—हे वीरवर! हम आपके अद्‌भुत् कर्मों को देख अत्यन्त प्रसन्न हुये। इसके बाद कर्ण ने खंभ से दिशाओं और विदिशाओं के प्रतिध्वनित करते हुये कहा—महात्मन्! मैंने उन सभी कर्मों को कर दिखाया जिन्हें अर्जुन ने किया था। अब मैं अर्जुन के साथ द्वन्द युद्ध करके इस बात की परीक्षा कर लेना चाहता हूँ कि हम दोनों में कौन श्रेष्ठ है?

कर्ण को इस प्रकार बढ़ते तथा दुर्योधन को बढ़ावा देते देख महावीर अर्जुन क्षुब्ध हो उठे, उनकी भृकुटियाँ वक्र हो गईं तथा मारे क्रोध के नेत्र लाल हो गये। तत्काल रंग-स्थली को रवपूर्ण करते हुये बोले—

हे सूत-पुत्र! यह तुम्हारी अनाधिकार चेष्टा है। ठहरो!

अनाधिकार चेष्टा करने वाले, विना बुलाये सामने आने वाले तथा विना पूँछे व्यर्थ प्रलाप करने वालों की जो गति होती है, वही तुम्हारी भी होगी। निःसन्देह आज तुम मेरे हाथों से मरकर वहीं जाओगे।

इस प्रकार अर्जुन की बातें सुन महाबली कर्ण ने क्रुद्ध हो कहा—अर्जुन! यह तुम क्या कहते हो? रंगभूमि में सभी योद्धा आ सकते हैं। किसी को बुलाने या निकालने का अधिकार तुम्हें नहीं है। ठहरो! सबों के सन्मुख तुम्हें विना यमलोक भेजे मैं व्यर्थ बातें करना नहीं चाहता।

कर्ण को अभिमान भरी बातों को सुन वीर अर्जुन के देह में आग लग गई, तत्काल आचार्य्य की आज्ञा ले युद्ध के लिये कर्ण के सन्मुख आ डटे। इधर दुर्योधनादि कौरवों ने कर्ण को उत्साहित कर अर्जुन के सामने भेजा। उधर द्रोण कृप और चारो पाण्डव अर्जुन के पक्ष में थे। इधर सौ भाइयों तथा अश्वत्थामा सहित दुष्ट दुर्योधन कर्ण के पक्ष में था।

कर्णार्जुन को भयंकर युद्ध के लिये तत्पर देख कुन्ती भावी अशंका से भयभीत हो उठी, उसे असह्य दुःख हुआ। ऐसे समय में वह कुछ भी कर्त्तव्य निश्चय न कर सकी, मारे दुःख के अचेत होकर धड़ाम से धरती पर गिर पड़ी।

महात्मा कृप कर्णार्जुन को युद्ध के लिये प्रस्तुत देख अत्यन्त खिन्न हुये—उन्होंने सोचा—इस युद्ध का निश्चय ही भयंकर परिणाम होगा। उन्होंने युद्ध रोकने का विचार

कर कर्ण से कहा—हे कर्ण! अज्ञात कुल-शील वाले व्यक्तियों के साथ राज कुमारों का लड़ना मना है। तुम्हारे कुल का कोई पता नहीं, सभी जानते हैं कि अधिरथ सारथी ने उन्हें पाला-पोसा है। फिर भला तुम्हीं कहो—सारथी पुत्रके साथ राजकुमार कैसे लड़ सकते हैं? अतः हे वीरवर! यदि तुम अपने पवित्र वंशका परिचय दो तो पाण्डुनन्दन महाबली अर्जुन तुमसे निःसंकोच लड़ सकते हैं।

कृपाचार्य की बातों को सुन कर्ण अत्यन्त लज्जित हुये। उन्हें स्वयं अपने कुल का ज्ञान नहीं था। उनका वीरत्व अभिमान बात की बात में जाता रहा। महावीर कर्ण सिर झुकाकर मौन हो रहे। दुर्य्योधन से यह बात नहीं सही गई उसने कहा—

आचार्य्य! वीरता और जाति से कोई सम्बन्ध नहीं, एक वीर दूसरे से युद्ध कर सकता है, यहाँ जाँति-पाँति का विचार करना व्यर्थ है, यदि कुछ शंका है तो लीजिये मैं अभी अँग देश के सिंहासन पर बिठाकर महावीर कर्ण का राज्या-भिषेक करता हूँ।

इतना कहकर धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन ने एक स्वर्ण सिंहासन पर महावीर कर्ण को बिठा कर शास्त्र विधि के अनुसार राज्या-भिषेक कर राजा बना दिया। इस प्रकार दुर्योधन के द्वारा कर्ण के दारूण अपमान की रक्षा हो गई। कर्ण प्रसन्नता एवं कृतज्ञता पूर्वक अपने अपमान के कलुष को धोने वाले दुर्योधन से बोले—

महाराज! आपने जो हमारे प्रति उपकार किया है उसका प्रत्युपकार नहीं हो सकता। मैं आजन्म आप की आज्ञा पालन के लिये तैयार रहूँगा। कर्ण को इस प्रकार अपना अभिन्न होते देख दुर्योधन अत्यन्त प्रसन्न हो बोला—

हे अंगराज! मैं आपको अभिन्न हृदयी मित्र बनाना चाहता हूँ। कर्ण ने तथास्तु कहते हुये कहा—महाराज! जब तक शरीर में प्राण है क्षण भर के लिये भी कभी प्रतिज्ञा से विपरीत कार्य्य न करूँगा। मेरी प्रतिज्ञा सत्य और अटल होगी।

इसी समय राज—सारथी अधिरथ, कर्णार्जुन-विवाद का समाचार सुन रंगभूमिमें दौड़े हुये पहुँचे। प्रिय पाठकों! आप लोग जानते होंगे, अधिरथ के द्वारा ही वसुसेन पाले पोसे गये थे। अधिरथ कर्ण को पुत्र के समान मानते थे। कर्ण ने पिता तुल्य अधिरथ को सामने से आते देख प्रणाम किया। कर्ण को स्वरक्षित एवं सकुशल देख अधिरथ के प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। वह प्रेम गद्गद् हो कर्ण को हृदय से लगा लिये तथा पुत्र! पुत्र! कहकर अपना प्रेम प्रकट किये।

यह देख महाबली भीम व्यंग पूर्वक बोले—हे सूत पुत्र! मुझे तो आशा थी कि रणांगण में महाबली अर्जुन के हाथ से प्राण त्याग कर सद्गति को प्राप्त करोगे, परन्तु हमारी आशा फलवती नहीं हुई, कुत्ता जिस प्रकार हविष्यान्न का पात्र नहीं है उसी प्रकार तुम्हारे सूत्र पुत्र होने से अंगदेश

का राज्य भी शोभा नहीं देता। तुम्हारे कुल का पेशा ही तुम्हारे लिये योग्य है।

भीम की बातें सुन, कर्ण की क्रोधाग्नि भड़क उठी, उनके होठ काँपने लगे, किसी प्रकार अपने को सम्हाल कर डूबते हुये दिवाकर को ध्यान पूर्वक देखने लगे। दुर्योधन से महावली भीम की बातें नहीं सही गईं। उसने क्रुद्ध होकर कहा—भीम! ऐसी अशिष्टता पूर्ण बातें तुम्हारे योग्य नहीं हैं। तुमने अनुचित बात कही है। कर्ण वीर हैं, योद्धा हैं। अधिक वली ही श्रेष्ठ होता है, उनकी वीरता के सन्मुख, अंगदेश का राज्य तुच्छ है। कर्ण दिव्य कवच और कुंडल सहित उत्पन्न हुये हैं। इससें प्रत्यक्ष सिद्ध होता है कि किसी उज्ज्वल वंश में जन्म लिये हैं, इतने पर भी अंगदेश का राज्य पाने के कारण जो कर्ण से द्वेप करना चाहता है, वह सामने मैदानमें आजाय हम उससे लड़ने के लिये तैयार हैं।

इसके अनन्तर सभा भंग हो गई, कोई अर्जुन, कोई कर्ण और कोई दुर्योधन की प्रशंसा करते हुये अपने-अपने घरों में गये। दुर्योधन महावली कर्ण को अपना मित्र वना अत्यन्त प्रसन्न हुआ तथा दूरदर्शी, युधिष्ठिर कर्ण को कौरवों के मैत्री के बंधन में वंधे देख अत्यन्त दुःखी हुये।

आचार्य की गुरु-दक्षिणा।
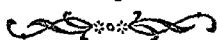
कुछ काल के अनन्तर शिष्यों को पूर्ण योग्य हो गये देख आचार्य्य द्रोण ने सबों को बुलाकर कहा—राजकुमारों तुम लोगों की अस्त्र शिक्षा पूर्ण हो गई अब मैं तुम लोगों से गुरु-दक्षिणा चाहता हूँ। तुम लोग गुरुदक्षिणा देने के लिये तैयार हो जाओ। आचार्य के इस प्रकार कहने पर सभी कुरु और और पांडवों ने उत्सुकता पूर्वक आज्ञा की प्रार्थना की।

अपने वीर शिष्यों को कटिबद्ध देख महात्मा द्रोण ने कहा—वीर पुत्रों! तुम लोग पाञ्चाल देश जाकर राजा द्रुपद को युद्ध में हराकर, बन्दी बना हमारे पास ले आओ। यही हमारी गुरु दक्षिणा है।

महावीर आचार्य की आज्ञा पा सभी शिष्य शीघ्र शस्त्रास्त्र सज्जित हो चल पड़े। दुर्योधन अपने भाइयों और कर्ण को लेकर सब से आगे बढ़ा। उसने सोचा कि मैं ही पहले पहुँच कर द्रुपद को पकड़ लाऊँ। यह देख अर्जुन आचार्य की अनुमति से भाइयों सहित कुछ पीछे रह गये।

कौरवगण रात-दिन धावा मारते हुये पाञ्चाल देश में पहुँच गये। राजा द्रुपद ने द्रोण-शिष्यों की चढ़ाई का समाचार सुन शीघ्र पाञ्चाल सेना को सजने की आज्ञा दी, देखते ही देखते वीर पाञ्चालों की विशाल वाहिनी सुसज्जित हो राजधानी के बाहर निकल पड़ी। थोड़ी ही देर में कौरव भी आ पहुँचे, तत्काल घमासान युद्ध होने लगा।

देखते ही देखते संग्राम बड़ा भीषण हो चला, पाञ्चालों की वीरता देख कौरवोंके दाँत खट्टे होगये। द्रुपद के पैने बाणों की मार से कर्ण की बोली बन्द हो गई, तथा दुःशासन विकर्ण आदि भयभीत होगये। द्रुपदने सबों की बुरी दशा कर डाली। इस प्रकार सभी घबड़ाकर भागनाही चाहते थे कि पीछे से महावली भीमसेन अपने चारों भाइयों के साथ आ पहुँचे।

पाञ्चाली सेना से कौरवों को विचलित देख भीम के क्रोध का ठिकाना न रहा। वे प्रलयङ्कारी शङ्कर के समान क्रोध करते हुए शत्रु-दल पर टूट पड़े। उन्होंने अपनी गदा के घात से सैकड़ों रथों को चूर-चूर कर दिया तथा सहस्रों हाथी-घोड़ों और योद्धाओं को मार गिराया। इसी समय महावली अर्जुन भी अपना धनुष-वाण लेकर पिल पड़े और इतने वाण चलाये कि द्रुपद की सारी सेना ढँक गई।

अपनी सेना में अर्जुन को इस प्रकार प्रलय मचाते देख द्रुपद के सेनापतियों ने उन पर एक साथ ही प्रहार करना आरम्भ कर दिया। इस पर अर्जुन अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे और वाणों से बात की बात में उन्हें शरीर रक्षकों सहित मार गिराये। इस प्रकार सेनापतियों का अन्त कर महावली द्रुपद से जा भिड़े। यद्यपि द्रुपद वीरता से लड़े परन्तु अर्जुनके हस्त-लाघव के आगे उनकी एक नहीं चली। प्रतापी अर्जुन ने उन्हें थोड़ी ही देर में विवश कर दिया। पाण्डु-नन्दन ने बड़ी शीघ्रता से द्रुपद के रथ का पताका काट कर पृथ्वी पर गिरा दिया तथा उनके सारथी और घोड़ों को मार

कर पैने वाणों से उनके धनुपको भी काट गिराया। इस प्रकार द्रुपद को निःशस्त्र कर महावली अर्जुन धनुष रख, तलवार ले रथ से कूद कर उनके पास जा पहुँचे और पकड़ कर वन्दी बना लिये।

द्रुपद को वन्दी वना देख, कौरव लोग निरपराध सेना का संहार करने लगे। अर्जुन ने मना करते हुये कहा—खबरदार! निरपराधों की हत्या मत करो। हमको केवल द्रुपद से काम है। आचार्य से हम लोगों ने केवल यही प्रतिज्ञा की है कि द्रुपद को गुरु-दक्षिणा स्वरूप पकड़ लावेंगे। अतः इन्हें आचार्य्य के पास ले चलिये।

सभी राजकुमार द्रुपद को बाँधकर आचार्य के पास लाकर बोले—महात्मन्! गुरु-दक्षिणा हाज़िर है। द्रुपद को देखते ही आचार्य द्रोण ने अपना वह अपमान याद कर कहा—द्रुपदराज! पुरानी बातें याद करो! अभी तुम हमारे अधिकार में हो। तुम क्या चाहते हो? निःसंकोच कहो, हम उसे पूरा करेंगे। तुम हमारे वालसखा हो।

आचार्य्य की बातें सुनकर द्रुपद का सिर नीचा होगया। सारा घमण्ड चूर २ होगया। मारे लज्जा के उनके मुँह से एक शब्द भी नहीं निकला। अपने कुकृत्य पर उन्हें महा दुःख हुआ। इस प्रकार बालसखा द्रुपद को अत्यन्त दुःखी देख आचार्य्य ने कहा—हे वीर! भय न करो। हम तुम्हें क्षमा करते हैं। तुमने मैत्री भुलाकर मेरा अपमान किया था, राजमद में उन्मत्त होकर तुमने मुझे फटकारा था, फिर भी हम

ब्राह्मण-स्वभाव तथा तुम्हारी पूर्व-मैत्री का स्मरण कर तुम्हारे साथ वही वर्ताव रखना चाहते हैं। परन्तु अवस्था भेद को मिटाने के लिये हम तुम्हारा आधा राज्य ले लेते हैं। इस प्रकार दोनों के राजा हो जाने पर मैत्री वनी रहेगी।

द्रुपद द्रोणाचार्य्य के वन्धन में वँधे थे। अतः उन्होंने द्रोण की वातें स्वीकार कर ली। इसके पश्चात् महात्मा द्रोण ने उन्हें वन्धन से मुक्त कर दिया।

महर्षि द्रोण के वन्धन से छूटने पर द्रुपद को वड़ा शोक हुआ। अव वह द्रोणाचार्य्य के वध का उपाय ढूँढ़ने लगे। वर्षों तपोवनों में भटकते रहे परन्तु कार्य सिद्ध नहीं हुआ। अन्त में महर्षि यान और उपयान की सहायता से उन्होंने द्रोण को मारने वाला पुत्र के लिये पुत्रेष्टि यज्ञ किया।

पाठकों! उसी यज्ञ की अग्निसे धृष्टद्युम्न नामक एक महा तेजस्वी पुत्र और कृष्णा नामकी एक अत्यन्त रूपवती कन्या प्राप्त हुई। इसी महावली पुत्र ने महाभारत के संग्राम में द्रोण का वध किया। उसी यज्ञ से काशीराज की कन्या अम्वा ने भी भीष्म वधके लिये जन्म धारण किया। उसका नाम शिखण्डिनी पड़ा।

इसके पश्चात् महात्मा द्रोण सभी शिष्यों से विदा हो उत्तर पाञ्चालकी यात्रा किये। चलते समय उन्होंने अपने प्रिय शिष्य अर्जुन को अनेक प्रकार के अद्भुत २ अस्त्र-शस्त्र दिये। इस भाँतिआधे पाञ्चाल पर अधिकार जमा सुख पूर्वक रहनेलगे।

कौरवों का द्वेष।

महात्मा पाण्डवों की दिगन्त व्यापिनी कीर्ति इस प्रकार बढ़ते देख महाबली धृतराष्ट्र को दुःख होने लगा। पाण्डु पुत्रों का बाहुबल, पराक्रम और तेज से उन्हें अत्यन्त भय हुआ। सहसा भावी अशंका ने तत्काल उन्हें अधीर और व्यग्र बना दिया। इस प्रकार चिन्तित होते हुये उन्होंने अपने मन्त्री कणिक को बुलाकर इस प्रकार कहा—

हे ब्राह्मण-श्रेष्ठ! आप नीति जाननेवालों में चतुर और बुद्धिमान हैं। आपसे कोई बात छिपी नहीं है। हम अपने पुत्रों का अकुशल देख अत्यन्त दुःखी हो रहे हैं। मुझे पुत्रों के राज्याधिकार पाने में सन्देह हो रहा है। पाण्डवों के इस उन्नति को देख हम नहीं कह सकते कि उन्हें राज्य प्राप्त होगा अथवा नहीं? इस समय मैं अत्यन्त चिन्तित हूँ। अतः आप राजधर्मानुसार ऐसी युक्ति बताइये जिससे हमारे पुत्रों को पाण्डवों का भय न रहे।

महाराज धृतराष्ट्र की बातें सुन महा बुद्धिमान कणिक ने कहा—महाराज! पाण्डवों से सचमुच ही आपके पुत्रों को भय है। बिना उन्हें समूल नष्ट किये वह भय दूर नहीं हो सकता। शत्रु का नाश करने से ही कल्याण होता है। राजन्! अग्नि, शत्रु, रोग और ऋण से सदैव बचते रहना चाहिये। कभी-किसी अवस्था में इन्हें सामान्य नहीं समझना चाहिये। इन्हें बढ़ते देरी नहीं लगती। फिर पाण-

पाण्डव दिन भर घूमते-घामते और रात्रि में माता सहित उसी सुरंग में सो जाते थे। धीरे-धीरे एक वर्ष वीत गया। पुरोचन को पांडवों पर कुछ भी सन्देह नहीं रहा। इधर पाण्डवों ने विचारा कि अव पुरोचन की प्रतीक्षा करना व्यर्थ है। आओ! किसी दिन उसे शास्त्रागार में जहाँ वह रहता है आग लगा कर भष्म कर दें, और बाद में इस लाक्षा-गृह को भी जला कर चल चलें।

जिस दिन रात्रि में आग लगाने का निश्चय किया गया, उसी दिन माता कुन्ती ने पुरवासियों को एक वहुत वड़ा भोज दिया। सभी लोग तो चले गये परन्तु एक केवट की स्त्री अपने पाँच पुत्रों के साथ रात्रि में वहीं रह गई। इधर मध्य निशा आते ही भीम ने शस्त्रागार में आग लगा दी। पापात्मा पुरोचन जल मरा। पश्चात् लाक्षागृह को फूँक चारो भाइयों और माता कुन्ती के साथ उसी सुरंग के मार्ग से निकल पड़े।

विशाल लाक्षागृह धाँय-धाँय करते हुये जल उठा। उसकी ऊँची अट्टालिकायों से वड़े-वड़े अग्नि स्फूलिङ्ग निर्गत होने लगे। हरताल-मैनशिल की विषैली गंध चारो ओर फैल गई, सभी पुरवासी हाहाकार कर दौड़ पड़े, लोग कौरवों को दुर्वचन कह कर गालियाँ देने लगे। इस प्रकार रोते-पीटते हुये सभी रातभर उस जलते हुये लाक्षागृह की परिक्रमा करते रहे।

इधर पांडव लोग सुरङ्ग से वाहर हो एक भयानक वन में

चाहते हैं। मैं देखता हूँ कि महामति भीष्म और महात्मा विदुर भी प्रजाओं के पक्ष में हैं। देखिये! पहले भी अन्याय कर लोगों ने आपको राज्य से वंचित किया है, अब फिर वही चाल चलने वाली है। इसका शीघ्र प्रतिकार कीजिये अन्यथा हम लोग राज्य से वंचित रह जायेंगे और साधारण पुरवासी के समान जीवन वितायेंगे। क्या हम पाण्डवों के इस उन्नति को सहन कर सकेंगे? इस प्रकार उदासीन हो वैठे रहने से अव काम नहीं चलेगा।

पुत्र दुर्योधन की व्यग्रता ने धृतराष्ट्र को और भी चिन्ता में डाल दिया। वह अत्यन्त अधीर हो उठे, परन्तु फिर भी इस सम्वन्ध में कुछ निश्चय नहीं कर सके। इस प्रकार पिता को मौन धारण करते देख दुर्वृत्त दुर्योधन दुराशय मामा शकुनि तथा मित्र कर्ण से परामर्शकर पुनः वोला—

पिताजी! यदि किसी युक्ति से पाण्डव कुछ दिनों के लिये कहीं वाहर भेजे जायँ तो यह आने वाली विपत्ति कुछ दिनों के लिये टल सकती है। और उसी वीच में कुछ उपाय भी किया जा सकता है जिससे भविष्य का भय जाता रहे।

पुत्र की युक्ति पूर्ण वातें सुन धृतराष्ट्र कुछ देर सोचने के पश्चात् वोले—दुर्योधन! निर्दोष पाण्डवों पर अत्याचार करते मुझे भय मालूम होता है। उनके पिता पाण्डु (हमारे भाई) वड़े धर्मात्मा थे। उन्होंने हमारे साथ कभी दुर्व्यवहार नहीं किया। उनकी आत्मा हमसे भिन्न नहीं थी। वह

मुझे सब से बढ़कर मानते थे। उनके पुत्र युधिष्ठिर भी उन्हीं के समान सर्व गुण सम्पन्न हैं। न्यायतः युधिष्ठिर ही राज्य के अधिकारी हैं। हम उन्हें किस प्रकार हटावें? यदि हम बल पूर्वक उन्हें राज्यसे पृथक करनेका यत्न करेंगे तो तत्काल क्रांतियाँ उठ खड़ी होंगी और देखते ही देखते यह विशाल कुरुराज छिन्न-भिन्न हो जायगा।

पिता की बातें सुन दुर्योधन ने कहा—हे तात! आप अक्षरशः सत्य कहते हैं। मै आपके अमूल्य वचनों का मूल्य समझता हूँ। तथापि आप केवल पाण्डवों के भेजने का प्रबन्ध कर दीजिये—प्रजाओं को तो अपने आधीन करने का भार मैं अपने ऊपर लेता हूँ।

पिता जी! पाण्डवों के न रहने पर आदर-सम्मान तथा द्रव्य-प्रदान से मैं पुरजनों को वशीभूत कर लूँगा। मंत्रीगण अपने पक्ष में ही हैं, फिर राज्य पर अधिकार कर लेना बायें हाथ का खेल है। राज्य की बागडोर हाथ में आ जाने पर अर्थात् लोकमत को अपने पक्ष में कर लेने पर हम पुनः पाण्डवों को बुला लेंगे। आप इस समय किसी प्रकार उन्हें वारणावत् भेज दीजिये।

पुत्र दुर्योधन की कूटनीति पूर्ण बातों को सुन महाराज धृतराष्ट्र ने कहा—पुत्र! मैंने तुम्हारे न कहने पर भी इस बात को कई बार सोचा है परन्तु यह भी महा अन्याय और पाप है। हम इसे कैसे कर सकते हैं? क्या ऐसे समय में भीष्म, द्रोण, कृप, विदुर आदि सज्जन पाण्डवों का बाहर जाना की

सम्मति देंगे ? कदापि नहीं। हम उन गुरुजनों की आज्ञा के विरुद्ध पाण्डवों को राजधानी से कैसे हटा सकते हैं ? तुम्हीं कहो—

पिता को इस प्रकार कहते सुन दुर्योधन ने कहा—तात ! भीष्म जी तो उभय पक्ष को समान मानते हैं। वीर अश्वत्थामा हमारे पक्ष में ही हैं, इससे महात्मा द्रोण और कृपाचार्य्य को विवश होकर हमारे पक्ष में होना पड़ेगा। बचे एक विदुर। वह भी हमारे अन्न-जल से पल रहे हैं। हाँ, हमने गुप्तचरों से सुना है कि महात्मा विदुर पाण्डवों के सहायक हैं, परन्तु अकेले रहकर क्या कर सकते हैं ? अतः आप भय और शोक को तिलाञ्जलि दे अति शीघ्र इसका उपाय करें। तात ! मैं रात-दिन इसी शोकाग्नि में जला करता हूँ। मेरी सम्मति मान कर मुझे शोकाग्नि द्वारा जलने से बचाइये। विलम्ब न कीजिये।

प्रिय पाठकों ! महा अनर्थ हुआ। महाराज धृतराष्ट्र दुर्वृत्त दुर्योधन के वाग्‌जाल में फँस गये। उन्होंने देखते ही देखते प्राणप्रिय भाई पाण्डु की सेवाओं को भुला निर्दोष पाण्डवों की मोह ममता को त्याग दिया।

महाबली धर्मात्मा धृतराष्ट्र ऊँच-नीच विचार त्याग कर दुर्मति दुर्योधन के कार्य्यों का समर्थन करने लगे। निःसन्देह उनकी बुद्धि मारी गई। उनके हृदय परिवर्तन से ही कौरवों के नाश का बीज अंकुरित हुआ।
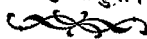
धृतराष्ट्र-पुत्रों का षडयंत्र।

——*—*——

निःसन्देह उत्थान और पतन से ग्रसित माया-मय नश्वर संसार परिवर्तन शील है। काल के प्रबल थपेड़े ने पवित्र कुरुवंश में विद्वेष की अग्नि भड़का दी, देखते ही देखते कुरु-कुल के संहार की योजनायें तैयार होने लगीं। दुर्वृत्त दुर्योधन की दुराशायें आगे चलकर पाण्डवों के लिये हानि-कारक नहीं हुई बल्कि उनसे स्वयं उसी नीचाशय का नाश हो गया।

पाठकों! संघ से ही शक्ति की उत्पत्ति होती है। प्रेम से ही भिन्नता मिटती है तथा सरलता सहृदयता और एकता से ही मलीनता जाती है महर्षियों का कथन अक्षरशः सत्य है—जहाँ सुमति है वहीं सुख और सम्पत्ति का निवास है तथा इससे विपरीत जहाँ कुमति है निश्चय ही वहाँ विप-त्तियों का पहाड़ है।

पवित्र कुरुवंश में कुमति उत्पन्न हो गई; दुर्योधन पाँडवों के नाश में लग गया। पिता को वाग-जाल में फंसा कर तथा नीचाशय मंत्रियों और लोभी सेनापतियों को खिला—पिला कर अपने पक्ष में करने लगा। साथ ही वन्दीजन, भाँट और अपने गुप्त-चरों के द्वारा राज-दर्बार में वारणावत् नगर की अनुपम सुन्दरता की प्रशंसा इस अभिप्राय से कराने लगा कि जिसे सुन कर लोग आकर्षित हों।

दुर्योधन के गुप्तचरों और वन्दीजनों ने वारणावत् के

सुन्दरता की खूब प्रशंसा की। साथ ही उसका नीचाशय मंत्री पुरोचन भी बोल उठा—ठीक है, वारणावत् बड़ा रमणीक नगर है, वह प्रसिद्ध नगर साक्षात शंकर जी का निवास स्थान है। आज कल वहाँ बड़ी भीड़-भाड़ है।

पुरोचन के मुख से वारणावत् की प्रशंसा सुन धर्मपरायण पाण्डवों का मन आकर्षित हो गया, वे उसे देखने की इच्छा प्रकट करने लगे। इस प्रकार पाण्डु-पुत्रों को उत्सुक देख धृतराष्ट्र ने भी जाने का अनुरोध करते हुये कहा—

पुत्र! सभी लोग वारणावत् को बड़ी प्रशंसा करते हैं, यदि तुम लोगों की इच्छा हो तो कुछ दिन वहीं जाकर सुख पूर्वक निवास करो। धृतराष्ट्र के मुख से ऐसी बातें सुन, धर्मात्मा युधिष्ठिर समझ गये कि अवश्य कुछ न कुछ भेद है, परन्तु इस षडयंत्र से बचने का कोई मार्ग न देख वारणा-वत् जाने के लिये तैयार हो गये। पापात्मा दुर्योधन घोर पाप करने के लिये प्रस्तुत था। इस प्रकार अनायास महात्मा पाण्डवों को वारणावत् के लिये तैयार देख उस के हर्षका ठिकाना नहीं रहा। वह अत्यन्त प्रसन्न होता हुआ पुरोचन को बुला कर बोला—

हे मंत्री-प्रवर! यह धन—धान्य पूर्ण विशाल कुरु—राज्य केवल हमारा नहीं तुम्हारा भी है। इस की जिस प्रकार रक्षा हो, सहस्र प्रयत्न द्वारा करो। तुम्हारे अतिरिक्त और कोई भी नहीं दिखाता जिससे हम अपने मन की बात कह सकें। तुम पर ही मेरा सबसे अधिक विश्वास है। सुनो—

पाण्डव लोग महादेव के उत्सव में वारणावत् जाकर कुछ दिन रहेंगे। आज ही एक शीघ्रगामी रथसे वहाँ पहुँच जाओ, जिससे किसी को सन्देह न हो। हे नीति जानने वाले! वहाँ पहुँच कर लाख, सन, साल, आदि पदार्थों तथा देवदार, केनू, तेंदू, शमी आदि लकड़ियों को जो आगके स्पर्श होते ही जल उठती हैं एकत्र कराकर एक सुन्दर घर बनवाओ। पश्चात् मिट्टी में तेल, लाख, लोबान, राल, कोयले का बुरादा, मैनशिल, गंधक, हरताल आदि शीघ्र अग्नि उत्पन्न करने वाले पदार्थों को मिलाकर उन दीवारों पर पलस्तर (पलास्टर) करा दो। इसके बाद ठौर-ठौर पर बारूद आदि अग्नि भड़काने वाले पदार्थों को गुप्तरूप से रखवा देना। इस प्रकार सुन्दर लाक्षा-गृह तैयार कर पाण्डवों को आदर पूर्वक वहाँ लिवा ले जाना और किसी प्रकार रात्रि में ठहरा कर अग्नि लगाकर भस्म कर देना। परन्तु याद रहे! यह गुप्त भेद कदापि किसी पर प्रगट होने न पावे। पाण्डवों के जल जाने पर चारों ओर हल्ला कर देना कि अचानक आग लग गई और भस्म हो गये। देखो! भेद खुलने न पावे, अन्यथा यह भयंकर कलंक हमारे ही माथे मढ़ा जायगा। जाओ खूब सावधानी से काम करना।

नीच पुरोचन दुर्योधन की बातोंमें आ गया। वह तत्काल एक शीघ्रगामी रथ पर बैठकर वारणावत् पहुँचा और पाण्डवों के नाश के लिये लाक्षागृह बनवाने लगा।

लाक्षागृह से मुक्ति।

—:*:—

यथा समय शुभ मुहूर्त देख गुरुजनों एवं ब्राह्मणों को प्रणाम कर पाँचो पाण्डव माता कुन्ती के साथ वारणावत जाने के लिये प्रस्तुत हुये। इस अकास्मिक परिवर्तनने प्रजाओं के हृदयमें सन्देह उत्पन्न कर दिया। सभी लोग कौरवों के इस चाल से अत्यन्त दुःखी हो कहने लगे—देखो! महात्मा पांडु ने सबों के साथ कितना अच्छा व्यवहार किया था? परन्तु शोक! आज उनके अधिकारियों के साथ निष्ठुरता और निर्दयता का व्यवहार किया जाता है। कुछ भी हो हम लोग महात्मा युधिष्ठिर के साथ ही रहेंगे। इस प्रकार कहते हुये प्रजाओं ने दौड़कर महात्मा पाण्डवों के रथ को घेर लिया।

प्रजाओं को इस प्रकार चिन्तित और विषाद पूर्ण देख महात्मा युधिष्ठिर ने उन्हें शान्त्वना देते हुये कहा—भाइयों! महात्मा धृतराष्ट्र का आज्ञा पालन करना हमारा परम धर्म तथा श्रेष्ठ सत्कर्म है। आप लोग चिन्ता न कीजिये, प्रसन्नता पूर्वक मुझे आशीर्वाद देअपने घर लौट जाइये। आवश्यकता पड़ने पर हमारे हित-चिन्तन का यत्न कीजियेगा।

इस प्रकार हृदय की अग्नि दबाकर सभी पांडवों को आशीर्वाद दे लौट आये। सबों के चले जाने पर महात्मा विदुर ने म्लेक्ष भाषा में संकेत कर कहा—युधिष्ठिर! बुद्धि-

मनों को बलवान शत्रुओं के कपट-जाल से सदैव बचते रहना चाहिये। जिनकी पाँचो इन्द्रियाँ आधीन हैं निश्चय वे ही विजयी होंगे। इस प्रकार कहते कहते विदुर जी ने यहाँ तक कह दिया कि फूस के भीतर सुरङ्ग खोदकर रहने वालों को फूस की अग्नि नहीं जला सकती। प्यारे धर्मराज! रात्रि में विपत्ति पड़ने पर धैर्य्य से काम लेना तथा तारागों के द्वारा मार्ग का ज्ञान कर लेना चाहिये।

युधिष्ठिर बुद्धिमान थे। महात्मा विदुर की बातें सुनते ही दुर्योधन के भयानक षड़यन्त्र को समझ गये। पश्चात् विदुर भी आशीर्वाद देकर विदा हुये। विदुर के जाने पर कुन्ती ने धर्मराज से कहा—पुत्र! तुमसे विदुरजी की अज्ञात भाषा में क्या बातें हुई? युधिष्ठिर ने कौरवों के भीषण भेद का हाल कह सुनाया।

रथ आगे बढ़ा। सुन्दर वन-उपवनों को पार करते हुये आठवें दिन सभी वारणावत् पहुँचे। पांडवों के आने का समाचार सुनते ही हजारों प्रजायें अगवानी के लिये दौड़ पड़ीं। पांडवगण यथा योग्य सबों से मिलकर एक सुन्दर राजमहल में ठहरे।

पाठकों! पुरोचन वहाँ पहले से ही आ डटा था। उसने पांडवों की खूब सेवा शुश्रूषा की। उसने उनके लिये पहले ही से प्रबन्ध कर रक्खा था। इस प्रकार पांडव लोग दश दिन तक उस सुन्दर भवन में बड़े आनन्द पूर्वक रहे। पुरोचनने किसी प्रकार का कष्ट होने नहीं दिया। ग्यारहवें दिन

वह बहुत आग्रह करके पांडवों को उस घर में लिवा ले गया जिसे इन सबों के नाश के लिये बनवाया था।

उस घर में जाते ही युधिष्ठिर ने भाइयों को सम्बोधन करते हुये कहा—भाइयों! देखो! मुझे इस घर में सन्देह हो रहा है। दुर्योधन कितना नीचाशय और पापी है, मुझे यहाँ चारो ओर लाख, राल, तथा मैनशिल मिली हुई चर्वी की गन्ध जान पड़ रही है, निःसन्देह उस दुरात्मा ने हमी लोगों के नाश के लिये बनवाया है। इसके उपरान्त धर्मराज ने सभी भाइयों को इसका रहस्य समझाया। जिसे सुनकर लोगों ने कहा—ऐसे भयदायक स्थान को छोड़कर चलिये उसी मकान में रहें।

भाइयों की बातें सुन युधिष्ठिर ने कहा—विपत्ति में धैर्य ही एक रक्षा का शस्त्र है। अभी चले जाने पर पुरोचन समझ जायगा कि हमारा भेद लोग जान गये, तब वह पापी हम लोगों का नाश किये बिना न रहेगा, और यदि कहीं अन्यत्र भी जाया जाय तौ भी दुष्ट दुर्योधन का भय लगा है। उसी समय महात्मा विदुर का भेजा हुआ एक दूत आया और पांडवों से बोला—महापुरुषों! मुझे आपके चाचा महात्मा विदुर ने भेजा है। कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को इस गृह में आग लगा दी जायगी, अतः आप लोग सचेत रहेंगे। मैं बेलदार हूँ, आइये! आप लोगों की रक्षा के लिये एक सुरङ्ग तैयार कर दूं। उसके उद्योग से कुछ ही दिनों में एक गुप्त लम्बी सुरङ्ग बन गई।

पाण्डव दिन भर घूमते-घामते और रात्रि में माता सहित उसी सुरंग में सो जाते थे। धीरे-धीरे एक वर्ष बीत गया। पुरोचन को पांडवों पर कुछ भी सन्देह नहीं रहा। इधर पाण्डवों ने विचारा कि अब पुरोचन की प्रतीक्षा करना व्यर्थ है। आओ! किसी दिन उसे शस्त्रागार में जहाँ वह रहता है आग लगा कर भस्म कर दें, और बाद में इस लाक्षा-गृह को भी जला कर चल चलें।

जिस दिन रात्रि में आग लगाने का निश्चय किया गया, उसी दिन माता कुन्ती ने पुरवासियों को एक बहुत बड़ा भोज दिया। सभी लोग तो चले गये परन्तु एक केवट की स्त्री अपने पाँच पुत्रों के साथ रात्रि में वहीं रह गई। इधर मध्य निशा आते ही भीम ने शस्त्रागार में आग लगा दी। पापात्मा पुरोचन जल मरा। पश्चात् लाक्षागृह को फूँक चारों भाइयों और माता कुन्ती के साथ उसी सुरंग के मार्ग से निकल पड़े।

विशाल लाक्षागृह धाँय-धाँय करते हुये जल उठा। उसकी ऊँची अट्टालिकायों से बड़े-बड़े अग्नि स्फुलिङ्ग निर्गत होने लगे। हरताल-मैनशिल की विषैली गंध चारो ओर फैल गई, सभी पुरवासी हाहाकार कर दौड़ पड़े, लोग कौरवों को दुर्वचन कह कर गालियाँ देने लगे। इस प्रकार रोते-पीटते हुये सभी रातभर उस जलते हुये लाक्षागृह की परिक्रमा करते रहे।

इधर पांडव लोग सुरङ्ग से बाहर हो एक भयानक बन में

पहुँचे, उसी समय महात्मा विदुर का भेजा हुआ एक आदमी मिला। वह हाथ जोड़कर बोला—महाशयों! मैं महात्मा विदुर का भेजा हुआ एक मल्लाह हूँ। आइये! आप लोगों को स्वरक्षित स्थान में पहुँचा दूँ।

इस प्रकार बातें करते सभी गङ्गा के किनारे पहुँचे। मल्लाह ने पहले से ही नाव का प्रबन्ध कर रक्खा था। वह उन्हें कुशल पूर्वक उस पार पहुँचा कर लौट आया।

उधर सवेरा होते ही वारणावत् में हाहाकार मच गया। सभी भीष्म, धृतराष्ट्र और विदुर को गालियाँ देने लगे। सबों ने देखा कि—पुरोचन शस्त्रागार में जला पड़ा है और लाक्षागृह के आँगन में पुत्रों सहित कुन्ती देवी भस्म हुई हैं। पाठकों! यह वही केवट की स्त्री थी जो अपने पाँच पुत्रों के साथ भोज में आई थी रात्रि हो जाने के कारण नहीं जा सकी थी।

बात की बात में यह बात विजली के समान फैल गई। यथा समय हस्तिनानगरी में भी यह शोक समाचार जा पहुँचा।

नगर-निवासियों में कुहराम मच गया, सभी दहाड़े मार मार कर रोने लगे। कौरवों को गालियाँ दे-देकर शाप देने लगे। सारी नगरी दुःख और शोक में डूब गई। इस समय कौरव भी बनावटी शोक और दुःख दिखाने लगे। परन्तु प्रजाओं ने उनके आडम्बर को समझ लिया। उन लोगों ने जान लिया कि ये सभी कौरव प्रत्यक्ष कालनेमी हैं।

इनका रूप तो हंसों सा परन्तु काम बगुलों का सा है। ये वास्तव में नीच पापी और निर्दय हैं। परन्तु लोग दुष्ट दुर्योधन का अनिष्ट नहीं कर सके क्योंकि इसी थोड़े समय में उसने राज्य पर अधिकार कर लिया था।

इसके अनन्तर धृतराष्ट्र ने ज्ञाति-बान्धवों, मंत्रियों और ऋत्विज ब्राह्मणों को वारणावत् भेज यथा समय पाण्डवों के क्रिया-कर्म करने का आदेश दिया। सभी ज्ञाति-बांधव हाहाकार करते वारणावत् पहुँचे। इस प्रकार रोते-रोते सबों ने जलाञ्जलि दी।

दुर्योधन मन ही मन प्रसन्न हो रहा था। उसने अपने को धन्य समझा। पुरोचन की मृत्यु ने उसे और हर्षित कर दिया। उसने सोचा कि अब तो हमारे इस भेद को जानने वाला भी कोई न रहा।

पाठकों! दुर्योधन की मनोवृत्ति से आप लोग उसके हृदय को समझ लें, वह कितना नीच और स्वार्थी था।

सभी तिलांजलि देकर तथा आवश्यक कर्म से निवृत्त होकर हस्तिनानगरी आये। विषाद और शोक उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। दुर्योधन ने पशु-बल से प्रजाओं पर अधिकार तो जमा लिया था परन्तु प्रजाओंके पवित्र हृदय पर अधिकार नहीं जमा सका था। अब भी हस्तिनानगरी की आत्मायें पांडवों के लिये व्यग्र हो रही थीं।

हिडिम्ब बध ।

—*-*—

उधर महात्मा पाण्डव माता के साथ गङ्गा पार हो आगे बढ़े । अत्यन्त अन्धकार के कारण कुछ ही दूर जाने पर भयङ्कर वन में मार्ग भूल गये । युधिष्ठिर तत्काल महात्मा विदुर के उपदेश के अनुसार नक्षत्रों के द्वारा दिशाओं का ज्ञान प्राप्त कर दक्षिण की ओर चले ।

मार्ग बड़ा विकट था, भीमसेन सबों को सहारा देते हुये तेजी के बढ़ रहे थे । कभी-कभी ऊँची-नीची जगहों में भाइयों और माता को कन्धों पर चढ़ा लेते थे । इस प्रकार चलते ही चलते उन लोगों ने रात्रि बिता दी । सवेरा होते ही सबों ने वेष बदल डाला जिससे कोई पहचान न सके ।

इसी तरह वे बराबर चलते रहे । सांयकाल में एक भयङ्कर गहन वन में पहुँचे । अन्धकार इतना बढ़ गया कि हाथों हाथ नहीं सूझने लगा । चारो ओर हिंसक जानवरों का डरावना शब्द सुनाई पड़ रहा था । बिचारे पाण्डव भूख और प्यास के मारे घबड़ा रहे थे, किसी में चलने की शक्ति शेष नहीं रह गई थी । माता कुन्ती मारे प्यास के अधीर हो उठी । इस प्रकार भाइयों और माता को व्यग्र देख भीमसेन ने उन्हें एक रमणीक वृक्ष के नीचे ठहरा कर युधिष्ठिर से कहा—आर्य ! आपलोग विश्राम कीजिये हम जल की खोज में जाते हैं । सामने सारसों का शब्द सुनाई पड़ रहा है । वहाँ जाने से पानी जरुर मिलेगा ।

भीमसेन जलचर पक्षियों का शब्द सुनते हुये कुछ ही देर में एक बड़े सरोवर के किनारे आ पहुँचे। उन्होंने प्रसन्नता पूर्वक स्नान किया और भर पेट जल पिया। पश्चात् माता और भाइयों के लिये बहुत सा जल ले वट-वृक्ष के निकट आये। यहाँ आते ही उन्होंने देखा कि मारे थकावट के माता और चारो भाई बेसुध पड़े हैं। अपनी प्यारी माता और धर्मात्मा चारों भाइयों को इस प्रकार अनाथों के समान पृथ्वी पर धूल-धूसरित पड़े देख महाबली भीमसेन को अपार दुःख हुये। वे अनन्त शोक-सागर में डूबते हुये विचारने लगे।

हाय! हम लोग बड़े भाग्यहीन हैं। क्या इससे भी बढ़कर और हमारे लिये दूसरा दुःख होगा? ओह! शोक! दुःख! महादुःख! कहते हुये भीम विलाप करने लगे। कुछ ही क्षण पश्चात् वे बोल उठे—दुष्ट दुर्योधन! अभी दैव तुम्हारा सहायक है। अपने मन की करले। किन्तु कुलांगार! नीच! कुछ ही दिनों में तुम्हें इन दुष्कर्मों का दण्ड भोगना पड़ेगा। जिस दिन महात्मा धर्मराज की आज्ञा पाऊंगा उसी दिन तुझे भाइयों तथा मन्त्रियों के सहित यम-राज के घर भेजे बिना न छोड़ूँगा। मैं निश्चय ही तेरे दुर्दण्ड दर्प को बात की बात में चर्ण-विचर्ण कर दूँगा। इस प्रकार क्रोध करते हुये वे उष्णनिःश्वास फेकने लगे।

पश्चात् उन्होंने दीनावस्था में पृथ्वी पर सोते हुये माता और भाइयों को देखा—सहसा भीमका क्रुद्ध हृदय करुणा और दीनता से ओत प्रोत हो उठा। उनके मुख पर वीरता के

चिन्ह दिखाई पड़ने लगे। वे जल को एक ओर रख सोये हुये भाइयों की रेख-देख में लग गये।

जङ्गल बड़ा भयानक था। पास ही एक शाल के वृक्ष में हिडिम्ब नाम का महावली डरावना राक्षस रहता था। उसने मनुष्य की गन्ध पा अपनी वीर बहन हिडिम्बा को वुलाकर कहा—

वहन! इस वन में आज मुझे मनुष्य की गन्ध जान पड़ रही। जाओ! जाओ! उसे शीघ्र पकड़ कर मेरे पास ले आओ। फिर दोनों मिलकर गर्म-गर्म रक्त पीयेंगे और कोमल-कोमल माँस खायेंगे।

हिडिम्वा वड़ी मायाविनी राक्षसी थी, उसके पास वल भी किसी राक्षस से कम न था, वह मनुष्यों की गंध पाती हुई वटवृक्ष के पास पहुँची। उस मायाविनी ने वहाँ आकर देखा कि देवताओं के समान तेजस्वी चार सुन्दर पुरुष सो रहे हैं तथा उनके निकट ही एक महासुन्दरी स्त्री पड़ी है और एक रूपवान महा तेजस्वी वलवान योद्ध जागते हुये पहरा दे रहा है। महावली भीमसेन के सुन्दर रूप को देख वह आसक्त हो गई। तत्काल ही अपना राक्षसी वेश वदल कर वह महा सुन्दरी तरुणी वन गई और भीमसेन के पास आ लज्जा पूर्वक सिर झुका कर मीठे वचनों में वोलीः—

हे पुरुषोत्तम! आप कौन हैं? इन सोये हुये मनुष्यों से आपका क्या सम्वन्ध है? आप लोग वड़े निर्भीक जान

पड़ते हैं। क्या आप नहीं जानते कि यह भयानक वन मेरे भाई बलवान हिडिम्ब के कधिकार में है? वह अपने आहार के हेतु आप को पकड़ लाने के लिये मुझे भेजा है। परन्तु हे सुन्दर युवा! मैं आप के रूप पर मोहित होकर आपको पति बनाना चाहती हूँ। आप मेरी मनोकामना पूर्ण करें। मैं आप सबों को अपने भाई के भयंकर क्रोध से बचा लूँगी। मैं अपनी शक्ति से जल, थल और आकाश में सर्वत्र जा सकती हूँ।

भीमसेन ने कहा—हे राक्षसी! मैं ऐसा नहीं कर सकता, माता और भाइयों को छोड़ कर कैसे जा सकता हूँ? मैं तुम्हारे भाई से नहीं डरता। बहन को लौटने में देर देख हिडिम्ब स्वयं चल पड़ा। उसे सन्मुख आते देख हिडिम्बा अत्यन्त डरते हुये भीम से बोली—हे महापुरुष! देखिये। वह मेरा भाई चला आरहा है, कहिये। मैं अभी आप लगों को आकाश में ले चलूँ जिससे राक्षस का भय न रहे।

हिडिम्बा को इस प्रकार भयभीत देख कहा—डरो मत! मैं अभी तुम्हारे भाई को मार गिराता हूँ, हिडिम्ब ने भीमसेन की बात सुनली और साथ ही हिडिम्बा को मनुष्य रूप में देख उसके क्रोध का ठिकाना न रहा। वह गर्जता हुआ पहले अपनी बहन को ही मारने के लिये दौड़ा—यह देख भीमसेन ने डपट कर कहा-पापी! व्यर्थ गर्जना कर हमारे भाइयों की नींद में क्यों विघ्न डालता है? साथ ही अपनी निरपराध-

बहन को मारने का क्यों पाप सिर पर चढ़ाता है? यदि लड़ना है तो आ! हमसे युद्ध कर।

भीम की बातोंने अग्निमें घृत की आहुति का काम दिया। राक्षस उबल पड़ा और भीम से भिड़ गया। देखते ही देखते दोनों के संघर्ष से बनस्थली गूंज उठी। राक्षस की भयंकर गर्जना सुनकर माता सहित पाण्डव जाग पड़े। सुन्दरी हिडिम्बा को सामने देख कुन्ती ने आश्चर्य से पूछा—हे सुन्दरी! तुम कौन हो? और इस निर्जन वन में क्यों आई हो?

हिडिम्बा ने अपना परिचय देते हुये कहा—देवी! मेरे भाई ने आप लोगों को मारने के लिये भेजा था। परन्तु मैं आपके सुन्दर पुत्र पर मुग्ध हो गई और उनसे प्रार्थना की कि यदि आज्ञा दें तो मैं सबको आकाश में उड़ा ले चलूँ। वहाँ किसी का भय न रहेगा। हे माता! उन्होंने मेरी बात नहीं मानी। इस समय उनका हमारे भाई के साथ युद्ध हो रहा है।

युद्ध की बात सुनते ही चारो पाण्डव दौड़ पड़े। भाइयो को देख भीम का क्रोध दूना हो गया उन्होंने तुरन्त ही महा-बली राक्षस को उठा लिया और आकाश में घुमाकर पृथ्वी पर दे पटका। इस प्रकार उस महाबली हिडम्ब का अन्त हो गया।

सवेरा होते ही सभी प्रसन्नता पूर्वक आगे बढ़े। माता कुन्ती और भाई धर्मराज की आज्ञा से भीमसेन ने हिडिम्बा

के साथ विवाह कर लिया। कुछ दिनों के बाद उसके गर्भ से एक भयानक शरीर वाला घटोत्कच नाम का बालक उत्पन्न हुआ। जिसने आगे चल कर महाभारत के संग्राम में अपनी अपूर्व वीरता दिखलाई। हिडिम्बा पुत्र के साथ एक सुन्दर वन में रह गई। पाँचो पाण्डव माता कुन्ती के साथ आगे बढ़े।

घटोत्कच बड़ा वीर हुआ। इसने आगे चलकर पांडवों की बड़ी भलाई की। महाभारत के संग्राम में जिस दिन पांडवों के लिये भयङ्कर समय था, पद-पद में उनके नाश की रेखायें दिखाई पड़ती थीं, यही महावीर पांडव सेना का सेनापति बनाकर समर-भूमि में महाबली कर्ण के सामने भेजा गया था।

घटोत्कच ने प्रलय मचा दिया, महाबली हनुमान के समान ही उसने अपना रण-कौशल दिखलाया था। इसकी वीरता देख बड़े-बड़े महारथियों के दाँत खट्टे होगये। इसकी मार से दुर्योधनादि कौरव भाग खड़े हुये। एक प्रहार में ही इस महावीर ने कुरुदल में हाहाकार मचा दिया था।

अपनी सेना में इस प्रकार प्रलय मचाते देख कर्ण को बड़ी चिन्ता हुई, उसने अन्त में विवश हो उस संघातिनी शक्ति को चला दिया। जिसे अर्जुन के लिये रक्खा था। धन्य! घटोत्कच ने प्राण देकर पांडवों की रक्षा की।

एकचक्रा नगरी में—

और

बकासुर संहार।

विश्व मंच पर अठखेलियाँ करने वाली भावी-विपत्तियाँ किसी को नहीं छोड़तीं। बड़े-बड़े दुर्दर्पों के दर्प की सुदृढ़ दीवारों को चूर-चूर कर देती हैं, महा अभिमानियों के गर्व-घटों को क्षणमात्र में फोड़ देती हैं तथा दिग्पतियों के समान अचल धक्कारों को देखते ही देखते न मालूम किस अज्ञात गह्वर में जा डालती है जहाँ उनका नाम तक शेष नहीं रह जाता। निःसन्देह विपत्तियाँ बड़ी बलवान हैं।

महात्मा पाण्डव विपत्तियों के आखेट हो रहे हैं। माता कुन्ती सहित वृक्षों की छाल तथा मृगचर्म पहने हुये भिखारियों के समान वनों में घूम रहे हैं। धीरे-धीरे मत्स्य, त्रिगर्त पांचाल आदि देशों के भयानक वनों और पर्वतों को पार करते हुये आगे बढ़े। मार्ग में चलते हुये अचानक एक दिन महर्षि बादरायण से भेंट हो गई। धर्मात्मा पाण्डवों की दुर्दशा देख महात्मा व्यास जी को बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने धीरज देते हुये कहा—महात्माओं! चिन्ता न करो, तुम्हारे दिन शीघ्रही लौटेंगे। पश्चात् सबों को पास ही के एकचक्रा-नगरी में ले गये, और एक सत्पात्र ब्राह्मण के यहाँ

ठहरा कर बोले—राजपुत्रों! ब्राह्मण का वेष धारण कर भिक्षाटन के द्वारा निर्वाह करो। यहाँ किसी प्रकार का भय नहीं है, कुछ दिन रहो! हमारी प्रतीक्षा करना। हम फिर मिलेंगे।

व्यास जी के चले जाने पर पाण्डव माता कुन्ती के साथ रहने लगे। धीरे-धीरे अपने गुणों से सभी नगर-निवासियों के प्रिय हो गये। पाँचो भाई दिन भर भिक्षाटन करके जो कुछ पाते थे लेकर सांयकाल में घर लौटते थे, माता कुन्ती भोजन तैयार कर आधा भीमसेन को और आधा में आप सहित चारो पुत्रों को बाँट देती थी।

कुछ दिनों के पश्चात् एक दिन भीमसेन को माता कुन्ती के पास छोड़ शेष चारो भाई भिक्षाटन के लिये गये। माता और पुत्र बैठे थे कि अचानक ब्राह्मण के घर से रोने की आवाज आई। इस दुःख भरी आवाज को सुन कुन्ती को बड़ी दया लगी। उन्होंने भीम से कहा—पुत्र! आज हम लोगों के आश्रम दाता ब्राह्मण के यहाँ से यह रोने की कैसी आवाज आ रही है? दयालु भीमसेन ने दुःख का कारण जानने के लिये माता को भेजा।

भीमसेन की अनुमति से माता कुन्ती ब्राह्मण के यहाँ गई, भीतर जाकर देखा कि ब्राह्मण, उसकी ब्राह्मणी, पुत्र तथा पुत्री विलाप कर रही हैं। उनके इस दुःख को देख कुन्ती अमृत समान मधुर वचनों से इस अकास्मिक दुःख का कारण पूछने लगी। उन्होंने कहा—हे ब्राह्मण! मुझ से

सभी बातें साफ-साफ कहो। हम यथाशक्ति तुम्हारे दुःख को दूर करने की चेष्टा करूँगी।

कुन्ती के इस प्रकार पूछने पर ब्राह्मण ने रोते हुये कहा—देवी! हमारे दुःख का हाल न पूछो, विना देवताओं की सहायता से हमारा यह अपार दुःख दूर नहीं हो सकता। इस पास के भयानक वन में 'वक' नाम का एक वली राक्षस रहता है। वह नित्य मनुष्य का ही मांस खाता है। मेरे नगर का वही अधिकारी है। वह जङ्गली जन्तुओं तथा आक्रमणकारी शत्रुओं से हम लोगों को रक्षा करता है इसके बदले में नित्य एक घर से एक आदमी और भर पेट अन्न खाने को लेता है। हे देवी! आज हमारे घर की पारी है। हम क्या करें? हमें कोई उपाय नहीं सूझता। हमनें यही सोचा है कि सभी उसके पास चले जायँ।

कुन्ती ने कहा—हे ब्राह्मण! ऐसा न करो, तुम्हारा पुत्र अभी बालक है। मेरे पाँच पुत्र हैं, आज हमारा एक पुत्र अन्न लेकर राक्षस के पास जायगा। कुन्ती देवी की बातें सुन ब्राह्मण बोला—हे देवी! आप हमारे अतिथि हैं, मुझे तुम्हारी पूजा करनी चाहिये। हम अपनी रक्षा के लिये अतिथि को संकटमें डालना नहीं चाहते। ब्राह्मण की बातें सुन कुन्ती ने कहा—हे विप्र! तुम भय न करो मेरा पुत्र बड़ा बलवान है, वह एक राक्षस को मार चुका है। मैं उसके बल को जानती हूँ। परन्तु तुम यह भेद किसी से न कहना—

ब्राह्मण के दुःख को दूर करने के लिये कुन्ती देवी ने अपने पुत्र को राक्षस के पास भेज दिया। पाठको! कितना बड़ा स्वार्थ त्याग है, कितनी बड़ी उदारता है, ओह! कितना बड़ा उपकार है!

भिक्षा माँग कर लौटने पर चारो भाइयों ने भीम का समाचार सुन बहुत दुःख प्रकट किया। कुन्ती ने मीठे वचनों में शान्त्वना देते हुये कहा—वीर पुत्रो! भीम के लिये सोच न करो।

उधर भीम राह में उठते-बैठते आराम करते बहुत देर में पहुँचे। अधिक समय हो जाने के कारण वह मारे क्रोध के पागल हो उठा था। भीम वहाँ पहुँचते ही उसका भोजन दनादन उड़ाने लगे। अब क्या था? वह और आग बबूला हो उठा और दांत पीसता हुआ भीम की ओर चला। भीम भी उठ खड़े हुये और महाबली राक्षस से जा भिड़े। बड़ी लड़ाई हुई। दोनों के गर्जनासे विपिन-स्थली काँप उठी। एक दूसरे के प्रहार से सहस्रो वृक्ष टूट गये तथा बड़े-बड़े पाषण खण्ड चूर-चूर हो गये। अन्त में महाबली भीम ने उसे इतने जोर से दे मारा कि वह मर ही गया। इस प्रकार उस महाबली असुर का अन्त कर भीम सकुशल घर लौट आये। भीम के मुँह से बकासुर संहार की कथा सुन माता कुन्ती और चारो भाई अत्यन्त प्रसन्न हुये। ब्राह्मण के प्रसन्नता की सीमा नहीं रही। उसने सबों को यशस्वी होने का आशीर्वाद दिया।

प्रातःकाल होते ही बक की मृत्यु का समाचार सर्वत्र फैल गया, लोग बड़े आश्चर्य चकित हो मारने वाले का अनुसन्धान करते हुये ब्राह्मण के पास आये। परन्तु उन्होंने पाण्डवों का भेद नहीं खोला। बक के मरते ही उसके सगे सम्बन्धी सभी भाग गये। एक चक्रा-नगरी सुख शांति से पूर्ण हो गई।

पांडवों को अधिक दिन रहते देख इनके वेष-भूषा पर लोगों को सन्देह होने लगा। परन्तु ब्राह्मण परिवार की प्रीति बढ़ गई। वे लोग इन्हें प्राण से बढ़कर मानने लगे। ब्राह्मण ने समझ लिया कि ये लोग देव कुमार हैं। बिना देवताओं के कोई महाबली राक्षस का बध नहीं कर सकता। यदि ये देवता नहीं हैं तो कोई न कोई देवता इनके आधीन अवश्य है ब्राह्मण कुमार ने देवताओं के बल से ही महाबली राक्षस को मारा है।

पांडव भिक्षा के आश्रय ही रहते थे। इधर अब उन्हें भिक्षा भी कम मिलने लगी। दिन भर माँगने पर भी भीम की तृप्ति नहीं होती थी। परन्तु ये लोग कहीं जा भी नहीं सकते थे, क्योंकि चलते समय महर्षि व्यास ने कहा था कि हमारी प्रतीक्षा करना।

चित्ररथ की मैत्री।

पाँचो पाण्डव ब्राह्मण के यहाँ सुख-पूर्वक रहने लगे। कुछ दिनों के उपरान्त एक वेदज्ञ ब्राह्मण अनेक देशों से घूमता हुआ एकचक्रा-नगरी में आ ब्राह्मण के यहाँ ठहरा। पाण्डवों ने बड़े आदर-पूर्वक उसकी सेवा की। वह अत्यन्त सन्तुष्ट हो सबों को अपनी यात्रा का वृत्तान्त सुनाने लगा। उसने एक नहीं, नाना प्रकार की आश्चर्य भरी कथायें सुनाईं। प्रसङ्गवश उसने द्रोण के मारने के लिये द्रुपद द्वारा किये हुये पुत्रेष्टि यज्ञ का समाचार भी कह सुनाया। यज्ञ से धृष्टद्युम्न, शिखण्डिनी और त्रैलोक्य सुन्दरी कृष्णा की उत्पत्ति का हाल भी बताया। पश्चात् भुवन-मोहिनी अनिन्द्य सुन्दरी कृष्णा के स्वयम्बर का हाल भी कहा।

वेदज्ञ ब्राह्मण के मुँह से कृष्णा के स्वयम्वर की बात सुन पांडवों का चित्त चलाय-मान हो गया। कुन्ती बड़ी बुद्धिमनी थी, पुत्रों के हृदय के भाव को समझ तत्काल बोल उठी—

पुत्रों! यहाँ रहते अधिक दिन बीत गये। क्यों नहीं पाञ्चाल राज्य की ओर ही बढ़ते हो? अब भिक्षा भी कम मिलने लगी है। जो कुछ यहाँ देखते हो हम लोग देख चुके हैं। चलो! पाञ्चाल नगर चल कर सभी घटनायें आँखों से देखें।

कुन्ती ने यद्यपि चलने के लिये कहा—परन्तु कैसे जा सकते थे? चलते समय व्यास जी ने कहा था कि जब तक मैं लौट कर नहीं आऊँ, तब तक यहीं रहना।

सहसा व्यास जी भी आ गये। उन्होंने भी इसे प्रस्ताव का समर्थन करते हुये कहा—ठीक है, तुम लोग पांचाल देश जाओ। व्यास जी की सम्मति के अनुसार पाँचो पाण्डव शीघ्र तैयार हो गये और माता को लेकर द्रुपदराज्य की ओर बढ़े। व्यास जी भी अपने तपोवन में लौट गये।

इस प्रकार चलते-चलते एक दिन पाँचो पांडव माता के साथ सन्ध्याकाल में जब अन्धकार का साम्राज्य बढ़ रहा था गङ्गा के किनारे सामान्द्र तीर्थ पर पहुँचे। अन्धकार की अधिकता होने के कारण अर्जुन ने एक मशाल जला कर हाथ में ले लिया। सभी लोग उसके प्रकाश से सुगमता पूर्वक आगे बढ़ने लगे।

इसी समय गन्धर्वाधिपति महाबली चित्ररथ अपनी स्त्रियों के साथ भागीरथी के पवित्र निर्मल जल में क्रीड़ा कर रहे थे। भागीरथी के किनारे पांडवों को चलते देख उन्हें बहुत बुरा लगा। वे अत्यन्त क्रोध पूर्वक धनुष का टङ्कार करते अर्जुन से बोले—

कौन? शीघ्र हमारे सामने आकर यहाँ आने का कारण बतलाओ। तुम नहीं जानते कि रात्रि यक्ष गन्धर्व और राक्षसों के लिये है? मनुष्यों के काम के लिये दिन

बनाया गया है। तुम लोगों ने हमारी जल-क्रीड़ा में क्यों विघ्न डाला।

गंधर्वराज के कठोर वचनों को सुनकर अर्जुन ने क्रोध पूर्व कहा—हे अभिमानी! क्या पवित्रधाम, भागीरथी, रत्नेश और पर्वतों पर किसी का अधिकार है। क्या मनुष्यों को निर्बल जानकर अपने मन का नियम चलाना चाहते हो? यहाँ तुम्हारी चाल नहीं चल सकती। हमलोग भागीरथी के पवित्र तटको नहीं छोड़ सकते।

अर्जुनका उत्तर सुनचित्ररथ का क्रोध दूना होगया। उन्हों ने धनुष को उठा लिया और वाण चलना आरम्भ कर दिया। अर्जुन ने भी ढाल को सामने किया और उनके सभी वाणों को वात की वात में व्यर्थ कर दिया। इसके पश्चात् अत्यन्त तेजोपूर्ण उस अमोघ दिव्य अस्त्र को निकाल लिया जो महर्षि द्रोण से प्राप्त हुई थी और तत्काल ही गन्धर्व राजपर चला दिया। ओह! उस दिव्यास्त्र ने प्रलय कर दिया। क्षण-मात्र में ही गन्धर्व राजका रथ भस्म हो गया तथा वह मुँह के वल पृथ्वी पर आ गिरे और लोटने लगे।

पति को धराशायी देख गन्धर्व राज की स्त्री युधिष्ठिर के शरण में पहुँची, और स्वामी की रक्षा के लिये प्रार्थना करने लगी। युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा—हे महावीर! गन्धर्व राज को छोड़ दो।

बडे भाई के कहने पर अर्जुन बोले—हे गन्धर्व! आओ!

देखो ! कुरुराज महाराज युधिष्ठिर तुम्हें अभयदान दे रहे हैं। क्षमा कर रहे हैं।

चित्ररथ अत्यन्त प्रसन्न हो बोला—हे महावीर ! मैं आपसे मित्रता स्थापन करना चाहता हूँ। मैं अपने अत्यन्त वेग वाले घोड़ों को देता हूँ आप उसके बदले में मुझे यह श्रेष्ठ आग्नेय अस्त्र दीजिये। महावीर अर्जुन ने कहा—घोड़ों को आप अभी अपने ही पास रखिये। आवश्यकता पड़ने पर मैं आप से माँग लूँगा। अर्जुन ने वह दिव्यास्त्र दे दिया। इस प्रकार गन्धर्व चित्र रथ से स्थायी मित्रता हो गई।

सहस्रों विद्युत तुल्य तेज-पूर्ण दिव्यास्त्र को पाकर गंधर्व राज अत्यन्त प्रसन्न हो बोले भाइयों ! आप लोग उत्कोच तीर्थ जाइये। वह स्थान बड़ा पवित्र है, वहाँ, बड़े-बड़े ऋषि, मुनि और योगियों के दर्शन मिलेंगे।

पाँचों पाण्डव गंधर्वराज की सम्मति के अनुसार उत्कोच गये। वहाँ धौम्य नामक एक तपस्वी ब्राह्मण से भेंट हुई। पाण्डवों ने उसे अपना पुरोहित बना लिया। इस प्रकार तीर्थों, पवित्र ग्रामों तथा तपोवनों को देखते हुये सभी पांचाल नगरी की ओर बढ़े।
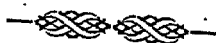
द्रौपदी का स्वयम्बर और विवाह ।

प्रिय पाठकों ! आप लोग भूले न होंगे—

उत्तर पांचाल पर महात्मा द्रोण का अधिकार था। उन्होंने अपने बाल सखा द्रुपद से मैत्री स्थिर रखने के लिये आधा राज्य ले लिया था। महाबली द्रुपद दक्षिण पांचाल पर शासन करते थे। पाँचो पाण्डव माता के साथ रमणीक सरोवरों, सुन्दर सिद्ध पीठों तथा मनोहर बनों को पार करते हुये दक्षिण पांचाल की तरफ चलने लगे। इस प्रकार गहन-वनों, ऊँचे पर्वतों तथा अनेक नद—नदियों को पार करते हुये दक्षिण पांचाल की सीमा पर पहुँच गये।

एक दिन मार्ग में पांचाल की ओर जाते हुये बहुत से ब्राह्मण मिले। उन लोगों ने पाण्डवों को ब्राह्मण समझ कर कहा—तुम लोग कहाँ जाते हो ? हमारे साथ पांचाल देश चलो। वहाँ राजा द्रुपद की कन्या भुवन मोहिनी कृष्णा का स्वयंवर होने वाला है, बड़े-बड़े योद्धा और एक से एक शस्त्रास्त्र विशारद राजपुत्र आवेगें तथा अद्भुत उत्सव होगा।

ब्राह्मणों की बातें सुन पाण्डव लोग उनके साथ हो लिये और शीघ्रही द्रुपद की राजधानी में जा पहुँचे। एक बार चारो ओर स्वयंबर का साज—बाज तथा नगर को भली

भाँति देख ब्राह्मणों के समान एक कुम्हार के घर जा ठहरे।

महाबली द्रुपद की प्रतिज्ञा बड़ी भयंकर थी। उन्होंने मन में ठान ली थी कि मैं कन्या उसी नर श्रेष्ठ को दूँगा जो सर्व श्रेष्ठ वीर तथा विकट धनुर्धर होगा। उन्होंने इसी परीक्षा के लिये एक बड़ा भारी धनुष बनवाया था। जिसे झुकाकर प्रत्यञ्चा चढ़ाना साधारण वीरों का काम नहीं था। उन्होंने वीरता की परीक्षा के लिये आकाश में बहुत ऊँचाई पर एक मत्स्य टंगवा दिया था, उसके नीचे एक चक्र अविराम घूम रहा था, चक्र के बीच में एक छोटा सा छेद था जिसमें एक समय में एकही—बाण प्रवेश कर सकता था। नीचे एक स्वच्छ जल से भरा हुआ पात्र रक्खा था। उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि जो वीर मेरे भारी धनुष को उठा-कर जल में मत्स्य की परछाही देख! चक्र के छेद के भीतर से पाँच बाणों के द्वारा मछली को बेध-कर गिरा देगा। द्रौपदी—उसी को वरमाल्य देगी।

प्रतिज्ञा बड़ी विकट थी, फिर भी कृष्णा (द्रौपदी) की सुन्दरता को सुन कर चारो ओर के बड़े-बड़े योद्धा आ पहुँचे। कर्ण, दुर्योधनादि कुरु वीर तथा बलराम कृष्ण आदि यदुवंशी भी आये। मगध राज, शाल्व, शाल्य, वङ्गनरेश तथा विदेह राजभी इस शुभ अवसर पर आडटे। इसके अति-रिक्त बड़े-बड़े शूर वीर क्षत्रिय, सहस्रों धनुर्वेदज्ञ ब्राह्मण, ऋषि मुनि महात्मा और योगीजन भी पधारे। राजा द्रुपद ने सबों का यथोचित सत्कार किया।

धीरे-धीरे रंग भूमि सज गई। शुभ दिन आते ही स्वयं-वर का कार्य आरम्भ हुआ। शूर वीर राजाओं से सभा मण्डल परिपूर्ण होगया। देखते-ही-देखते शुभ मुहूर्त आपहुँचा। मंगल वाद्य बज उठे। महाराज द्रुपद के पुरोहित ने वेद विधि के अनुसार अग्नि प्रतिष्ठापन किया तथा सुगंधित आहुति से उसे तृप्त कर वेदज्ञ ब्राह्मणों के द्वारा स्वस्ति वाचन कराया। स्वस्तिवाचन समाप्त होते ही एकाएक बाजा बजना बंद हो गया। सर्वत्र सन्नाटा छा गया। उसी समय अपूर्व लावण्यमयी, विश्व-मोहिनी द्रौपदी हाथ में वरमाल्य लिये हुये भाई धृष्टद्युम्न के साथ स्वयंवर सभा में पधारी। धृष्टद्युम्न ने सभी राजाओं एवं योद्धाओं को सम्बोधन करते हुये मीठे वचनों में कहा—हे वीर वरों! उपस्थित नरेशों! सुनिये—जो महावीर मेरे पिता के भारी धनुष को उठा कर नियमानुसार निशाना बेध देगा उसी को हमारी बहन जयमाला पहनावेगी।

कृष्णा की अपार सुन्दरता ने सबों को मोहित कर लिया, लोग टक-टकी बाँध कर उस सुन्दरी की ओर देखने लगे। पश्चात् एक दूसर को जीतने की इच्छा से सभी उठ पड़े।

राजाओं के विकट परीक्षा का समय था, बड़े-बड़े योद्धा और महारथी बढ़े। एक-एक कर दुर्योधनादि कौरव, शाल्व, वंग-विदेह नरेश ने अपने २ बल की परीक्षा की परन्तु निशाना बेधना तो दूर रहा किसी से धनुष का प्रत्यञ्चा भी नहीं चढ़ सका, लोगों से वह भारी धनुष झुका-

तक नहीं । इस प्रकार राजाओं और भारी भटों को विमुख होते देख हाहाकार मच गया ।

राजाओं को इस प्रकार अपमान पूर्वक लौटते देख महा-बली कर्ण शीघ्र धनुष के पास जा पहुँचे और देखते ही देखते धनुष को उठा कर प्रत्यञ्चा चढ़ा दिये । वे वाणों को चढ़ा कर निशाना मारना ही चाहते थे कि द्रौपदी राजाओं के मुँह से सूत—पुत्र का नाम सुनकर वोल उठी । मैं सूत—पुत्र से कदापि विवाह न करूँगी । द्रौपदी की बात सुनते ही कर्ण ने क्षुब्ध हो धनुष वाण रख दिया और एक टक लगा सूर्य की ओर देखने लगा ।

कर्ण के इस प्रकार अपमानित होने पर अनेक राजे निशा-ना मारने के लिये उठे परन्तु सफल नहीं हो सके । इसी प्रयास में चेदिराज का घुटना टूट गया । मगधराज धनुष के धक्के से पृथ्वी पर गिरे और मद्रराज भी घुटनों के वल गिर पड़े । इस प्रकार धुरन्धर वीरों के परास्त हो जाने पर सर्वत्र सन्नाटा छा गया ।

राजाओं का भयंकर पराजय देख अर्जुन से न रहा गया । वे तत्काल उठ खड़े हुये और धनुष की ओर वढ़े । इससे ब्राह्मण समाज में वड़ा कोलाहल हुआ । सभी अर्जन को उत्साह दिलाने लगे । लोग उसके चाल ढाल और शरीर की गठन देख कहने लगे कि ब्राह्मण—कुमार इस काम को अवश्य करेगा । साथ ही कुछ लोग चिन्ता भी करने लगे कि ब्राह्मण कुमार का यह व्यर्थ प्रयास है, इस से ब्राह्मणों

की निंदा होगी। परन्तु सभी उत्सुकता पूर्वक उसे देखने लगे।

अर्जुन आगे बढ़ा, पहले इष्टदेव को प्रणाम कर धनुष की परिक्रमा किया पश्चात् भगवान् कृष्ण को अपनी ओर देखते हुये पाकर आनंदित हो धनुष को उठा लिया, उस महावीर ने शीघ्र ही तान कर प्रत्यञ्चा चढ़ा दी और जल में परछाईं देख हिलते हुये चक्र के छेदसे वाण चलाकर निशाने को गिरा दिया। रंग भूमि में हल-चल मचगई, देवता पुष्प बरसाने लगे तथा सभी ब्राह्मण मारे प्रसन्नता के फूल उठे। द्रौपदी अर्जुन के गले में जयमाल डाल दी।

ब्राह्मण की विजय देख सभी राजे उबल उठे, सबों ने गरजते हुये कहा—ब्राह्मण-कुमार कृष्णा को कैसे ले जायगा? स्वयंवर क्षत्रियों के लिये है। द्रुपद ने अन्याय किया है, आओ! सभी मिल कर द्रुपद का सत्यानाश करदें।

क्रोधान्ध सहस्रों राजे द्रुपद पर टूट पड़े, यह देख भीम और अर्जुन आगे बढ़े। भीम ने एक वृक्ष की गदा बनाली और अर्जुन ने वही द्रुपद वाला धनुष उठा लिया। ब्राह्मण मंडली अर्जुन का साथ देने के लिये तैयार हो गई। भीषण संग्राम मच गया, पांडवों की मार से पृथ्वी रुण्ड—मुण्डों से पट गई। यह देख कर्ण अर्जुन से और शल्य भीम से आ भिड़े, अर्जुन ने कुछ ही क्षण में कर्ण को विह्वल कर दिया तथा भीम ने शल्य को दे पटका। महाबली कर्ण परास्त हो कर बोला—ओह! यह ब्राह्मण तो साक्षात् धनुर्वेद है।

मेरी शक्ति को इन्द्र तथा अर्जुन के अतिरिक्त और कोई नहीं रोक सकता।

युद्धमें सभी राजे पराजित हो अत्यन्त भयभीत हुये अपने अपने स्थानों को पधारे। पश्चात् पाण्डव भी द्रौपदी को लेकर माता के पास आकर बोले—आज हम लोगों ने भिक्षा में एक उत्तम वस्तु पाई है, माता ने कहा—पुत्रों! जाओ! सब लोग मिल कर उसका भोग करो।

माता की बातें सुन सभी स्तम्भित हो रहे। भेद ज्ञात होने पर कुन्ती भी अपनी अज्ञानता पर पश्चात करने लगी, परन्तु अब क्या होता है? कुन्ती ने बहुत कुछ समझाया। परन्तु सत्यवादी पाण्डवों ने यही निश्चय किया कि द्रौपदी हम पाँचौ भाइयों की हो।

श्री कृष्ण पाण्डवों को स्वयम्बर में नहीं देख उन्हें खोजते हुये कुम्हार के यहाँ आये और पाँचो भाइयों तथा कुन्ती से मिलकर अत्यन्त प्रसन्न हुये।

इधर द्रुपद ने अपने पुरोहित और पुत्र धृष्टद्युम्न को यह जानने के लिये भेजा कि ये लोग कौन हैं? स्वर्ग में पली हुई कृष्णा कहाँ जा रही है? धृष्टद्युम्न ने जाकर स्वयं पता लगाया। पाण्डवों का नाम सुनते ही वह गद्गद् हो उठा, और प्रसन्नता पूर्वक सारा भेद पिता से कह सुनाया। द्रुपद के हर्ष का ठिकाना न रहा। उन्होंने बड़े आदर-पूर्वक माता सहित पांडवों को भवन में बुलवाया और शुभ मुहूर्त में विवाह का प्रबन्ध किया।

युधिष्ठिर के मुँह से यह सुनकर कि द्रौपदी के साथ हम पांचों भाइयों का विवाह होगा, द्रुपद को बड़ा दुःख हुआ। लोग धर्मा-धर्म के विचार में पड़ गये, इसी समय महर्षि व्यास आ पहुँचे और द्रौपदी के पूर्व जन्म की कथा सुनाकर बोले—महाबली द्रुपद! तुम चिन्ता न करो। पूर्व जन्म के संस्कार से ऐसा ही होगा। द्रौपदी के पाँच पती होंगे। यह आश्चर्य धर्म विरुद्ध नहीं होगा।

व्यास देव के कहने पर द्रुपद तैयार हो गये, यथा समय पुष्य नक्षत्र में चन्द्रमा के आते ही बड़े धूम-धाम के साथ पाँचों पाण्डवों का विवाह हो गया।

१—द्रौपदी पूर्व जन्म में एक ऋषि की कन्या थी। जब कुछ बड़ी हुई तब योग्य पति के लिये इसने घोर तप किया। इसकी तपस्या को देख महादेव जी बोले—वर माँग! क्या चाहती है? कन्या ने कहा—मुझे सर्व गुण सम्पन्न पति दीजिये। आराधना करते हुये वह पाँच बार कह गई। इस पर महादेव जी बोले—पुत्री! तुम्हारा मनोरथ सफल होगा। तुमने पाँच बार 'पतिं देहि' 'पतिं देहि' कहकर वर माँगा है इससे तुम्हें पाँच पति प्राप्त होंगे। व्यासजी ने कहा—

द्रुपदराज! यह वही कन्या है, अतः द्रौपदी को पाँच पति मिलना चाहिये। आप शोक न करें। व्यास देव की बात सुन महीप द्रुपद को कुछ सन्तोष हुआ और वे धर्मराज की बात मान गये।

इन्द्र-प्रस्थ का राज्य ।

पाण्डवों के दुर्दिन का अन्त हुआ। सभी माता कुन्ती सहित बड़े आनन्द से पाञ्चाल देश में रहने लगे। धीरे-धीरे उनके लाक्षागृह से बचने, तथा द्रौपदी के प्राप्त करने की बातें हस्तिनापुर में जा पहुँची। इस शुभ समाचार ने विदुर को अत्यन्त आनन्दित कर दिया। वे प्रसन्नता पूर्वक व्यंग करते हुये धृतराष्ट्र से बोले—

महराज! भाग्य-बल से कौरवों ने द्रौपदी के स्वयंवर में विजय प्राप्त की है। धृतराष्ट्र विदुर जी के इस कूट को नहीं समझ सके, उन्होंने समझा कि दुर्योधन ने ही द्रौपदी को पाया है। इस पर प्रसन्न हो बोले—विदुर! तुमने बड़ा शुभ सम्वाद सुनाया। जाओ! दुर्योधनसे कहो कि वह द्रौपदी को सज्जित कर ले आवे।

धृतराष्ट्र की बातें सुन विदुर जी ने स्पष्ट सभी बातें कह दी। राजा धृतराष्ट्र पांडवों का समाचार पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुये।

इसी समय कर्ण और दुर्योधन भी आ पहुँचे। दुर्योधन ने कहा—पिता जी! हम कुछ एकान्त में कहना चाहते हैं। यह सुन विदुर जी चले गये। एकान्त पाकर दुर्योधन ने कहा—

हे तात! आप दूसरे की बातों में आकर शत्रुओं का

गुण-गान करने लगते हैं। शत्रुओं की शक्ति को छिन्न-भिन्न करना चाहिये। क्या इससे बढ़कर और अवसर मिलेगा?

धृतराष्ट्र ने कहा—हे पुत्र! हे कर्ण! तुम दोनों बुद्धिमान हो, शत्रुओं के लिये क्या करना चाहिये? तुम लोगों ने क्या निश्चय किया है?

दुर्योधन ने कहा—तात! पाँचो पाण्डवों ने द्रौपदी के साथ विवाह किया है। ऐसी दशा में कुन्ती और माद्री के पुत्रों में वैमनस्य कराया जा सकता है अथवा गुप्त दूतों के द्वारा भीमसेन को मरवा डाला जाय या शिष्टाचार पूर्वक यहाँ बुलाकर अन्त कर दिया जाय।

दुर्योधन की बातें सुन कर्ण ने कहा—हे दुर्योधन! तुम्हारी राय ठीक नहीं है, तुम चतुरता से पार नहीं पा सकते। वे बड़े तीव्र बुद्धि वाले हैं। तुम उनमें मत भेद नहीं डाल सकते। एक द्रौपदी के साथ पाँचो का विवाह होने से और भी एकता हो गई है। इसके अतिरिक्त पाञ्चाल लोग बड़े धर्मात्मा हैं। वे कभी विश्वासघात नहीं करते। त्रैलोक्य का राज्य पाकर भी वे अधर्माचरण नहीं करेंगे। मेरी राय है कि सन्मुख समर में ललकार कर उन्हें मारें।

कर्ण की वीरोचित बातों से धृतराष्ट्र अत्यन्त प्रसन्न हो बोले—कर्ण! तुम ठीक कहते हो। वीरों का वीरता ही चाना है उन्हें छल-कपट से दूर रहना चाहिये। सबसे पहले महामति भीष्म, महर्षि द्रोण और आचार्य्य कृप से राय ले लो।

यथा समय सभी बुलाये गये। दुर्योधन का अनुचित व्यवहार सुन भीष्म बोले—तुम दोनों हमारे लिये समान हो। मेरी राय है कि पांडवों को आधा राज्य देकर इस विक्षेप की अग्निको मिटा दी जाय। इसी समय आचार्य्य द्रोणने कहा—इसीमें भलाई है। सत्परामर्श देना हमारा कर्तव्यहै, मैं महामति भीष्म की बातों का समर्थन करता हूँ। हे धृतराष्ट्र! पाण्डु पुत्रों के साथ न्याय करना आप का कार्य है। आप अपने योग्य मन्त्री को भेजकर पाण्डवों को बुला लीजिये, और आधा राज्य बाँट दीजिये।

द्रोण की बातों से कर्ण क्षुब्ध हो उठा। उसने कहा—महाराज! जिन महापुरुषों को आपने परामर्श के लिये बुलाया है। वे शत्रु का ही गीत गा रहे हैं। इससे बढ़कर और निन्दा की बात क्या होगी? बड़े आदमी बहुधा उत्तम सम्मति देने के बहाने शत्रु का पक्षपात किया करते हैं। निर्धन आदमी की मित्रता पर कभी विश्वास न करना चाहिये।

कर्ण की मूर्खता पूर्ण बातों को सुन द्रोण ने कहा—कर्ण! तुम अपने मन के दोष से मुझे दोषी बतलाते हो, तुम्हारे मन में पाप है। इसी से संसार तुम्हें पाप पूर्ण ही दिखाई देता है। हमने यह उत्तम समझ कर कहा है।

इसी बीचमें विदुर बोले—महाराज! महामति भीष्म और महर्षि द्रोण का कथन अक्षरशः सत्य है। दुर्योधन और कर्णका कथन कुरुकुल के लिये घातक है। आप महामति भीष्मकी आज्ञा का पालन कीजिये। आप बुद्धिमान हैं, विचार लीजिये।

कौन आपका शत्रु और कौन मित्र है ? महाराज ! पाण्डवों के क्रोध के सन्मुख देवता भी नहीं ठहर सकते। क्या आप नहीं जानते ? यादवेश कृष्ण और बलराम उन्हीं के पक्ष में हैं। इस विवाह ने उन पांचालों को भी सहायक बना दिया है जिन्होंने आपके पुत्रों और महावली कर्ण की दुलिया दंग कर दी थी। आप महात्मा पाण्डवों का सम्मान कर, पुरोचन द्वारा हुये पाप के कलंक-कालिमा को मिटाइये। आपके पुत्र, कर्ण और शकुनि निश्चय ही दुर्बुद्धि हैं। यदि आप पुत्रों के कथनानुसार कार्य करेंगे तो निश्चय ही यह पवित्र पुरुवंश पतन के गह्वर में जा धँसेगा।

विदुर की बातों का बड़ा प्रभाव पड़ा। दुर्योधनादि मुँह ताकते ही रहे। धृतराष्ट्र बोले—विदुर ! तुम सत्य कहते हो। भीष्म जी की सम्मत्ति मंगल-कारक है। अतः तुम वहाँ जाकर पाण्डवों को माता सहित लिवा लाओ।

महाराज धृतराष्ट्र की आज्ञा पा धर्मात्मा विदुर भेंट की बहुमूल्य वस्तुओं को लेकर पाञ्चाल राज्य में पहुँचे। उन्होंने द्रुपद से प्रीति पूर्वक मिलकर पाण्डवों का आलिंगन किया और कुशल समाचार पूछा—पश्चात् भेंट की सामग्रियों को देकर द्रुपद से महाराज धृतराष्ट्र का सन्देश कहा—

द्रुपद ने कहा—हे धर्मात्मा ! पाण्डवों के जाने में हम अपनी सम्मति क्या दे सकते हैं ? आप उन्हीं की सम्मति लीजिये। अनन्तर विदुर जी ने पाण्डवों से पूछा—उन

महात्माओं ने कहा—कि महाराज द्रुपद की आज्ञानुसार हम कार्य करेंगे ।

पश्चात् द्रुपद की आज्ञा पा पाँचों पाण्डव माता कुन्ती और द्रौपदी को लेकर महात्मा विदुर और श्रीकृष्ण जी के साथ हस्तिनापुर पहुँचे। इतने दिनों बाद पाण्डवों को नगर में आते देख प्रजायें आनन्दित हो उठीं। सभी भाँति २ के आशीर्वाद देने लगीं। पाण्डव सीधे राज-दर्बार में गये। वहाँ महामति पितामह भीष्म, चचा धृतराष्ट्र और पूज्य ज्ञाति-बान्धवों से मिले।

धृतराष्ट्र ने कहा—युधिष्ठिर! तुम आधा राज्य लेकर खाण्डव प्रस्थ में अपनी राजधानी बनाओ और सुख पूर्वक आनन्द से रहो।

पांडवों ने धृतराष्ट्र की आज्ञा मान ली, वे भगवान् कृष्ण को लेकर खाण्डव-प्रस्थ की ओर चले।

वहाँ प्रजाओं ने उनका बड़ा सम्मान किया। बड़े-बड़े विद्वान शूरवीर और योद्धा आकर रहने लगे। वहाँ की सुख समृद्धि उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। कुछ ही दिनों में खाण्डव-प्रस्थ देवपुर के समान शोभित हो उठा। महाराज युधिष्ठिर देवेन्द्र के समान शासन करने लगे।

अर्जुन का नियम भंग और ब्रह्मचर्य पालन।
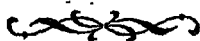
पाण्डवों ने अपने बाहुबल से भयंकर अनिष्टों को सहज ही में दूर भगा दिया। देखते ही देखते भाग्य की दिशायें आलोकित हो उठी. सर्वत्र युधिष्ठिर के न्याय-प्रियता की चर्चा होने लगी—

एक बार देवर्षि नारद जी पहुँचे। पाँचो भाइयों ने उनकी विधि—प्रकार पूजाकर उत्तम आसन पर बैठाया। पश्चात् द्रौपदी भी आकर शिर झुकाई। इस प्रकार सन्तुष्ट हो द्रौपदी को अन्तःपुर में भेज नारद जी बोले—

पाण्डु पुत्रों! तुम पाँच भाइयों में अकेली द्रौपदी ही पत्नी है, अतः कोई ऐसा उपाय सोचो जिससे भविष्य में भाइयों से कभी मतभेद न हो। सुन्द और उपसुन्द की कथा तुम लोग जानते ही होगे। इस लिये ऐसा उपाय करो जिससे आगे चलकर भयंकर कर्म न करना पड़े।

नारद जी की युक्ति पूर्ण बातों से पाण्डवों को बोध हो गया। उन महात्माओं ने देवर्षि की सम्मति मान कर द्रौपदी के सम्बन्ध में एक नियम बना लिया। नियम यह था कि जिस समय द्रौपदी के पास एक भाई हो दूसरा न जाय। इस नियम के भङ्ग करने पर बारह वर्ष ब्रह्मचर्य धारण कर वनवास करना पड़ेगा।

इस प्रकार कुछ दिन बीत गये। पाण्डवों ने बड़ा यश

प्राप्त किया, उनकी दिगन्त व्यापिनी कीर्ति को सुन देश २ के सौदागर आने लगे, व्यापार और व्यवसाय की बड़ी उन्नति हुई। कुछ ही दिनों में खाण्डवप्रस्थ एक विशाल नगर के रूप में परिवर्तित हो गया।

एक दिन एक ब्राह्मण रोता—चीखता हुआ खाण्डव प्रस्थ में आया और पाण्डवों के राज की निन्दा करते हुये बोला—जो राजा प्रजाओं से छठा हिस्सा कर लेकर उनकी रक्षा नहीं करता वह नर्क का अधिकारी होता है। हाय! पाण्डवों के राज्य से चोर मेरी गायें चुराये लिये जाता है? ब्राह्मण पहले महावीर अर्जुन से मिला। परन्तु अर्जुन के पास उस समय कोई शस्त्र नहीं था, उस समय शस्त्रागार में ही द्रौपदी के साथ महाराज युधिष्ठिर थे। यदि वे शस्त्र लेने के लिये वहाँ जाँय तो प्रतिज्ञा के अनुसार बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्य धारण कर वनवास करना पड़े। और इधर नहीं जाते हैं तो धर्म से च्युत होना पड़ता है। बड़ी कठिन समस्या आ पड़ी। महाबली अर्जुन ने कुछ क्षण तक चिन्तित होरहे।

अर्जुन ने देखा, धर्म और मर्य्यादा की रक्षा करना हमारा सत्कर्म है, हम धर्म—मर्य्यादा को श्रेष्ठ मानते हैं। बारह वर्ष वनवास ही करना पड़े, मुझे ग्राह्य है। मैं मर्य्यादा को भंग होने नहीं दूँगा। वे वनवास के दुःख को देख कर भी बेध-ड़क शस्त्रागार में गये और अस्त्र—शस्त्र लेकर गौओं की रक्षा के लिये चल पड़े। थोड़ी ही देर में महाबली अर्जुन

ने वनमें चोरों को जाघेरा और उन्हें भगाकर गौवों को ब्राह्मण के सिपुर्द कर दिया।

लौटने पर खाण्डवप्रस्थ में लोगों ने अर्जुन के इस धर्म प्रिय कार्य्य की बड़ी प्रशंसा की।

अर्जुन वनवास के लिये तैयार हो आज्ञा माँगने के हेतु धर्मराज के पास आये। युधिष्ठिर ने बहुत समझाया, यहाँ तक कहा कि—छोटे भाई के लिये योग्य है। परन्तु महाबली अर्जुन अपने सत्य से विचलित नहीं हुये। उन्होंने कहा—महाराज! आप ने मुझे उपदेश दिया है कि कभी छल से धर्म का कार्य्य न करना। इस समय आप मोह को त्यागिये और मुझे सत्य की रक्षा करने दीजिये। अतः विवश हो महात्मा युधिष्ठिर ने आज्ञा दी।

तत्काल महाबली अर्जुन गुरूजनों एवं पूज्य ज्ञाति-बान्धवों को प्रणाम कर बन की ओर चल पड़े।

पाठकों! महाबली अर्जुन के चरित्र से शिक्षा ग्रहण करो। सत्य की रक्षा के लिये इस नरदेव ने बारह वर्ष के भयंकर कठनाइयों को हठ पूर्वक सह लिया, सभी इसे रोकते थे, युधिष्ठिर ने भी रोकने के लिये कम प्रयत्न नहीं किया परन्तु इस महापुरुष ने प्रतिज्ञा से मुख मोड़ना उचित नहीं समझा। सत्य है—कभी सत्य और धर्म का युग था पृथ्वी सत्यवादियों तथा दृढ़ प्रतिज्ञों से पूर्ण थी कहीं असत्य और अधर्मचरण का नाम नहीं था।

उलूपी और चित्राङ्गद।
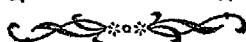
कुन्ती नन्दन महावीर अर्जुन को वन में जाते देख अनेक तपस्वी, सन्यासी और ब्राह्मण साथ-साथ चले। कुछ दिनों के बाद वनों, उपवनों, सरोवरों, नद-नदियाँ, सिद्धपीठों, देव-तीर्थों, तथा पर्वतों को पारकर सभी मातेश्वरी भागीरथी के पवित्र तट पर पहुँचे। गङ्गा के किनारे सुन्दर स्थान देख सभी कुछ दिनों के लिये ठहर गये।

तपोनिष्ठ ब्राह्मणों के निवास से यह स्थान बड़ा सुन्दर हो गया। महर्षियों के निरन्तर वेद पाठ से नभ रव पूर्ण रहने लगा तथा अग्निहोत्र की तुमुल धूम्रराशि से दिशायें सुगन्ध पूर्ण हो उठीं। इस प्रकार उस शोभायमान स्थान में अर्जुन प्रसन्नता पूर्वक रहने लगे।

एक दिन अर्जुन स्नान करने के लिये गङ्गा में उतरे। स्नान के पश्चात् पितृ-तर्पण कर जब अग्नि होत्र के लिये जल से बाहर निकलने लगे त्योंही नागराज-कन्या उन पर मोहित होकर उनको जल में खींच कर अपने लोक को ले गई।

अर्जुन बड़े विस्मय में पड़े। उन्होंने उस सुन्दरी से परिचय पूछा—

अर्जुन की बातें सुन नागराज की कन्या ने कहा—हे महावीर! मैं कौरव्य नामक नागराज की पुत्री हूँ, मुझे लोग उलूपी कहते हैं। मैं आपसे विवाह करना चाहती हूँ। इसी लिये यहाँ ले आई हूँ।

अर्जुन ने कहा—हे नागपुत्री ! मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करना चाहता हूँ । परन्तु इस समय मैं ब्रह्मचर्य्य धारण किये हूँ, अतः असमर्थ हूँ । मैं तुमसे धर्मानुसार सम्बन्ध नहीं कर सकता । उलूपी ने कहा—हे वीर पांडव ! मैं आप के ब्रह्मचर्य्य का कारण जानती हूँ । यह नियम जिसे आप पालन कर रहे हैं, यह तो आप ही का बनाया हुआ है । अतः विवाह करने में कोई दोष नहीं लगेगा । यदि कहा जाय कि कुछ अधर्म ही होगा तो भी वह हमारे आनन्द के पुण्य प्रताप से दूर हो जायगा । यदि आप मुझे नहीं अपनायेंगे तो निश्चय ही मैं प्राण दे दूँगी ।

उलूपी की युक्ति पूर्ण बातों ने अर्जुन को विवश कर दिया । उस रात्रि में वे वहीं रहे, दूसरे दिन उलूपी को साथ लेकर गंगा के किनारे आये और कुछ दिन आनन्द पूर्वक निवास किये ।

इसके पश्चात् उलूपी को नागराज के यहाँ भेज अर्जुन यात्रा के लिये आगे बढ़े । वे अंग, बंग, कलिंग आदि देशों के तीर्थाश्रमों को देखते हुये समुद्र मार्ग से मणिपुर पहुँचे । एक दिन भ्रमण करते हुये उन्होंने आचानक मणिपुर की राज कन्या सुन्दरी चित्रांगदा को देखा । उसे देखते ही अर्जुन के मन में विवाह करने की इच्छा बलवती हो उठी, वे इसी सम्बन्ध में बातचीत करने के लिये राजा के पास गये ।

अर्जुन का परिचय पाकर राजा अत्यन्त हुआ और बोला—वीरवर ! हमारे कुल में शंकर का वरदान है कि सब को

एक ही संतान होगा। अब तक यही होता चला आया है, परन्तु मुझे एक कन्या ही है, मैं चाहता हूँ कि इसी के द्वारा वंश रक्षा हो। यदि तुम कन्या के गर्भ से उत्पन्न हुये पुत्र को हमारा वंशधर मानने को तैयार हो तो चित्रांगदा के साथ तुम्हारा विवाह करदें।

अर्जुन ने मणिपुर नरेश की बात मानली, शुभ मुहूर्त में बिवाह हो गया। कुछ दिनों के बाद चित्रांगदा गर्भवती हुई। यथा समय एक महा तेजस्वी बभ्रुवाहन नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ

प्रिय पाठकों! अर्जुन तनय बभ्रुवाहन आगे चल कर बड़ा प्रतापी राजा हुआ। महाभारत के युद्ध में इस महावीर ने पाण्डवों की बड़ी सहायता की। इसके वीरता की कथा आज भी भारत के कोने-कोने में गाई जारही हैं। वह इतना वीर था कि सन्मुख समर में काल को भी तुच्छ समझता था। उस शास्त्रधर ने दिग्विजयी महा धनुर्धर पिता को भी पृथ्वी पर सुला दिया।

कुछ दिन रहकर महावली अर्जुन आगे बढ़े। दक्षिण महासागर तथा गोकर्ण तीर्थ की यात्रा कर पच्छिमी तीर्थों में घूमते हुये प्रयास पहुँचे। भगवान कृष्ण अर्जुन का आना सुन शीघ्र पहुँचे और उनसे मिलकर अत्यन्त प्रसन्न हुये।

सुभद्रा-हरण

—*—*—
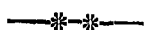
भगवान श्री कृष्ण महावली अर्जुन को रैवत गिरि पर ले गये, वहाँ यादवों ने बड़ी धूम-धाम से उनका स्वागत किया। श्री कृष्ण के पूछने पर अर्जुन ने बनवास और ब्रह्मचर्य धारण की सभी बातें कह सुनाई।

श्री कृष्ण अर्जुन को बहुत प्यार करते थे, वे इस महावीर की वीरता पर मुग्ध थे। अर्जुन भी श्री कृष्ण को अपना इष्ट देव मानते थे। श्रीकृष्ण में उनकी निश्छल भक्ति थी। भगवान कृष्ण ने अर्जुन के मनोविनोद के लिये रैवत पर्वत पर बड़ा अच्छा प्रबन्ध किया। कुछ दिन रहकर दोनों आदमी यादवों की राजधानी द्वारिका पधारे। नगर—निवासियों ने बड़े उत्साह से अर्जुन का स्वागत किया। अर्जुन ने भी सबों का यथा योग्य अभिवादन किया।

उस भीड़—भाड़ में जहाँ सहस्रों यादव इकट्ठे थे श्रीकृष्ण के अनुरोध से तथा पुरवासियों की इच्छा से महावली अर्जुन ने अपनी अपूर्व बाण विद्या दिखलाई। महावीर अर्जुनने अपने हस्त लाघव से लोगों को मुग्ध कर दिया।

उन्हीं दिनों में रैवत के उपर एक बड़ा समारोह होने का समय उपस्थित हुआ। बड़ी तैयारी हुई। रैवतक स्वर्ण, मणि, माणिक्य तथा वैदूर्य्यसे सजाया गया। ठौर २ पर रत्न जटित मंच बनाये गये, स्थान-स्थान पर नृत्य वाद्य का

प्रवन्ध हुआ। इस प्रकार अपूर्व सजावट हो जाने पर उत्सव आरम्भ हुआ। विशाल रैवतक नर-नारियों के झुंडसे भर गया। यथा समय श्री कृष्ण भी वालसखा अर्जुन को लेकर गये। दोनों चारो ओर घूम २ कर मेला देखने लगे, इसी समय अर्जुन ने रत्नालंकारों से सज्जित सखियों के साथ आती हुई सुन्दरी सुभद्रा को देखा। सुभद्रा की अपार सुन्दरता ने अर्जुन को क्षण भर के लिये विचलित कर दिया। भगवान् कृष्ण अर्जुन के भाव-भंगी को देख ताड़ गये और बोले—अर्जुन तुम वनवासी ब्रह्मचारी होकर स्त्रियों के कटाक्ष से चंचल हो उठे। अपने मनकी वात कहो—

हे कृष्ण! आप की वहन वड़ी सुन्दर हैं, मैं उससे विवाह करने की इच्छा रखता हूँ। तुम्हें कोई उपाय करना चाहिये। श्री कृष्ण वोले—हे अर्जुन! यद्यपि स्वयंवर ही क्षत्रिया के विवाह के लिये एक योग्य साधन है। परन्तु इससे अभीष्ट सिद्ध हो अथवा नहीं! नहीं कहा जा सकता—अतः तुम वल पूर्वक हरण कर लेजाओ।

इस प्रकार सम्मति ठीक कर अर्जुन ने युधिष्ठिर को कहला भेजा—युधिष्ठिर ने भी श्री कृष्ण की सम्मति को माना। एक दिन जव सुभद्रा रैवतक की परिक्रमा कर लौट रही थी कि अर्जुन उसे सहसा पकड़ लिये और रथ पर विठा कर शीघ्रता से खाण्डव प्रस्थ की ओर ले चले।

यहाँ—सुभद्रा हरण की वातें फैलते ही सभी यादव वीरों के देह में आग लग गई। भोज वृष्णि और अंधक वंश

के बड़े-बड़े वीर एकत्र हो अर्जुन का पीछा करने के लिये तैयार हो गये। इस समय बलराम जी भी आ पहुँचे और एकाएक दिशाओं को रवपूर्ण करते हुये बोले-तुम लोग क्यों इतना गर्ज रहे हो ? कृष्ण शान्त खड़े हैं उनकी आज्ञा क्या है।

सबों के शान्त होने पर बलदेव जी ने कहा—भाई कृष्ण ! तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं, क्या आज्ञा देते हो। हम लोगों ने तुम्हारे कहने से ही उस पापी का इतना मान किया था आज उसी नीच ने हमारा शिर नीचा कर दिया है। कृष्ण ! क्या यह अपमान सहने योग्य है ? आज्ञा दो, आज ही मैं पृथ्वी को कौरवों से हीन कर दूँगा।

यादवों को भयंकर क्रोध करते देख श्रीकृष्ण ने समझा बुझाकर शान्ति किया। सभी अर्जुन और सुभद्रा को लिवा लाये और विधिपूर्वक विवाह कर दिये। इस प्रकार वनवास के बारह वर्ष पूरे कर अर्जुन सुभद्रा के साथ खाण्डव प्रस्थ पहुँचे। अर्जुन को देख कर सभी अत्यन्त प्रसन्न हुये। इसी समय श्रीकृष्ण और बलराम यादव वीरों के साथ खाण्डव प्रस्थ आये। पाण्डवों ने अपूर्व स्वागत किया। कुछ दिन रहकर बलराम जी यादवों के साथ लौट गये, परन्तु श्रीकृष्ण वहीं रहे। कुछ दिनों के बाद सुभद्रा के गर्भ से अभिमन्यु का जन्म हुआ—इसी समय द्रौपदी के द्वारा क्रमशः प्रतिविंध्य, सूतसोम, श्रुतकर्मा, शतानीक और श्रुतसेन नामक पाँचों पाण्डवों के पाँच पुत्र हुये।

खाण्डव दाह।

मनोहर मधु-मास मानवों को मुग्ध कर आगे बढ़ा। धीरे-धीरे पृथ्वी पर ग्रीष्म का अधिकार होने लगा। देखते ही देखते वसुन्धरा तप्त हो उठी, दुःखदायी ग्रीष्म अपने विषम ताण्डव से दिशाओं और विदिशाओं को खिन्न बना दिया।

एक दिन महाबली अर्जुन ने भगवान कृष्ण से कहा—भगवन् आज कल बड़ी गर्मी पड़ती है, चलिये, कुछ दिन शान्तिदायिनी यमुना के किनारे चलकर रहें। श्री कृष्ण ने भी अपनी सम्मति दे दी। दोनों रमणीक यमुना के तट पर जाकर रहने लगे। एक दिन जब दोनों एक सुन्दर स्थान पर बैठे हुये बात चीत कर रहे थे कि अचानक सन्तप्त स्वर्ण के समान तेज पूर्व पिंगलवर्ण वाला एक दिव्य पुरुष आकर बोला—हम ब्राह्मण हैं तुमसे भोजन की याचना करते हैं।

कृष्णार्जुन ने कहा-हे ब्राह्मण! आप क्या खाना चाहते हैं। कहिये। कृष्णार्जुन को इस प्रकार कहते सुन ब्राह्मण बोला—सुनो—हम अग्नि हैं, हमारा आहार अन्न नहीं है, हम इस खाण्डव वन को जलाकर वहाँ के सभी जीवों को खाना चाहते हैं। हमने कई वार खाने की चेष्टा की परन्तु इन्द्र ने हमारा अभीष्ट सिद्ध नहीं होने दिया। इसी वन में इन्द्र का मित्र नागराज तक्षक रहता है, इसी से उसने वार-वार पानी बरसा कर मेरे प्रयास को विफल कर दिया। अतः आप शस्त्र लेकर हमारी सहायता कीजिये। याद रहे! न तो कोई जीव ही भागने पावे और न इन्द्रही जल बरसावे।

अर्जुन ने कहा—हे अग्नि देव! हम आप की अभिलाषा पूर्ण करेंगे। परन्तु हमारे पास न तो वैसा धनुष ही है और न रथ ही है। श्रीकृष्ण के पास भी कोई उत्तम अस्त्र-शस्त्र नहीं है।

अर्जुन की बातें सुनकर अग्नि ने तत्काल वरुण देव का स्मरण किया। उनके आते ही अग्नि ने कहा—हे वरुण! सोमराज वाला प्रचण्ड धनुष, अक्षय तूण और कपिध्वज रथ शीघ्र ले आओ। वरुण ने तत्काल अग्निदेव के कथनानुसार गांडीव धनुष, अक्षय तूण और कपिध्वज रथ लाकर अर्जुन को दिया। इसके पश्चात् अग्नि ने श्रीकृष्ण को एक दिव्य सुदर्शन नाम का अस्त्र देकर कहा—

हे कृष्ण यह चक्र शत्रु को मार कर पुनः तुम्हारे पास लौट आवेगा।

इस प्रकार कृष्णार्जुन शस्त्रास्त्र सज्जित हो रथ पर बैठकर बोले—हे अग्निदेव! अब आप बेखटके इस बन को जलाइये।

देखते ही देखते अग्निदेव प्रकट हो गये। उनकी लपटों से दिशायें अग्निमय हो गई, अग्निदेव ने अपनी सातो जीभें निकाल कर उस भयङ्कर वन को जलाना आरम्भ किया। जङ्गल के कोई भी जीवधारी नहीं भाग सके। महाबली अर्जुन और श्री कृष्ण सबों को अग्नि के मुख में डालते गये।

धीरे-धीरे अग्नि की लपटें आकाश तक जा पहुँची। स्वर्ग में सर्वत्र हाहाकार मच गया। देवेन्द्र ने जल बरसाना आरम्भ किया, परन्तु प्रचण्ड अग्नि ने उसे ऊपर ही शोष लिया। इन्द्र ने क्रोध कर भयङ्कर वृष्टि करना आरम्भ किया,

परन्तु अर्जुन ने उस जलधार को पृथ्वी पर नहीं आने दिया।

इन्द्र का मित्र सर्पराज तक्षक कुरुक्षेत्र गया था, परन्तु उसका पुत्र अश्वसेन वहीं था। उसने कई बार भागने की चेष्टा की, परन्तु कृत-कार्य नहीं हुआ। उसकी माता पुत्र-रक्षा के लिये जल मरी। इन्द्र ने अर्जुन को बाणों से बेहोश कर अश्वसेन को भाग जाने का अवसर दिया।

इन्द्र के कृत्य पर अर्जुन को बड़ा क्रोध आया इस महाबली ने पैने बाणों से स्वर्ग में प्रलय मचा दिया। अर्जुन ने अपने अमोघ अस्त्रों से इन्द्र के सभी प्रयास को विफल कर दिया। अन्त में विवश इन्द्र जा बैठे। खाण्डव वन के सभी जीव अग्नि में भस्म हो गये। केवल अश्वसेन, मन्द-पाल ऋषि के चारो पुत्र और दानव विश्वकर्मा मय बच रहे। भगवान अग्निदेव पन्द्रह दिन तक जलते रहे।

अग्नि देव अत्यन्त सन्तुष्ट हो अर्जुन को दिव्य अस्त्र-शस्त्र दिये। श्रीकृष्णजी ने अर्जुन से स्थाई मित्रता का वर माँगा।

अग्नि देव के चले जाने पर मय आया और हाथ जोड़कर अर्जुन से बोला—महावीर! मेरे योग्य कोई कार्य बतलाओ, मैं आपका क्या उपकार करूँ, मैं दानव विश्वकर्मा मय हूँ।

श्री कृष्ण जी ने कहा—हे मय! खाण्डव प्रस्थ में महाराज युधिष्ठिर के एक ऐसी सभा बनाओ, जैसी पहले कभी न बनी हो और भविष्य में भी वैसी न बन सके। आज्ञा पातेही मय सभा प्रबन्ध में लग गया।
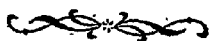
सभा पर्व ।

सभा-भवन निर्माण ।

और

राजसूय यज्ञ का विचार ।

सप्तार्चि को सन्तुष्ट कर तथा मयासुर को अपूर्व सभा भवन बनाने का आदेश दे भगवान श्री कृष्ण अर्जुन को ले यमुना तट से लौट कर राजधानी में पहुँचे। महात्मा कृष्ण ने आते ही खाण्डव-दाह का समस्त वृत्तान्त तथा मय दानव द्वारा भवन निर्माण की स्वीकृति महाराज युधिष्ठिर से कह सुनाया। भगवान की बातें सुन धर्मराज को बड़ा सुख मिला। वह गद्गद् हो उठे।

उधर दानव-विश्वकर्मा मयासुर पूर्वोत्तर दिशा की ओर बढ़ा और कैलाश के उत्तरी भाग में मैनाक पर्वत के निकट पहुँचा। उसी पर्वत के पास दानवों के राज्य में एक विन्दु नाम का सरोवर था। प्राचीन काल में असुरों ने एक वृहद् यज्ञ किया था। उसका सभी आश्चर्य-जनक दिव्य सामान

वहीं स्वरक्षित रक्खा था। मयासुर उन्हीं दिव्य सामानों को लेकर खाण्डव प्रस्थ पहुँचा और महाराज युधिष्ठिर से मिला। युधिष्ठिर ने दानव विश्वकर्मा का बड़ा सम्मान किया। पश्चात् शुभ मुहूर्त आने पर भगवान कृष्ण की अनुमति से पाँच हजार हाथ के विस्तार में विचित्र ढङ्ग का अद्भुत सभा मण्डप बनाना आरम्भ किया गया।

मय दानव ने देव, दानवों एवं मनुष्यों की विशेषता से भी बड़ी योग्यता दिखलाई। सभा स्वर्ण मण्डित तथा स्फटिक द्वारा और मणिक्यों से युक्त प्राकृतिक दृश्यों से परिपूर्ण बनाई जाने लगी।

खाण्डव प्रस्थ में कुछ दिन रहकर श्री कृष्ण पिता के दर्शन के लिये द्वारिका जाने की अभिलाषा प्रकट किये। सबों से मिलकर गरुड़ के चिन्ह वाले रथ पर बैठकर चले। दो कोस तक सभी पहुँचाने के लिये गये पश्चात् श्री कृष्ण के आग्रह से लौट आये।

इधर मय सभा मण्डप बनाने में तल्लीन रहा। लगातार १४ महीने तक वह उस उच्च सभा मण्डप को सजाता रहा। उसने सभास्थल में बड़े-बड़े रत्न-जड़ित खंभ बनाये तथा ठौर-ठौर पर सुन्दर वेदियाँ बनाई। सभा के बीचों-बीच में स्फटिक की सीढ़ियों और रत्नों से जड़ी वेदिका से शोभित निर्मल जल वाला सरोवर बनाया। सभा मण्डप के चारो ओर छाया दार सुगन्धित पुष्पों के वृक्ष लगाये तथा ठौर-ठौर वाटिकायें सजाई।

इस प्रकार सभा मण्डप बन जाने पर मयासुर ने महाराज युधिष्ठिर को खबर दी, महात्मा धर्मराज अत्यन्त प्रसन्न हो ब्राह्मणों को सन्तुष्ट कर शुभ मुहूर्त में मङ्गल पाठ कराते हुए सभा में प्रवेश किये। पश्चात् उन्होंने भक्ति-भाव पूर्वक देवताओं की पूजा की। इस प्रकार चारों ओर घूम-घाम कर मण्डप के बीच में बने हुये स्वर्ण सिंहासन पर बैठे।

इसी समय ऋषियों के साथ देवर्षि नारद जी पधारे। उन्होंने अनेक प्रकार से युधिष्ठिर को राजधर्म का उपदेश दिया और सभा को देख अत्यन्त प्रसन्न हो बोले—युधिष्ठिर ! मणि रत्नों से जड़ित, अलंकृत तुम्हारी इस सभा के समान मनुष्य लोक में और दूसरी कोई सभा नहीं है। यह तो देवताओं की सभा की तुलना देने योग्य है।

पश्चात् महर्षि नारद संसार के सभी सभाओं का वर्णन करने लगे। उन्होंने क्रमशः यम, वरुण, कुवेर, ब्रह्मा और इन्द्र के सभाओं का वर्णन किया। इसी प्रसङ्ग में उन्होंने यह भी कहा कि राजा हरिश्चन्द्र ने यज्ञ के प्रताप से इन्द्र के बराबरी का दर्जा पाया।

युधिष्ठिर के पूछने पर उन्होंने कहा—हरिश्चन्द्र ने राजसूय नामक यज्ञ किया था। हे युधिष्ठिर ! दिग्विजय कर जो इस यज्ञ को करता है वही इन्द्र के पद को प्राप्त होजाता है।

नारद जी चले गये, राजा युधिष्ठिर के मन में राजसूय यज्ञ करने की इच्छा बलवती होने लगी। धीरे-धीरे पाँचों पांडवों ने प्रजाओं तथा पुरजनों की आत्मा पर अधिकार

कर लिया। पश्चात् अपने को पूर्ण योग्यजान मन्त्रियों से परामर्श लिया।

सबों को अनुकूल देख युधिष्ठिर अत्यन्त प्रसन्न हुये और श्री कृष्ण से सलाह लेने के लिये उन्हें बुलाये। भगवान कृष्ण शीघ्र ही आ गये और बुलाने का कारण पूछे—युधिष्ठिर ने अपनी मनो-भिलाषा कह सुनाई।

श्री कृष्ण ने कहा—राजन्! आप तो सर्वगुण सम्पन्न हैं, कोई भी आप से बल, बुद्धि, विक्रम, ज्ञान तथा धन में श्रेष्ठ नहीं है। आप राजसूय यज्ञ करने के अधिकारी हैं। आप समर्थ हैं—राजसूय यज्ञ कीजिये, हम लोग आप की सहायता करेंगे।

युधिष्ठिर ने पूछा—भगवन्! राजसूययज्ञ क्या है और कैसे होता है? कौन २ इसके अधिकारी हैं। कृपाकर मुझे बतलाइये।

भगवान् कृष्ण महात्मा युधिष्ठिर से बोले—धर्म पुत्र! सुनो-पृथ्वी के समस्त राजाओं की आत्मापर अधिकार रखने वाला व्यक्ति ही इसका अधिकारी है। यह वह साधन है, जिसके द्वारा प्राणी देवत्व प्राप्त करता है। कुन्ती-नन्दन! इस यज्ञ की पूर्ति के लिये दिग्विजय की आवश्यकता है। आओ, सब से पहले दिग्विजय का विचार करो।

जरासन्ध-बध

राजसूययज्ञ के सम्बन्ध में बातें करते हुये भगवान कृष्ण ने कहा हे धर्मराज ! तुम में चक्रवर्ती के सभी गुण विद्यमान हैं। तुम इस श्रेष्ठ यज्ञ को अवश्य करो। परन्तु मैं देखता हूँ कि मगध का राजा जरासन्ध जब तक जीवित है किसी को यह पवित्र यज्ञ नहीं करने देगा।

हे युधिष्ठिर। जरासन्ध बड़ा प्रतापी राजा है, सेना भी उसके पास असंख्य है, पृथ्वी के बड़े-बड़े राजे उसका नाम सुनते ही काँप उठते हैं। दूसरे की कौन कहे—हम स्वयं उसी के कारण मथुरा से द्वारिका में बसे हैं। वहाँ भी वह कभी-कभी उत्पात मचाता ही रहता है, कभी-कभी तो द्वारका छोड़कर रैवतक के कुशस्थली दुर्ग में शरण लेनी पड़ती है। प्यारे धर्मराज ! तुम्हरे मामा वसुदेवजी को भी उसकी आधीनता स्वीकार करनी पड़ी है। शिशुपाल भी उससे हार चुकाहै, भगदत्त उसे कर देता है। उसने पृथ्वी के बड़े-बड़े राजाओं को हरा दिया है, इस समय वह नरमेध की पूर्ति के लिये राजाओं को पकड़ कर बन्दी बना रक्खा है। युधिष्ठिर! किसी राजा में यह शक्ति नहीं है कि वह जरासन्ध को दण्ड दे। उसके बिना नाश हुये तुम्हारा चक्रवर्ती होना कठिन नहीं वरम् पूर्ण असंभव है।

श्रीकृष्ण के मुँह से जरासन्ध की वीरता सुन युधिष्ठिर चिन्तित हो बोले—हे कृष्ण ! हम जरासन्ध के बल से

अपरचित थे। अच्छा हुआ कि आपने मुझे यह भेद कह सुनाया। जब यदुवंश के वीर भाग खड़े हुये तब और कौन उसका सामना कर सकता है? आपही कहिये—

श्रीकृष्ण ने कहा—धर्मराज! युद्ध करने से वह पराजय नहीं हो सकेगा। हमने उसके मारने की युक्ति सोच ली है। तुम भीम और अर्जुन को हमारे साथ भेजो। वहाँ जाकर हम द्वन्द युद्ध के द्वारा उसे मरवायेंगे। वह वड़ा पापी है, अब उसके पाप का घड़ा लवालव भर गया है।

महात्मा युधिष्ठिर श्रीकृष्ण की वातों को मान भीम और अर्जुन को साथ कर दिये।

यथा समय श्रीकृष्ण दोनों पांडवों के साथ ब्राह्मण स्नातक का वेश धारण कर राजगृह की ओर चले—अनेक नद—नदियों एवं वन-पर्वतों को पार करते हुये कुछ दिनों के वाद मगध देश में पहुँचे। धीरे-धीरे गोरक्ष पर्वत के पास पहुँच कर तीनों ने राजगृह को दूर से देखा। मार्ग में ही जरासन्ध के पिता वृहद्रथ का वनवाया एक सुन्दर मन्दिर मिला। रात्रि में लोग वहीं ठहरेऔर सवेरे उठते ही मन्दिर का शृंग तोड़ कर आगे चले। थोड़ी देर में नगर की वहार दिवारी लाँघ कर नगरी में प्रवेश किये।

देवताओं के समान दिव्य तेजधारी इन तीन पुरुषों को देख नगर निवासी आश्चर्य चकित हो उठे। उन लोगों ने ऐसी सुन्दरता कभी नहीं देखी थी। कुछही क्षणमें तीनों आदमी वे रोक टोक दर्वार में पहुँच गये।

तेजस्वी ब्राह्मणों को देख महाबली जरासन्ध उठ खड़ा हुआ और स्नातक जान कर पादार्घ्य करना चाहा, परन्तु श्रीकृष्ण ने अस्वीकार कर दिया। इस विषय से अत्यन्त आश्चर्यित हो बोला—आप तीनों कौन हैं, हमारा पादार्घ्य क्यों नहीं ग्रहण करते हैं? इसी समय नगर निवासियों ने ब्राह्मणों द्वारा मन्दिर भंग तथा प्राचीरके उपर से नगरमें प्रवेश करने की बातें आकर सुनाई। अब तो जरासन्ध बड़े फेर में पड़ गया। अब वह स्नातक वेश धारी पाण्डवों और कृष्ण को सन्देह भरी दृष्टि से देखने लगा।

इसी समय भगवान श्रीकृष्ण बोले—हे मगधनरेश! हम लोग ब्राह्मण नहीं वास्तव में क्षत्रिय हैं। तुमने सुना होगा कि मित्रके घर द्वार से जाना चाहिये परन्तु शत्रु के घर में विपरीत मार्ग से जाना उत्तम होता है। सुनो—तुम हमारे शत्रु हो। हमारा सिद्धान्त है कि जब तक शत्रु से कार्य पूर्ण न करावें तब तक आदर सत्कार अथवा भेंट आदि स्वीकार नहीं करें।

श्रीकृष्ण के इस प्रकार कहने पर जरासन्ध बोला—भाई! मैं तो आप लोगों को पहचानता भी नहीं हूँ, फिर शत्रुता कैसी? मुझे आप लोगों की बातों पर बड़ा आश्चर्य हो रहा है। श्री कृष्ण ने कहा—

हे जरासन्ध! तुम मुझे नहीं पहचानते? देखो ये दो पुरुष जो ब्राह्मणों का वेश धारण किये हैं वे पाण्डु नन्दन भीम और अर्जुन हैं और मैं कृष्ण हूँ। हम तुम्हारा अतिथ्य

स्वीकार नहीं कर सकते। तुमने हजारों राजाओं को कैद कर रक्खा है। अब नरमेध के द्वारा उन निर्दोषों की हत्या करना चाहते हो, तुम्ही सोचो,—यह कितना बड़ा पाप है। हम तुम्हार आतिथ्य स्वीकार कर के पाप के भागी नहीं बनेगें।

वीर मगधराज! हम तुम से द्वन्द युद्ध करना चाहते हैं, तुम हम लोगों में से किसी से द्वन्द्व युद्ध करो।

कृष्ण की बातें सुन जरासन्ध जल उठा—थोड़ी देर के बाद उसने कहा—कृष्ण! तुम क्या लड़ सकते हो, हमने तुम्हें सत्रह बार परास्त किया है। अर्जुन तो कोमल अंगवाला है यह भी हमसे युद्ध नहीं कर सकता। हाँ! एक भीमसेन है, यदि वह चाहे तो हम द्वन्द युद्ध कर सकते हैं।

देखते-ही-देखते तैयारी होगई। अभिमानी जरासन्ध गर्जता हुआ लंगोट पहनकर अखाड़े में कूद पड़ा। इधर भीमसेन भी लंगोट पहन श्रीकृष्ण को प्रणाम कर ताल ठोकते हुये उसके पास आ पहुँचे। पहले दोनों ने हाथ मिलाया फिर अपने-अपने ताल ठोके। दोनों वीर पैतरे बदल-बदल कर घूमने लगे। दोनों क्रुद्ध महावीरों के ताल से अखाड़ा गूँज उठा। सारी नगरी इस विचित्र युद्ध को देखने के लिये उमड़ पड़ी।

अब दोनों भुजाओं से एक दूसरों के कन्धों पर आघात करते हुये भिड़ गये और दाव पेंच चलाने लगे। एक दूसरे को जीतने का उद्योग करने लगे।

धीरे-धीरे युद्ध ने भीषण रूप धारण कर लिया। दोनों गंभीर गर्जना करते हुये क्रुद्ध केहरी के समान एक दूसरे को देखने लगे। इस प्रकार कुछ ही क्षण पश्चात् दोनों क्रोध से अधीर हो उठे और परस्पर घूँसे बाजी करने लगे। दूसरे को अपनी ओर खींचने तथा परस्पर सिर लड़ाने लगे। इस प्रकार चौदह दिनों तक लगातार यह युद्ध चलता रहा। कोई किसी को नहीं हरा सका। अन्त में एक दिन जरासन्ध को कुछ थका देख श्री कृष्ण ने भीम से कहा—महावीर! थके हुये शत्रु को इस प्रकार पीड़ित नहीं करना चाहिये।

श्रीकृष्ण की बातों ने विद्युत का काम किया, भीम भीम वेग से टूट पड़े। इसी बीच में कृष्ण ने कुछ इशारा करके बताया। भीम भगवान्के संकेत[1] को समझ गये और एक बार

१—भगवान ने संकेत से कहा था कि जरासन्ध के पैरों को चीड़ डालो, उसे वर था—कि जब तक तुम्हारी कमर की सन्धि न टूटेगी तब तक तुम नहीं मरोगे। कथा इस प्रकार है—

यह जन्म कालमें दो भागों में बँटा हुआ उत्पन्न हुआ था, लोग इसे वनमें डाल आये, उस जंगल में जरा नाम भी एक देवी रहती थी, उसने इसे देख कील के द्वारा जोड़ दिया और वर दिया कि जब तक तुम्हारी कील न टूटेगी कोई तुम्हें नहीं मार सकता। तब तक तुम अमर रहोगे। जरा देवी के द्वारा सन्धि जोड़ने के कारण इसका नाम जरासन्ध पड़ा।

गंभीर गर्जन कर पूरी शक्ति से जा भिड़े । जरासन्ध इस प्रहार को नहीं रोक सका, भीम ने उसे उठा कर दे पटका । उसने एक पैर को अपने पैरों से दबाकर दूसरे को हाथों में पकड़ कर चीड़ डाला, इस प्रकार महाबली अजेय जरासन्ध का अन्त हो गया ।

जरासन्ध के मरते ही श्रीकृष्ण पाण्डवों के साथ कारागार में पहुँचे और सभी राजाओं को बाहर कर छोड़ दिये । सभी बड़े प्रसन्न हो बोले—श्रीकृष्ण ! कहिये हम आपकी क्या सेवा करें ?

श्री कृष्णजी बोले-हे राजागण ! महाराज युधिष्ठिर राजसूययज्ञ करना चाहते हैं, आप लोग उनकी सहायता करें । राजाओं ने आज्ञा का पालन किया ।

इसके अनन्तर जरासन्ध का पुत्र मंत्रियों तथा ज्ञाति बान्धवों के साथ डरते-डरते श्रीकृष्ण की शरण में आया । भगवान् ने उसे अभयदान दिया, वह पिताके सिंहासन पर बैठाया गया । इस प्रकार कृष्ण भेंट में अनन्त धनराशि ले दोनों पाण्डवों के साथ दिव्य रथपर बैठ कर खाण्डव प्रस्थ पहुँचे ।

महात्मा युधिष्ठिर यह आनन्द समाचार सुन कर अत्यन्त आनन्दित हुये । श्री कृष्ण ने कहा—धर्मराज ! अब निर्भय राजसूययज्ञ करो, तुम्हारा मंगल होगा ।
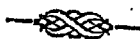
पाण्डवों का दिग्विजय।

मगध राज्य के आधीन हो जाने पर दिग्विजय कर साम्राज्य को दृढ़ करने के विचार से तथा यज्ञ के लिये अतुल धन एकत्र करने की अभिलाषा से महाराज युधिष्ठिर ने चारों भाइयों को दिशाओं में भेजा। विना दिग्विजय किये यज्ञ भी पूर्ण नहीं हो सकता था।

महावली अर्जुन उत्तर दिशा की ओर गये। उन्होंने अपने कौशल से प्राग्जोतिष के राजा भगदत्त को उलूक देशके अधिवासी बृहन्त को तथा काश्मीर देशके सभी क्षत्रिय वीरों को अपने आधीन किया, पश्चात् उत्तर कुरू गान्धर्व देश में पहुँचे—

अर्जुन को युद्ध के लिये प्रस्तुत देख बड़े भयंकर शरीर वाले द्वारपालों ने आकर कहा—हे अर्जुन! यह माया की नगरी बड़ी विलक्षण है, इसे मनुष्य नहीं जीत सकते, हम तुम्हारी वीरता पर प्रसन्न हैं, माँगो, क्या माँगते हो।

अर्जुन ने दिग्विजय की बात कह कर कहा कि मुझे कर चाहिये। इसीसे हम सन्तुष्ट हो जायेंगे। द्वारपालों ने अर्जुन का कहना मान लिया। उन्होंने बहुत से आभूषण, वस्त्र, तथा सुन्दर मृगचर्म दिये। इस प्रकार उत्तर दिशा में विजय प्राप्त कर महावली अर्जुन सकुशल राजधानी में लौटे।

महाबली भीम पूर्व दिशा में गये। उन्होंने भी अपनी वीरता से बड़े-बड़े राज्यों को जीता। पांचाल-विदेह आदि राज्यों से कर लेकर चेदिराज शिशुपाल के पास पहुँचे। शिशुपाल भीम के बल को जानता था। वह बिना युद्ध किये ही अधीनता स्वीकार कर लिया। उसने भीम का बड़ा स्वागत किया और आदर पूर्वक पूछा हे महावीर! कहिये क्या आज्ञा है। भीमने कहा—शिशुपाल! हम धर्म-राज युधिष्ठिर की आज्ञा से कर एकत्र कर रहे हैं। भीमकी बात सुनते ही शिशुपाल ने कर दे दिया।

चेदिराज से कर लेकर भीम आगे बढ़े। उन्होंने बरबस कोशलराज, बृहद्बल, काशिराज और राजपति क्रथ आदि राजाओं को युद्धमें जीतकर उनसे करलिया। इस प्रकार कुछ ही दिनों में अपार धन राशि लेकर वे खाण्डव प्रस्थ पहुँचे।

महाबली नकुल पश्चिम दिशा में गये, उन्होंने भी बड़े बड़े राजाओं को हरा कर राजदण्ड लिया। आगे बढ़ने पर रोहितक देश के मयूरों से बड़ी लड़ाई हुई, वीर नकुल ने थोड़ी ही देर में मयूरों को मार भगाया। आगे चल कर जैरीषक मरुभूमि और महेश्व नामक सुन्दर धनधान्य पूर्ण प्रदेश पर अधिकार किया, इसी प्रकार दशार्ण, शिवि, त्रिगर्त आदि देशोंको जीत द्वारिका पहुँचे। यादवों ने नकुल का बड़ा आदर किया और कर देकर विदा किया। इसी भाँति किसी युद्ध में परास्तकर किसी को मैत्री कर करले खाण्डव प्रस्थ लौटे।

महाबली सहदेव ने दक्षिण की यात्रा की उन्होंने मार्ग में मथुरानरेश, मत्स्य राज, कुन्ति भोज आदि राजाओं से अपार धन लिया। इस प्रकार दक्षिण दिशा में बढ़ते हुये किष्किन्धा में पहुँचे। किष्किन्धा वासी वानरों से सहदेव की सात दिनों तक लड़ाई होती रही परन्तु वे युद्ध से नहीं हटे। हाँ सहदेव की वीरता देख प्रसन्न हो बोले—हे वीर! तुम अपने कार्य को करो, हम तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हैं तुम ये सब रत्न लेकर यहाँ से जाओ। सहदेव वानरों से अमूल्य भेंट पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुये।

इसके अनन्तर कच्छ देश में पहुँचे। महाबली सहदेव ने द्राविड़, कलिंग, पुरी और यवत पुर के राजाओं से कर ले लिया, पश्चात् लंका में जाकर पुलस्त्य नन्दन विभीषण को अपने वश में किया।

इस प्रकार चारो भाई दिग्विजय कर अपार धन लेकर राजधानी में पहुँचे। भाइयों को सकुशल लौटते देख युधिष्ठिर अत्यन्त प्रसन्न हुये और आगे बढ़ कर मिले।

यज्ञारम्भ।

धर्मात्मा पाण्डवों के विमल कीर्ति से दिशायें और विदिशायें पूर्ण हो गईं। चारो पांडवों द्वारा किये हुये दिग्विजय से बड़ा लाभ हुआ। महाराज युधिष्ठिर का कोष धन से परिपूर्ण हो गया। इस भाँति उन्हें पूर्ण योग्य देख धर्मिष्ठ मन्त्रियों और शुभ-चिन्तकों ने कहा—महाराज! पुनीत यज्ञ का अवसर आ गया है, शीघ्रता कीजिये।

उधर पांडवों के दिग्विजय का समाचार सुन श्रीकृष्ण यादवों की ओर से अमित धन-धान्य लेकर खाण्डव-प्रस्थ पहुँचे। उनके साथ ही यादवों की विशाल वाहिनी भी बलराम जी के सेना-पतित्व में आई। महाराज युधिष्ठिर ने अपने पुरोहित और मन्त्रियों के साथ आगे बढ़कर अपूर्व स्वागत किया, और आदर सहित लाकर सुन्दर राज-भवन में ठहराया। कुशल समाचार के पश्चात यज्ञ के विषय में पूछते हुये युधिष्ठिर ने कहा—

हे कृष्ण! आप की महती कृपा से यह विस्तृत पृथ्वी हमारे वश में हुई है। अब आप यज्ञ की अनुमति दें।

श्री कृष्ण जी ने उत्तर दिया—राजन्! आप ठीक कहते हैं, अब आप राजसूय यज्ञ करने के पूर्ण योग्य हैं। शीघ्र यज्ञ की दीक्षा लीजिये। आप का कार्य्य सानन्द समाप्त होने पर हम लोग कृतार्थ होंगे। महाराज! हम आपकी आज्ञा पालन के लिये सदैव तत्पर रहेंगे। युधिष्ठिर ने कहा—

गोविन्द ! जब तुम आ गये हो तो सर्वत्र मङ्गल ही मङ्गल होगा। मेरी आत्मा कह रही है कि सिद्धी होगी।

श्री कृष्णजी की अनुमति से धर्मात्मा युधिष्ठिर ने सहदेव को यज्ञ-सामग्रियाँ एकत्र करने के लिये कहीं।

बुद्धिमान सहदेव ने पहले से ही यज्ञ सामग्रियों का प्रबंध कर रक्खा था, अतः बोले—प्रभो ! आपकी आज्ञा के पूर्व ही सब चीजें आ गई हैं।

यज्ञारम्भ हुआ। महर्षि व्यास स्वयं ब्रह्मा बने। धनञ्जय सुसमा बन कर सामवेद का गान करने लगे। ब्रह्मनिष्ठ महर्षि याज्ञ-वल्क्य, वसु पुत्र महर्षि पैल तथा पाण्डवोंके पुरोहित महात्मा धौम्य होता और उनके शिष्य समुदाय यज्ञ के सदस्य बने। इस भाँति कर्म काण्डियों के निर्धारित हो जाने पर स्वस्तिवाचन प्रारम्भ हुआ। पश्चात् उस अद्भुत यज्ञ शाला की विधि-पूर्वक पूजा की गई। महाराज युधिष्ठिर ने सभा-भवन के चारो ओर सुन्दर-सुन्दर घरों को बनाने के लिये चतुर कारीगरों को आज्ञा दी।

यज्ञ के श्रीगणेश होने पर युधिष्ठिर ने सहदेव को चारों दिशाओं में निमंत्रण भेजने के लिये कहा—सहदेव ने चतुर दूतों के द्वारा पृथ्वी के चारो दिशाओं में निमन्त्रण भेजा।

युधिष्ठिर ने पितामह भीष्म, महात्मा द्रोण, आचार्य्य कृप, चचा धृतराष्ट्र, धर्मात्मा विदुर, तथा दुर्योधनादि भाइयों को बुलाने के लिये नकुल को हस्तिनापुरी भेजा। सभी युधिष्ठिर का निमन्त्रण स्वीकार कर आये।

इधर निमन्त्रित राजे भी आने लगे। कुछ ही दिन में पृथ्वी के समस्त राजे आ पहुँचे। युधिष्ठिर ने उनका सम्मान किया और सुन्दर-सुन्दर गृहों में ठहराया। यज्ञ मण्डप की सुन्दरता देख मुग्ध हो उठे। पश्चात् सबों ने ब्रह्मर्षियों से घिरे हुये अपूर्व तेजधारी युधिष्ठिर का दर्शन किया।

सभी राजाओं के आ जाने पर महात्मा युधिष्ठिर ने भीष्मादि पूज्य कौरवों से कहा—पूज्यवरों! यह आपका ही कार्य्य है, जिसमें भलाई हो वही कीजिये। इस प्रकार कह कर यज्ञ की दीक्षा लिये हुये महाराज युधिष्ठिर ने सबों को अपना अपना काम अलग-अलग बाँट दिया। द्रोण पुत्र अश्वत्थामा को ब्राह्मणों की सेवा का कार्य दिया गया। धृतराष्ट्र पुत्र संजय को राजाओं की सेवा-शुश्रूषा का कार्य्य सौंपा। दुःशासन को खाने पीने की चीजों का तथा दुर्योधन को आया हुआ उपहार लेने का अधिकार दिया। आचार्य्य कृप को रत्नादि एकत्र करने का तथा महात्मा कृष्णको ब्राह्मणों के पैर धोने का काम दिया गया। भीष्म और द्रोण सभी बातों की देख-रेख रखने लगे।

शुभ मुहूर्त आते ही महाराज युधिष्ठिर दीक्षित हुये और ब्रह्मर्षियों, याज्ञिकों तथा सहस्रों आधीन राजाओं से घिरे हुये यज्ञशाला में पहुँचे। नारदादि महर्षि उनके चारो ओर बैठ गये। पश्चात् वेदज्ञ याज्ञिक मन्त्र से पवित्र किया जल छिड़कने लगे।
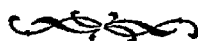
शिशुपाल-बध

—※—※—
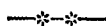
देखते-ही-देखते राजाओं के सम्मान का समय आ उपस्थित हुआ। कुरु-श्रेष्ठ पितामह भीष्म जी यज्ञ-मण्डप में उठ कर बोले—हे धर्मपुत्र! अब राजाओं के सम्मान करने का समय आ गया है। यज्ञ में आचार्य्य, ऋत्विज, सम्बन्धी, स्नातक, राजा और स्नेही यही छः पूजा के योग्य हैं। युधिष्ठिर! इन्हें शीघ्र सन्तुष्ट करो।

उसी समय धर्मराज बोले—हे पितामह! आप किसे योग्य समझते हैं,-प्रथम अर्घ किसे दिया जाय? कहिये—

भीष्म ने श्रीकृष्ण की प्रशंसा करते हुये कहा—हे धर्मात्मा इस के योग्य श्रीकृष्ण हैं। बुद्धि, बल और पराक्रम में कोई उनसे अधिक नहीं है और न किसी ने उतनी तुम्हारी सहायता ही की है। राजाओं में श्रीकृष्ण ही अर्घ—पाने के योग्य हैं।

इस प्रकार भीष्म की आज्ञा पाकर सहदेव ने शास्त्र विधि के अनुसार श्रीकृष्ण को प्रथम अर्घ दिया। महात्मा कृष्णजी ने उसे अंगीकार किया।

कृष्ण की यह पूजा देख अभिमानी शिशुपाल जल गया। वह मारे क्रोध के पाण्डवों का अपमान करते हुये यज्ञ मण्डप में बोल उठा—

हे पाण्डवों! इतने बड़े-बड़े राजाओं के रहते हुये कृष्ण

क्यों प्रथम अर्घ्य के योग्य हुआ? माना जाय कि तुम लोग नहीं जानते परन्तु बूढ़े भीष्मने ऐसा क्यों किया? यदि यदुवंश को श्रेष्ठ मानते थे तो उसके बाप को अर्घ देते। मैं जानता हूँ, वह तुम्हारी हाँ में हाँ मिलाया करता है। तो भी तुमने क्या समझकर अर्घ दिया। क्या आत्मिय समझा! तो द्रुपद की उपेक्षा क्यों की? क्या आचार्य्य या ऋत्विज समझा! तो द्रोण और व्यास से बढ़ कर यहाँ कौन है? पुरुषोत्तम भीष्म शल्याज्ञ अश्वत्थामा, नर पुङ्गव दुर्योधन तथा श्रेष्ठ वीर कर्ण से बढ़ कर यहाँ कौन है? यह देखते हुये तुम लोगों ने कृष्ण को ही अर्घ क्यों दिया? इन महापुरुषों के रहते हुये कृष्ण कबका अधिकारी हुआ। पाण्डवों से इस प्रकार कहकर अब वह स्वयं कृष्णसे बोला—हे कृष्ण! भयभीत भीरु पाण्डवों ने ऐसा कर दिया फिर तुम ने क्यों अनुचित किया? यह कहाँ का अन्धेर है। तुमने प्रथम अर्घ क्यों ग्रहण किया? तुम किस बात में श्रेष्ठ हो। पाण्डवों ने यह अन्याय किया। हम ने तो उनकी सत्यता और धार्मिकता का विचार कर सार्वभौमत्व स्वीकार किया था। कृष्ण तुम कैसे निर्लज्ज हो? प्रथम अर्घ ग्रहण करते तुम्हें लज्जा नहीं आई। मैं समझ गया।

शिशुपाल की बातों ने हल—चल पैदा कर दी, यह देख युधिष्ठिर बोले—

हे महीप! आप विचार पूर्वक कहिये, इस प्रकार अधर्म पूर्ण कहना आपको शोभा नहीं देता। आप से अधिक अव-

सभा वाले बड़े-बड़े महाराजे इस कार्य को अनुचित नहीं कहे। हे चेदिराज ! आपने अभी तक श्रीकृष्ण जी को नहीं पहचाना है। श्री कृष्ण की प्रशंसा करना व्यर्थ है। यहाँ मुझे ऐसा कोई वीर नहीं दिखलाई देता है जो कृष्णचन्द्र को हरा सके। श्रीकृष्ण के अद्भुत कार्यों पर विचार कीजिये। हमने उनको गुणों के कारण ही पादार्घ्य दिया है।

भीष्म ने कहा—लोक प्रिय कृष्ण की पूजा जिसे प्रिय नहीं लगती हो उससे प्रार्थना करना व्यर्थ है। धर्मराज ! शिशुपाल द्वेषी है। यदि उसे असह्य हो तो अपने मनके अनुसार काम करे।

यह सुनते ही शिशुपाल उठ पड़ा और इधर-उधर घूमकर लोगों को फोड़ने और बहकाने लगा। बहुत से दुष्ट राजे उसके पक्ष में हो गये। इस प्रकार विपक्षियों को उद्दण्डता पूर्वक बढ़ते देख युधिष्ठिर बोले—इस समय क्या करना चाहिये। शिशुपाल ने कुछ राजाओं को भड़का दिया है।

पितामह ने कहा—घबड़ाओ नहीं, शिशुपाल काल-ग्रास होना चाहता है, उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है। श्री कृष्ण के सहायक रहने पर हमारा अनिष्ट नहीं हो सकता।

इसी बीच में शिशुपाल बोल उठा। भीष्म कृष्ण की प्रशंसा करते तुम्हें लज्जा नहीं आई। वृद्धावस्था होने के कारण तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है। इस कृष्ण ने कितना बड़ा पाप किया है। यह कुलांगार अग्र पूजा

के योग्य है ? भीष्म तुम सब इन राजाओं के कारण जीवित हो ।

इस प्रकार भीष्म का अपमान देख भीम उबल पड़े और उठकर प्रहार ही करना चाहते थे कि भीष्म ने उन्हें रोक लिया ।

इसके अनन्तर भीष्म ने कहा—हे शिशुपाल ! तुम इतना क्यों बढ़ते हो । मैं तुम्हें और इन राजाओं को तृण के समान समझता हूँ, जिन कृष्णजी की प्रथम पूजा की गई है । वे तो सामने विद्यमान ही हैं क्यों न आपस में निपटेरा करलो ।

इतना सुनते ही शिशुपाल उबल पड़ा—और गर्जता हुआ श्रीकृष्णजी की ओर चढ़ा । निकट जाते ही बोला—हे कृष्ण ! उठो ! आज तुम्हारे पापों का अन्त होगा । इतनो कह कर वह तत्काल ही कृष्णजी पर झपटा ।

श्रीकृष्णजी बार-बार क्षमा करते जाते थे, परन्तु उत्तरोत्तर उसका दुर्व्यवहार बढ़ता ही जाता था, श्रीकृष्णजी ने अपनी फूफी से उसके पुत्र शिशुपाल के सौ अपराधों को क्षमा करने की प्रतिज्ञा की थी । शिशुपाल कृष्णजी का फुफेरा भाई था । आज उसके अपराधों की संख्या सौ से अधिक हो गई । इस प्रकार अपमानों की मात्रा बढ़ते देख—अर्थात् प्रत्यक्ष कटुवाक्य कहने सुन श्रीकृष्णजी क्षुब्ध हो उठे; उन्होंने तत्काल सुदर्शन को चला दिया । क्षणमात्र में ही उस पापात्मा का शिर धड़ से पृथक होकर पृथ्वी पर लोटने लगा ।

श्रीकृष्ण के इस विचित्र व्यापार ने उपस्थित राजाओं को भयभीत कर दिया, सभी सन्न हो गये, उसी समय धर्मात्मा युधिष्ठिर ने शिशुपाल के पुत्र महिपाल को चेदिराज्य का राजतिलक कर अपना मित्र बना लिया।

उधर यज्ञाग्नि प्रज्वलित हो उठी, ऋत्विजों ने हविष्यान्नों तथा सुगन्धित द्रव्यों से सप्तार्चि को सन्तुष्ट किया।

इसके पश्चात् यज्ञका अवभृत स्नान हुआ। वेद विधि से सभी क्रिया समाप्त की गई। पाण्डवों के इस कार्य से देवता और ब्राह्मण अत्यन्त प्रसन्न हुये राजसूययज्ञ की चर्चा सर्वत्र फैल गई।

पराशर, महर्षि व्यासदेव, भरद्वाज, गौतम, च्यवन कण्व, मैत्रेय, विश्वामित्र, वामदेव, कश्यप, जैमिनी, और वैशम्पायन आदि महर्षि कुशलतापूर्वक यज्ञ कार्य करने लगे। अविराम वेद-पाठ से दिशायें गूँज उठीं। पवनवेग ने यज्ञ के सुगन्धित धूम्र से दिशाओं और विदिशाओं को सुगन्ध पूर्ण कर दिया। देखते ही देखते खाण्डव-प्रस्थ स्वर्ग से भी सुन्दर और अलका से भी मनोहर दिखाई देने लगा।

दुर्योधन का अपमान

—:※:—

महाराज युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हो गया। निमन्त्रित राजे लोग धर्मराज के सम्मुख आये और अपनी-अपनी भेंट देकर बोले—

धर्मराज! आप के पुण्य-प्रताप से हमलोगों ने प्रत्यक्ष राजसूययज्ञ को देखा है। इस सभा-भवन और इस सतयुगी कृति को देखकर हमलोगों को परमानन्द हुआ है अब आज्ञा दीजिये अपने-अपने घरों को लौट जाँय।

महात्मा युधिष्ठिर अत्यन्त प्रसन्न हो राजाओं के भेंट को स्वीकार कर बोले—भाइयों! यह सब आप लोगों की कृपा का कारण है, आप लोगों के द्वारा ही यह महान कार्य्य सकुशल पूर्ण हुआ है।

इसके अनन्तर धर्मराज ने सबों को विदा किया, चारों पाण्डव अपने राज की हद तक सभी निमंत्रित राजाओं को पहुँचानेके लिये गये। राजाओं के चले जाने पर सबोंसे पूजित होकर गरुड़ चिन्ह वाला रथ पर बैठ श्री कृष्णजी भी द्वारिका को लौट गये। हस्तिना नगरी से आये हुये कौरव भी अपने-अपने घरो को गये, केवल दुर्योधन और उनके मामा शकुनि ही मयदानव की इस अद्भुत कृति को भली भाँति देखने के लिये ठहर गये।

दुर्योधन इस सभा मण्डप को देख बड़ा चकित हुआ।

उसने कभी ऐसी सुन्दरता नहीं देखी थी, वह मामा शकुनि के साथ घूम-घूमकर देखने लगा।

आगे बढ़ कर दुर्योधन ने स्फटिक के खिले हुये कमल को देख समझा कि यह जल पर है। तत्काल आगे बढ़ते ही वह पृथ्वी पर गिर पड़ा, दुर्योधन की इस मूर्खता पर भीम के अनुचरों को हँसी आ गई।

दुर्योधन अपनी इसी हँसी को मनही में रोक कर मंडप की सुन्दरता देखते हुये आगे बढ़ा। कुछ दूर जाने पर स्फटिक की बनी हुई दीवार को द्वार समझ कर उससे बाहर होने की चेष्टा करने लगा, इसी उद्योग में उसके माथे में बड़ी चोट लगी। कड़ी चोट से दुर्योधन का माथा घूम गया। वह गिरना ही चाहता कि पीछे से सहदेव ने रोक लिया।

कुछ देर बाद स्वस्थ्य होने पर पुनः आगे बढ़ा—मार्ग में स्वच्छ जल से भरे हुये सरोवर को स्फटिक समझ वस्त्र पहरे हुये ही उसमें जा गिरा। उसकी इस आज्ञानता को देख भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव कोई भी हँसी नहीं रोक सके। दुर्योधन किसी प्रकार जल से बाहर हुआ, उसी समय लोगों ने उसे अच्छे-अच्छे वस्त्र लाकर पहराये।

दुर्योधन की बुद्धि ठिकाने नहीं रही, वह हक्का-बक्का हो गया। वह जल को थल और थल को जल समझने लगा।

दुर्योधन की दुर्दशा देख पांडव लोग हँसने लगे। अत्यन्त तमोगुणी होने पर भी दुर्योधन ने अपने मन के भाँवों को रोक लिया। परन्तु अपनी दुर्दशा पर लोगों को हँसते देख

उसे बड़ा दुःख हुआ। अपने मन ही मन यह निश्चय किया कि इस अपमान का बदला अवश्य लूँगा। इस प्रकार सभा भवन के अद्भुत रहस्यों को देख धर्मराज की आज्ञा से हस्तिना-नगरी को लौटा।

पाण्डवों का अतुलित ऐश्वर्य्य तथा अनन्त वैभव देख दुर्योधन चिन्ता करते हुये उदास मन से रथ पर बैठा था। शकुनि ने उसे इस प्रकार पीला देख कहा—महावीर! तुम किस सोच में हो?

दुर्योधन ने कहा—मामा! पाण्डवों के इस महा उन्नति को देख क्रोध से जल रहा हूँ। मैं और क्या कहूँ, मृत्यु से बढ़कर दुःख का अनुभव कर रहा हूँ। इसको उपेक्षा विष खाकर मर जाना, पर्वत से कूदकर प्राण दे देना, धधकती हुई अग्नि में शरीर को जला देना तथा समुद्र में अपने को डाल देना उत्तम समझता हूँ। मामा! पाण्डवों के प्रताप को देखने के लिये मैं इस शरीर को नहीं रक्खूँगा।

शकुनि ने धीरज देते हुये समझा कर कहा—दुर्योधन! वीरों को इस प्रकार चिन्तित नहीं होना चाहिये। तुम्हें पाण्डवों की उन्नति देख अपनी उन्नति करने के लिये सदैव प्रसन्नता पूर्वक सतर्क रहना चाहिये। क्या तुम इस वसुन्धरा को नहीं जीत सकते?

दुर्योधन ने कहा—मामा! हम अपने मित्रों की सहायता से पाण्डवों को अभी जीत सकते हैं। उनके हारते ही सम्पूर्ण पृथ्वी पर मेरा अधिकार हो जायगा।

दुर्योधन को इस प्रकार कटिवद्ध देख शकुनि ने कहा—दुर्योधन! युद्ध में देवता भी पांडवों को नहीं हरा सकते। किसी अन्य उपाय से उन्हें हराना चाहिये। युधिष्ठिर को जूये का व्यसन है। हम जुआरियों के गुरु हैं और हमारा कपट से वनाया हुआ पासा भी हुक्मी है। क्यों न उसे जुआजाल में फँसाकर अनायास जीत लिया जाय? मामा शकुनि की सम्मति सुनते ही दुर्योधन उछल पड़ा और बड़ी कृतज्ञता प्रकट करते हुए सुवल-तनय शकुनि से वोला—मामा! अव तुम्हीं युक्ति करो। पिता को राह पर ले आने से सभी वातें वन जायँगीं।

यथा समय दोनों हस्तिनापुरी पहुँचे। अवसर पाकर एक दिन शकुनि ने धृतराष्ट्र से कहा—महाराज! दुर्योधन का स्वास्थ्य दिन-दिन खराव होता जाता है, आप उसके कष्टों को जान कर उचित उपाय कीजिये। धृतराष्ट्र अत्यन्त व्याकुल हो पुत्र को वुलाकर दुःख का कारण पूछे—

दुर्योधन ने सभी वातें कह सुनाई—अन्त में पिता को अनुकूल देख वोला—तात! मामा, जुआ खेलने में प्रवीण हैं, मैं चाहता हूँ कि पांडवों को वुला कर जुआ के द्वारा उनका सर्वस्व हरण कर लूँ। इसी समय शकुनि ने भी दुर्योधन का पृष्ठ पोषण करते हुये कहा—ठीक है! हम वात की वात में पाण्डवों का अनन्त ऐश्वर्य्य और अपार वैभव विजय कर लेंगे।

शकुनि और दुर्योधन की वातें सुन धृतराष्ट्र ने कहा—यह

बड़ा गम्भीर विषय है। मैं बिना महामति भीष्म तथा महात्मा विदुर की सम्मति के इसमें हाथ नहीं डाल सकता।

विदुर का नाम सुनते ही पापी दुर्योधन के चेहरे पर उदासी छा गई। उसने शोक प्रकट करते हुये कहा—पिताजी! यदि ऐसा नहीं होगा तो हम अपने शरीर को त्याग देंगे।

अपमान के वदले मृत्यु को हम अधिक चाहते हैं। तात! जिस प्रकार हो सके शत्रुओं का नाश करना चाहिये। हम अपने वैरियों का ऐश्वर्य्य कैसे देख सकते हैं? ओह! उनकी दिगन्त व्यापिनी कीर्ति, अपार धन राशि, वैश्यों के समान पृथ्वी के राजाओं का उनके सन्मुख आधीन होना और उनकी वह अद्वितीय सभा देख हम मृत्यु समान दुःख का अनुभव कर रहे हैं।

पुत्र की वातों में आकर जन्मान्ध धृतराष्ट्र अनुकूल हो गये। उन्होंने शीघ्रही हजार खम्भों से सौ द्वार का एक सुन्दर रत्न-जटित द्युत-गृह वनवाने की आज्ञा दे दी। पश्चात् विदुर को वुलाकर कहा—भाई! खाण्डव-प्रस्थ जाओ और युधिष्ठिर को हमारी तरफ से जुआ खेलने के लिये निमन्त्रण दे आओ! महात्मा विदुर ने वहुत समझाया परन्तु पुत्र के हठ के कारण कुछ नहीं कर सके। अन्त में विदुर को जाना ही पड़ा।

द्यूत-रण-निमंत्रण ।

महात्मा विदुर की सत्शिक्षा पक्षपाती अन्ध धृतराष्ट्र के हृदय में नहीं गड़ी। महात्मा विदुर को विवश हो द्युत निमंत्रण लेकर खाण्डव प्रस्थ जाना पड़ा। वे रथ पर बैठकर खाण्डव प्रस्थ पहुँचे और युधिष्ठिर के पास जा कर बैठ गये। धर्मात्मा युधिष्ठिर विदुरजी को यथोचित पूजा कर कुशल समाचार पूछे। विदुर ने कहा—प्रिय धर्मराज! सभी कुशल है। धृतराष्ट्र ने तुम्हारा कुशल पूछा है और तुम्हें भाइयों सहित जुआ खेलने के लिये निमंत्रण दिया है। कहो—तुम्हारा क्या अभिप्राय है? युधिष्ठिर ने कहा—हे धर्मात्मा! जुआ पाप का घर है, क्या आप उस में फंसना अच्छा समझते हैं?

विदुर ने कहा—प्यारे धर्मराज! जुआ अनर्थों की जड़ है। हमने चक्षुहीन धृतराष्ट्र को रोकने की बड़ी चेष्टा की परन्तु पुत्रों के मोह में पड़कर उन्होंने मेरी बात नहीं मानी। इस समय तुम अपनी बुद्धि के अनुसार सोच कर काम करो। कुछ सोच—साच कर महाराज युधिष्ठिर बोले—धर्मात्मा! वहाँ कौन-कौन से खेलाड़ी जुटेंगे। विदुर ने शकुनि, चित्रसेन, सत्यव्रत और पुरुमित्र का नाम बताया।

युधिष्ठिर बोले—महात्मन्! हम केवल धृतराष्ट्र के कहने से नहीं जाते। हम उनके पक्षपात पूर्ण विचार को भली भाँति जानते हैं। परन्तु जब आप स्वयं आये हैं तो

मुझे चलना ही पड़ेगा। मेरा नियम है कि जो कोई मुझे जुआ खेलने के लिये ललकारेगा तो मैं अवश्य जा भिडूँगा। पीछे नहीं हटूँगा।

यह कहकर युधिष्ठिर चलने की तैयारी में लग गये। यथा समय भाइयों और द्रौपदी को लेकर हस्तिनापुर पहुँचे। वहाँ भीष्म, द्रोण, कृप, अश्वत्थामा धृतराष्ट्र, कर्ण आदि सब लोग उनसे मिले। कौरव लोग सुन्दर पाण्डवों को देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुये। धृतराष्ट्र के पुत्रों की स्त्रियाँ द्रौपदी की सुन्दरता देख चंचल हो उठीं।

उस रोज़ पाँचो पाण्डव विश्राम किये। दूसरे दिन सवेरे ही धर्मराज खेलने के लिये मण्डप में गये। महाराज युधिष्ठिर को उपस्थित देख शकुनि ने कहा—

हे युधिष्ठिर! लोग तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे थे, आओ! खेल आरम्भ करें। शकुनि के इस प्रकार कहने पर धर्मराज को सन्देह हुआ। उन्होंने कहा—मामा! जुआ में कपट करना महापाप है। कपट वीरता की निशानी नहीं है। धूर्त कभी सुखी और सम्पन्न नहीं हो सकते।

युधिष्ठिर की युक्ति-पूर्ण बातें शकुनि को बुरी लगी, वह गंभीरता पूर्वक बोला—सुनो—बलवान जब निर्बलों को मारता है तब उसे कोई धूर्त नहीं कहते। वैसे ही पंडित यदि मूर्खको हरा दे तो लोग उसे दुष्ट नहीं कहते। इसके विपरीत यदि भयके कारण मुझे कपटी समझते हो तो मत खेलो—

युधिष्ठिर ने कहा—यदि कोई मुझे द्युत युद्ध के लिये

ललकारता है तो हम अवश्य खेलते हैं। परन्तु कपट करना हम नहीं जानते। कपट व्यवहार को नीचों और पापरों का उद्यम समझते हैं। हम दाँव लगाते हैं हमारे साथ खेलने के लिये कौन तैयार है?

युधिष्ठिर की बातें सुन दुर्योधन ने कहा—हम खेलेंगे परन्तु मेरे बदला पाँसा मामा शकुनि फेकेंगे।

कुछ देर तक वादा-विवाद के पश्चात् यही निश्चित हुआ। खेल आरम्भ हुआ। राजपुरुषों ने पक्षपाती जन्मान्ध धृत-राष्ट्र को सभामें लाकर बैठा दिया। महामति भीष्म, महात्मा विदुर, महर्षि द्रोण और आचार्य्य कृप भी दुःखी मन आकर बैठ गये।

युधिष्ठिर ने एक दाँव लगाया। शकुनि ने अपने कपट पाँसे से उसे तुरन्तही जीत लिया।

इस हार से धर्मराज विचलित नहीं हुये उन्होंने दूसरे दाँव में अपना अनन्त कोष तथा पर्वत के समान स्वर्ण ढेर लगा दिये। इस वार भी शकुनि ने अपने कपटी पाँसों के बल से जीत लिया।

युधिष्ठिर इन दोनों हार से लज्जावश उत्तेजित होकर दाँव लगाने लगे। उन्होंने एक-एक कर रथ, हाथी, घोड़े योद्धा और दास-दासियों को दाँव पर लगाया। दुरात्मा शकुनि बार-बार अपने पाँसों के द्वारा जीतता ही गया।

इस प्रकार भयङ्कर स्थिति देख निष्पक्ष महात्मा विदुर से न रहा गया। उन्होंने द्युत मण्डपको रवपूर्ण करते हुये कहा—

महाराज! यदि हमारा उपदेश आपको प्रिय नहीं ज्ञान पड़े तौ भी एक बार उसे सुन लीजिये। दुर्योधन ही आपके विनाश का कारण होगा। पापियों को पाप का ज्ञान नहीं रहता। मदिरा के नशा में क्या उसकी दुर्दशा का ज्ञान मदिरा पीने वाले को रहता है? उसी प्रकार दुराचारी दुर्योधन ज्ञान हीन होकर इस अपकर्म का फल नहीं समझ रहा है।

हे धृतराष्ट्र! यदि तुम कुल और धर्म की रक्षा करना चाहते हो, पवित्र कुरुवंश को भयङ्कर नाशसे बचाना चाहते हो तो शीघ्र इस पापी पुत्र को त्याग दो। तुमने मोह में फंसकर यह विपत्ति मोल ली है। दुरात्मा नीच शकुनि के पाँसों की कुटिलता हम देख रहे हैं। हम उस पापी की दगाबाज़ी को जानते हैं। आप शीघ्र द्युत-संग्राम वन्द कीजिये।

विदुर की बातें सुन दुर्योधन गरज उठा। उसने कड़कते हुये कहा—तुम सदा पांडवों का पक्षपात किया करते हो, हम तुम्हें जानते हैं। नमक हराम पापी ही होता है। हम तुम्हारी भलाई या बुराई की बातें नहीं सुनना चाहते। तुम क्यों धर्म के बहाने हमारा तिरस्कार किया करते हो। अब भूलकर भी कभी ऐसा उपदेश न देना।

धृतराष्ट्र हक्का-बक्का हो गया। वह अपना कुछ भी कर्तव्य निश्चय नहीं कर सका।

महातमा धर्मराज खेल में व्यस्त थे, उन्होंने इन बातों को नहीं सुना। उधर शकुनि उन्हें उत्साहित करता हुआ बोला—

युधिष्ठिर! अब तो तुम्हारी सम्पत्ति सब समाप्त हो गई। अब क्या दाँव पर रक्खोगे। खेल बन्द करो।

युधिष्टिर ने धीरे-धीरे अपना सर्वस्व गवाँ दिया। यहाँ तक कि चारों भाइयों और अपने को भी सौंप दिया। इस प्रकार पाँचो पांडवों का नाश कर शकुनि बोला—धर्मराज! अब तो तुम सब कुछ हार चुके। हाँ केवल एक वस्तु और है यदि तुम उसे भी लगा दो और जीत जाओ। तो तुम्हें सभी वस्तुयें लौटा दी जायगी। वह वस्तु द्रौपदी है।

शकुनि के इस पाप पूर्ण परामर्श को सुन सभी उसे धिक्कारने लगे। धर्मराज अधर्म के विजय का वीभत्स रूप देख ज्ञान हीन हो रहे थे. उन्होंने बिना विचारे ही कह दिया, हाँ! लगा दिया। अब क्या था? पापी शकुनि ने अपने कपट पाँसो से वह भी जीत लिया।

जन्मान्ध पक्षपाती धृतराष्ट्र दुर्योधन की जीत सुनकर मस्त हो रहा था। उस नीच अन्धे ने ही सर्वनाश करा डाला। यदि वह चाहता तो कुलांगार दुर्योधन की दुराशायों को नष्ट कर आर्यावर्त के घोर पतन रोक लेता। परन्तु वह ज्ञान-हीन पापी तो पुत्र प्रेम के स्वार्थ में मर रहा था। उसे धर्मा-धर्म का कहाँ ज्ञान था?

द्रौपदी विजय की बात सुनते ही दुर्योधन उन्मत्त हो उठा, उसने उसी समय आज्ञा दी कि जाओ! द्रौपदी को अभी सभा में पकड़ लाओ। आज से वह पांडवों की रानी नहीं मेरी चेरी होगी।

द्रौपदी चीर-हरण ।

यह भयङ्कर स्थिति देख सभा में सन्नाटा छा गया। राजा लोग शोक सागर में डूबने लगे। भीष्म, द्रोण, कृप आदि महापुरुषों के शरीर से पसीना बहने लगा। महात्मा विदुर महा दुःखी हो शिर नवा कर बैठ गये। ऐसे समय में नीच धृतराष्ट्र के प्रसन्नता का ठिकाना न था वह बार-बार सबों से पूछता ही रहा, दुर्योधन ने क्या जीता? क्या जीता है?

दुर्योधन की आज्ञा सुनकर विदुर ने कहा—नीच पापी! तेरे बुरे दिन आ रहे हैं। इसी से तुमने ऐसे दुर्वचन कहने का साहस किया है! कुलांगार तेरे कुकृत्यों से यह उज्ज्वल वंश शीघ्र ही नष्ट हुये बिना न रहेगा।

ज्ञानान्ध दुर्योधन ने इस प्रकार विदुर को कड़कते देख विकर्ण से कहा—हे सूत पुत्र! विदुर जी बहुत डर गये हैं। उनकी मति स्थिर नहीं है, तुम शीघ्र जाओ और अन्तःपुर से से द्रौपदी को बुला लाओ।

आज्ञा पाते ही विकर्ण अन्तःपुर में पहुँचा और द्रौपदी से सब समाचार कह सुनाया। कृष्णा यह विचित्र सम्वाद सुन बड़ी विस्मित हुई। उसने कहा—जब धर्मराज स्वयं अपने को हार चुके तब पुनः मुझे हारने का अधिकार कहाँ रहा? सूत पुत्र तुम जाओ, इस समय मैं किसी कारण वश नहीं आ सकती।

दुर्योधन यह सुनते ही जल उठा, उसने तत्काल महाबली दुःशासन को आज्ञा दी कि शीघ्र द्रौपदी को पकड़ कर मेरे पास ले आओ। महावली दुराचारी दुःशासन पापी दुर्योधन की आज्ञा से अन्तःपुर में गया। द्रौपदी दुष्ट दुःशासन की लाल-लाल आँखे देख वहुत ही डरी और अपनी रक्षा के लिये गान्धारी के पास भागी परन्तु इस नीच ने उसे दौड़ कर उसके लम्बे-लम्बे वालों को पकड़ लिया। द्रौपदी काँपती हुई वोली—दुःशासन! हम इस समय एकवस्त्रा हैं, ऐसी दशा में वहाँ जाना उचित नहीं है। द्रौपदी की वातें सुन दुःशासन ने कहा— ओह! मैं यह सभी नहीं जानता। तुम एकवस्त्रा हो चाहे नंगी हो, तुम महाराज दुर्योधन की जीती हुई दासी हो। तुम्हें विवश होकर चलना होगा।

इतना कह कर दुराचारी दुःशासन बाल खींचते हुये उस सुन्दरी को सभा में ले आया। यह दृश्य देख सभा के लोग शोक से व्याकुल हो उठे।

इस प्रकार अपना अपमान करते देख कृष्णा क्रोध में जल उठी। वह सभा के सभासदों को सम्बोधन करते हुये अपनी दुःख कथा कही, परन्तु किसी ने कुछ उत्तर नहीं दिया। इस प्रकार सन्नाटा देख द्रौपदी और भी चिन्तित हुई। पश्चात् उसने अपने पतियों की ओर आँख उठाई। द्रौपदी उनकी अवस्था देख शोक सागरमें डूब गई। इधर पाण्डवों के हृदय में भयंकर अन्तर्दाह उत्पन्न हुआ।

द्रौपदी और पाण्डवों की स्थिति देख कर्ण अपना अप-

मान याद कर खूब प्रसन्न हुआ। पापी शकुनि ने भी द्रौपदी के अपमान में सहायता दी और दुःशासन ने तो वचन मन तथा कर्म से अत्याचार पूर्ण अपमान किया ही। द्रौपदी इस दृश्य को देख क्रोध और शोक से उन्मादिनी सी हो गई—

कुछ क्षण पश्चात् सभासदों को सम्बोधन कर बोली— सभासदों! जब पहले धर्मराज अपने को हार चुके, तब पुनः मुझे दाँव पर रखने का क्या अधिकार था? महात्माओं! फिर मेरे उपर अत्याचार क्यों हो रहा है। आप महानुभावों के होते हुये फिर क्यों नहीं न्याय होता।

द्रौपदी की बातें सुन भीष्म जी बोले—पुत्री! यह भयंकर अन्याय है। युधिष्ठिर को कोई अधिकार न था पुत्री! मैं इसे भयंकर अनर्थ का सूत्रपात समझ रहा हूँ।

महात्मा भीष्म की बातें अभी समाप्त भी नहीं होने पाई थीं कि दुर्योधन ने दुःशासन से कहा—दुःशासन! क्या देख रहे हो? द्रौपदी को नंगी करदो। अब यह हमारी दासी है।

दुःशासन टूट पड़ा। वह नराधम धर्मा-धर्म का विचार भूल एकवस्त्रा द्रौपदी की साड़ी भरी सभा में खींचने लगा। द्रौपदी अत्यन्त दुःखी हो आर्तनाद करने लगी। उस अबला का और कौन सहारा था। वह अपनी धर्मरक्षा के लिये ईश्वर को पुकारने लगी इस विपद में स्वयं धर्म ने द्रौपदी की लज्जा रक्खी।
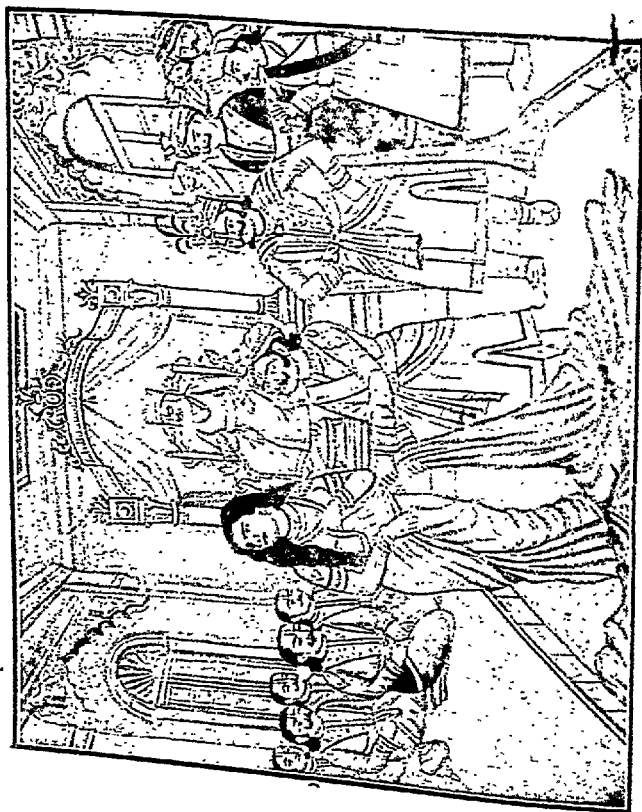
द्रौपदी-चीर-हरण ।

श्री विश्वेश्वर प्रेस, काशी में मुद्रित ।

अविचारी धृतराष्ट्र का पुत्र दुरात्मा दुःशासन साड़ी खींचता-खींचता थक गया परन्तु सती द्रौपदी को नङ्गी नहीं कर सका।

पापत्मा दुःशासन को इस प्रकार पाप कार्य करते देख राजाओं का रक्त उबल पड़ा। वे दुःशासन को डाँटते हुये बोले—पापी! यह क्या करता है? महाबली भीम से यह अत्याचार नहीं देखा गया। वे तत्काल उठ खड़े हुये और गर्जते हुये बोल उठे—हे क्षत्रिय वीरों! सभासदों! आज मैं प्रतिज्ञा करता हूँ—इस नीच कुलांगार दुःशासन की छाती फाड़कर यदि मैं उसका रुधिर न पान करूँ तो कदापि हमारी सद्गति न हो।

पापी दुःशासन जब थक गया तब लज्जित हो मुँह लटका कर जा बैठा। उधर सभी सभासद अन्धे धृतराष्ट्र और उसके पापी बेटों को धिक्कारने लगे। विदुर लोगों को क्षुब्ध देख दोनों हाथ उठाकर बोले—

हे सभासदों! शीघ्र इस मामले को निपटाइये। क्या धर्मराज द्रौपदी को दाँव पर रख सकते थे या नहीं। जहाँ अधर्म होता है वहाँ चुप-चाप देखना भी महापाप है।

हाय! विदुर के इतना कहने पर भी तथा कृष्णा के अश्रु पूर्ण नेत्रों को देखकर भी किसी का साहस नहीं हुआ कि कुछ बोले। इस प्रकार अपनी विजय तथा धाक देख दुर्योधन खिलखिला उठा और पाण्डवों की सती साध्वी द्रौपदी को अपनी जाँघ पर बैठने का इशारा किया।

पापी दुर्योधन की मनोवृत्ति देख भीम ने पुनः गरज कर दूसरी प्रतिज्ञा की।

हे वीरों! मैं संग्राम में इस नारकी की जाँघ गदासे तोड़ न दूँ तो कभी हमारी सद्‌गति न हो।

उसी समय विदुरने राजाओं को सम्बोधन करके कहा—हे क्षत्रियों! सभा में बड़ा अधर्म हो रहा है। महाबली भीमसेन ने यह दूसरी भयंकर प्रतिज्ञा की है आप लोग सत्यधर्मकी रक्षा करते हुये इसे शीघ्र निर्णय कीजिये। परन्तु फिर भी किसी का ध्यान आकृष्ट नहीं हुआ।

इसी बीच में दुर्योधन ने द्रौपदी से कहा—यदि सभी भाई युधिष्ठिर की प्रभुता न मानें तो तुम्हें दासी पन से छुटकारा मिल सकता है।

इस पर अर्जुन ने उत्तर दिया। धर्मराज अवश्य ही हमरे स्वामी थे परन्तु इस समय तो अपने ही दूसरेके आधीन हैं इस लिये इसका विचार स्वयं ही करो।

इधर यह बातें हो ही रही थीं कि अन्तःपुर से भयानक अशकुन की सूचना आई। अंधा धृतराष्ट्र बहुत डरा और अमङ्गलों के करने वाले दुर्योधन को डाँट कर बोला-दुर्योधन क्या करता है? तुमने क्या समझ कर ऐसा पाप किया—इतना कह धृतराष्ट्र ने द्रौपदी से कहा—पुत्री! तुम हमारी पुत्रवधुओं में श्रेष्ठ हो! मैं प्रसन्न हूँ तुम वर माँगो। द्रौपदी ने पाँचो पतियों को दासत्व से मुक्ति तथा राज प्राप्ति की वर याचना की।

पाण्डव लोग धृतराष्ट्र को हाथ जोड़ कर बोले—महाराज ! आज्ञा दीजिये हम लोग क्या करें ?

धृतराष्ट्र ने कहा—हे धर्मात्मा ! तुम लोग अपनी हारी हुई सभी सम्पति लेकर जाओ अपना राज्य करो। हाँ ! मैं इतना आग्रह करता हूँ कि दुर्योधन के दुर्व्यवहार को अपने गुणों के द्वारा क्षमा करदो। धर्मराज ने धृतराष्ट्र की आज्ञा मानली—

पाण्डवों को तैयार देख दुःशासन घबड़ाया हुआ, दुर्योधन के पास पहुँचा और रो-रो कर पाण्डवों के मुक्ति का सभी हाल कह सुनाया। यह सुनते ही दुर्योधन, कर्ण और शकुनि को लेकर तुरत पिता के पास पहुँचा और बोला—तात ! आपने क्या किया ? पाण्डव लोग हम लोगों का सत्यानाश करने के लिये रथ पर बैठ रहे हैं। वे बड़ी लड़ाई करेंगे। हाय ! आज उनके क्रोध से हस्तिना नगरी श्मशान बन जायगी। पिता जी ! प्रयास व्यर्थ हो गया। हाय ! मेरी आशायें पुष्प लाकर भी मुर्झा गईं। देखिये—क्या वे अपना अपमान भूल सकेंगे ? कदापि नहीं। यह सुनते ही धृतराष्ट्र डरे और सबों से सम्मति पूछने लगे।

वनवास
और
पाण्डवों की भयंकर प्रतिज्ञा

दुर्वृत दुर्योधन का जादू चल गया। धृतराष्ट्र फिर फेर में पड़ गये। अन्त में यही निश्चय हुआ कि पाण्डव पुनः बुलाये जाँय। इस बार दाँव में धन—धान्यों के रखने की बात नहीं चली। यह निश्चय किया गया कि जो हारेगा उसे १२ वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास करना पड़ेगा। अज्ञातवास के समय यदि उनका पता लग जायगा—तब उन्हें पुनः बारह वर्ष वनमें व्यतीत करना होगा।

युधिष्ठिर फिर बुलाये गये। इस बार भी दुष्ट शकुनि ने जीत लिया। पाँचो पाण्डव वनवास के लिये तैयार हो गये। उन्हें मृग चर्म धारण किये देख धृतराष्ट्र के दुर्म्मति पुत्र अत्यन्त प्रसन्न हुये। धर्मात्मा पाण्डव पत्नी के साथ द्यूत गृह से बाहर निकले—उस समय दुःशासन ने पाण्डवों का अपमान कर द्रौपदी से कहा। द्रौपदी! इन वनवासियों के साथ सुखी नहीं रह सकती। तुम आओ! हम लोगों में से किसी से विवाह करलो।

यह सुनते ही महाबली भीम दिशाओं को कंपाते हुये बोले—नीच! याद रहे! जिस प्रकार तू मेरे हृदय को बिद्ध

कर रहा है उसी प्रकार एक दिन लड़ाई के मैदान में हम तुम्हारे कलेजे को छेदेंगे। दुःशासन दिल्लगी करता हुआ एक तरफ निकल गया। इसी बीच में दुर्योधन पहुँचा और पाण्डवों की नकल करने लगा। भीम से न रहा गया, उन्होंने कहा—खूब नाच ले, पापी! तुझे बिना यम लोक भेजे न छोड़ूँगा। मैं धृतराष्ट्र पुत्रों को एक-एक कर गदा घात से चूर्ण-चूर्ण करूँगा। और सुन ले, तेरे मित्र कर्ण का महाबली अर्जुनके द्वारा नाश होगा, तथा सहदेव तेरे शकुनिको मारेंगे।

इसी समय अर्जुन ने कहा—तेरह वर्ष बीतने दो, मैं अवश्य ही अपमान करने वाले सूतपुत्र का वध करूँगा। हिमालय टल जाय, सूर्य शीतल हो जाय, परन्तु मेरी प्रतिज्ञा नहीं टल सकती।

अर्जुन की बातें समाप्त होते ही माद्री तनय सहदेव अत्यन्त क्रोधावेश में बोल उठे। पापी शकुनि! ठहर! तेरे पापों का प्रायश्चित शीघ्र होगा।

इसी समय नकुल ने कहा—जिन दुराचारियों ने द्रौपदी की हँसी की है अथवा उसके अपमान से प्रसन्न हुये हैं, हम उन्हें बिना मारे न छोड़ेंगे।

पाण्डवों की भयंकर प्रतिज्ञा सुन सभी थर्रा गये, विदुर ने आगे बढ़ कर आशीर्वाद देते हुये कहा—पाण्डवों! तुम्हारा सर्वत्र मंगल हो। तुम्हारी माता वृद्धा हैं, उन्हें कैसे बन में ले जाओगे, उन्हें हमारे घर घर पर रहने दो। हम उनकी यथोचित सेवा करेंगे।

पाण्डवों ने कहा—हे धर्मात्मा। आप श्रेष्ठ हैं। आप की आज्ञा मानने के लिये तैयार हैं।

विदुर बोले! पाण्डु पुत्रों! विपत्ति में धैर्य से काम लेना। जाओ! हम आशीर्वाद देते हैं।

पाण्डव सबों को प्रणाम कर आगे बढ़े। द्रौपदी माता-कुन्ती के पास गई। कुन्ती अधीर हो उठी। पश्चात् शोक विह्वल अवस्था में बोली—बेटी! वन के दुःखों को धैर्य पूर्वक सहना। तुम स्वयं सुशील और पतिव्रता हो। हम अधिक क्या कहें। तुम्हारे पतिव्रत बल से बाल बांका भी नहीं होगा।

द्रौपदी ने अपनी चोटी खोल डाली और एक वस्त्र धारण कर रोती हुई पाण्डवों के पीछे-पीछे चली।

कुन्ती से यह नहीं देखा गया। वह विलाप करती हुई पुत्रों के पास पहुँची, पांडवों ने माता के पैर छूये और धैर्य्य देकर उन्हें अन्तःपुर में भेज आगे बढ़े।

इति श्री महाभारत सभापर्व समाप्तः।
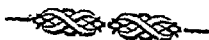
वन पर्व ।

पाण्डव-वन-गमन ।

और

धृतराष्ट्र का शोक ।

—:*:—

दुर्दैव काल ! तेरी गति बड़ी विलक्षण है। यह अखिल परिवर्तन शील विश्व तेरे माया का लघु रूप है। तू क्षत्रमात्र में क्या कर दिखाता है—नहीं कहा जाता। वास्तव में तू अनन्त है, तेरी महिमा अकथनीय और अवर्णनीय है।

द्रौपदी सहित पाँचो पाण्डवों को आशीर्वाद दे महात्मा विदुर लौट आये। उन्हें देखते ही धृतराष्ट्र ने भयभीत होते हुये पूछा—हे विदुर ! पाण्डव किस रूप में वन को गये हैं।

विदुर ने कहा—महाराज ! कल्याण नहीं दिखाई पड़ता। आपने पुत्र-प्रेम में पड़कर भयङ्कर अनर्थ किया है। आपके

द्वारा ही यह भीषण अत्याचार और अधर्म हुआ है। यदि आप पृष्ठ-पोषण नहीं करते तो दुर्योधन की इतनी शक्ति कहाँ थी कि वह इस प्रकार से भय रहित होकर अधर्म करता। प्रज्ञाचक्षु रखते हुये भी आपने उनसे काम नहीं लिया।

हे कुरु-श्रेष्ठ! पांडवों के वन जाने का बड़ा विचित्र दृश्य था। मैं उनकी गति-विधि देखकर बड़ा आश्चर्य्यित हुआ। अब भी मेरे हृदय में कौतूहल का श्रोत उमड़ रहा है। महाराज! सबों के आगे-आगे धर्मराज अपना मुँह ढँक कर सिर झुकाये हुये वन में गये हैं। उनके पीछे भीम भुजाओं को देखते हुये जा रहें थे। भीमसेन के बाद महा-बली अर्जुन बालू फेंकते हुये बढ़ रहे थे। नकुल शरीर पर मिट्टी लपेटे हुये थे, और सहदेव मुख पर कालिमा पोते चले जा रहे थे। सबसे पीछे कृष्णा अपने बालों से मुँह छिपाये करूण-विलाप करती जा रही थी। पाण्डवों के तपस्वी पुरोहित धौम्य उत्तर क्रिया के साम मन्त्र पढ़ते जाते थे।

विदुर की बातें सुन धृतराष्ट्र को बड़ा विस्मय हुआ। वे इसका अर्थ नहीं समझ सके। उन्होंने अत्यन्त कौतूहल वश विदुर से पूछा—

विदुर! क्या पांडव लोग उन्मत्त तो नहीं हो गये? उनके इस प्रकार करने का क्या अभिप्राय है? जान पड़ता है कि भयङ्कर विपत्ति के आते ही उनकी बुद्धि पलट गई है। अकास्मिक विपत्तियों में कभी-कभी ऐसा होता है।

विदुर ने कहा—महाराज! पाण्डव अज्ञानी नहीं हैं। वे

विपत्तियों के पर्वत को देखकर भी नहीं डरते, इसका रहस्य आप नहीं समझ सके।

विदुर को इस प्रकार कहते सुन धृतराष्ट्र ने उत्सुकता पूर्वक कहा—विदुर! तब तुम मुझे उनके भाव-भङ्गी तथा रूप का कारण बतलाओ।

विदुर ने कहा—सुनिये!

ज्येष्ठ पाण्डव बड़े दयालु हैं। उन्होंने अपने नेत्र इसलिये मूँद लिये थे कि क्रोधाग्नि के द्वारा कहीं यह पाप पूर्ण राज्य तत्काल भस्म न हो जाय। आज तक दुर्योधन ने जितना अत्याचार किया था, उनसे उन्हें क्रोध नहीं आया था। परन्तु द्रौपदीचीर हरण वाले अत्याचार से वह क्षुब्ध हो उठे थे। अतः वे इस नगरी को भस्म होने से बचाने के लिये नेत्र को मूँदे जा रहे थे।

महाबली भीमसेन यह सोचते हुये जा रहे थे कि जिन अत्याचारियों ने अत्याचार किया है, देखूँ उसे पीस डालने के लिये इन हाथों को कब अवसर मिलता है। महारथी अर्जुन बालू उड़ाते जाते थे उसका भी बड़ा गम्भीर रहस्य है, राजन्! उनका ध्येय था कि कभी इसी प्रकार बाण वर्षा के द्वारा शत्रुओं का नाश करेंगे। देखें कब समय मिलता है? नकुल के शरीर की कान्ति का सहन करना साधारण काम नहीं, उनका सौन्दर्य्य स्वर्गीय सौन्दर्य्य था, इस लिये उन्होंने शरीर पर मिट्टी लपेट ली थी। महाबली सहदेव ने कालिख पोत कर अपने को छिपा लिया था, क्योंकि बिना बदला

लिये वे कैसे जा सकते थे? कृष्णा के करुण-विलाप और केशों से मुँह ढाँपे रखने में बड़ा गूढ़ भेद है। वह जानती थी कि जिस प्रकार मैं करुण-क्रन्दन कर रही हूँ। आज से तेरह वर्ष बाद शत्रुओं की स्त्रियाँ भी इसी प्रकार करुण क्रन्दन करेंगी।

महात्मा धौम्य भी यमराज का स्तोत्र पढ़ते इसी अभिप्राय से आगे बढ़ रहे थे कि युद्ध में जब सभी अत्याचारी कौरव मारे जायेंगे तब उनके पुरोहित भी इसी प्रकार से यमराज का पाठ पढ़ेंगे।

महाराज! उनके वन गमन के समय भाँति-भाँति के अपशकुन और उत्पात हो रहे थे।

विदुर की बातों ने धृतराष्ट्र को थर्रा दिया, उसकी आत्मा काँप उठी। वह बड़े फेर में पड़ा। बार-बार ठंढी साँसें लेता हुआ, आहें भरने लगा।

धृतराष्ट्र को इस प्रकार दुखी देख—राजमान्य बूढ़ा सारथी संजय ने कहा—

हे राजन्! आप ने सभी बातें जान कर भी उचित सलाह न मानी। तब दुःखी होने की क्या आवश्यकता है? निश्चय ही आप के द्वारा कुरु कुल में विद्वेष की अग्नि लगेगी। आपके ही दोष से नहीं—प्रत्यक्ष अपराध से कुरु वंशका नाश होगा। अब पछताने से क्या होता है।

उधर नगर निवासी पाण्डवों के वनवास की बातें सुन मारे क्रोध के जल उठे। सभी कौरवों के पापों को

जानते थे। भीष्म, धृतराष्ट्र और विदुर को दुर्वचन कहने लगे। लोगों ने निश्चय किया कि जहाँ कर्ण और शकुनि मन्त्री हैं—वहाँ कल्याण की आशा करना व्यर्थ है। इस पाप पूर्ण राज्य पर लात मार कर चलो—जहाँ धर्मराज रहेंगे वहीं जाकर हम लोग भी रहें।

वहुत सी प्रजायें अनाथों के समान रोती हुई। हा! युधिष्ठिर! हा भीम! हा अर्जुन! हा! नकुल। और हाँ सहदेव कहती हुई दौड़ पड़ी। हस्तिना नगरी दुःख और शोक में डूब गई—सभी आगे बढ़ कर पाण्डवों को घेर लिये—इस प्रकार मार्ग रोक कर लोग युधिष्ठिर से बोले—

महाराज! हमलोग इस पाप पूर्ण राज्य में नहीं रहना चाहते। हम लोग आप के साथही रहना चाहते हैं, कृपा कर साथ ले चलिये। हम लोगों को आप न छोड़िये।

इस प्रकार प्रजायों को व्यग्र देख महात्मा युधिष्ठिर ने बहुत समझा बुझा कर लौटा दिया।

अक्षय स्थाली की प्राप्ति ।

शोकार्त नगर-निवासियों के लौटने पर महात्मा पाण्डव लोग द्रौपदी के साथ रथ पर आरुढ़ होकर नगर के प्रधान द्वार से शीघ्र निकल उत्तर दिशा की ओर बढ़े। उन महात्माओं के साथ स्त्रियाँ सहित इन्द्रसेन आदि चौदह दास भी चले।

मार्ग बड़ा भयानक था, टेढ़े मेढ़े पथरीले पथों को पार करते हुये सभी विकट वन में पहुँचे। संध्यातक विना कुछ खाये पीये चलकर सभी पतित पाविनी माँ भागीरथी के किनारे पहुँचे।

दिन का अवसान हो चुका था। भगवान भानु पश्चिम जलधि में प्रविष्ट हो चुके थे। धीरे-धीरे पृथ्वी पर तम का साम्राज्य छा रहा था, सभी एक वट-वृक्ष के नीचे उतरे और वहीं ठहर गये। एक भिक्षुक ब्राह्मणों का दली भी वहीं आ ठहरा। सबों ने केवल गङ्गाजल पीकरही रात्रि बिताई।

सवेरा होते ही पाण्डव लोग आगे चले यह देख ब्राह्मण गण भी उनके साथ चलने के लिये तैयार हुये—ब्राह्मणों को अपने साथ चलते देख धर्मात्मा युधिष्ठिर ने कहा—हे भूसुरों! मेरा सर्वस्व अत्याचारियों ने हर लिया है। राजपाट छिन गया है। हम सब कुछ गँवा कर वनमें जारहे हैं। हमारे साथ चलने पर आप लोगों को बड़ा कष्ट होगा।

आगे भयानक विपिन मिलेगा। वहाँ जङ्गली जन्तुओं से आपको बड़ा दुःख होगा अतः आप नगर को लौट जाइये।

ब्राह्मणों ने कहा—हे धर्मपुत्र! आप हम लोगों के लिये चिन्ता न करें। भगवान के भक्तों के लिये कहीं दुःख नहीं है। हम लोगों को साथ चलने दीजिये।

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया। हे द्विजवरों! हम ब्राह्मणों के चरण सेवक हैं। परन्तु इस हीनावस्था में हम क्या सेवा कर सकते हैं? आप लोग स्वयं ही सोचिये।

युधिष्ठिर को इस प्रकार कहते सुन ब्राह्मणों ने कहा—पाण्डुनन्दन! हम लोगों के भोजन की चिन्ता न कीजिये, हम लोग स्वयं अपना प्रबन्ध कर लेगें। हम लोग आपके साथ रहकर अपने मीठे बचनों, धार्मिक उपाख्यानों तथा सद उपदेशों के द्वारा आपको प्रसन्न रखना चाहते हैं। हमारी कामना पूर्ण करें।

धर्मराज ने कहा—विप्रों! आप सत्य कहते हैं, निश्चय ही आप लोगों के रहने से दुःख की मात्रा कम हो जायगी। किन्तु जीविका निर्वाह के लिये हम आप लोगों को स्वयं कष्ट कैसे दे सकेंगे। इतना कहते-कहते महाराज का गला भर आया, एक बार उन्होंने ठंढी साँस ली, और—हाय! धृतराष्ट्र के पापी पुत्रों को धिक्कार है कह कर विकल हो धरती पर बैठ गये।

महाराज युधिष्ठिर की अवस्था देख ब्राह्मणों का हृदय पिघल गया। सभी उन्हें धैर्य देते हुये विलाप करने लगे।

महाराज के शान्त होने पर आचार्य्य धौम्य ने कहा— हे धर्मात्मा। सूर्यदेव संसार के भरण पोषण करने वाले हैं। वेही संसारिक जीवों को अन्न देते हैं, महाराज! आप सूर्यदेव की उपासना करें। मुझे विश्वास है कि आप सिद्धि प्राप्त करेंगे। युधिष्ठिर! उनकी कृपासे फिर किसी बात की कमी नहीं रह जायगी। आप ब्राह्मणों का भरण पोषण कर सकेंगे।

महाराज युधिष्ठिर अत्यन्त प्रसन्न हो बोले—भगवन्! किस प्रकार सूर्यदेव प्रसन्न होंगे! मुझे बतलाइये। धौम्य ने सूर्य का महास्तोत्र बता दिया।

महात्मा युधिष्ठिर धौम्य के बतलाये हुये महास्तोत्र के द्वारा सूर्य भगवान की यथा विधि पूजा करने लगे। धर्म-राज की भक्ति देख दिवाकर अत्यन्त प्रसन्न हो गये और धधकती हुई अग्नि के समान शरीर धारण कर प्रकट हो बोले—वत्स! क्या चाहता है? माँग! मैं तुझसे अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ हूँ।

युधिष्ठिर ने कहा—भगवन्! आप स्वयं अन्तर्यामी हैं, मेरी अवस्था पर विचार कर स्वयं ही वर दीजिये।

सूर्यदेव अत्यन्त प्रसन्न हो बोले—लो! मैं यह अक्षय स्थाली देता हूँ। प्रति दिन जब तक द्रौपदी भोजन न करेगी। तब तक इस थाली में षट्रस दिव्य भोजन तैयार रहेगा। इससे नित्य नाना प्रकार का भोजन मिला करेगा।

महात्मा धर्मराज के हाथमें अक्षय स्थाली देकर भगवान

सूर्य अन्तर्ध्यान हो गये। धर्मराज ने द्रौपदी को बुलाकर वह स्थाली दे दी।

अक्षय स्थाली से बड़ा लाभ हुआ। द्रौपदी भोजन तैयार कर पहले वनवासी ब्राह्मणों को खिलाती थी। पश्चात पतियों को भोजन देती और आप अन्त में करती थी।

ब्राह्मण-मण्डली साथ में ही रहने लगी। सभी धर्मराज के हित-चिन्तन में लगे रहते थे, पवित्र कथा वार्ताओं से वनवासी पांडवों का मन प्रफुल्लित रखते थे।

कुछ दिन वहाँ रह कर पाण्डव लोग कुरुक्षेत्र आये, वहाँ से फिर आगे बढ़े। भयानक वनों को पार करते हुये सभी सरस्वती नदी के किनारे चले।

सरस्वती के उपकूल मार्ग से चलते हुये लोग बहुत आगे बढ़ गये। इस प्रकार धीरे-धीरे बढ़ते हुए कुरू-जाङ्गल देश में पहुँचे। उस वन में कई दिन तक सभी घूम-घूम कर विचरण करते रहे। एक दिन घूमते हुए लोग एक महा सुन्दर वन में पहुँचे। पांडव लोग उसकी रमणीकता देख अत्यन्त प्रसन्न हुये और वहाँ कुछ काल निवास करने का विचार किये। पांडवों ने ब्राह्मणों से राय ली, सबों ने एक स्वर से स्वीकृति की। लोग वहीं ठहर गये। वह सुन्दर वन काम्यक वन के नाम से प्रसिद्ध था।

धृतराष्ट्र-विदुर-विवाद, पुनर्मिलन और कर्णादि की कुटिलता ।

-*-*-

काम्यक वन शोभित हो उठा। पांडवों के निवास ने उस जंगल में मङ्गल मचा दिया। धीरे-धीरे सिद्धियाँ सर्वत्र छिटकने लगीं। पाण्डवों के साधु स्वभाव को देख काम्यक वनवासी तपस्वीगण अत्यन्त सन्तुष्ट हुये।

एक दिन जब पाँचो भाई बैठे हुये आपस में वार्तालाप कर रहे थे कि अचानक चचा विदुर को आते देख आश्चर्य्य में पड़ गये। युधिष्ठिर ने कहा—भीम! नहीं कहा जा सकता उनके आने का क्या अभिप्राय है? क्या इस बार भी दुर्योधन जुए के जाल से हम लोगों को फँसा कर अस्त्र-शस्त्रों को भी लेना चाहता है? हा! शस्त्र ही हम लोगों के हाथ पैर हैं।

पांडवों ने आगे बढ़कर महात्मा विदुर का सन्मान किया, सभी उन्हें आदर पूर्वक लिवा लाये। आदर सत्कार के पश्चात् उनके आने का कारण पूछे—विदुर ने कहा—

हे पाण्डु पुत्रों! एक दिन धृतराष्ट्र ने सम्मति के लिये बुला भेजा। उसने कहा—विदुर! होनी थी वह हो चुकी, अब क्या करना चाहिये? मैं वही उत्तर दिया जो बराबर दिया करता था। इस पर वह क्षुब्ध हो बोला—

हे विदुर! प्रथम जब तुमने यह बात मुझसे कही थी उस समय हमने विचार किया था कि तुम हमारी भलाई के लिये कह रहे हो। परन्तु अब हमने जान लिया, तुम्हारा उद्देश केवल पांडवों को राज दिलाना ही है। उनकी भलाई करना ही तुम्हारा सत्कर्तव्य है। परन्तु मेरी भलाई-बुराई का ध्यान तुम्हें नहीं रहता। पक्षपात पूर्ण कार्य करने से हमारा अभीष्ट सिद्ध नहीं हो सकता। तुम्हारे यहाँ रहने से ही मुझे क्या लाभ होगा? तुम्हारा रहना और न रहना बराबर है।

इस प्रकार कहते हुये धर्मात्मा विदुर ने ज्येष्ठ पांडव को सम्बोधन कर कहा—हे धर्मराज! इतना कहकर धृतराष्ट्र उठे और चले गये। मैं तुम लोगों को यही जताने के लिये आया हूँ कि साधारण रूप में समस्या हल नहीं होगी। महात्माओं! टेढ़े उँगुली के बिना घी नहीं निकलती। तुम लोग धैर्य धारण कर वनवास की प्रतीक्षा करो।

विदुर की बातें सुन महात्मा युधिष्ठिर ने कहा—हे महात्मन्! हम आपकी आज्ञा के अनुसार कार्य करेंगे।

उधर अन्धे धृतराष्ट्र ने विदुर की जुदाई से दुःखी होकर सोचा कि विदुर का पाण्डवों के पास रहना ठीक नहीं। क्योंकि सम्भव है विदुर की मन्त्रणा से पांडवों को कुछ लाभ हो जाय। इस विचार ने उन्हें एक दम चिन्तत कर दिया। वे आवश्यकता से भी अधिक डर गये। इस प्रकार अत्यन्त दुःखी होकर कहने लगे—

हाय! बड़ा अनर्थ हुआ। हमने बड़ा बुरा कर्म किया। विदुर धर्मात्मा था, सत्यवक्ता था। निरन्तर सत्योपदेश देता था, हितोपदेश सिखाता था। उस महापुरुष ने कभी कोई अपराध नहीं किया। हां! व्यर्थ मोह में पड़कर हमने उसे विरक्त कर दिया।

इस प्रकार वे अत्यन्त चिन्ता करते हुये संजय से बोले—संजय तुम शीघ्र काम्यक वन जाओ। जिस प्रकार हो सके विदुर को लिवा लाओ। उनसे कहना कि चलिये, आपके विना धृतराष्ट्र तड़प रहे हैं।

संजय विदुर को खोजता-खोजता काम्यक वन में पहुँचा। मार्ग में चलते हुये उसने दूर से देखा कि पांडवों के बीच में विदुर जी बैठे हैं। महात्मा विदुर जी संजय से मिले और पांडवों को आशीर्वाद दे हस्तिनापुर लौटे।

विदुर का आना सुन धृतराष्ट्र गद्गद् हो उठे, वे उन्हें लेकर गोद में बैठ गये और प्रेम-पूर्वक कहने लगे। भाई! मेरे अपराध को क्षमा कर दो। हमने बड़ा अनुचित कार्य किया है।

विदुर जी बोले—कुरु प्रवीर! आप शोक न कीजिये। मैं तो स्वयं आप के दर्शनों की अभिलाषा से आया हूं। भाई! हमारे लिये कौरव और पांडव दोनों समान हैं, परन्तु उनकी दीनावस्था देख मुझे दया आती है। धृतराष्ट्र अत्यन्त प्रसन्न हुये और अपना अहो भाग्य समझने लगे।

विदुर का लौटना—दुर्योधन को बुरा मालूम हुआ।

उसने अपने दुराचारी साथियों को बुलाकर कहा—भाइयों देखो! विदुर फिर आगया। यह छिपे-छिपे पान्डवों की ख़ूब भलाई किया करता है। यदि रह जायगा तो एक न एक दिन निश्चय ही उनको राज्य दिला देगा। इसके लिये अभी से उद्योग करना चाहिये।

दुर्योधन की बातों को सुन उपदेश देते हुये शकुनि बोला–दुर्योधन! तुम्हें किसी बात का विचार नहीं हैं। तुम सदैव बुद्धि हीनों के समान अपने अनिष्ट की बातें किया करते हो, यह ठीक नहीं। पाण्डव लोग अभी वन को छोड़कर नहीं जा सकते, वे प्रतिज्ञा के बन्धन में बधे हैं। मैं स्वयं धृतराष्ट्र को मिलाकर उनके अभीष्ट के अनुसार सभी बातें ठीक कर लूँगा। तुम लोग चिन्ता और शीघ्रता को दूर करो। शीघ्रता से तुम अपने मनो-विचारों को दृढ़ नहीं बना सकते। खूब सोच समझ कर तैयारी करो। पांडव वचन के धनी हैं, वे अपनी प्रतीज्ञा के अनुसार तब तक नहीं लौट सकते। तुम निर्भय होकर कार्य्य करो। हम तुम्हारी सहायता के लिये तैयार हैं।

दु:शासन बोला—मामा! ठीक है,–मैं सहमत हूँ।

इसी समय कर्ण ने मुसकराते हुये कहा—भाई दुर्योधन! भय न करो। यदि पाण्डव लोग आ जाँय भी तो सहज ही में मामा के द्वारा कपट जाल में फाँसे जायेंगे।

कर्ण ने अपनी बात पर दुर्योधन को आकृष्ट होते न देख पुनः बोला—भाइयों! एक उपाय और है, आओ! हम

लोग दलबाँध कर काम्यक वनमें चलें और उन लोगों को इस दुर्वल अवस्था में घेर कर मार डालें।

कर्ण की युक्ति सुन सभी प्रसन्न हुये, और शीघ्र अस्त्र-शस्त्र लेकर रथ पर बैठ काम्यक वन की ओर चल पड़े। राह में ही महर्षि व्यास से भेंट हो गई उन्होंने इन लोगों को अनर्थ करने जाते देख रोका और धृतराष्ट्र के पास लाकर बोले-

धृतराष्ट्र! यह क्या करते हो? क्यों नहीं अपने पुत्रों को आधीन रखते हो? तुम्हारा पुत्र नीच और पापी है, उसे रोको, नही तो पाण्डवों की हानि के बदले कहीं वही हानि के गाल में न घुस जाय?

तेजस्वी महात्मा व्यास की बातें सुन धृतराष्ट्र डरते-डरते बोले—भगवन,! जुआ खेलने की किसी की सम्मति नहीं थी, हमने पुत्र प्रेम में आकर दुर्योधन को नहीं रोका।

व्यास देवजी बोले—रोको! यदि तुम पुत्र का मुँह देखना चाहो तो उसे अधर्म से रोको—अन्यथा सर्वनाश हुये विना न रहेगा।

श्री कृष्ण-मिलन।

—*—*—

पाण्डव-वनवास की खबर पहुँचते ही द्वारिका नगरी शोक-सागर में डूब गई। बड़े-बड़े यादव वीर कौरवों के कुकृत्य पर क्षुब्ध हो उठे। बलराम और कृष्ण के दुःख का ठिकाना न रहा, वे क्या करना चाहिये यही सोचते हुये पाण्डवों से मिलने के लिये द्रौपदी के पाँचो पुत्रों, सुभद्रा और अभिमन्यु को लेकर काम्यक वन की ओर चले। इसी समय महाबली धृष्टद्युम्न भी पाण्डवों को खोजते हुये उसी वनमें आये।

भयानक वनों और पर्वतों को पार कर महात्मा कृष्ण काम्यक वनमें पहुँचे। वनवासी पाण्डवों को देख उनका हृदय करूणा से पूर्ण हो गया। पाण्डवों ने श्रीकृष्ण को यादवों के साथ आते देख अपना अहोभाग्य समझा।

यथा समय सभी मिलकर बैठे, श्रीकृष्ण ने धैर्य देते हुये कहा—महात्माओं! पृथ्वी दुराचारी कौरवों के रक्त की प्यासी है, वह शीघ्र ही इन आततायियों के रक्त से तृप्त होगी। भय न करो। आपत्ति के समय धैर्य्य धारण करना चाहिये। तुम निश्चय ही इन दुष्टों को विजय कर एक दिन राजा बनोगे।

भगवान कृष्ण की बातें सुन कृष्णा बोली—हे कृष्ण! हाय! तुम्हारे रहते हमारी ऐसी दुर्दशा हुई। मैं महाबली

पाण्डवों की स्त्री, महावीर धृष्टद्युम्न की वहन तथा तुम्हारी अनुचरी होकर भी इस प्रकार पद दलित गई? मधुसूदन! क्या मैं भरी सभा में दुष्ट दुःशासन द्वारा नङ्गी की जाने के योग्य हूँ? हाय! संसार में मेरा कोई नहीं रहा। आश्चर्य्य! तुम भी मुझे भुला दिये। हाय! महावली पाण्डवों, वीर पाञ्चालों तथा तेजस्वी यादवों के रहते मुझ पर पाशविक अत्याचार किया जाय। शोक! तुम लोगों के शस्त्र धारण करने को धिक्कार है। इस प्रकार कहते हुये वह फूट-फूट कर रोने लगी। उसका रोना सुन सबों को रोमाञ्च हो आया।

द्रौपदी की दुर्दशा तथा करूण विलाप को सुन महाधीर धारी कृष्ण का धीर भी छुट गया। वे वड़ी कठिनता से हृदय को वलवान कर वोले—द्रौपदी! धैर्य्य धारण करो। जिन दुराचारियों ने तुम्हारा अपमान किया है, उन दुर्वृतों की स्त्रियाँ अधिक दुःखी होगी। सुन्दरी! तुम अपने शोक को दूर करो मैं पूर्ण शक्ति से पाण्डवों की सहाता करूँगा। द्रौपदी! मैं असत्य नह कहता। देखना—वनवास के समाप्त होते ही महावीर अर्जुन के पैने बाणों से दिशायें पूर्ण हो जायँगी।

कृष्ण की वातें सुन कृष्णा कुछ शांत हुई—उसी समय अर्जुन ने भी कृष्ण की वातों का समर्थन करते हुये कहा—कल्याणी! रोदन न करो। कृष्ण का कथन अक्षरशः सत्य होगा। इसी समय धृतद्युम्न ने कहा—वहन! धीरज धरो,

कुछ ही दिनों में कौरवों का संहार होगा। इस प्रकार कृष्णा को शान्त कर महामति कृष्ण युधिष्ठिर से बोले—

हे धर्मराज ! द्यूत-युद्ध के समय यदि हम द्वारिका में रहते तो इस कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता। मेरे रहते हुये कभी जुआ नहीं हो सकता था। हम कभी धृतराष्ट्र को जुये के अनुकूल नहीं होने देते। यदि हमारी बात लोग नहीं मानते तो मैं निश्चय ही दुराचारी कौरवों को दण्ड दिये बिना नहीं रहता। हाय ! मैं उस समय द्वारिका में नहीं था। शिशुपाल के मरने पर जब मैं यहाँ ही था उसका मित्र शाल्व भारी सेना के साथ द्वारिका पर आ चढ़ा था। मैं उस दुष्ट के युद्ध में फँस जाने के कारण विवश हो गया। अतः तुम्हारी विपत्ति के समय नहीं पहुँच सका। वीरो ! तुम लोग वनवास पूर्ण कर हस्तिना नगरी पहुँचो और अपना राज्य माँगो। यदि कुछ भी इन्कार किया तो निश्चय ही पांडवों के द्वारा उनका नाश कराऊँगा। इस प्रकार भगवान कृष्ण सबों को समझा बुझाकर तथा द्रौपदी को आश्वासन देकर अपने यादव वीरों, द्रौपदी के पाँचो पुत्रों तथा सुभद्रा और अभिमन्यु सहित दिव्य रथ पर बैठ कर द्वारिका को चले।

युधिष्ठिर और द्रौपदी ।

सबों के चले जाने पर धर्मराज ने भाइयों से कहा—महात्माओं ! हम लोगों को १२ वर्ष व्यतीत करना है, अतः ऐसा स्थान ढूँढ़ लेना चाहिये जहाँ सब प्रकार का आराम हो, फल फूल तथा कन्द मूल अधिकता से मिलते हों। उत्तम सरोवर तथा जलाशय हों।

महात्मा युधिष्ठिर की बातें सुन अर्जुन ने कहा—यदि कोई उपयुक्त स्थान न मिले तो एक स्थान मुझे मालूम है। पासही में द्वैत वन नामक बड़ा मनोहर स्थान है। वहाँ निर्मल जलवाले जलाशय और सरोवर हैं। सभी ऋतुओं में अच्छे-अच्छे फल और फूल मिलते हैं। उस सुरम्य वन में कन्द-मूल और पशु-पक्षियों की अधिकता है।

वर्षा ऋतु का आरम्भ था। सर्वत्र हरियाली थी। भाँति-भाँति के फूले हुये वृक्ष वन की सुन्दरता बढ़ा रहे थे। अनेक प्रकार की लतायें चारो ओर छा रही थीं। सर्वत्र मोर, चकोर और कोयल आनन्द से बोल रही थीं। सरोवरों में कमलों पर भौंरे गुँजा रहे थे। परम रमणीक इस द्वैत-वन को देख पाण्डव अत्यन्त प्रसन्न हुये और उत्तम स्थान देख रथ से उतरे। वनवासी महात्माओं ने उनका बड़ा आदर किया। पाँचो पाण्डव वनवासियों और धर्मात्मा तपस्वियों से मिल कर अत्यन्त प्रसन्न हुये। सभी उस स्थानमें कुशल पूर्वक रहने लगे।

एक दिन सन्ध्या काल में जब पाचों पाण्डव परस्पर धर्म चर्चा और अनेक विषयों पर विचार कर रहे थे। शोक संतप्त हृदया द्रौपदी ने धर्मराज से कहा—हे आर्य पुत्र! दुष्ट दुर्योधन कितना निर्दय हृदय तथा निरंकुश है। मुझे इतना दुःख देकर अनुमात्र भी द्रवित नहीं हुआ। हाय! आप के मृग-चर्म धारण करने पर भी पापियों को दया नहीं आई। हा! दुर्योधन, दुःशासन, शकुनि और कर्ण इन चारों की आत्मा कैसी है? मुझे बड़ा आश्चर्य्य हो रहा है।

महाराज! उस दुष्ट ने मृगचर्म पहना कर वन में निकाल दिया। फिर भी आप मौन ही धारण किये रहे। देखिये—अपनी ऐसी स्थिति में जब आप धैर्य्य से विचलित नहीं हो रहे हैं तब निःसन्देह आप अक्रोधी हैं। आप में क्रोध का लेश नहीं है। किन्तु यह आप को शोभा नहीं देता। क्रोध हीन क्षत्रियों का सर्वत्र निरादर होता है। क्रोध न करना तो तपस्वियों का आभूषण है।

शत्रुओं के अत्याचार को सहते रहना क्या वीरता का लक्षण है? वीरों को मीठा नहीं होना चाहिये। जो जितना अधिक मीठा होता है, वह उतना ही अधिक अपना नाश कराता है। नाथ! शत्रुओं के सन्मुख मीठा पन दिखाना विष का काम देता है। देखिये—मीठे वचनों के कारण तोता पिंजरे में बन्द किया जाता है तथा गन्ना कोल्हू में पेड़ा जाता है। यह निर्विवाद सत्य है कि क्रोध शून्य क्षत्रिय को जो चाहता है दवा लेता है। यह निश्चय जानिये जो इस

प्रकार शत्रु को क्षमा करता है उसकी कभी उन्नति नहीं हो सकती।

युधिष्ठिर ने कहा—प्रिये! तुम सत्य कहती हो। परन्तु क्रोध से भलाई और बुराई दोनों होती है। देश काल और पात्र का विचार करके क्रोध करना चाहिये। देखो—क्रोध से ही कभी-कभी भयङ्कर अपकर्म हो जाते हैं। प्रिये! मैं धर्म बन्धन में जकड़ा हूँ। मैं कभी अक्रोध का त्याग नहीं करूँगा। देखो—दुःख होने पर, दुःख देना, घायल होने पर घायल करना तथा सताये हुये को सताना क्या योग्य है? हमने दुर्योधनादि दुष्टों को भी क्षमा ही किया है। यह हमारा सनातनधर्म है।

द्रौपदी ने कहा—ठीक है, किन्तु उस सनातन धर्म ने मोह द्वारा बुद्धि को भ्रष्ट कर दिया है। क्या कर्तव्य को त्याग देने वाला धर्म का अधिकारी हो सकता है? आप कौन सा धर्म उपार्जन कर रहे हैं। क्या आप नहीं जानते धर्म ही रक्षा करता है! ऋषियों ने कहा है—जो धर्म की रक्षा करता है उसकी रक्षा धर्म करता है। यदि आप धार्मिक हैं तो धर्म ने आपकी रक्षा कहाँ की?

नाथ! बल और पुरुषार्थ ही सर्वस्व है। बल हीन मनुष्य ही परतन्त्रता के पाश में जकड़ा जाता है। निःसन्देह पृथ्वी बलहीनों के लिये ही दुःखदायिनी है।

युधिष्ठिर ने कहा—प्रिये! तुम्हारा कहना अनुचित नहीं है। तुम्हारी बातें ऊपर से तो सुन्दर जान पड़ती हैं, परन्तु

भीतर से सार हीन हैं। उसके वास्तविक रहस्य को नहीं जानतीं। बुद्धि की क्षुद्रता के कारण विधाता को दोष नहीं देना चाहिये।

युधिष्ठिर की बातें सुन द्रौपदी उग्र होती हुई बोली—आर्य्य! मैं विधाता को दोष नहीं देती। मैं स्वयं अपने दुःखों को रोती हूँ। सुनिये—कर्तव्य से ही सब कुछ होता है, निश्चेष्ट होकर बैठने तथा सदैव विचार में तल्लीन रहने से कभी सिद्धियाँ आ सकती हैं? कदापि नहीं, यह तो अनर्थों की जड़ है। कर्तव्य कीजिये, यदि फल न मिले तब भी सुख है।

द्रौपदी को बातें सुन भीम ने पृष्ट-पोषण करते हुए कहा—ठीक है। उत्तम प्राणियों की तरह हमें भी कर्तव्य करना चाहिये। वह कौन धर्म है जो अपना राज्य लेने में बाधा उपस्थित करता है।

सूक्ष्म धर्म की रक्षा के लिये राज-शासन रूपी महाधर्म को छोड़ देना कितनी निर्वलता और मतिमन्दता है। इन्हीं सूक्ष्म धर्मों के कारण हमारा राज्य गया। हम वन-वन के भिखारी हुये तथा अत्याचारियों के चक्र में पीसे गये। फिर भी आप भय करते हैं कि पराजय होगी। पराजय होगी। परन्तु क्या इस वन के घोर कष्टों से रणांगण में हँसते-हँसते उत्सर्ग हो जाना कम अच्छा है? देखिये—जिन कर्मों से मित्रों को क्लेश तथा शत्रुओं को आनन्द हो उसे धर्म नहीं कहते। वस्तुतः वह पाप है। मैं देख रहा हूँ

कि सदा धर्मकी चिन्तामें पड़कर पुरुषार्थ-बल त्याग देने वाले को धर्मार्थ छोड़ देते हैं।

महात्मा युधिष्ठिर ने कहा—भाई! तुम्हारे इन वचनों से मुझे अत्यन्त दुःख हो रहा है परन्तु तुम इसके दोषी नहीं हो। मेरे ही कर्मों के द्वारा तुम्हारा अधःपतन हुआ है, हम उस खेल में प्रवीण न होने पर भी कपटी शकुनि के साथ मूढ़ता के कारण जीतने की इच्छा से खेलते रहे। हाय! द्रौपदी के द्वारा दासत्व से मुक्ति पाने पर भी हमारी अज्ञानता नहीं गई। फिर भी इस वनवास के चक्र में आ फँसे। भीम! उस समय तुमने भी नहीं रोका, और हम भी कायरता की लज्जा से नहीं रुके। यदि हममें यह दुर्व्यसन न होता तो ऐसी विपत्ति के भोगने का अवसर ही नहीं आता। परन्तु भीम! तुम्हीं कहो, प्रतिज्ञा में इस प्रकार बँध जाने पर उसे कैसे तोड़े? हाय! यही सोचकर प्रियतमा द्रौपदी का भयंकर अपमान सह लेना पड़ा। उस असह्य शोक से अब भी हमारा हृदय जल रहा है। हम तुम्हें क्या कह कर धैर्य प्रदान करें? प्यारे भीम! इस समम धैर्य्य धारण कर अनुकुल समय की प्रतीक्षा करो।

भीम ने कहा—महाराज! संसार नश्वर है। क्षणभंगुर है। मृत्यु सदा सिरपर नाचा करतीहै। संभव है इतने दिनों तक हम न रहें—हमारी मृत्यु हो जाय। यही सोचकर मुझे अपार दुःख होता है—तथा विम्ब दुःसह्य हो रहा है।

भीम की बातें सुन युधिष्ठिर ने कहा—हे भीम! तुमने

जो कुछ कहा सो ठीक है, निःसन्देह संसार क्षणभंगुर है, परन्तु जितना तुम साहस रखते हो उतनी बुद्धि नहीं है। सोचो—दुर्योधन के सहायक द्रोण, कर्ण, भीष्मादि वीरों को कैसे जीतोगे? मैं तो अकेले महाबली कर्ण की निपुणता देख चिन्ता सागर में डूब रहा हूँ।

महात्मा युधिष्ठिर की बातें सुन महाबली भीम अत्यन्त उदास हुये और मौन धारण कर लिये।

प्रिय पाठकों! धर्मराज के सत्याचरण से शिक्षा प्राप्त करो! अत्याचारियों ने कितना दुःख दिया। कपट द्वारा राजपाट हरण किया, वनवास का दुःख दिया—फिर भी क्रोध नहीं किये, अचल के समान अचल रह कर समय की प्रतीक्षा किये—यह कितनी बड़ी धीरता है, धर्मराज युधिष्ठिर के चरित्र में कितनी बड़ी गंभीरता है। भाई भीम क्रोधावेश में उबल उठता है। फिर भी—नीच-ऊँच समझाते हैं। ज्ञाति बान्धव उत्तेजित होते हैं—परन्तु वे अपने धर्म पर डटे रहते हैं। युधिष्ठिर के इस चरित्र को धन्य है।

महर्षि व्यास जी का उपदेश।

——*—*——

इस प्रकार पाण्डवों में परस्पर बातें हो ही रही थी कि अचानक तपोनिष्ठ महर्षि वादरायण आ पहुँचे। महात्मा व्यास को देख पाण्डवों का हृदय आनन्द से उमड़ पड़ा। पितामह व्यास के दर्शन से वनवास की यंत्रनायें कुछ क्षण के लिये जाती रहीं। पाण्डवों ने उनकी यथा विधि पूजा की तथा उत्तम आसन दिया। पश्चात् पाण्डु पुत्रों की बातें सुन धर्मराज से बोले—

हे युधिष्ठिर! ठीक कहते हो। दुर्योधन के पक्ष वाले वीरों से तुम्हारा डरना उचित ही है। भीष्म, द्रोण और कर्ण असाधारण वीर हैं। इनसे सदा ही भय है। हे धर्मराज! जिस प्रकार वह भय दूर हो सकता है उसकी युक्ति तुम्हें बताता हूँ—हम यह श्रुति स्मृति नाम की विद्या देते हैं; तुम अर्जुन से कहो कि इसकी सहायता से इन्द्रकील पर्वत पर जाकर दिव्यास्त्र प्राप्त करने के लिये तपस्या करे। इस विद्या के द्वारा इन्द्र और भगवान शंकर को प्रसन्न कर भाँति-भाँति के दिव्यास्त्र प्राप्त कर सकेंगे। दिव्यास्त्रों के प्राप्त हो जाने पर भावी युद्ध के भय दूर हो जायेंगे।

हे पाण्डुनन्दन! दिव्यास्त्र प्राप्त कर जब अर्जुन उसके प्रयोग की विधि ज्ञात कर लेंगे तब भय का कारण पूर्ण रूप से मिट जायगा। फिर संसार की कोई शक्ति तुम लोगों

को विदलित नहीं कर सकेगी। तुम लोग शीघ्र अर्जुन को तैयार करो, वह गाण्डीव और अक्षय तूण लेकर तपस्या के लिये इन्द्रकील पर जाय।

इस प्रकार उपदेश दे व्यास जी चले गये। पाँचों पाण्डव द्वैतवन को छोड़ कर पुनः काम्यक वन में लौट आये और सुख पूर्वक रहने लगे। कुछ दिनों के बाद जब युधिष्ठिर ने व्यासजी की दी हुई श्रुतिस्मृति विद्या को अपने अधिकार में करली तब एक दिन अर्जुन को एकान्त में लेजाकर बोले—

हे महाबाहो! वनवास समाप्त होने पर भी युद्ध के विना निस्तार न होगा। युद्ध के अतिरिक्त और कोई साधन नहीं है, भाई! इस भावी युद्ध के लिये तैयार हो जाना चाहिये। कौरवों के महातेजस्वी शूर वीरों का तुम्हीं सामना कर सकोगे। अतः महर्षि व्यासजीके बताये हुये उपाय के अनुकूल तुम कैलास (इन्द्रकील) पर्वत पर जाकर तपस्या करो। भगवान शंकर और देवेन्द्र की कृपा से दिव्यास्त्र पा सकोगे। आओ! हम तुम्हें उस विद्या को सिखलादें। शीघ्र शस्त्रास्त्र सज्जित हो ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर इन्द्रकील पर जाओ।

हिमालय गमन
और
अर्जुन की कठिन तपस्या ।

—:o:—

महात्मा युधिष्ठिर की बातें महावली अर्जुन को अत्यन्त प्रिय लगीं। उन्होंने बड़े प्रेम से व्यास की दी हुई श्रुति-स्मृति विद्या को धारण की और पश्चात् धर्मराज की आज्ञानुसार वीरवेश से सुसज्जित हो गाण्डीव धनुष तथा अक्षय तूण ले चलने के लिये तैयार हुये। चलते समय उन्होंने माङ्गलिक अग्निहोत्र किया जिसके सुगंध से वनस्थली आकर्षित हो गई। इस प्रकार शुभ अनुष्ठान कर ब्राह्मणों के आशीर्वाद से उत्साहित हो आगे बढ़े।

महावली अर्जुन का वियोग सबों को असह्य हो गया। चारों पाण्डव अत्यन्त उदास हुये। द्रौपदी की दीनता भरी बातें सुन सभी करुण रूप हो गये। वह कहने लगी:—

हे विशाल बाहु! तुम्हारी मनोकामना पूर्ण हो। महावीर! तुम्हारी चिन्ता रात दिन लगी रहेगी। शत्रुओं के द्वारा अपमानित होने पर जो दुःख मुझे नहीं हुआ, वह आज तुम्हारी जुदाई से हो रहा है। परन्तु भविष्य की आशा तुम्हीं पर अवलंबित है। हे धनुर्धरों में श्रेष्ठ! मैं तुम्हारी हितकामना चाहती हूँ, तुम सानन्द जाओ। भगवान मङ्गल करेंगे।

कृष्णाकी मंगल कामना से मंत्रमुग्ध हो महावली अर्जुन चारों पाण्डवों और आचार्य धौम्य की परिक्रमा कर वनमें प्रवेश किये।

महावली अर्जुन बहुत शीघ्रता पूर्वक चलकर कुछ ही दिनों में देवताओं के निवास स्थान पवित्र गिरिराज पर पहुँचे। इस प्रकार अविराम चलते हुये गंधमादन की दुर्गम घाटियों को पार कर कुछही समय में इन्द्रकील पर आगये। महर्षि व्यास के कथनानुसार एक सुन्दर स्थान ढूढ़ कर आसन लगाये पश्चात् श्रुति-स्मृति का आवाहन कर योगासन पर बैठ तपस्या में लीन हो गये।

अर्जुन ने ब्रह्मचर्य धारण कर बड़ी कठिन तपस्या आरम्भ की। उसके तेज से दिशायें आलोकित हो उठीं तथा वनस्थली सौम्य हो गई। सर्वत्र फल फूल लग गये; पक्षियाँ कल-रव करने लगीं तथा भौंरे गुञ्जारने लगे।

अर्जुन की कठोर तपस्या से इन्द्रकील शोभित हो उठा।

वनस्थली को अत्यन्त सौम्य होते देख इन्द्र के अनुचरों को बड़ा विस्मय हुआ, सभी खोजते हुये आगे बढ़े। एका—एक अर्जुन के तेज को देख दंग रह गये। इन्द्र के अनुचरों ने निश्चय किया कि हम लोग इस तेजवान तपस्वी के निकट नहीं जा सकते, इसका समाचार देवेन्द्र को देना चाहिये।

मदन-मद-भंजन

और

इन्द्रार्जुन सम्वाद।
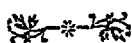
महाबली अर्जुन की तपस्या से भयभीत हो इन्द्र के अनुचरों ने यथा समय अमरावती जाकर सूचना दी, उन लोगों ने कहा—

महाराज! इन्द्रकील पर एक तपस्वी कुछ दिनों से कठोर तप कर रहा है। उसके अखण्ड तप से दिशायें आलोकित हो उठी हैं, पृथ्वी स्वर्ग धाम सी दिखाई देती है। इन्द्रकील के कोने-कोने में प्रत्यक्ष ऋद्धियाँ और सिद्धियाँ आ विराजी हैं।

हे देवेन्द्र! उसका तेज और प्रताप दिन-दिन बढ़ता ही जाता है। मुझे सन्देह है कि आगे चल कर कहीं अनर्थ न हो जाय।

अपने अनुचरों की बात सुन इन्द्र अत्यन्त शंकित हुये, उन्होंने तत्काल अपने मित्र मदन को बुलाकर कहा—

हे कन्दर्प! आज मुझे अपने अनुचरों के द्वारा ज्ञात हुआ है कि तुम्हारे उस सुन्दर इन्द्रकील पर एक महा तेजस्वी तपस्वी अखण्ड तप कर रहा है। उसका बल बढ़ने देना

ठीक नहीं। जाओ! सुन्दरी अप्सराओं के द्वारा उसकी तपस्या भङ्ग कर दो।

इन्द्र की आज्ञा पा कामदेव सुन्दरी अप्सराओं क लेकर इन्द्रकील की ओर चला। दूर से ही कामदेव ने अर्जुन को सन्तप्त रवि के समान अचल पर अचल बैठे देखा।

अप्सरायें उसके रूप को देख मोहित हो गईं। कामदेव ने तत्काल अपना जाल फैला दिया। अप्सरायें उनका ध्यान तोड़ने की चेष्टा करने लगीं। बहुत देर तक सभी प्रयत्न करते रहे, परन्तु उस तपस्वी को ध्यान से नहीं डिगा सके। कामदेव लज्जित हो अप्सराओं के साथ लौट गया।

कामदेव को अप्सराओं के साथ इस प्रकार पराजित हो लौटते देख पुरन्दर अत्यन्त चिन्तित हुये। उन्हें मदन और महासुन्दरी अप्सराओं का गर्व था। उन्होंने अपने मित्र मदन के द्वारा बड़े-बड़े तपस्वियों को क्षणमात्र में तप से हटा दिया था। सौन्दर्य्य मूर्ति अप्सराओं की सहायता से अखंड तपधारियों को भ्रष्ट कर डाला था, परन्तु द्वापर के इस अखण्ड तपधारी को देख धीरधारी देवेन्द्र की धीरता कुछ क्षणके लिये जाती रही।

उस अखण्ड तपस्वी का यथार्थ रहस्य जानने के लिये वृत्रहन व्यग्र हो उठे। महात्मा शक्र शीघ्र तपस्वी ब्राह्मण का वेष धारण कर उस रम्य इन्द्रकील पर पहुँचे जहाँ पाण्डु तनय मनावली अर्जुन अपने अखण्ड तप से दिशाओं को आलोकित कर रहे थे। सुरपति ने अर्जुन को देखते ही

सभी बातें जान ली, अतः उनकी परीक्षा के लिये सन्मुख जाकर खड़े हुये ।

अर्जुन ध्यान मग्न थे, अतः सहस्राक्ष ने उन्हें आकर्षित करते हुये पूछा—

हे तपधारी ! तुम इस कठोर व्रत में लीन रहकर भी इन शस्त्रों को धारण किये हो ? यह तो शान्त स्वभाव वाले तपोनिष्ठ महात्माओं का आश्रम है। यहाँ युद्ध की सामग्रियों की क्या आवश्यकता ? अतः धनुष-बाण को त्याग कर पुण्य मार्ग का अवलम्बन करो ।

महाबली अर्जुन अपने सिद्धान्त के बड़े पक्के थे । तपस्वी ब्राह्मण की बातें सुन बोले—भगवन् ! हम अपने सिद्धांत के अनुसार इसे धारण किये हैं। बलहीन जीवन सदैव सुख हीन होता है। अतः सिद्धान्त की रक्षा के लिये धनुष बाण धारण करना आवश्यक है। मैं वैरियों का नाश किये बिना इसे नहीं हटा सकता ।

अर्जुन की युक्ति पूर्ण बातों को सुन सुरेन्द्र अत्यन्त प्रसन्न हो बोले—वत्स ! मैं देवराज जिष्णु हूँ। तुम्हारी तपस्या और अचलता देख अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूँ। वर माँगो ! क्या चाहते हो ?

सुरपति की बातें सुन महाबली अर्जुन हाथ जोड़ कर बोले—भगवन् ! मैं आपकी सारी दिव्यास्त्र विद्या सीखने के लिये आया हूँ। कृपा कर यही वर दीजिये। इन्द्र ने अर्जुन की परीक्षा लेने के लिये पूछा—

पुत्र ! तुम अस्त्र-शस्त्रों की चिन्ता क्यों करते हो ? तुम्हें अस्त्रों की क्या आवश्यता है ? मर्त्यलोक वासी इन्द्र लोक के लिये कठिन तपस्या करते हैं। तुम अपने कठिन तपस्या के बल से उस उत्तम स्थान को अनायास पा सकते हो, इस समय वह तुम्हारे अधिकार में है।

देवराज की युक्ति पूर्ण बातें सुन अर्जुन बोले—भगवन् ? हमने किसी लोभ वश तपस्या नहीं की है। हमारे भाई भयानक वनों में दुःख पूर्वक कालयापन कर रहे हैं। उनके उद्धार के लिये कठिन मार्गों को पार कर यहाँ तक पहुँचा हूँ।

भगवन् ! मुझे इस समय स्वर्ग की चाह नहीं है। मैं अपनी प्रतिज्ञा पूर्ति को स्वर्ग से श्रेष्ठ समझता हूँ, मैं अत्याचारियों के अत्याचार को नष्ट करने की प्रतिज्ञा कर चुका हूँ भला बिना उसे पूर्ण किये कैसे स्थिर रह सकता हूँ ?

इस प्रकार अर्जुन की दृढ़ता और उत्साह से प्रसन्न होकर देवेन्द्र ने कहा—

हे पुत्र ! यदि तुम भगवान शङ्कर को प्रसन्न कर लो तो हम तुम्हें अपने सब अस्त्र दे दें। तुम भगवान शंकर की तपस्या करो। मैं आशीर्वाद देता हूँ, तुम्हारी मनो-कामना पूर्ण होगी। इतना कह देवराज अन्तर्ध्यान हो गये।

किरातार्जुन युद्ध

और

पशुपतास्त्र-प्राप्ति

—:※:—

देवराज इन्द्र के अन्तर्ध्यान हो जाने पर अर्जुन ने तत्काल समाधि लगा ली, देखते-ही-देखते कुछ ही दिनों में वे तन्मय हो गये। उन्होंने धीरे धीरे आहार कम कर दिया, पश्चात् निराहार रह कठोर तप करने लगे। इस प्रकार कुछ दिन बीतने पर महाबली अर्जुन ऊर्ध्वबाहु होकर खड़े हो गये और दिन रात अविराम तपस्या करने लगे।

अर्जुन की भयंकर तपस्या ने इन्द्रकील को थर्रा दिया। उनका अपार शारिरिक क्लेश महर्षियों से नहीं देखा गया। वे शंकर के पास जा बोले—

हे प्रभो! महातेजस्वी पाण्डुनन्दन अर्जुन की कठिन तपस्या से हम लोग अत्यन्त दुखी हैं। वह किस हेतु इतना उग्र तप कर रहा है नहीं कह सकते। आप शीघ्र उसकी मनोकामना पूर्ण करके उसे शान्त कीजिये।

महर्षियों को इस प्रकार कहते सुन भगवान शंकर ने धैर्य देते हुये कहा—तपस्वियों! आप लोग चिन्ता न करें, हम शीघ्र ही महाबली अर्जुन की इच्छा पूर्ण करेंगे।

कुछ दिनों के पश्चात् एक दिन अर्जुन ने देखा कि एक

भयानक शूकर इस ओर बड़ी तेजी से दौड़ा आ रहा है। अर्जुन ने क्रोध कर के धनुष उठा लिया और बड़ी शीघ्रता से वाण चलाया। उसी समय उस बाराह के पीछे एक व्याधा भी दौड़ा चला आ रहा था। उसने भी उसी समय उस पर वाण चलाया। दोनों वाण बड़े वेग से बाराह की देह में चुभ गये। वाण लगते ही शूकर ने भयङ्कर दानव का शरीर धारण किया और तत्काल इस लोक से चल बसा।

शूकर के मरने पर अर्जुन अत्यन्त क्रुद्ध हो व्याध से बोले-मेरे आखेट पर तुमने वाण क्यों चलाया? क्या तुम्हें अपने प्राणों का भय नहीं है? तुमने नियम प्रतिकूल कार्य्य किया है अतः बिना मारे नहीं छोड़ूंगा।

अर्जुन की वीरोचित बातें सुन वह तेजस्वी व्याध बोला-तुम बड़े अभिमानी हो। यह वन हमारा है, पहले हमी ने इसे देखा और अपना निशाना बनाया था। मूर्ख! तू व्यर्थ दोषी मुझे क्यों बनाता है?

व्याध की बातें सुन अर्जुन बड़े रुष्ट हुये और बिना कुछ कहे सुने गांडीव से शरवृष्टि करने लगे। वह व्याधा अर्जुन की वाण से जरा भी विचलित नहीं हुआ। यह देख अर्जुन के आश्चर्य्य का ठिकाना न रहा। वे क्षुब्ध हो और भी पैने वाणों को छोड़ने लगे। इस प्रकार वाण चलाते-चलाते जब उन्होंने ने देखा कि अग्नि के दिये हुये दोनों अक्षय तूण खाली होने लगे और यह तेजस्वी व्याध पूर्ण स्वरक्षित खड़ा-खड़ा मुस्कुरा रहा है—तब उनके आश्चर्य्य की सीमा न रही।

ये कौन हैं? क्या कोई देवता हैं? अथवा स्वयं शंकर जी ही मेरे सम्मुख खड़े हैं। यदि शिव जी नहीं हैं तो चाहे और कोई क्यों न हो हम उसे अवश्य हरा देंगे।

इस प्रकार सोचकर महावली अर्जुन बचे हुये बाणों को दूर फेंक अपने धनुष की नोकों से आघात करने लगे। उस तेजस्वी व्याध ने अर्जुन के गांडीव को पकड़ लिया। जिससे अर्जुन अपने विचार में सफल नहीं हो सके। उन्होंने तत्काल तलवार की वार की, परन्तु वह भी उस व्याध के सिर से लगकर टुकड़े-टुकड़े हो गई। तब अन्त में अर्जुन मल्लयुद्ध के लिये तैयार हो गये। इतने में ही उन की दृष्टि उस व्याध के गले पर पड़ी। अपनी बनाई हुई माला जिसे अभी शंकर जी के गले में चढ़ाये थे, व्याध के गले में देख समझ गये कि मुझे भगवान शंकर के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, वे आनन्द मग्न हो भगवान के चरणों में गिर पड़े।

भगवान शंकर अर्जुन की तपस्या तथा उनके युद्ध के उत्साह और दृढ़ता से प्रसन्न हो बोले—वत्स! माँगो, क्या चाहते हो? अर्जुन ने कहा—भगवन्! आने वाले घोर युद्ध में महावली कौरवों से लड़ने योग्य अस्त्र दीजिये। महादेव जी प्रसन्न हो पशुपतास्त्र देते हुये बोले—पुत्र! इसे सामान्य मनुष्यों पर नहीं चलाना। दुनियाँ में ऐसा कोई नहीं जिसे यह नहीं मार सके। इतना कहते ही कहते शङ्कर जी अन्तर्ध्यान हो गये।
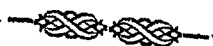
अर्जुन का स्वर्ग गमन ।

महाबली अर्जुन ने कठिन तपस्या से भगवान वामदेव को प्रसन्न कर विश्व पर विजय करने वाले पशुपतास्त्र को प्राप्त कर लिया। उसके धारण करते ही पाण्डुनन्दन का तेज दिशाओं में फैल उठा, उस की ज्योति कलाधरकला के समान चमक उठी। धर्मात्मा अर्जुन उस अमोघ अस्त्र को पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुये।

उसी समय भगवान् इन्द्र अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार महातेजस्वी देवताओं से घिरे हुये ऐरावत पर चढ़ कर अर्जुन के निकट आये। धर्मराज और वरुण देव आगे आये और अर्जुन को भगवान इन्द्र के सभी अस्त्र—देकर बोले—हे कुन्ती-नन्दन! तुम श्रेष्ठ महारथी हो, इन अस्त्रों के द्वारा तुम युद्ध में विजय पाओगे। अर्जुन ने उन शस्त्रों को पाकर अत्यन्त सुख माना।

इस प्रकार अर्जुन को प्रसन्न देख इन्द्र ने कहा—हे कौन्तेय! तुम्हारी अभिलाषा पूरी हो गई। अब तुम्हें देवताओं के कार्य्य के लिये स्वर्ग चलना चाहिये। तुम प्रस्तुत हो जाओ। अभी मातलि हमारा रथ लेकर तुम्हें लिवाने आयेगा। तुम चिन्ता न करो, तुम्हारा समाचार महर्षि लोमस के द्वारा मर्त्यलोक में भेज देता हूँ। तुम्हारे भाइयों की चिन्ता दूर

हो जायगी। इतना कह कर भगवान इन्द्र देवताओं के साथ लौट गये।

यथा समय इन्द्र का सारथि मातलि दिव्य रथ लेकर इन्द्रकील पर पहुँचा। रथ से उतर कर अर्जुन से आदर पूर्वक मिला और इन्द्र का सन्देश कह सुनाया—

भगवान इन्द्र का सन्देश सुन महाबली अर्जुन शीघ्र स्नानादि से निवृत्त हो आश्रमवासी ऋषि—मुनियों को प्रणाम कर उस दिव्य रथ पर बैठे। अर्जुन को आरूढ़ देख मातलि ने रथ हाँका। इन्द्र का महावेगशाली दिव्यरथ आकाश-मार्ग से जाने लगा।

आकाश-मार्ग से चलते हुये अर्जुन ने एक से एक अद्भुत दृश्य देखे। मार्ग में ऐसे-ऐसे लोक पड़े जहाँ चन्द्रमा और सूर्य नहीं थे, परन्तु वे अपूर्व प्रकाश से प्रकाशमान हो रहे थे। आगे बढ़ते हुये बड़े-बड़े नक्षत्रों को देखे—जिनके आकार विशाल थे परन्तु दूर होने के कारण तारों के समान दिखलाई पड़ रहे थे।

मातलि रथ को बड़े वेग से चला रहा था। आगे बढ़ने पर वह दिव्य रथ एक प्रकाश मान लोक में पहुँचा। अर्जुन ने सहस्रों सूर्य के समान ऐसा अपूर्व प्रकाश कभी नहीं देखा था उसे देखते ही मंत्र मुग्ध हो रहे। इस प्रकार बढ़ते हुये उन दिव्य लोकों से चलने लगे जहाँ की पृथ्वी सोने की थी तथा प्रत्येक जीव सूर्य के समान तेजधारी तथा कलाधर तुल्य महा कांतिमान थे। अर्जुन उन दिव्य लोकों को देख

अत्यन्त सन्तुष्ट हुये। इस प्रकार देवलोकों को पार कर रथ अमरावती नगरी में पहुँचा।

देवताओं ने पहले ही सुना था कि अर्जुन विश्व-विख्यात धनुर्धर हो गये हैं अतः उन्होंने उनका बड़ा स्वागत किया। इन्द्र ने प्रसन्नता पूर्वक अपने भवन में ठहराया। इस प्रकार तृतीय पाण्डव देवलोक में रह कर इन्द्र के द्वारा शस्त्रास्त्रों की शिक्षा पाने लगे।

महाबली अर्जुन ने स्वर्ग लोक में वर्षों रह कर इन्द्र के दिये हुये बड़े-बड़े अस्त्रों का प्रयोग सीखा। प्रत्येक अस्त्र का आवाहन, विसर्जन तथा आकर्षण की विधि का भली भाँति अभ्यास किया। अन्त में उन को पूर्ण योग्य देखकर देवराज ने कहा—

हे अर्जुन! इधर निवात कवच नामक महा पराक्रमी दानवों का दल बड़ा उपद्रव मचा रहा है। हमारी समुद्र के बीच की सुन्दर नगरी को उन लोगों ने जबरदस्ती छीन ली है। पुत्र! भगवान शंकर के वर के कारण हम उन्हें नहीं मार सकते। अतः तुम उन दानवों का नाश करो।

अर्जुन ने कहा—भगवन्! हम यथा शक्ति दानवों का नाश करेंगे।

तत्काल ही इन्द्र ने अपना अभेद्य कवच और आभूषण पहरा दिया। पश्चात् माथे में सुन्दर मुकुट बाँध मातलि सारथि द्वारा चलाये हुये दिव्य रथ पर सवार कराके कहा—

पुत्र! मातलि तुम्हें शीघ्र निवात कवच नगरी में पहुँचा

देना। शत्रुओं का वीरता पूर्वक सामना करना। सुन्दर समय है—प्रस्थान करो।

रथ वायु-वेग से आगे बढ़ा। अनेक लोकों को पार कर वह दिव्य रथ फेनदार पहाड़ी के समान उठती हुई तरंगों वाले अथाह सागर के निकट पहुँच कर रुक गया। अर्जुन ने उस महा सागर के बीच में रहने वाले पराक्रमी दानवों का घर देखा। तत्काल अर्जुन ने अपना भयंकर देवदत्त शंख बजाया।

भयंकर शंखध्वनि ने दानवों को थर्रा दिया। वे सभी कवच धारण कर भयंकर अस्त्र—शस्त्रों को लेलेकर युद्ध के लिये निकल पड़े। मातलि ने रथ को चौरस स्थान पर खड़ा किया। देखते ही देखते महाबली निवात कवचों से अर्जुन का दिव्य रथ घिर गया। सभी एक साथ ही—बाण बरसाने तथा त्रिशूल, गदा, पट्टिश, शूल और मुद्गर चलाने लगे।

दानवों को बढ़ते देख अर्जुन ने पास ही रक्खे हुये गांडीव को उठाया और प्रलय मचा देने वाले बाणों के द्वारा बात की बात में उनके शस्त्रों को काट गिराया। मातलि ने भी इस प्रकार रथ चलाना आरम्भ किया जिस से आप तो स्वरक्षित रहें परन्तु उसके धक्के से दानव लोग पीड़ित हो।

भयानक युद्ध हुआ। अर्जुन ने दिव्यास्त्रों के द्वारा बातकी-बात में लाखों दानवों को मार गिराया। अब दानवों ने माया करनी आरम्भ की। वे गुप्त होकर लड़ने

लगे । अर्जुन ने तत्काल शब्द भेदी बाणों से उनका संहार करना आरम्भ किया । इस प्रकार पराजित हो दानवों का दल आकाश में जा पहुँचा और प्रचण्ड उल्का के समान धधकता हुआ पत्थर बरसाने लगा तथा कुछ दानव लोग पृथ्वी में घुस कर रथ के पहिये और घोड़ों के पैर पकड़ने लगे—इसी समय मातलि ने कहा वीरवर ! भगवान इन्द्र का रक्खा हुआ वज्र उठाओ ।

अर्जुन ने हँसते हुये वज्र को उठा लिया और शीघ्र ही शत्रुओं पर चला दिया । क्षण—मात्र में ही दानवों की माया का अन्त हो गया । इस प्रकार शत्रुओं को परास्त देख मातलि ने हँसते हुये कहा—महावीर ! आज हमने जैसा पुरुषार्थ तुम्हारा देखा है वैसा देवताओं में भी नहीं देखा था ।

शत्रुओं पर पूर्ण विजय कर अर्जुन पुनः देव लोक में पहुँचे । देवताओं ने प्रसन्न होकर बार-बार धन्यवाद दिया और इन्द्र ने हृदय से लगा कर कहा—

पुत्र ! तुमने मुझे कृतार्थ कर दिया । हमने तुम्हें जो अस्त्र शिक्षा दी थी—आज उसकी उत्तम गुरू-दक्षिणा पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुये । तुम चिन्ता न करो हम ऐसी युक्ति करेंगे जिससे तुम्हें शत्रुओं का भय न रहेगा ।

इस प्रकार देवलोक में रहते हुये कुछ दिन बीत गये । एक दिन स्वर्ग लोक की महासुन्दरी अप्सरा उर्वशी अर्जुन की सुन्दरता पर मुग्ध हो इनके पास आकर बोली-हे सुन्दर

युवा! मैं तुम्हारे रूप पर मोहित हो गई हूँ अतः तुम मेरी अभिलाषा पूर्ण करो।

अर्जुन ब्रह्मचर्य व्रत धारण किये थे। वे कैसे व्यभिचार कर सकते थे—फिर इन्द्र की अप्सरा उर्वशी के साथ? उन्होंने हाथ जोड़ कर कहा—देवी! इन्द्र हमारे पिता है। अतः तुम हमारी माता हुई। यह भयंकर अधर्म हम कैसे कर सकते हैं?

उर्वशी कामपीड़ा से उन्मादिनी हो रही थी, उसे शुभा—शुभ का ज्ञान न था। अर्जुन को अनुकूल होते न देख क्षुब्ध हो उठी और शाप दे बोली—जा नपुंसक होजा।

अर्जुन बड़े दुःखी हुये। दूसरे दिन उन्होंने सभी बातें पिता इन्द्र से सुनाई। इन्द्र ने उर्वशी को बुलाकर समझाया—उर्वशी हँसती हुई बोली—महाराज! मेरे शाप से अर्जुन का कल्याण ही होगा। जाइये एक वर्ष तक ये नपुंसक रहेंगे। इन्द्र ने कहा—पुत्र! चिन्ता न करो, यह उर्वशी का शाप तुम्हारे अज्ञात वास के लिये लाभकारी होगा। इस प्रकार पाँच वर्ष तक इन्द्रलोक में रह कर अर्जुन बड़े प्रसन्न हुये।

अर्जुन के विरह में दुखी पाण्डव ।

महाबली अर्जुन के वियोग से सुहावना काम्यक वन दुःखदायी हो गया। पाण्डव रात-दिन अर्जुन की चिन्ता में रहने लगे। उनकी कल्याण कामना के लिये चारों भाई वेद-पाठ, जप, होम, अतिथिसत्कार आदि शुभ अनुष्ठानों को करते हुये जीवन व्यतीत करने लगे। धीरे-धीरे वर्षों बीत गये।

एक दिन भीमसेन ने महाराज युधिष्ठिर से कहा—हे भाई! हम लोगों की भलाई के लिये अर्जुन कितना कष्ट उठा रहे हैं। दिव्यास्त्रों का पाना साधारण काम नहीं है। अब और उन्हें क्यों अधिक कष्ट दिया जाय। आइये! उन्हें लिवा लायें और शीघ्र चलकर पापी कौरवों का नाश करें। तेरह वर्ष वनवास वाली प्रतिज्ञा को इसके बाद पूरा करेंगे। अधर्मियों के साथ यह तनिकसा असत्य व्यवहार अधर्म नहीं कहा जायगा।

युधिष्ठिर ने धैर्य देते हुये कहा—भीम! समय पूर्ण होने पर हम तुम्हारी अभिलाषा अवश्य पूर्ण करेंगे। अब थोड़ा और सहलो, हम उन्हें बिना कपट किये ही विध्वंस करेंगे।

युधिष्ठिर और भीम की ये बातें हो ही रही थीं कि—महर्षि बृहदश्व आ पहुँचे। आदर सत्कार के पश्चात् धर्मराज ने अपनी दुःख कहानी कही जिसे सुनकर महर्षि बृहदश्व द्रवित हो बोले—धर्मात्मा युधिष्ठिर! धैर्य धारण करो, फिर

अच्छे समय आयेंगे। अब कभी यदि कोई तुम्हें जुये में छलना चाहे तो मुझे बुलालेना। महर्षि बृहदश्व कुछ दिन पाण्डवों के आश्रम पर रहे। उनकी कृपा से युधिष्ठिर जुआ खेलने में निपुण हो गये।

महात्मा बृहदश्व के जाने पर कैलाश से कुछ तपस्वियों ने आकर अर्जुन के कठोर तपस्या का हाल कहा—उसे सुन द्रौपदी अत्यन्त अधीर हुई और धर्मराजसे बोली—महाराज! महाबली अर्जुन के बिना मुझे चारो ओर अन्धकार दिखलाई पड़ता है। मुझे असह्य दुःख हो रहा है। हाय! उनके कब दर्शन होंगे?

इसी समय भीमसेन ने कहा—महारथी अर्जुन के बिना मुझे भी अच्छा नहीं लगता। नकुल और सहदेव ने भी अर्जुन के वियोग से दुःखी होकर अन्यत्र चलने की इच्छा प्रकट की। धर्मराज अत्यन्त व्याकुल हो चिन्तातुर हो उठे।

उसी समय नारदजी आ पहुँचे। पाण्डवों की यथोचित पूजा ग्रहण कर बोले—आप लोगों को इतनी चिन्ता का क्या कारण है? युधिष्ठिर ने अर्जुन के वियोग का हाल कह सुनाया।

नारदजी ने कहा—पुत्र! धैर्य धारण करो। महात्मा लोमशजी अभी इन्द्रलोक से अर्जुन का समाचार लेकर आरहे हैं। तुम लोगों का यहाँ रहना उचित नहीं, महर्षि लोमश के साथ तीर्थाटन कर वनवास का शेष समय सुख पूर्वक व्यतीत करना। इतना कह नारद जी चले गये।

महर्षि नारद के जाते ही अर्जुन का समाचार लेकर महर्षि लोमशजी आ पहुँचे । उन्होंने कहा—हे धर्मराज ! अर्जुन आनन्द पूर्वक इन्द्रलोक में निवास कर रहे हैं। उन्होंने अपने तप के बल से शङ्कर को साक्षात् कर पशुपतास्त्र प्राप्त किया है। इन्द्र वरुण कुवेरादि श्रेष्ठ अमरों ने उन्हें दिव्य अस्त्र दिये हैं, उन्होंने शान्ति पूर्वक गान्धर्व विद्या सीखी है। अर्जुन ने देवताओं का बड़ा उपकार किया है। निवात कवचादि दानवों को जिन्हें कोई नहीं जीत सकते थे उन्होंने परास्त किया है। उनकी योग्यता से सन्तुष्ट हो इन्द्र ने सहायता का वचन दिया है।

इसके पश्चात् महर्षि लोमश की पूजाकर पाण्डवों ने तीर्थ यात्रा की वात चलाई। महर्षि ने उनकी बातें स्वीकार कर कहा-पुत्रों ! चलो, हम तो कई बार हो चुके हैं, आओ ! सब स्थानों से घूम कर गंधमादन पर चलेगें, अर्जुन स्वर्ग से लौटकर वहीं आवेगें। परन्तु इतनी भीड़भाड़ के साथ तीर्थ यात्रा का आनन्द नहीं मिलेगा।

युधिष्ठिर ने महर्षि लोमश जी के कथनानुसार लोगों को समझा बुझा कर किसी प्रकार भेज दिया। केवल इन्द्रसेन सहित चौदह दास दासियाँ रह गईं। इस प्रकार मृगशिरा नक्षत्र वाली पूर्णमासी के व्यतीत होने पर जब पुष्य नक्षत्र आया—स्वस्तिपाठ के बाद पाँचो पाण्डव शस्त्रास्त्र सज्जित हो रथ पर बैठ पूर्व दिशा की ओर चले।

पाण्डवों की तीर्थ यात्रा ।

महात्मा लोमश के साथ आचार्य्य धौम्य सहित चारों पांडव और द्रौपदी दिव्य रथ पर बैठ कर चले। उनके पीछे-पीछे रसोइये ब्राह्मण और इन्द्रसेनादि भृत्य भी चौदह रथों पर सवार हो लिये। परस्पर धर्म-ज्ञान की चर्चा करते हुये प्रथम नैमिषारण्य आये। गोमती के तीर्थों में स्नान करते हुये सभी गङ्गा और यमुना के सङ्गम पर पहुँचे।

इस प्रकार महर्षि लोमश जी तीर्थों की उत्पत्ति इतिहास और महात्म्य वर्णन कहते हुये पाण्डवों को पितामह के वेदितीर्थ का दर्शन और तर्पन कराये।

पश्चात् सभी महीश्वर कौशिकी तीर्थ होते हुये गङ्गा सागर पहुँचे।

इसके अनन्तर समुद्र के उपकूल मार्ग से दक्षिण की ओर बढ़े। वैतरणी नदी वाले कलिङ्ग देश को पार कर दक्षिणी तीर्थों के दर्शन किये। इस प्रकार परस्पर कथा वार्ता करते हुये सभी प्रभास तीर्थ में पहुँचे। वहाँ सबों ने ठहर कर विश्राम किया। पांडवों का समाचार सुनते ही यादवों ने आकर बड़ा सत्कार किया। उनकी दुर्दशा देख बलदेव जी विलाप कर कौरवों को दुर्वचन कहने लगे।

इसी समय सबों को धैर्य्य देते हुये अर्जुन के प्रिय शिष्य सात्यकि बोले—हे बलराय जी! अब शोक को त्यागिये,

जो होना था वह हो चुका। इस विषय में युधिष्ठिर कहें या नहीं, आइये! हम कृष्ण और प्रद्युम्न आदि यादवों की प्रसिद्ध नारायणी सेना के द्वारा धृतराष्ट्रवंश का अन्त कर दें। हम लोगों के रहते हुये पाण्डवों की ऐसी दुर्दशा हो?

कृष्ण ने कहा—हे वीर श्रेष्ठ! तुम नहीं जानते, दूसरों का जीता हुआ राज्य धर्मराज कैसे लेंगे? इससे तो उत्तम यह है कि अर्जुन को लाकर उनकी सहायता दे शत्रु का नाश करावें। इसी बीच में धर्मराज बोले—भगवन्! थोड़ा समय और है। वनवास की अवधि बीतते ही आपकी सहायता से सिद्धि लाभ करेंगे। वीरवरों! समय आने पर हमारी सहायता करना।

पाण्डव लोग पुनः आगे बढ़े। धीरे-धीरे सरस्वती को पार कर सिन्धु तीर्थ में पहुँचे। वहाँ से काश्मीर की सुन्दरता देखते हुये विपाशा नदी पार कर हिमालय के एक रमणंक राज्य में आये। वहाँ के राजा महाबली सुबाहु ने सबों का बड़ा आदर सत्कार किया।

अब पर्वतों की चढ़ाई आरम्भ हुई। महर्षि लोमश के कहने से रथ घोड़ों और दासों तथा निर्बल साथियों को वहीं छोड़ सभी आगे बढ़े। महर्षि लोमश ने कहा—

धर्मराज! मार्ग बड़ा कठिन है। पद-पद में सङ्कटों का सामना करना है। अतः खूब सावधानी से चलो। युधिष्ठिर ने द्रौपदी को भीम के सिपुर्द कर कहा—भाई द्रौपदी की रक्षा करते हुये ले चलो।

इस प्रकार आगे बढ़ते हुये एक दिन अकस्मात लोमश जी ने हाथ उठाकर कहा—यह देखो! सामने जो जल धारा लह-राती हुई दृष्टि-गोचर हो रही है वह गन्धमादन के निकट से ही निकलती है। सभी गङ्गा को प्रणाम कर उत्साह पूर्वक आगे बढ़े। धीरे-धीरे गन्धमादन के निकट पहुँच गये। लोग पर्वत की चोटी पर चढ़ने लगे।

एका-एक भयङ्कर आँधी आगई। महा अन्धकार छा गया। बड़े-बड़े पाषाण खण्ड तथा डालियाँ टूट-टूट कर गिरने लगीं। कुछ ही क्षण में प्रलय का दृश्य उपस्थित हो गया। वायु के कम होते ही भयङ्कर मूसलाधार वृष्टि होने लगी। रह-रह कर वज्र गर्जन करने लगा। विजुलियाँ चमकने लगीं। देखते ही देखते नदी-नाले, झील-झरने, उमड़ कर बहने लगे। रात्रि भर तक बड़े वेग से वृष्टि होती रही। भयङ्कर वातूल और वृष्टि के कारण सभी लोग इधर-उधर हो गये। द्रौपदी वेहोश हो गई। उस सुन्दरी की अवस्था देख धर्मराज को बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने भीम से कहा—भाई! अब आगे वर्फ के पहाड़ पर द्रौपदी कैसे चल सकेगी?

भीम ने कहा—आप चिन्ता न करें। मैं स्वयं उठा ले चलूँगा। अथवा घटोत्कच को बुला लूँगा। युधिष्ठिर के कहने पर भीम ने तुरन्त घटोत्कच को याद किया। वह तत्काल प्रकट हुआ और सबों को प्रणाम कर बोला—पिता जी! क्या आज्ञा है? भीम ने कहा—पुत्र! तुम्हारी माता

थक गई हैं इन्हें लेकर हमारे साथ आकाश मार्ग से चलो। घटोत्कच ने कहा—तात! आप चिन्तित न हों-मैं अभी अपने अनुचर राक्षसों को बुलाता हूँ। वे सब आप लोगों को उठा लेंगे और मैं माता को ले चलूँगा।

पाठकों! आप लोग घटोत्कच को न भूले होंगे। यह महात्मा हिडिम्बा के गर्भ से भीम के द्वारा उत्पन्न हुआ था। हम पूर्व ही लिख आये हैं कि वह माता के साथ वन ही में रह गया था।

घटोत्कच माता और पिता के समान ही बलवान हुआ। अपने बाल्यकाल में ही उसने बड़े २ राक्षसों को परास्त कर अपने आधीन कर लिया था। वह राक्षसों और दानवों का राजा बन गया था। भीम से अलग होते समय इसने कहा था कि पिता! जब कोई आवश्यकता पड़े तो मेरा स्मरण करना।

घटोत्कच ने तत्काल अपने वीरों का स्मरण किया। देखते ही देखते अनेकों भयंकर वेशधारी राक्षस आ पहुँचे। उन सबों ने तत्काल पाण्डवों को उठा लिया और आकाश मार्ग से चल कर गन्धमादन के निकट वाले एक अत्यन्त रमणीक वन में सबों को उतार दिया।

सहस्र दल कमल की खोज में ।

वह वन बड़ा ही सुन्दर था । वहाँ फलों के बोझ से झुकी हुई डालियों पर पक्षियाँ कलरव किया करती थीं । ठौर-ठौर पर मधु लोभी भौंरों का दल गूजाँ करता था तथ निर्मल जल वाले अनेकों गिरिनिर्झर कल—कल शब्द कर हुये बहते थे । उसकी रमणीकता नन्दत वन से क इस प्रकार सभी लोग बड़े सुख से रहने लगे ।

वहाँ की निराली प्राकृतिक सौन्दर्य्य को देख-देख द्र अत्यन्त आनन्दित होती थी ।

कुछ दिनों के बाद एक दिन अचानक वायु के झोंके से उड़कर सूर्य-समान तेज-पूर्ण हजार दल वाला एक कमल-पुष्प द्रौपदी के पास आ गिरा । उस सुन्दर प्रसून को देख वह बड़ी प्रसन्न हुई और शीघ्रता पूर्वक उठा कर हँसती हुई भीम से बोली ।

महावीर ! यह कितता सुन्दर और सुगन्धित फूल है ! मैं इसे धर्मराज को भेंट दूँगी । हे भीम ! यदि आप मुझे प्यार करते हो तो इसी प्रकार के बहुत से फूल लादो ।

द्रौपदी के चले जाने पर उनकी इच्छा पूर्ति के लिये महाबली भीम शस्त्र लेकर वायु की गति देख उसकी खोज के लिये चले । अधिक समय लगने पर धर्मराज को चिन्तित होने के डर से शीघ्रता पूर्वक आगे बढ़े । बड़े वेग

से लताओं को नोचते, पेड़ पौधों को तोड़ते तथा पाषाण-खण्डों को चूर-चूर करते हुये कदली वनमें पहुँचे।

सघन कदली वन का मार्ग बड़ा विकट था। भीमसेन केलों को उखाड़-उखाड़ कर फेंकने लगे। उनके इस विचित्र व्यापार को देख जंगल-वासी वानर मृग आदि भयभीत हो भागने लगे।

कुछ दूर आगे बढ़ते ही भीमने देखा कि एक बड़ा भारी बूढ़ा वन्दर बीच राहमें ही सो रहा है। वायु वेगसे चलते हुये भीम उसके पास पहुँचे और गर्ज कर बोले—राह में क्यों सोता है?

वन्दर ने धीरे से अपनी आँखें खोलकर कहा—मैं आराम से सो रहा था,-तुमने क्यों मुझे जगा दिया? मुझे तंग कर अपना काल न बुला।

भीम ने कहा—चाहे हमारी मृत्यु आवे अथवा तुम्हारी, इस समय तुम उठ जाओ। मुझे आगे जाना है। मेरे हाथों को व्यर्थ कष्ट न दो।

भीम की बातें सुनकर वृद्ध वन्दर ने कहा—हम एक दम वृद्ध हो चुके हैं, उठने में लाचार हैं! हमारी पूंछ हटा कर चले जाओ। भीम ने सोचा कि इस वन्दर की पूंछ पकड़ कर दूर फेंक देंगे। परन्तु सम्पूर्ण बल लगा देने पर भी पूंछ को तनिक भी नहीं हटा सके। तब तो भीम के आश्चर्य्य का ठिकाना नहीं रहा, अत्यन्त लज्जित हो हाथ जोड़कर वन्दर से बोले—

हे देव! आप कौन हो? कृपा करके अपना परिचय देकर हमारे महा आश्चर्य्य को दूर करो।

भीम की बातें सुन वानर ने कहा—हम सुग्रीव के मंत्री, भगवान राम के अनुचर, वायु-पुत्र हनुमान हैं। वृद्धावस्था में यहां रहकर भगवान का ध्यान करते हैं। मैं तुम्हें जानता हूँ। तुम हमारे पिता के वर से उत्पन्न हुये हो, इसी हेतु तुम पर भाइयों का सा प्रेम हो आया है। हे भाई! यह मार्ग मनुष्यों के जाने का नहीं है, इसलिये हमने तुम्हें नहीं जाने दिया।

भीम के आने का कारण जान हनुमान ने कहा—वह फूल जिसे तुम ढूँढ़ने आये हो वह पास ही के एक सरोवर में रहता है। उसका अधिपति कुबेर है। हनुमान ने भीम को रास्ता दिखा दिया।

भीमसेन आगे बढ़े! रात-दिन चलने पर गंधमादन दिखाई पड़ा। उस पर माला के समान शोभित एक नदी दिखलाई पड़ी जिसमें सहस्रों कमल खिले थे। वही नदी वह कर इधर कुबेर के सरोवर में आकर गिरती थी।

भीम अत्यन्त प्रसन्न हो सरोवर में पैठकर बहुत देर तक स्नान करते रहे, इसी बीच में कुबेर के रक्षक आ पहुँचे और भीम को देख डपट कर बोले—तुम कौन हो?

भीम ने अपना परिचय देते हुये कहा कि हम कमल लेने के लिये आये हैं।

कुबेर के गणों ने फूल तोड़ने से मना किया, कुछ देर संघर्ष होने पर धीरे २ घोर युद्ध होने लगा।

इधर धर्मराज ने भीम को न देख कृष्णा से पूछा। द्रौपदी ने कहा महाराज! वे उसी फूल को लाने पूर्वोत्तर दिशा में गये हैं जिसे हमने आपको दिया था।

युधिष्ठिर बोले—द्रौपदी! चलो हम लोग भी उसी ओर चलें! भीम से मुझे बराबर डर लगा रहता है कि कहीं अभिमान वश किसी महात्मा का अपमान न करदे।

भीमपुत्र घटोत्कच और उसके अनुचरों की सहायता से भीम के जाने के चिन्हों वाले मार्ग से युधिष्ठिरादि कुबेर के उस सरोवर के निकट पहुँचे, जहां भीम से यक्षों का संग्राम हुआ था। निकट पहुँचते ही देखा कि भीम हाथ में गदा लिये खड़ा है और चारों ओर अनेकों वृक्ष घायल पड़े हैं। भीम को सब प्रकार से स्वरक्षित देख महात्मा युधिष्ठिर अत्यन्त प्रसन्न हो हृदय से लगाकर बोले—महावीर! तुमने यह क्या किया? क्या तुमने किसी देवता को अप्रसन्न तो नहीं किया? अब भविष्य में ऐसा कभी न करना।

पांडवों के आने का समाचार सुन कुबेर ने अपने विश्वास पात्र सेवकों को भेज उनका अतिशय सत्कार कराया और आज्ञा दी कि इच्छानुसार निर्भय गंधमादन पर विहार करें। महाबली भीम कमल पुष्प देकर द्रौपदी को सन्तुष्ट किये। इस प्रकार प्रसन्नता पूर्वक रहते हुये सभी अर्जुन की बाट जोहने लगे।

उधर स्वर्ग में ५ वर्ष रह कर महाबली अर्जुन देवताओं के समान तेजस्वी हो गये। एक दिन इन्द्र ने अर्जुन से कहा—

पुत्र! जाओ! मर्त्यलोक की यात्रा करो। तुम्हारे चारों भाई गंधमादन पर्वत पर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। इन्द्र की आज्ञा पा महाबली अर्जुन शस्त्रास्त्र सज्जित हो दिव्य रथ पर बैठ अत्यन्त तेजोमयी उल्का के समान गंधमादन पर आ पहुँचे। परस्पर सभी लोगों से मिलकर अत्यन्त आनन्दित हुये। अर्जुन ने एक-एक कर सभी समाचार कह सुनाया।

अर्जुन की अपार तेजस्विता देख महर्षि लोमश ने कहा—पाण्डुपुत्रों! अति शीघ्र निकट भविष्य में तुम्हारी यंत्रनायें जाती रहेंगी। वरूण, कुवेर तथा इन्द्र के वाण व्यर्थ नहीं होगें। देवताओं के वज्र तुल्य अस्त्रों के द्वारा अर्जुन पृथ्वी को फाड़ सकते हैं तथा अचल हिमाय को भी टुकड़े-टुकड़े कर आकाश में उड़ा सकतें हैं। अव कौरवों के लिये चिन्ता करना व्यर्थ है।

धर्मराज! निर्भय हो जाओ। मेरे आशीर्वाद में तुम अजातरिपु हो जाओगे। संसार में तुम्हारा कोई शत्रु न रहेगा।

द्वैत वन में।

—*—*—
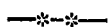
महा तेजस्वी अर्जुन को पाकर सभी अत्यन्त प्रसन्न हुये। युधिष्ठिर के प्रसन्नता की सीमा नहीं रही। उन्होंने अपना अहोभाग्य समझा। अब उन्हें निश्चय होगया कि कौरवोंके युद्ध में हमारी विजय होगी। धीरे २ स्वर्ग के समान परम रमणीक गंधमादन पर रहते २ सुख पूर्वक चार वर्ष व्यतीत होगये। इस प्रकार वनवास के १० वर्ष बीतते देख पांडवों ने मिल कर एक दिन युधिष्ठिर से कहा—

महाराज! हम लोग इस सुन्दर स्थान में स्वर्ग सुख का उपभोग करते हुये आनन्द पूर्वक कालयापन कर सकते हैं, किन्तु हम लोगों के जीवन का लक्ष्य आनन्द करना ही नहीं है। हमें अपना राज्य कौरवों से लेना है। पूर्व की हुई अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करना है। अतः उसकी पूर्ति के लिये अपने राज्य के ही निकट किसी वन में चलना चाहिये। वहां समय आने पर कृष्णादि यादवों तथा ज्ञाति बान्धवों से मिलकर कर्तव्य निश्चय कर सकेंगे।

युधिष्ठिर ने भाइयों की बातें मानली। महर्षि लोमश ने भी यही राय दी। पश्चात् सभी कुबेर नगरी की प्रदक्षिणा कर सुन्दर वन, नदी और सरोवरों को देखते हुये परिचित मार्ग से लौटने लगे। दुर्गम घाटियों और गहन वनों में भीम-पुत्र प्रतापी घटोत्कच ने पूर्णतः सहायता दी। धीरे २ सभी

बद्रिका आश्रम पहुँचे। महर्षि लोमश भांति २ के उपदेश दे देवलोक को पधारे।

इधर एक महीना वहां निवास कर पाँचो पांडव सुबाहु राजा के राज में आये। कुछ दिन वहां रहकर सबों को साथ ले द्वैत वनकी ओर चले।

द्वैत वन में पहुँचते २ दुःखदायी ग्रीष्मका अन्त होगया। सुखदेने वाली वर्षा ऋतु आ पहुँची। सर्वत्र हरियाली दिखाई देने लगी। दादुर, मोर-चकोर आनन्दित हो बोलने लगे। आकाश में काली-काली घटायें घिर गईं तथा लगातार जल-वृष्टि होने लगी। बादलों से घिरे हुये अम्बरमें क्षण क्षण में बिजुलियां चमकने लगीं। निर्झर, नाले तथा सूखी हुई नदियां उपट कर बह चलीं। सर्वत्र जल ही जल दिखाई देने लगा।

इस प्रकार सर्वत्र प्रावृट का साम्राज्य देख पांडवों ने अन्यत्र बढ़ने का विचार छोड़ दिया। सबों ने सुख-पूर्वक वर्षा वहीं बिताई।

कुछ दिनों के बाद वर्षा के अन्त होने पर शरद का आगमन हुआ। देखते ही देखते आकाश साफ होगया। नक्षत्रादि उज्वल हो उठे तथा नदियों में निर्मल जल बहने लगा। पृथ्वी में सर्वत्र हरियाली दिखाई पड़ने लगी। कुश-कांस, अगस्त्यादि फूल उठे। शरद पौर्णमासी आने पर आगे बढ़ने का विचार हुआ।

भुजंग राज और धर्मराज।

—❦—
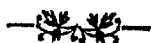
यथा समय पांचो पांडव ब्राह्मणों को लेकर काम्यक वन के लिये चल पड़े। मार्ग में 'यामुन' नामका एक पर्वत पड़ा। आगे बढ़ते ही लोग एक विशाल वन में पहुँचे। वह भीषण वन आखेट के लिये अति सुन्दर था। उसकी अपूर्व रमणीकता देख रात्रि-विश्राम के लिये लोग ठहर गये।

कुछ देरके बाद महाबली भीम भोजन के प्रबन्धमें निकले। उस भीषणवन में-फलफूलों और कंदमूलों की अधिकता थी, वे निर्भय हो गहन वन में आगे बढ़ते चले गये। थोड़ी ही दूर जाने पर उन्होंने एक भयंकर अजगर को अपनी ओर आते हुये देखा। भीम ने इतना विशाल सर्प कभी नहीं देखा था वे शंकित हो आँखें फाड़ २ कर उसके ओर देखने लगे।

देखते ही देखते अजगरने एक लंबी सांस ली। भीम उस अजगर के चक्कर में पड़ गये। लाख उपाय करने पर भी अपने को नहीं छुड़ा सके।

धीरे २ दिनका अवसान हो चला। भगवान् भानु विश्राम पाने के लिये अस्ताचलके निकट पहुँच गये। पक्षियाँ कलरव करती हुईं अपने २ घरों में आने लगीं। वनसे लौटने में भीमको विलम्ब देख युधिष्ठिर अत्यन्त चिन्तित हुये। पृथ्वी पर अंधकार का साम्राज्य बढ़ते देख स्वयं उनके खोजमें निकल पड़े। खोजते २ उस स्थान पर जा पहुँचे जहां अजगर ने भीम को बांध रक्खा था।

भाई को भीषण अजगर के चक्र में फंसा देख युधिष्ठिर अत्यन्त घबड़ाये और हाथ जोड़ कर बोले—हे भुजंगराज! हम आपके भोजन का और प्रवन्ध कर देते हैं आप इन्हें छोड़ दीजिये।

अजगर ने उत्तर दिया। हाँ! मैं छोड़ सकता हूँ जब तुम हमारे प्रश्नों का उचित उत्तर दे मुझे सन्तुष्ट करो। यथोचित उत्तर मिलते ही हमारी सद्गति हो जायगी और भीम भी मुक्त हो सकेगा।

सर्पराज की बातें सुन युधिष्ठिर ने कहा—मैं आप के इस शर्तको हृदय से स्वीकार करता हूँ, कहिये आप क्या पूछना चाहते हैं? अजगर ने कहा—धर्मराज! सबसे पहले यह बताओ कि ब्राह्मण कौन है?

युधिष्ठिर—जिस मनुष्य में सत्य, दान और क्षमाशीलता हो तथा जो अक्रोधी, जितेन्द्रिय (तपस्वी) और दयालु हो, निश्चय वही ब्राह्मण है। जो सर्व व्यापक ब्रह्मको जानता है ऋषियों ने उसे ब्राह्मण कहा है। सृष्टि काल के आरम्भ में जिन व्यक्तियों में यह भाव पाया गया था, जो सुख-दुःख, हानि-लाभ, यश-अपयश, तथा जीवन-मरण की कुछ चिन्ता न कर कठोर परिश्रम के द्वारा ब्रह्मको जान लिया था लोगों ने उनका नाम ब्राह्मण रक्खा।

अजगर ने कहा—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार जातियाँ हैं यदि शूद्र में ब्राह्मणों के समस्त लक्षण हों तो क्या वह ब्राह्मण माना जा सकता है?

युधिष्टिर—यदि शूद्र में ब्राह्मण के लक्षण हों तो निःसन्देह वह शूद्र ब्राह्मण-लक्षणों से हीन एक ब्राह्मण संतान से श्रेष्ठ माना जा सकता है।

अजगर–यदि गुणों से ब्राह्मण मानते हो तो जब तक चरित्र चल न हो तब तक जाति वृथा है?

युधिष्टिर–अवश्य! तब तक ब्राह्मण शूद्र के समान है। संस्कार होने पर ही द्विज कहलाता है।

युधिष्टिर से प्रसन्न हो अजगर ने पूछा मेरा दूसरा प्रश्न यह है कि संसार में जानने योग्य ज्ञान क्या वस्तु है तथा वह कौन सा स्थान है जहां हानिलाभ, जीवण-मरण और सुख-दुःख न हों।

युधिष्टिर! वह ब्रह्म है, वही जानने योग्य ज्ञान है। मोक्ष पद एक ऐसा स्थान है जहां हानि लाभ, जीवन मरण, और सुख दुःख नहीं व्यापते।

इस प्रकार अपने प्रश्नों का यथोचित उत्तर पाकर अजगर अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ और भीम सेन को छोड़ दिया धर्मराज महावली भीम को लेकर भाइयों से आ मिले।

चन्द्रवंश में ही नहुष नाम के एक राजा थे। एक वार महर्षि अगस्त्य ने शाप देकर उन्हें सर्प वना दिया था। उस समय से अब तक वे इसी योनि में जीवन विता रहे थे युधिष्टिर के उत्तर देने पर इनकी सद्गति हुई।

काम्यक वन में श्रीकृष्ण-मिलन ।

और

मार्कण्डेय जी का उपदेश

—:※:—

वह रात्रि उसी भयानक वन में बिता कर सभी आ... बढ़े। यथा समय धौम्यादि गुरुजनों के साथ काम्यक वन में पहुँचे। पांडवों के आते ही वहां के तपस्वी ब्राह्मणों ने बड़ा सत्कार किया। एक दिन लोगों ने युधिष्ठिर से कहा—महाराज ! यादव-शिरोमणि श्री कृष्णजी आ रहे हैं।

थोड़ी ही देर में भगवान् कृष्णका गरुड़ चिन्ह वाला रथ आता दिखाई पड़ा। सभी अत्यन्त प्रसन्न हो उठे। श्रीकृष्ण जी सत्यभामा के साथ रथ से उतरे। महर्षि धौम्य, धर्मराज तथा भीमको प्रणाम कर नकुल-सहदेव को अशीर्वाद दे कृष्णा से कुशल समाचार पूछे। अन्त में बड़े प्रेम से अर्जुन को अपनी छाती से लगा लिये। इधर सत्यभामा और द्रौपदी भी गले २ मिलीं।

इस प्रकार शिष्टाचार समाप्त होने पर अर्जुन ने अपनी यात्रा का सारा हाल कह सुनाया। पश्चात् भगवान्से सुभद्रा-अभिमन्यु और द्रौपदी के पांचों पुत्रों का कुशल समाचार पूछा।

इसके अनन्तर श्रीकृष्ण ने धर्मराज से कहा—धर्म ही

सर्वस्व है, परन्तु इसका मूल तप है। तपस्या सदाचार से होती है। तपस्वी के लिये कुछ भी अप्राप्य नहीं है। महाराज ! तपस्या के वल से आपकी विजय होगी। इस प्रकार कहते हुये श्रीकृष्ण द्रौपदी के पुत्रों का कुशल-समाचार सुनाने लगे।

इसी समय मार्कण्डेयजी आ पहुँचे। श्रीकृष्ण सहित पाण्डवों ने उनकी यथाविधि पूजा की। पश्चात् उत्तम आसन पर विठा कर वोले—महर्षि ! हम लोग आप से पुनीत कथा सुनना चाहते हैं।

महर्षि मार्कण्डेय ने भाँति-भाँति की कथायें कहकर लोगों को सन्तुष्ट किया। इसके अनन्तर धर्मराज ने पूछा—महामुनि ! आप ने तो अनेक लोकों की उत्पत्ति और प्रलय को आँखों से देखा है। कहिये-ब्रह्म के अतिरिक्त और कौन आप से अधिक आयु वाला है ? भगवन् ! प्रलय के पश्चात् इस सृष्टि की उत्पति कैसे होती है ? महर्षि मार्कण्डेय जी ने कहा—हे युधिष्ठिर ! सृष्टि की उत्पत्ति जिस युग में होती उसे सत्ययुग कहते हैं। इसकी आयुर्वल सत्रह लाख अट्ठाइस सहस्त्र वर्ष है। दूसरा वारह लाख छानवे हजार वर्ष का त्रेता युग है, तीसरा आठ लाख चौंसठ सहस्त्र वर्ष का द्वापर युग और चार लाख वत्तीस हजार वर्ष का चौथा कलियुग है।

धर्मराज ! एक युग के अन्त होने पर दूसरे का आरम्भ नहीं होता। दोनों की सन्धि में कुछ वर्ष बीत जाते हैं।

चारो युगों की सन्धि सहित तैंतालीस लाख बीस हजार वर्ष होते हैं। ये देवताओं के बारह सहस्र वर्ष हैं। चारो युगों के हजार बार बीतने पर ब्रह्मा का एक दिन होता है तथा इसी प्रकार ब्रह्मा के सायंकाल आने पर सृष्टि का प्रलय हो जाता है।

हे पाण्डु पुत्र! सत्ययुग बड़ा उत्तम युग है। इसमें सत्य की प्रधानता है। त्रेता धर्म प्रधान युग है। द्वापर मध्यम युग माना गया है। अन्तिम युग कलि को ऋषियों ने निकृष्ट माना है।

कलियुग के प्रवेश करते ही प्रजाय असत्यवादिनी हो जाती हैं। सर्वत्र यज्ञ, तप और दान का लोप हो जाता है। वर्णाश्रम अपने धर्म को भूल जाते हैं। शूद्र तपस्वी बन कर उपदेश देने लगते हैं तथा पृथ्वी म्लेक्षों के अधिकार में हो जाती है।

कलिमें घोर पाप बढ़ जाता है। सर्वत्र अनावृष्टि होनेके कारण प्रजाओं में भयंकर दुर्भिक्ष और अनेक रोग फैल जाते हैं। असंख्यों महामारियां ताण्डव करते हुये जन-पद-ध्वंस करने लग जाती हैं। भगवान दिवाकर अत्यन्त संतप्त हो उठते हैं पश्चात् प्रलय-काल के समय सम्वर्तक अग्नि वायु के साथ प्रकट होकर चराचर को भस्म कर देती है।

अनन्तर भयंकर जल-वृष्टि के द्वार सम्वर्तक अग्नि जाती रहती है, संसार एक प्रलय का समुद्र हो जाता है। उस समय मैं अत्यन्त व्याकुल हो भटकने लगता हूँ। पश्चात्

में एक अविचल वट-वृक्ष की शाखा पर एक सूर्य समान प्रकाशमान बालक को देखता हूँ। जब मैं उसके रहस्य को जानने के लिये ध्यानावस्थित होता हूँ, तब वह हंसकर कहता है-महात्मन्! आओ! मेरे उदर में विश्राम करो। मैं उसके उदर में प्रवेश कर जाता हूँ। वहाँ मैं एक साथही करोड़ों ब्रह्माण्डों को देख कर अत्यन्त चकित हो उठता हूँ। मैं बाहर आकर उस बालक से विचित्रता का कारण पूछता हूँ। मुझे विस्मित देख बालक हँसकर कहता है। हे महर्षि! मैं अनन्त हूँ। तुम्हारे प्रेम से सृष्टि रचना करता हूँ। मैं ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव हूँ। चन्द्रमा और सूर्य मेरे ही नेत्र हैं। संसार मुझमें ही समा रहाहै। मैं ही सबों का पोषक उत्पादक तथा प्रलय करने वाला हूँ। इस प्रकार वह बालक अव्यक्त हो जाता है। युधिष्ठिर! उस बालक की कृपा से मैं सदैव देखा करता हूँ। देखो! तुम्हारे सामने तो स्वयं कृष्ण विराज ही रहे हैं—तब तुम्हें क्या चाहिये? इन्हीं की शरण में जाओ। निःसन्देह ही तुम्हें रोम-रोम में ब्रह्मांड दिखलाई पड़ेगा। धर्मराज! निश्चय ही श्रीकृष्ण के शरण में जाने से तुम्हें कुछ जानना शेष नहीं रह जायगा।
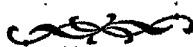
द्रौपदी-सत्यभामा सम्वाद।

सुन्दरी द्रौपदी बड़े प्रेम से सत्यभामा से मिली। कुशल समाचार पूछने पर सत्यभामा ने द्रौपदी से कहा—हे कृष्णा! बड़े महावीर तुम्हारे पाँचो पति तुम से कैसे सन्तुष्ट रहते हैं? वे किस प्रकार तुम्हारे ऊपर समान भाव से प्रेम रखते हैं। सुन्दरी! कहो-किस युक्ति अथवा मन्त्र-तन्त्रसे तुम उन लोगोंको वशमें कर रक्खी हो? कृपाकर मुझे भी वही साधन बताओ। जिससे मैं भी श्रीकृष्ण जी को अपने वश में रख सकूँ।

द्रौपदी बोली—सत्यभामा! तुम असाध्वी स्त्रियों के समान कह रही हो? क्या मन्त्र-यन्त्र के बल से कोई स्त्री अपने पति को वश में रख सकती है? बहन! सुनो—व्यवहारों के द्वारा पति को वश में रखना चाहिये। मैं पांडवों की अन्य स्त्रियों को सदा प्रसन्न रखती हूँ। उनसे प्रेम करती हूँ। कभी ईर्ष्या नहीं करती और न उनकी बुराई ही किया करती हूँ। मैं सदैव पति की इच्छानुसार काम करती हूँ। कभी अप्रिय वचन नहीं बोलती। सब की समान सेवा करती हूँ। कभी भूल कर भी पक्षपात नहीं करती। सत्यभामा! मैं पतियों को भोजन कराकर भोजन करती हूँ। गृह प्रबन्ध अपने हाथ में रखती हूँ। सदैव मीठे वचनों से उनके मन को प्रसन्न करती हूँ। मैं उनके सुख में सुखी तथा दुःख में दुःखी रहती हूँ। मैं कभी अन्य पुरुष पर दृष्टि नहीं

डालती । यही कुल ललनाओं के धर्म हैं तथा यही पतिव्रत का प्रधान लक्षण है । हे सुन्दरी ! कभी भूलकर भी दुष्टता का व्यवहार हृदय पर न लाना चाहिये ।

द्रौपदी के इस प्रकार कहने पर सत्यभामा ने कहा—हे द्रौपदी ! मैंने ये बातें तुम्हें हँसी में कही थी । बहन ! बुरा न मानना ।

द्रौपदी ने कहा—हे सत्यभामा ! पति को अपने वश में करने के जो उपाय बताये हैं वे योग्य ही नहीं सर्वोत्कृष्ट हैं । सुनो—पति ही सर्वस्व है । वही स्त्रियों के सद्गति का कारण है । महात्माओं ने कहा है—पति ही ब्रह्मा है, विष्णु हैं और साक्षात शङ्कर हैं । बहन ! पति सेवा से बढ़ कर स्त्रियों के लिये कोई यज्ञ, जप, व्रत कथा तथा तप नहीं है । पति के सन्तुष्ट होने से ही वह समस्त गुणों की अधिकारिणी होगी । निश्चय पति सेवा ही स्त्रियों के लिये स्वर्ग-सुख का द्वार है ।

कुछ देर के बाद श्रीकृष्ण जी द्वारिका जाने के लिये तैयार हुये । रथ पर बैठते समय उन्होंने सत्यभामा को बुलाया । चलते समय सत्यभामा बड़े प्रेम से द्रौपदी से मिलकर गरुड़ चिन्ह वाले दिव्य रथ पर जा बैठी ।

चित्र रथ द्वारा कौरवों का बंध

और

पाण्डवों द्वारा मोक्ष।

-*-

भगवान कृष्ण के चले जाने पर फल-फूल यथेष्ट रूप में न मिलने पर पांडवों को पुनः द्वैत वन में जाना पड़ा। वे रम्य सरोवर के निकट पर्णकुटी बनाकर सुख से रहने लगे। इसी समय वहाँ से एक ब्राह्मण धृतराष्ट्र के पास गया। उन्होंने ब्राह्मण का उचित सत्कार कर पाण्डवों का कुशल पूछा— ब्राह्मण ने महादुखी पांडवों के दुःख की कथा बड़े ही मार्मिक शब्दों में कह सुनायी।

दुःखी पाण्डवों का वृत्तान्त सुन अपने पुत्रों की निन्दा करते हुये धृतराष्ट्र विलाप करने लगे। पश्चात् अर्जुन के दिव्यास्त्रों का समाचार सुन बहुत ही डरे। उन्हें निश्चय हो गया कि मेरे पुत्रों के नाश में अब विलम्ब नहीं है।

धृतराष्ट्र को इस प्रकार बिलखते हुये देख मूर्ख दुर्योधन बड़ा दुःखी हुआ। यद्यपि उसे शकुनि ने धीरज बँधाया परन्तु उसका दुःख कम नहीं हुआ। इसी समय कर्ण बोला—

हे राजन्! आज कल पांडव लोग पासही द्वैत वन में हैं। चलो हम लोग एक बार खूब ठाट-बाट से चतुरङ्गिनी सेना

लेकर चलें। आप के राजसी ऐश्वर्य्य को देख वे अवश्य दुखी होंगे और उनकी दुर्दशा देख हम लोग खुशी मनायेंगे।

सबों ने कर्ण की बातों का समर्थन किया। परन्तु जाँय तो कैसे? महाराज धृतराष्ट्र जाने की आज्ञा कभी न देंगे। इस प्रकार दुर्योधन सोच ही रहा था कि कर्ण और शकुनि ने हँसते हुये कहा—हे दुर्योधन! युक्ति निकल आई। द्वैत वन में गौयें रहती हैं उनकी देख भाल करना आपका ही कर्तव्य है। इसी बहाने चल चलिये।

इस प्रकार निश्चय कर सभी धृतराष्ट्र के पास गये और अपना अभिप्राय कह सुनाये। धृतराष्ट्र ने वहाँ पांडवों का निवास बतला कर इन लोगों को रोका। परन्तु दुराचारियों ने धृतराष्ट्र को यह समझा कर तुष्ट कर लिया कि हम लोगों को पांडवों से क्या प्रयोजन? हम लोगों को तो केवल गौवों को देखने तथा शिकार खेलने की इच्छा है।

धृतराष्ट्र की आज्ञा पाते ही कर्णादि मित्रों, शकुनि आदि सहायकों तथा दुःशासनादि भाइयों को लेकर सेना के साथ बड़े ठाट-बाट से द्वैत वन की ओर चला। साथ में हजारों रथ घोड़े हाथी चले। दुर्योधनादि की स्त्रियाँ भी वस्त्रालंकारों से सुसज्जित होकर गईं।

उत्तम स्थान पर सभी ठहर गये। धीरे-धीरे गौओं के देख-रेख का काम समाप्त हो गया। अब सभी चारों ओर घूम-घूम कर शिकार खेलने लगे। दुर्योधन आखेट करता हुआ द्वैत वन के सरोवर के पास पहुँचा। पांडवों को

अपना ऐश्वर्य्य दिखाने लिये उसने सरोवर के किनारे एक उत्तम शिविर बनाने की नौकरों को आज्ञा दी।

उसी समय गन्धर्वों के राजा चित्रसेन अप्सराओं के साथ जल विहार करने के लिये उसी सरोवर के निकट ठहरे थे। गन्धर्वों ने दुर्योधन के नौकरों को शिविर बनाने से रोका। यह सुनते ही दुर्योधन ने गन्धर्वों को मार भगाने की आज्ञा दी।

इसी सिद्धान्त पर गन्धर्वों और दुर्योधन के सैनिकों का भयङ्कर युद्ध हुआ। प्रतापी गन्धर्वों की मार से दुर्योधन की सेना भाग खड़ी हुई। अपनी सेना को भागते देख कर्ण, दुर्योधनादि आ डटे। देखते ही देखते घोर युद्ध आरम्भ हो गया। कर्णादि वीरों के पैने बाणों से बहुत गन्धर्व पृथ्वी पर लोट गये। इस प्रकार अपनी सेना को दुर्योधनादि पर विजय करते न देख चित्ररथ स्वयं युद्ध-भूमि में आये और मोहनास्त्र चला कर क्षण मात्र में कौरव वीरों को व्यथित कर दिये। महाबली कर्ण का रथ चूर-चूर कर दिया गया। वे गन्धर्व राज के बाणों से पीड़ित होते हुये युद्ध भूमि छोड़ कर भाग खड़े हुये। सारी सेना में हाहाकार मच गया। परन्तु दुर्योधन समर भूमि में डटा रहा। कुछ ही क्षण पश्चात् गन्धर्वों ने उसके रथ को भी चूर-चूर कर दिया और उसे जीवित ही पकड़ लिया। इस प्रकार चित्ररथ रानियों सहित दुर्योधन को बाँध कर ले चले।

दुर्योधन के मन्त्रियों ने जाकर पांडवों की शरण ली।

उन्होंने रो-रोकर दुर्योधन की दुर्दशा कह सुनायी। मंत्रियों की बातें सुनते ही धर्मराज द्रवित हो उठे। वे स्वाभाविक ही दयालु थे। उन्हें दुर्योधन की दुर्दशा पर बड़ी दया आई। उन्होंने भीम और अर्जुन से कहा कि शीघ्र जाकर गन्धर्वों के बन्धन से कौरवों को छुड़ा लाओ। यद्यपि भीम की इच्छा नहीं थी, परन्तु धर्मराज के कहने पर उन्हें विवश होकर जाना पड़ा।

धर्मराज ने भीम को समझाते हुये कहा—भीम! कौरव हमारे शत्रु हैं। परन्तु वास्तव में वे हमारे भाई हैं। हम लोग आपस में शत्रु हैं परन्तु दूसरे शत्रु के आक्रमण करने पर हम लोगों को मित्र बन कर एक दूसरे की सहायता करनी चाहिये। इस पर भी कौरव लोग आर्त्त होकर हमारी शरण में आये हैं। अतः गृह कलह को भुला कर उनकी शीघ्र रक्षा करो।

देखते ही देखते महाबली भीम और अर्जुन निकल पड़े। कुछ ही देर में गन्धर्वों से महा समर होने लगा। चित्ररथ के धनुष की टङ्कार सुन महाबली अर्जुन शब्द वेधी बाण चलाने लगे। इसी समय गन्धर्व राज चित्रसेन ने प्रकट होकर कहा—महावीर! ठहर जाओ? हम तुम्हारे मित्र चित्रसेन हैं।

प्रिय मित्र की बात सुनते ही अर्जुन ने गांडीव रख दिया। तत्काल युद्ध बन्द हो गया। दोनों मित्र एक दूसरे को गले लगाकर मिले। पश्चात् अर्जुन ने कहा—मित्र!

तुम ने दुर्योधन को रानियों सहित क्यों बाँध लिया है।
चित्रसेन ने कहा—

हे मित्र ! इन दुष्टों को अपने कर्मों का फल भोगना पड़ा है। ये कौरव प्रत्यक्ष कालनेमी हैं। ये दुराचारी तुम्हें सताने तथा द्रौपदी की हँसी करने यहाँ आये थे। इस हेतु देवेन्द्र की आज्ञा से हम इन्हें दण्ड देने के लिये यहाँ तक आये। हम इन पापियों को पकड़ कर पुरन्दर के पास ले चलेंगे। इन दुष्टों का नीचाशय नहीं जानने के कारण तुम लोग इनके मुक्ति के लिये आये हो। चलो भाई धर्मराज के पास चलकर सब हाल सुनावें।

युधिष्ठिर के पास जाकर गन्धर्वराज ने दुराचारी दुर्योधन का सब हाल कहा—धर्मराज ने दुर्योधन की दुष्टता सुन कर भी उसे छोड़ देने को प्रार्थना की। चित्रसेन महात्मा युधिष्ठिर की आज्ञासे दुर्योधन को बन्धन मुक्त कर अपने लोक को चले गये।

पश्चात् धर्मराज दुर्योधन का अत्यन्त सत्कार कर प्रेम से बोले—भाई ! अब कभी ऐसा दुःसाहस नहीं करना। तुम किसी प्रकार का दुःख न मानो। प्रसन्नता पूर्वक घर जाओ।

दुर्योधन युधिष्ठिर को प्रणाम कर नगरी की ओर चला। वह आत्म ग्लानि के व्यग्र हो उठा था। उसकी इन्द्रियाँ वश में नहीं थीं। वह लज्जा के मारे मर रहा था। इतने में ही उसका मित्र कर्ण मिला। भागने के कारण युद्ध का हाल उसे मालूम न था। इस लिये वह प्रसन्न हो दुर्योधन के

वीरता का वर्णन करने लगा। पश्चात् पूछा—हे वीर ! आप ने गन्धर्वों का किस प्रकार पराजय किया।

कर्ण की बातों को सुनकर दुर्योधन की शोकाग्नि बढ़ गई। वे रुँधे हुये कण्ठ से गन्धर्वों का बँध और पांडवों द्वारा मुक्ति का भेद कहकर बोले-भाई ! उन्हीं पांडवों ने मुझे गन्धर्व राज के हाथ से छुड़ाया है। हाय ! जिन शत्रुओं को मारने के लिये हमने यत्न किया था; वेही हमारे रक्षक हुये। मैं अपना यह अपमान कैसे सह सकता हूँ।

हाय ! गन्धर्वों के हाथसे ही मर जाना अच्छा था। शोक ! इस प्रकार विलाप करते हुये दुर्योधन ने कहा—

अब हम अवश्य प्रण करके इस शरीर को त्याग देंगे। भाइयों ! तुम लोग लौट जाओ। हाय ! भीष्म द्रोणादि क्या कहेंगे ? उन महात्माओं द्वारा निन्दित होने की अपेक्षा तो हमें मृत्यु अधिक प्यारी है।

इतना कहकर दुर्योधन ने दुःशासन को बुलाकर कहा— हे भाई ! आओ ! हम तुम्हारा राजतिलक कर दें। गुरुजनों की सेवा करते हुये प्रजाओं का पालन करना।

दुर्योधन की विकलता देख दुःशासन उसके पैरों पर जा गिरा और रोते हुये बोला—भाई ! तुम अधीर न हो, यह राज्य तुम्हारा है और हमारे वंश में तुम्हीं इसके योग्य हो। दुःशासन के रुदन को सुन कर्ण ने बहुत प्रकार से समझाया। परन्तु दुर्योधन का चित शांत नहीं हुआ। वह शरीर त्यागने के लिये पवित्र भस्म लगा कर कुशासन पर जा बैठा।

पाताल वासी दैत्यराज को यह बात मालूम हो गई। उसने रात्रि में एक दूती को भेज दुर्योधन को कहलाया कि अनशन व्रत को छोड़ दे। आत्म हत्या करने वालों की कभी सद्गति नहीं होती। तुम्हारी सहायता के लिये दानवों ने मानवीय शरीर धारण किया है। तुम निर्भय हो, भीष्म, द्रोण, कर्णादि वीरों के शरीर में प्रविष्ठ होकर हम लोग विकट युद्ध करेंगे। पाण्डवों से भयभीत न हो। महाबली नरकासुर की आत्मा जब कर्ण के शरीर में प्रविष्ट होकर युद्ध करने लगेगी तब स्वयं इन्द्र भी अर्जुन को नहीं बचा सकेंगे। अतः शोक को त्याग कर निर्भय राज्य करो।

दूसरे दिन कर्ण शकुनि आदि आकर फिर समझाने लगे। कर्ण ने कहा—महाराज! आप शोक त्यागिये। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि वनवास के बीतते ही पाण्डवों को परास्त कर आप के आधीन कर दूँगा। इस प्रकार दैत्यराज के सन्देश और कर्ण के उत्साह से प्रेरित होकर दुर्योधन चलने के लिये राजी हो गया।

कर्ण का दिग्विजय
और
वैष्णव महायज्ञ

——*—*——

यथा समय दुर्योधन के पहुँचने का समाचार नगर निवासियों को मिला। महाराज धृतराष्ट्र बाह्लीक, भूरिश्रवा, सोमदत्त आदि को साथ लेकर अगवानी के लिये गये। इस प्रकार सवों से मिलकर दुर्योधन राज-भवन में गया।

दुर्योधन का सारा वृत्तान्त सुनकर महामति पितामह भीष्म ने कहा—दुर्योधन! हमने जाते समय तुम्हें रोका था, परन्तु तुमने नहीं माना। हमने तुम्हारी दुर्दशा का हाल सुन लिया है। जिस कर्ण के बल पर तुम इतरा रहे हो वह पाण्डवों का अणु मात्र भी नहीं है। वह गंधर्वों के डर से किस प्रकार भाग खड़ा हुआ। अतः पुत्र! तुम किसी के वहकाने में न आकर पाण्डवों से सन्धि कर लो।

दुराचारी दुर्योधन ने महामति भीष्म की बातों को हँसी में उड़ा दिया। वह बिना कुछ कहे सुने ही कर्ण और शकुनि को लेकर दर्बार से चला गया। महात्मा भीष्म उसके इस व्यवहार से अत्यन्त लज्जित हो उठ खड़े हुये और घर की ओर चले गये। महात्मा भीष्म के जाते ही दुराचारियों

का दल पुनः आ पहुँचा और अनर्गल कार्य्यों का विचार करने लगा।

इसी बीच में कर्ण ने कहा—मित्र! भीष्म सदा पाण्डवों की प्रशंसा ही किया करता है। वह बराबर आप को बुरा-भला कहता ही रहता है। यह मुझसे नहीं सहा जाता। आप यदि आज्ञा दें तो जिस कार्य को चार पाण्डवों ने किया है उसे मैं अकेले ही चतुरंगिनी सेना लेकर कर सकता हूँ, बिना दिग्विजय किये कुलांगार भीष्म की आँखें नहीं खुल सकतीं। मैं अकेले दिग्विजय करना चाहता हूँ।

कर्ण की बात सुन दुर्योधन अत्यन्त प्रसन्न हो बोला—वीर! संसार में तुम्हारा सामना करने वाला दूसरा वीर नहीं है। तुम प्रसन्नता पूर्वक सारी सेना लेकर दिग्विजय के लिये जाओ।

इसके अनन्तर शुभ मुहूर्त आते ही सारी सेना सजाकर कर्ण दिग्विजय के लिये निकले। पहले पाञ्चालों को वशीभूत कर उनसे अपार धन लिया, फिर उत्तर दिशा के राजाओं को परास्तकर उनसे कर ले आगे चला। हिमालय और तिब्बत के पहाड़ी राजाओं को अपने वश में करता हुआ, पूर्व दिशा की ओर बढ़ा—इस प्रकार क्रमशः सभी दिशाओं के राजाओं को जीत अथवा उनसे संधि कर अशेष धन राशि के साथ हस्तिनापुर लौटा।

दुर्योधन कर्ण से मिलकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने हृदय से लगाकर कहा—वीरवर! तुमने सम्पूर्ण पृथ्वी पर

विजय प्राप्त कर लिया है। जिन कार्यों को भीष्म, द्रोण और कृप नहीं कर सके उसे तुमने कर दिखाया। हम तुम्हारी प्रशंसा और क्या करें? महावीर! हम तुम्हीं से सनाथ हैं।

इस प्रकार सभी परस्पर बातें करते हुये धृतराष्ट्र से मिले कर्ण की प्रशंसा सुन उन्हें पाण्डवों को जीत लेने में अब सन्देह न रहा। इसी समय कर्ण की सम्मति से एक महा-यज्ञ करने का विचार हुआ। दुर्योधन ने राजसूय यज्ञ करने की कामना प्रकट की। परन्तु ऋत्विजों ने यह कह मना कर दिया कि युधिष्ठिर और धृतराष्ट्र के रहते हुये राजसूय नहीं हो सकता। देर तक विचारने पर अन्त में विष्णु यज्ञ करने का निश्चय हुआ। ब्राह्मणों ने कहा—महाराज! पृथ्वी के राजाओं से कर रूपमें सोना लीजिये, उसी स्वर्ण का एक हल बनवा कर यज्ञ-भूमि को जुतवाइये। यह विष्णु यज्ञ राजसूय से किसी प्रकार कम नहीं है।

यथा समय यज्ञ की तैयारियाँ होने लगीं। सुन्दर यज्ञ मण्डप तैयार हो गया, तथा सोने का हल भी बन गया। इस प्रकार यज्ञ-सामग्रियाँ प्रस्तुत हो जाने पर ऋत्विजों ने विधि अनुसार दुर्योधन को दीक्षा दी। चारो दिशाओं में निमंत्रण के लिये दूत भेजे जाने लगे। दुःशासन ने एक दूत को द्वैत वन जाकर पाण्डवों को भी निमंत्रण देने के लिये कहा—

दूत द्वैत वन में पाण्डवों के पास पहुँच कर दुःशासन

का निमंत्रण देकर कहा—महाराज ! कौरव लोग दिग्विजय कर महा यज्ञ कर रहे हैं। धर्मात्मा युधिष्ठिर ने कहा—भाई ! हम लोग तो प्रतिज्ञा के बन्धन में बँधे हैं। नगर में कैसे जा सकते हैं ? तब तक भीम बोल उठे-हे दूत ! तुम धृतराष्ट्र के पुत्रों से कह देना कि अवधि बीतने पर जब शस्त्राग्नि में आहुति देने के लिये जायेंगे तब तुम लोगों से समर भूमिमें मिलेंगे ।

विष्णु यज्ञ बड़े धूम से आरम्भ हुआ, देश-देश के राजा, ब्राह्मण, अतिथि तथा ऋषि-मुनि पधारे। दुर्योधन ने सबों का यथोचित सत्कार किया। ऋत्विजों ने वेद विधि अनुसार सभी कार्य कराये, इस प्रकार वह महायज्ञ निर्विघ्न समाप्त हुआ।

इसी महायज्ञ में दुर्योधन ने क्षत्रपति की उपाधि धारण की। पृथ्वी के एक ओर से दूसरे ओर तक उसका अखण्ड राज्य फैल गया। सभी देश के राजाओं ने आधीनता स्वीकार कर ली।

महाराज दुर्योधन ने महायज्ञके समय बड़ा उत्सव किया। पृथ्वी के आये हुये निमन्त्रित राजाओं का यथेष्ट सत्कार कर विदा किया। यज्ञ के उपलक्ष में बहुत सी गायें तथा अपार धन-राशि जिसे कर्ण ने दिग्विजय से प्राप्त किया था ब्राह्मणों को दान कर दिया।

कर्ण का आसुर महाव्रत
और
इन्द्र की याचना

—:※:—

यज्ञकार्य से निवृत हो दुर्योधन गुरूजनों को प्रणाम कर राजभवन में पहुँचा। यज्ञ के निर्विघ्न समाप्त होने से उसके हर्ष का ठिकाना नहीं था। वह अभिमान में मत्त होकर एक ऊँचे सिंहासन पर जा बैठा।

दुर्योधन को आनन्दित देख कर्ण ने कहा—

महाराज! यह महायज्ञ निर्विघ्न समाप्त हो गया। हे वीरवर! जिस दिन आप पाण्डवों का नाशकर राजसूय यज्ञ करेंगे उस दिन मैं आपका पूर्ण सत्कार करूँगा।

कर्ण की वीरोचित बातें सुनकर दुर्योधन ने उसे हृदय से लगा लिया। पश्चात् पाण्डवों के विजय का परामर्श चला। इसी सम्बन्ध में बातें करा कर्ण ने कौरवों को उत्साहित करते हुये कहा—हे वीरों! युद्ध भूमि में मैं जब तक अर्जुन का वध न कर लूँगा तब तक आसुरव्रत धारण करूँगा। व्रत कालमें मैं मद्य मांसादि का स्पर्श हाथ से भी नहीं करूँगा तथा पूजन कालके पश्चात् मुझ से कोई भी जो कुछ माँगेगा मैं वहीं दूँगा।

इस प्रकार अर्जुन वध की प्रतिज्ञा सुन सबों को सन्तोष हुआ। दुर्योधनादि अत्यन्त प्रसन्न हो भावी युद्धकी तैयारियों में लग गये।

इधर दुर्योधन का यज्ञ करना और कर्ण की प्रतिज्ञा सुन कर महात्मा पाण्डवों को बड़ी चिन्ता हुई। वे द्वैत वन से पुनः काम्यक वन में जा बसे। पाण्डवों की अवस्था देख देवराज इन्द्र को बड़ी दया आई, उन्होंने अपनी की हुई प्रतिज्ञा को याद कर पाण्डवों की रक्षा के लिये, कर्ण का अभेद्य कवच ले लेने का विचार किया। कर्ण को आसुरव्रत धारण करते देख उन्हें अवसर मिल गया। उन्होंने ब्राह्मण का वेश धारण कर भिक्षा के द्वारा उसे माँगने का संकल्प किया।

भगवान सूर्य इस बात को जान कर कर्ण के पास पहुँच कर बोले—पुत्र! तुम्हारा अभेद्य कवच माँगने के लिये इन्द्र आ रहे हैं। तुम किसी को विमुख नहीं लौटाते। अभेद्य कवच दे देने से तुम विपद में पड़ जाओगे। अतः मैं तुम्हें सचेत करने के लिये आया हूँ। इसे इन्द्र को दे देना ठीक नहीं।

भगवान सूर्य की बातें सुन कर्ण ने कहा—भगवान! आपकी आज्ञा शिरोधार्य्य है किन्तु यदि आप प्रसन्न हैं तो आप वर दीजिये कि हम व्रतरक्षा से विमुख न हों। हे देव! क्षणभंगुर शरीर देकर स्थाई कीर्ति लाभ करना क्या अच्छा नहीं है?

सूर्यदेव ने कहा—पुत्र! अभेद्य कवच और कुण्डल के रहते संसार में तुझे कोई पराजय नहीं कर सकता। फिर भी यदि तुम अपना व्रत खंडित करना नहीं चाहते तो इन्द्र

को कवच देकर उसके बदले में उनकी शत्रुनाशिनी शक्ति माँग लेना—इतना कह कर भगवान् सूर्य अन्तर्ध्यान हो गये।

इसके अनन्तर भगवान इन्द्र ब्राह्मण का वेश धारण कर कर्ण के पास आये। उसने कहा—हे भूदेव! कहिये आपको क्या चाहिये?

इन्द्रने कहा मुझे धन-धान्य किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है, यदि आप सत्यप्रतिज्ञ हैं तो अपने सहजात कवच और कुण्डल दीजिये।

ब्राह्मण की बात सुन कर कर्ण समझ गये कि ये इन्द्र हैं अतः उन्होंने कहा—हे ब्राह्मण! हम अपने सहजात कवच और कुण्डल को कैसे दे सकते हैं। इसके बदले यदि आप सारा राज-पाट, धन-धान्य चाहो तो हम दे सकते हैं। इस प्रकार कहकर कर्णने देखाकि ब्राह्मण किसी प्रकार सहमत नही होते तो हँस कर कहा—हे सुरराज! हम आपको क्या वर दे सकते हैं? आप समर्थ हैं, सर्व प्रकार से योग्य हैं, आप हमारे कवच और कुण्डल को लेकर मुझे क्यों निर्वल बनाना चाहते हैं। भगवन्! इस में आप की ही हँसी होगी। अतः आप इसके बदले में हमें ऐसा अस्त्र दीजिये जो अमोघ हो।

देवराज ने कहा—कर्ण! जान पड़ता है कि सूर्य ने तुम्हें सचेत कर दिया है। अच्छा! वज्रके अतिरिक्त और जो चाहो मैं दूंगा। कर्ण ने शत्रु नाशिनी शक्ति माँगी।

इन्द्र ने कहा—लो। मैं यह शक्ति देता हूँ परन्तु शत्रुका

वध कर पुनः हमारे पास लौट आयेगी। केवल एक बार ही जब प्राण का भय हो तब इसका उपयोग करना अन्यथा यह तुझे ही मार डालेगी।

कर्ण ने इन्द्र की बात स्वीकार कर तत्काल शस्त्र से चमड़े को उतार रक्त से लथ-पथ कवच और कुण्डल इन्द्र को देकर कहा—भगवन्! लीजिये। इसके उपरान्त महावीर कर्ण ने इन्द्र के हाथ से चमचमाती हुई अमोघ शक्ति लेली। इस भयंकर कर्म के समाप्त होते ही स्वर्ग से देवता कर्ण के ऊपर फूल बर्षाने लगे।

इस भयङ्कर काम के समाप्त होने पर इस महाव्रती वीर को सभी कर्ण के नाम से पुकारने लगे।

कर्ण के पास से कुण्डल और कवच निकल जाने का हाल सुन पांडवों को कुछ धीरज तथा धृतराष्ट्र पुत्रों को बड़ा दुःख हुआ।

देवराज इन्द्र ने कर्ण को ठगा तो अवश्य! परन्तु इससे कर्ण की कीर्ति दिगन्त व्यापिनी हो गई। इसी महादान के कारण कर्ण आज भी दानी कर्ण के नाम से विख्यात हो रहा है।

द्रौपदी-हरण

और

जयद्रथ की कठिन तपस्या ।
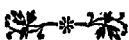
कुछ काल पश्चात् एक दिन पांडवों ने द्रौपदी को महर्षि तृणविन्दु के आश्रम में रखकर आचार्य्य धौम्य से कहा—भगवन ! आप द्रौपदी की रक्षा कीजियेगा। हम लोग सायङ्काल के पूर्व लौट आयेंगे। इतना कह कर पाण्डव रथों पर बैठ कर भिन्न-भिन्न दिशाओं में शिकार के लिये निकल गये।

इसी समय धृतराष्ट्र-पुत्री दुःशला का पति सिन्धु देश का राजा जयद्रथ विवाह की इच्छा से शाल्व देश जाते हुये उसी मार्ग से आ निकला। आश्रम के द्वार पर महा सुन्दरी द्रौपदी को दूरसे देखते ही वह चौंक पड़ा और अपने साथियों को संकेत कर कहा—ओह ! यह कौन है ? मायावी है या अप्सरा ! अथवा कोई देव बाला है ? यह इस भयानक वन में कैसे आई है ?

जयद्रथ ने सुन्दरी का परिचय पाने के लिये कोटिकास्य को भेजा कोटिकास्य शीघ्र ही वनवासी पांडवों का परिचय पाकर लौटा और जयद्रथ को सब हाल कह सुनाया। जयद्रथ द्रौपदी की अपार सुन्दरता पर पूर्ण रूप से मुग्ध हो

चुका था। वह स्वयं आश्रम के पास आकर बोला—सुन्दरी! तुम दरिद्र वनवासी पांडवों के साथ रहने योग्य नहीं हो। तुम हमारे साथ चलकर सिन्धु-सौवीर राज्यका सुख भोगो।

जयद्रथ की बातें सुनकर द्रौपदी ने धिक्कारते हुये कहा—रे दुष्ट! तुम्हें लज्जा नहीं आती। क्या पांडवों का तुम्हें भय नहीं है। नराधम! व्यर्थ क्यों विषधर के ऊपर पैर रखना चाहता है।

द्रौपदी! हम कम वीर नहीं हैं। हम पांडवों को कुछ नहीं समझते। तुम शीघ्र हमारे साथ चलो अन्यथा जबर-दस्ती पकड़ कर रथ पर बिठा लेंगे।

द्रौपदी ने कहा—क्या तू मुझे अबला जान कर अत्याचार करना चाहता है? यह तुम्हारी भूल है। तुम मुझे धमका कर नहीं डरा सकते। रे नीच! क्या भीम की गदा और अर्जुन का बाण तुमने नहीं देखा।

इसी बीच में जयद्रथ धीरे-धीरे बढ़ता हुआ द्रौपदी के पास पहुँच गया। द्रौपदी अपनी रक्षा के लिये रोती हुई आचार्य्य धौम्य को पुकारने लगी। इसी बीच में दुरात्मा जयद्रथ ने आगे बढ़ कर रोती हुई द्रौपदी की चादर पकड़ ली। यह देख द्रौपदी ने झटका देकर अपना वस्त्र खींच लिया। द्रौपदी के झटका से जयद्रथ पृथ्वी पर आ गिरा।

द्रुपद नन्दिनी के इस कृत्य से वह क्षुब्ध हो उठा और दौड़कर उसे पकड़ रथ पर बिठा लिया।

इसी समय धौम्य आ पहुँचे और बोले—पापी! पांडवों

को आ जाने दो, पहले उन्हें युद्ध में पराजय कर तब द्रौपदी को ले जाना। अन्यथा उनके आने पर भयङ्कर दण्ड भोगना पड़ेगा। जयद्रथ को उत्तर नहीं देते देख धौम्य उसी के रथ के पीछे-पीछे चले।

इधर पांडव लोग आखेट से लौटे। काम्यक वनमें पहुँचते ही उन लोगों ने द्रौपदी की दासी को भूमि में लोटते हुये देखा। उसके मुँह से सिन्धु-नरेश द्वारा द्रौपदी-हरण की बात सुन युधिष्ठिरादि पांडव अपार क्रोध कर टंकार करते बतलाये हुये मार्ग से दौड़े। कुछ ही दूर पर इन लोगों ने जयद्रथ की सेना को रोक लिया। सेना के बीच में धौम्य की पुकार सुन पाण्डवों का क्रोध दूना हो गया। वे एकाएक जयद्रथ की तरफ दौड़ पड़े।

बड़ी लड़ाई हुई, महाबली अर्जुन को बढ़ते देख कोटिकास्य ने अपना रथ आगे बढ़ाया, परन्तु अर्जुन के बाणों ने उसे आगे बढ़ने से रोक दिया। इधर भीम वज्र गदा ले शत्रुओं का संहार करने लगे। नकुल ने अपनी तलवार निकाल ली और सहदेव भी धनुष बाण लेकर आगे बढ़ गये। इस प्रकार धर्मराज भी क्रोध करते हुये शत्रुओं का नाश करने लगे।

पाण्डवों ने बात-की-बात में शत्रुओं को विचलित कर दिया। कोटिकास्य, सुरथ, त्रिगर्त्तादि महाबली वीर पाण्डवों की मार से धराशायी हो गये। देखते-ही-देखते रणभूमि रक्त से लथपथ हो उठी।

जयद्रथ के सहायकों तथा सेना-पतियों ने अपूर्व वीरता दिखाई, परन्तु पाण्डवों के सन्मुख उनकी एक नहीं चली। सभी समर-भूमि से भाग खड़े हुये और जयद्रथ पकड़ा गया। भीम ने अर्द्धचन्द्राकार वाण से उसका शिर मूँड़ डाला। पश्चात् दुःशला का ध्यान कर धर्मराज ने उसे छुड़ा दिया।

जयद्रथ के दासत्व स्वीकार कर लेने पर भाँति-भाँति के उपदेश दे धर्मराज ने उसे विदा किया। वह मारे लज्जा के घर नहीं जा सका। सीधे हरिद्वार जाकर शंकर की घोर तपस्या करने लगा। उसके कठिन तप से शंकर जी प्रसन्न होकर बोले—वर माँगो। जयद्रथ ने कहा—हे नाथ! हम पांडवों पर विजय पावें। शंकर ने कहा—जयद्रथ! पाण्डव अजेय हैं, हाँ! एक दिन के लिये तुम अर्जुन को छोड़ शेष पाण्डवों पर विजय पाओगे।

युधिष्ठिर यक्ष-संवाद ।

—*—*—
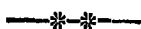
दुष्ट जयद्रथ को दण्ड दे सभी आश्रम में लौट आये। और बराबर द्रौपदी की देख-रेख रखने लगे।

इस प्रकार महावन में रहते हुये पाण्डव वनवास की अवधि पूरी होने की प्रतीक्षा करने लगे।

कुछ दिनों के बाद एक सुन्दर हिरन आश्रम की ओर आ निकला। वह पास ही के एक आश्रम में जाकर बँधी हुई अग्नि उत्पन्न करने वाली अरणी की लकड़ी से अपना शरीर रगड़ कर खुजलाने लगा। खुजलाते-खुजलाते अरणी हिरन के सींग में फँस गई। हिरन अरणी को लिये हुये ही भाग गया।

अपनी अरणी को इस प्रकार जाते देख ब्राह्मण को अपार दुःख हुआ। वह दौड़ता हुआ युधिष्ठिर के पास आकर उसे ला देने की प्रार्थना करने लगा। महाराज युधिष्ठिर ने तत्काल अपने भाइयों से उसे लाने के लिये कहा—पीछे-पीछे उधर आप भी धनुष उठा कर उसकी खोज में चल पड़े। थोड़ी ही दूर पर हिरन दिखाई पड़ा और चारों भाई भी उसके पीछे दौड़ते हुये मिले। सभी बार-बार निशाना मारते थे परन्तु हिरन बचता जाता था। इस प्रकार भागते-भागते भयानक वन में पहुँच कर हिरन गायब हो गया। पाँचों पाण्डव उसकी खोज में भूखे-प्यासे बड़ी देर तक भटकते रहे। अन्त में

अत्यन्त व्यग्र हो विश्राम करने के लिये एक वट-वृक्ष के नीचे बैठ गये।

थोड़ी देर के बाद युधिष्ठिर को बड़ी प्यास लगी, उन्होंने नकुल को जल लाने की आज्ञा दी। सरोवर पास ही में था। नकुल शीघ्र ही आ पहुँचे। जैसे ही तालाब में जल लेने के लिये बढ़े कि सहसा एक आवाज आयी। नकुल मेरी आज्ञा के बिना जल न लेना। यह तालाब मेरा है। नकुल आश्चर्यपूर्वक इधर-उधर देखने लगे, परन्तु कोई दिखाई न पड़ा। अन्त में तालाब के पास पहुँचे और जल पीने लगे। जल पीते-ही-पीते बेहोश होकर धरती पर गिर पड़े। देर हो जाने पर युधिष्ठिर ने सहदेव को भेजा। सरोवर के निकट नकुल को पड़ा देख उन्हें बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने सोचा कि पहले जल पी कर तब नकुल का समाचार भाइयों को जाकर सुनाऊँगा। सहदेव भी जल पीने चले, सहसा वही आवाज आई। उन्होंने भी कुछ परवा न की और जल पीने लगे।

देखते-ही-देखते वे भी निर्जीव होकर पृथ्वी पर पड़ गये। इसी प्रकार क्रमशः अर्जुन और भीम भी आकर सरोवर का जल पीकर धरती पर गिर पड़े।

इस अकाण्डताण्डव ने महाराज युधिष्ठिर को भ्रम में डाल दिया। वे भाइयों की खोज में निकले। सरोवर के निकट सबों की दुर्दशा देख उनके दुःख का ठिकाना नहीं रहा। वे विलाप करने लगे। इस प्रकार कुछ देर के बाद

जल पीने के लिये तालाव पर उतरे। पानी में पैर देते ही वही पुरानी आवाज आई। खबरदार! मेरी आज्ञा के विना पानी न पीना। मैं इस तालाव का स्वामी हूँ। मेरी अवज्ञा के कारण ही इन चारों की दुर्दशा हुई है।

युधिष्ठिर ने कहा—तुम कौन हो? सामने आओ।

इसी समय एक बगुला आ पहुँचा। युधिष्ठिर ने उससे कहा—आप अपना असली स्वरूप प्रकट करें। क्योंकि महावली पाण्डवों का मारना साधारण पक्षी का काम नहीं है। युधिष्ठिर की बात सुनते ही बगुले ने महा भयंकर यक्ष का स्वरूप धारण कर कहा—

युधिष्ठिर! तुम्हारे भाइयों ने मेरी अवज्ञा कर जल पी लिया जिससे प्राण वियोग हो गया। यदि तुम भी न मानोगे तो तुम्हारी भी यही दशा होगी। हाँ! यदि तुम मेरे प्रश्नों का यथोचित उत्तर दे दोगे तो मैं प्रसन्नतापूर्वक तुम्हें जल पीने की अनुमति दे दूँगा।

युधिष्ठिर ने कहा—पूछिये। मैं यथाशक्ति आपके प्रश्नों का उत्तर दूँगा।

यक्ष ने कहा—सूर्य किसकी आज्ञा से नित्य उदय और अस्त होते हैं? उनके कौन सेवक हैं? और वे किसमें स्थित हैं?

धर्मराज ने कहा—सूर्य का उदय अस्त धर्म के द्वारा होता है। ब्रह्म उनका सेवक है तथा उनकी स्थिति सत्य में है।

यक्ष—महत्त्व का साधन क्या है? समय पर कौन सच्ची सहायता देता है तथा बुद्धि का विकास किस प्रकार होता है?

युधिष्ठिर—उद्योग से महत्त्व मिलता है। धारणा तथा स्मरण-शक्ति से सच्ची सहायता मिलती है तथा वृद्धों की संगति से बुद्धि की वृद्धि होती है।

यक्ष—मनुष्यों में मनुजतापन की क्या बात है? दुष्टों की पहचान और स्वभाव क्या है?

युधिष्ठिर—मृत्यु है। दुष्टों का लक्षण तथा स्वभाव उनका निन्दा करना है।

यक्ष—जीवित रहते हुये भी कौन मृतक हैं?

युधिष्ठिर—जो कृपण हैं। माता, पिता, अतिथि और अपना भाग भी जोड़कर रखने वाले हैं।

यक्ष—पृथ्वी से भी भारी कौन है। आकाश से भी ऊँचा कौन है? शीघ्र चलने वाला तथा फूँस से भी अधिक जलने वाला कौन है?

युधिष्ठिर—माता पृथ्वी से भारी है। पिता आकाश से भी ऊँचा है। मन वायु से भी शीघ्रगामी है तथा चिन्ता फूँस से भी अधिक जलती है।

यक्ष—निद्रित अवस्था में किसकी आँखें बन्द नहीं होती। कौन उत्पन्न होकर एक ही स्थान पर अचल रूप से रहता है। कौन हृदय हीन है तथा किसकी शीघ्र वृद्धि होती है।

युधिष्ठिर—मछली सोते समय आँखें बन्द नहीं करतीं।

अण्डा उत्पन्न होने पर अचल रहता है। पाषाण हृदय-हीन होता है और नदी की शीघ्र वृद्धि होती है।

इस प्रकार यक्षके अनेकों प्रश्न हुये। धर्मराज सबों का यथोचित् उत्तर देकर उसे सन्तुष्ट किये। तब वह धर्मराज से अत्यन्त प्रसन्न होकर बोला—हे धर्मराज! हमने तुम्हारी परीक्षा ली है। मैं तुझ से अत्यन्त सन्तुष्ट हूँ। तुम इन चारों भाइयों में किसे विशेष चाहते हो मैं उसे जीवित कर दूँगा। धर्मराज ने कहा—नकुल को कृपया जिला दीजिये।

यक्ष ने कहा—भीमार्जुन महा प्रतापी भाइयों को छोड़ नकुल को क्यों जिलाने के लिये कहते हो?

युधिष्ठिर ने कहा—माता कुन्तीका एक पुत्र मैं जीवित हूँ। नकुल के जीने से माता माद्री का एक पुत्र जीवित हो जायगा। धर्मराज की धर्म प्रियता से सन्तुष्ट हो यक्ष ने चारो भाइयों को जिलाकर कहा—

पुत्र! मैं तुम्हारा पिता धर्म हूँ। तुम्हारी बुद्धि जानने के लिये हिरन का रूप धारण किया था। मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ, वर माँगो! युधिष्ठिर ने कहा—महाराज! अज्ञात वास निकट है। आप वर दीजिये कि हम लोगों को कोई पहचान न सके। यक्ष ने कहा—एवमस्तु! जिस समय जैसा चाहोगे वैसा ही रूप हो जायगा। तुम्हें कोई पहचान नहीं सकेगा। इस प्रकार वर प्राप्त कर ब्राह्मण की अरणी लेकर पाण्डव आश्रम में लौटे।
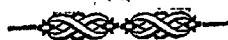
अज्ञातवास की योजना।

पाँचो पाण्डव इसी चिन्ता में बैठे विचार कर रहे थे कि अचानक व्यास जी आ पहुँचे। उन्हें देखते ही सभी प्रसन्न हो उठे। यथा विधि महर्षि की पूजा कर पांडवों ने विपत्ति का हाल कहा—

व्यास जी ने कहा—पुत्रों! शोक न करो। तुम्हारा अज्ञात वास का समय मत्स्य देश में कुशलता पूर्वक व्यतीत होगा। तुम लोग शीघ्र महर्षि धौम्य को अग्निहोत्र की अग्नि लेकर रक्षा करने केलिये महाराज द्रुपद के यहाँ भेजो। इन्द्रसेनादि दास-दासियों को द्वारिका जाने कहो और स्वयं चारो भाई द्रौपदीके साथ विराट नगरीमें जानेके लिये तैयार हो जाओ।

धर्मराज! तुम कङ्क ब्राह्मण का रूप धारण कर जुआ खेलने के लिये विराट के पास जाना। भीम वल्लभ नाम रखकर रसोइयाँ बनें। अर्जुन उर्वशी के शाप को पूर्ण करने के लिये बृहन्नला रूप धारण करें। नकुल अश्व-पालक ग्रन्थिक तथा सहदेव गौओं की देख-भाल करने वाले तन्त्रि-पाल नाम रख कर निर्वाह करें। द्रौपदी भी सैरिन्ध्री नाम से विराट के अन्तःपुर में रहे।

इस प्रकार योजना तैयार हो जाने पर महर्षि व्यास पांडवों को आशीर्वाद दे चले गये।

इति श्री महाभारत वन पर्व समाप्त।

विराट पर्व।

पाण्डवों का अज्ञातवास

अर्थात्

विराट नगर में

धीरे-धीरे वनवास के बीतते ही अज्ञातवास का समय आ उपस्थित हुआ। अज्ञातवास बड़ा कठिन था। यदि कहीं उनका पता कौरवों ने लगा लिया, तो यह बारह वर्ष का परिश्रम व्यर्थ हो जायगा। अतः व्यासदेव के बतलाये हुये मार्ग पर चलने के लिये सभी तैयार हो गये।

यथा समय युधिष्ठिर ने अपने साथी ब्राह्मणों से कहा—हे विप्रवरों! अब शीघ्र ही हम आप लोगों से पृथक होंगे। यह एक वर्ष का समय हमारे लिये बड़ा ही दुःखदायी है। भगवन्! अज्ञातवास पूर्ण होते ही फिर हम लोग आपकी यथेष्ट सेवा करेंगे।

इस प्रकार ब्राह्मणों को विदा कर, इन्द्रसेनादि सेवकों

और दासियों को द्वारिका भेज पाण्डव अज्ञातवास की तैयारी में लग गये।

यथा समय यज्ञाग्नि प्रज्वलित की गई। महर्षि धौम्य ने अग्निहोत्र किया। पश्चात् पाण्डवों ने पुरोहित और अग्निहोत्र की परिक्रमा कर द्रौपदी सहित प्रस्थान किया। महर्षि धौम्य भी अग्निहोत्र की अग्नि लेकर द्रुपद के यहाँ पहुँचे और उसकी रक्षा करने लगे।

महावली पाण्डव कालिन्दी के उपकूल पर चलते हुए पांचाल के दक्षिण की ओर से मत्स्यराज में पहुँचे। मत्स्य राज की राजधानी विराट नगरी के पास पहुँचते ही लोग ठहर गये और अस्त्र-शस्त्रों के रखने का प्रवन्ध करने लगे। वहाँ पास ही में पर्वत के निकट स्मशान में एक शमी वृक्ष था। पाण्डव अपने-अपने अस्त्र-शस्त्रा को उसी वृक्ष पर रख कर चले। उन लोगों ने आस-पास के किसानों में यह प्रचार कर दिया कि उस वृक्ष पर मुर्दा लटक रहा है। जिससे किसी को वहाँ जाने का साहस न हो।

कुछ दूर जाकर सभी वैठ गये। सवसे पहले महाराज़ युधिष्ठिर ब्राह्मण का वेश धारण कर महाराज़ विराट के दर्वार में उपस्थित हुये। ब्राह्मण के मुख-मण्डल को अपूर्व तेजस देख विराट ने कहा—आप कौन हो?

ब्राह्मण ने कहा—मैं कंक नाम का ब्राह्मण युधिष्ठिर का सखा हूँ। मैं उन्हें चौपड़ खेलाया करता था। पाण्डवों के अज्ञातवास करने पर आपकी शरण में आया हूँ।

महाराज विराट को चौपड़ का व्यसन था, उन्होंने कहा—हे ब्राह्मणदेव ! आज से आप हमारे सखा हुए। यहाँ आप आनन्द से रहिये।

इसके बाद महाबली भीम रसोइये का रूप धारण कर दर्बार में आये। राजा विराट उनकी अपूर्व कान्ति और सुगठित शरीर देख अत्यन्त प्रसन्न हो बोले—भाई ! तुम कौन हो ? भीमसेन ने कहा—

महाराज ! मैं युधिष्ठिर का रसोइयाँ हूँ। मेरा नाम वल्लभ है, मैं पहलवान हूँ। पांडवों के अज्ञात वास के कारण निरालम्ब होकर आप के पास आया हूँ। विराट ने वल्लभ को भोजन भण्डार का अध्यक्ष बना दिया।

इसके पश्चात् फटे पुराने वस्त्र पहन कर द्रौपदी भी राज-अन्तःपुर के द्वार पर पहुँची। द्रौपदी के मलिन वस्त्र तथा अपूर्व रूप लावण्य को देख लोग स्तब्ध हो पूछने लगे—तुम कौन हो ? भिखारिणी समान इस प्रकार क्यों घूम रही हो ?

द्रौपदी ने कहा—मैं विपद्ग्रस्त हूँ। राज-रानियों की कंघी-चोटी आदि श्रृङ्गार का काम जानती हूँ।

विराट-राज-महिषी सुदेष्णा अट्टालिका के ऊपर खड़ी सुन्दरी द्रौपदी की बातें सुन रहीं थी। उसने तत्काल दासी के द्वारा उसे अपने पास बुलाकर धीरज देते हुये कहा—तुम क्या चाहती हो ? हम तुम्हारी इच्छा पूर्ण करेंगी। अपना वृत्तान्त कह सुनाओ।

रानी सुदेष्णा की बातें सुन द्रौपदी ने कहा—रानी मैं

दुर्भाग्य के चक्र में पड़ी हुई एक दुखिया हूँ। मैं कंघी-चोटी आदि शृङ्गार का काम भली-भाँति जानती हूँ। कुछ दिन पहले श्री कृष्ण-पत्नी सत्यभामा तथा पांडवों की महारानी द्रौपदी की सेवा में रह चुकी हूँ। पांडवों के अज्ञातवास के कारण निराश्रय होकर आप की शरण में आयी हूँ। कृपया एक वर्ष के लिये आश्रम दीजिये। हाँ! सेवा करते हुये मैं किसी का जूठा न खाऊँगी और न चरण सेवा ही करूँगी।

द्रौपदी की दशा देश रानी सुदेष्णा को बड़ी दया आई। उसने सहर्ष अपने यहाँ रहनेकी आज्ञा दे दी। इसप्रकार अत्यन्त प्रसन्न हो बोली—महारानी! हमारे रक्षक पाँच बड़े बल शाली गन्धर्व हैं। मेरे अपमान करने वाले को वे सजीव नहीं छोड़ते। इस प्रकार द्रौपदी राजा विराट के रनिवास में सुख पूर्वक रहने लगी।

इसके बाद महाबली सहदेव ग्वाले का वेश बनाकर विराट के दर्बार में आये। उनका तेजस्वी रूप और ग्वालों का वेष देख विराट अत्यन्त विस्मित हुये। उन्होंने सहदेव को बुला कर पूछा—भाई तुम कौन हो और क्या चाहते हो?

सहदेव ने कहा—मैं वैश्य हूँ। मेरा नाम तन्त्रिपाल है। मैं महाराज युधिष्ठिर की गायों की देख-भाल करता था। मैं उसी कार्य के लिये आपकी सेवा में आया हूँ।

सहदेव की सुन्दरता देख राजा विराट अत्यन्त प्रसन्न हो बोले—तुम आज से हमारी सारी पशुशाला के अधिकारी हुये। इस प्रकार सहदेव आनन्द पूर्वक रहने लगे।

इसके पश्चात् सुन्दर गठीली देह वाले तेजस्वी अर्जुन—नृत्य करने वालों के समान स्त्री वेश धारण कर विराट के दर्बार में पहुँचे । उनकी तेजस्वी मूर्ति तथा नारी वेशको देख विराट ने आश्चर्य्य से पूछा । तुम्हारा स्त्रियों का वेश परन्तु पुरुषों का सा बल और तेज देखकर हम बड़े विस्मित हैं—तुम कौन हो?

अर्जुन ने कहा—महाराज! हमारा नाम बृहन्नला है। हम महाराज युधिष्ठिर के अन्तःपुर में रह कर अपने नाच-गान से स्त्रियों को प्रसन्न करते तथा उन्हें नाच गान की शिक्षा भी देते थे। पाण्डवों का राज्य हरण हो जाने के कारण हम आप के शरण में आये हैं, आप राजकुमारी उत्तरा को नाच गान सिखाने के लिये मुझे रख लीजिये ।

राजा विराट ने प्रसन्न होकर कहा—अच्छा! तुम अन्तःपुर में रह कर हमारी कन्या और नगर की स्त्रियों को नाचना गाना आदि सिखाओ। राजा की आज्ञा से अर्जुन अन्तःपुर में जाकर स्त्रियों को शिक्षा देने लगे ।

तब अन्त में नकुल भी आये। राजा के पूछने पर उन्होंने कहा—मैं घोड़ों की विद्या जानता हूँ। मुझे लोग ग्रन्थिक के नाम से पुकारते हैं।

राजा विराट ने सुन्दर नकुल की बातें सुन कहा—आज से तुम हमारे अश्वशाला के अधिकारी हुये ।

इस प्रकार द्रौपदी सहित सभी पाण्डव आनन्द पूर्वक विराट नगर में रहने लगे ।

वल्लभ का उत्कर्ष

—※—※—
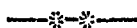
महात्मा पाण्डव सुखपूर्वक विराट नगर में अज्ञातवास करने लगे। यहाँ उन्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं था। धर्मराज महर्षि वृहदश्व की शिक्षा के प्रभाव से जुआ में मनमाना धन जीतते थे। भीम उत्तम-उत्तम भोजनों से सबों को सन्तुष्ट करते थे। अर्जुन अन्तःपुर में बहुत इनाम पाकर सुख सामग्रियाँ एकत्र करते थे। सहदेव घी, दूध, दही आदि का तथा नकुल आवश्यक उपयोगी पदार्थों का प्रवन्ध करते थे। इस प्रकार परस्पर मिलकर सभी सुख-पूर्वक रहने लगे।

धीरे-धीरे अज्ञातवास के कुछ दिन बीत गये। चौथे महीने के आते ही मत्स्य नगर में एक बड़ा भारी उत्सव आरम्भ हुआ। उसमें चारों दिशाओं के बड़े-बड़े पहलवान अपना बल दिखाने के लिये आये।

पृथ्वी के एक सुन्दर भूभाग में एक बड़ी सभा बनवाई गई। सभा के बीच में आये हुये पहलवानों के लिये एक अखाड़े का प्रवन्ध किया गया।

सभी तैयारियाँ हो जाने पर दंगल का समय निश्चित किया गया। यथा समय राजा विराट मंत्रियों के सहित आ पहुँचे। दर्शक मण्डली खचाखच भर गई। पहलवानों का दंगल आरम्भ हुआ। हाथियों के समान देहवाले बड़े-बड़े मल्ल भिड़ गये। कुछ ही देर में जीमूत पहलवान

ने सबों को परास्त कर दिया। इस प्रकार सबों को हरा वह अखाड़े में कूदने और ललकारने लगा। परन्तु उसके सन्मुख लड़ने का किसी को साहस नहीं हुआ।

जीमूत को बार-बार ललकारते देख विराटराज को वल्लभ की बात याद हो आई। उन्होंने उनको बुलाकर कहा—वल्लभ ! तुमने प्रतिज्ञा की थी कि जो काम कोई नहीं कर सकेगा, उसे हम करेंगे। अतः मेरी आज्ञा से तुम इस पहलवान से लड़ो।

वल्लभ अपना भेद खुलने के डर से लड़ना नहीं चाहते थे, परन्तु वे राजाज्ञा के अनुसार लड़ने के लिये तैयार हो गये।

महाबली वल्लभ इष्टदेव का स्मरण कर अखाड़े में उतरे। उनका सुगठित शरीर देख सभी अत्यन्त प्रसन्न हुये। इसी समय जीमूत भी आगे बढ़ा। दोनों में मल्ल युद्ध होने लगा।

दोनों बहुत देर तक घात-प्रतिघात करते रहे। परन्तु अन्त में भीमसेन ने उसे उठाकर जमीन पर इतनी जोर से पटका कि उसकी हड्डियाँ चूर-चूर हो गईं।

इस प्रकार महाबली जीमूत के हारने से भीम का अत्यन्त आदर हुआ। सभी उनके वीरता की बड़ाई करने लगे। राजा विराट कभी-कभी वल्लभ को व्याघ्रादि हिंसक वन-पशुओं से लड़ाते और तमाशा देखते थे। धीरे-धीरे सारे नगर में रसोइयें की वीरता की चर्चा होने लगी।

कृष्णा का अपमान।

हाँ! विपद में ही विपद आता है। ऐसे समय में जब राज—रानी द्रौपदी दासी बनकर जीवन बिता रही थी। जब महावीर अर्जुन को अन्तः पुरवासिनी स्त्रियों की सेवा करते देख उसे कष्ट होता था। सहसा एक अपार दुःख देने वाली घटना आ घटी। हा! उसने अभागिनी द्रौपदी के कष्ट को और भी बढ़ा दिया।

रानी सुदेष्णा का भाई कीचक बड़ा बली था। वह विराट का सेनापति था। उसके ज्ञाति-बान्धव बड़े बलवान और निर्भीक योद्धा थे—वस्तुतः वेही राज्य की रक्षा करते थे। राजा विराट स्वयं उससे बहुत डरा करते थे। अतः मत्स्यराज्य में उनका प्रभुत्व बहुत बढ़ गया था। वे जो चाहते थे करते थे।

एक दिन कीचक अपनी बहन से मिलने के लिये अन्तः पुर में गया। वहाँ सैरिन्ध्री की अपूर्व सुन्दरता देखते ही मोहित हो गया और उत्सुकता पूर्वक बहन से बोला।

बहन! इस सुन्दरी को मैं पहले-ही-पहल अन्तःपुर में देख रहा हूँ, इसने हमारे चित को चंचल कर एक दम वशीभूत कर लिया है मेरा मन हाथ में नहीं है, अतः इस सुन्दरी के साथ हमारा विवाह करवा दो।

इस प्रकार बहन से कह कर स्वयं ही सैरिन्ध्री के पास

जाकर बोला—हे सुन्दरी ! तुम दासी योग्य नहीं हो। मुझसे विवाह कर तुम सबकी स्वामिनी बनो। हे मृगनयनी ! तुम्हारे लिये हम सर्वस्व त्याग कर सकते हैं। हमारी स्त्रियाँ तुम्हारी दासी होंगी तथा हम स्वयं तुम्हारे दास बन कर तुम्हारी सेवा करेंगे।

सैरिन्ध्री ने कहा—हे वीरवर ! मैं नीचकुल में उत्पन्न हुई सैरिन्ध्री हूँ। और मेरा विवाह हो गया है, मैं आपके योग्य नहीं हूँ।

परन्तु कीचक लट्टू हो रहा था, उसने फिर कहा—हे सयानी ! मैं तुझ पर मोहित हो चुका हूँ। तुम्हें हमारी बात माननी चाहिये। तुम्हारे पति बड़े नीच हैं, जो तुमसे सेवा करवाते हैं। उन्हें छोड़ दो और आओ हमारे साथ सुखपूर्वक रहकर अमूल्य ऐश्वर्य की स्वामिनी बनो।

सैरिन्ध्री ने कहा—कीचक ! मैं महाबली गंधर्वों की स्त्री हूँ। मेरा अपमान करनेवाला कदापि जीवित नहीं रह सकता। तुम मुझे पाने की आशा छोड़ दो।

इस प्रकार दुरात्मा कीचक विफल प्रयास हो सुदेष्णा के पास जाकर बोला—बहन ! मेरा मनोरथ पूर्ण करो। हम इस लावण्यमयी युवती को अपनाना चाहते हैं। यदि तुम हमारी बात नहीं मानोगी, तो मैं निश्चय ही प्राण दे दूँगा। इस प्रकार कह कर वह नीच गिड़-गिड़ाने लगा।

भाई की दुरवस्था देख दयार्द्र हो सुदेष्णा ने कहा—महाबली ! सुनो—मैं एक युक्ति बताती हूँ। संभव है उसके

अवलम्बन से तुम्हारा कार्य्य पूर्ण हो जाय? मैं त्योहार के दिन सैरिन्ध्री को तुम्हारे पास शराब लाने के लिये भेजूँगी। तुम उसे एकान्त में ले जाकर समझाना और अपने अनुकूल करने की चेष्टा करना। मैं स्वयं उससे कुछ नहीं कह सकती। इस प्रकार बहन के शान्त्वना देने पर दुरात्मा कीचक किसी प्रकार हृदय को थाम घर को लौटा।

कुछ दिनों के बाद त्योहार आने पर रानी सुदेष्णा ने सैरिन्ध्री को बुलाकर कहा—

हे सैरिन्ध्री! मुझे बड़ी प्यास लगी है। तुम शीघ्र कीचक के घर जाकर अच्छी शराब ले आओ।

रानी की बात सुनकर सैरिन्ध्री ने कहा—हे रानी! आप मुझे कीचक के घर मत भेजिये। उसकी मनोवृत्ति हमारी तरफ से अच्छी नहीं है। आप से मैं पूर्व ही कह चुकी हूँ कि अपमानित होकर मैं कहीं नहीं रहती। इस काम के लिये आप किसी और दासी को भेज दीजिये।

सुदेष्णा ने कहा—कल्याणी! तुम चिन्ता न करो। कीचक तुम्हारा अपमान नहीं करेंगे। तुम शीघ्र जाकर ले आओ। सैरिन्ध्री की इच्छा नहीं थी, परन्तु विवश होकर उसे जाना पड़ा।

सुन्दरी सैरिन्ध्री को आते देख कुलांगार कीचक की कामाग्नि भड़क उठी। वह एकदम कामान्ध हो गया। उसने आनन्दित होते हुये कहा—

प्रिये ! मैं तुझे देख कितना प्रसन्न हुआ हूँ—नहीं कह सकता। देखो ! हमने तुम्हारे सुख के लिये कितना प्रबन्ध कर रक्खा है। आओ ! आनन्द पूर्वक दोनों बैठ कर मद्यपान करें।

कीचक की बातें सुन द्रौपदी काँपती हुई बोली—सेनापति ! रानी को बड़ी प्यास लगी है, उन्होंने मुझे शराब लेने के लिये भेजा है।

कीचक ने कहा—सुन्दरी ! शराब ले जाने के लिये मैं प्रबन्ध कर देता हूँ। तुम आओ हमारे पास बैठो। इतना कह कर उस दुराचारी ने सैरिन्ध्री का दाहिना हाथ पकड़ लिया। सैरिन्ध्री बड़े जोर से अपनी रक्षा के लिये चिल्ला उठी। इस पर दुरात्मा कीचक ने हाथ छोड़कर चादर पकड़ ली। सैरिन्ध्री ने क्रोध से अपना कपड़ा खींच लिया। जिससे कीचक औंधे मुँह धरती पर गिर पड़ा। इसी समय अवसर पाकर सैरिन्ध्री भाग खड़ी हुई। किसी प्रकार गिरती-पड़ती राजसभा में जा पहुँची। कीचक भी पृथ्वी से झटपट उठकर अत्यन्त क्रोध-पूर्वक पीछा करते हुये दर्बार में चला आया। निकट पहुँचते ही उसने सैरिन्ध्री के बाल पकड़ कर खींचे और सबके सामने लात मारी।

वल्लभ सभा में विद्यमान थे। सैरिन्ध्री का यह अपमान देख वे क्षुब्ध हो उठे। उस दुरात्मा का अन्त करने के लिये उठने ही वाले थे कि महाराज कंक ने इशारे से मना किया।

सैरिन्ध्री अत्यन्त अपमानित हो सभा को क्रोध-पूर्वक

देखती हुई बोली—हाय! मेरी दीनता देख किसी ने न्याय नहीं किया। अब मैं किससे प्रार्थना करूँ? उसकी बातें सुन सभा में सनसनी फैल गई।

मैं तो जानती थी कि विराटराज बड़े न्यायी हैं, परन्तु आज जान लिया कि राजा विराट बड़ा पापी और अधर्मी है। निरपराधिनी स्त्री को इस प्रकार अपमानित होते देख भी उसने उस पापी का कुछ नहीं किया। शोक!

द्रौपदी की बातें सुन राजा विराट ने कहा—हम तो तुम्हारा कुछ हाल जानते ही नहीं, क्या न्याय करें? तुमसे और उससे किस विषय का कलह है? बिना स्पष्ट किये न्याय की योजना किस प्रकार हो सकती है। इसी समय सभासद लोग कोई सैरिन्ध्री और कोई कीचक की प्रशंसा और बुराई करने लगे।

सैरिन्ध्री के अपमान से महात्मा कंक अत्यन्त क्रोधित हो उठे, परन्तु तत्काल अपने क्रोध को दबाकर बोले—

सैरिन्ध्री! तुम राज महल में जाओ। तुम्हारी रक्षा करने वाले गंधर्व अवसर पाकर तुम्हारा दुःख दूर कर देंगे। महात्मा कंक की बात सुन द्रौपदी रोती-पीटती अन्तःपुर में गई।

कीचक-बध ।
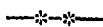
दुखिया सैरिन्ध्री की बातें सुन रानी सुदेष्णा जल उठी ! वह एकाएक क्रोध से अधीर हो बोली—ओह ! मेरी दासी के साथ यह दुर्व्यवहार ! इतना उद्धतपन ! सैरिन्ध्री ! बतलाओ ! मैं उसे क्या दण्ड दूँ !

सैरिन्ध्री पूर्ववत रोते हुए बोली—रानी ! मैं क्या कहूँ ! मेरे अपमान द्वारा जिन गंधर्वों का अपमान हुआ है वे ही उचित दण्ड देंगे ।

इसके पश्चात् वह रोती हुई अपने घर गई । एकाएक उस साध्वी के हृदय में कीचक की मृत्यु-कामना बलवती हो उठी । उस रात्रि में उसे नींद नहीं आई । वह अत्यन्त अधीर होती हुई बल्लभ के पास पहुँची और उसके शरीर से लिपट कर रोती हुई बोली—

नाथ ! तुम्हारे जीते जी तुम्हारी स्त्री की दुर्दशा हो । हाय ! बड़े आश्चर्य की बात है ।

सैरिन्ध्री की बातें सुन बल्लभ तत्काल उठकर बोले—सुन्दरी ! इस भयानक रात्रि में तुम हमारे पास क्यों आई हो ? तुम इतना व्यग्र क्यों हो रही हो ? शीघ्र अपना समाचार कहकर लोगों के जागने के पूर्व ही अपने घर चली जाओ । प्रिये ! हम निश्चय ही तुम्हारा दुःख दूर कर देंगे ।

सैरिन्ध्री ने कहा—वल्लभ ! क्या तुम नहीं जानते ? दुष्ट कीचक का अत्याचार क्या तुमने आँखों से नहीं देखा है ? हाय ! इस प्रकार अपमानित होकर अब मैं जीकर क्या करूँगी !

वल्लभ बोले—प्रिये ! निश्चय ही तुम्हें बड़ा दुःख मिला। हाय ! पाण्डवों के बाहुबल को धिक्कार है। मैं उस समय निश्चय ही उस दुराचारी के मस्तक को चूर-चूर कर देता। उस नरपिशाच को सहायकों सहित यमलोक भेज देता, अथवा मत्स्य देश को देखते-ही-देखते रसातल में मिला देता। परन्तु शोक ! महाराज कंक के संकेत से मुझे रुक जाना पड़ा। प्यारी ! जो-जो अपमान तुम्हें सहने पड़े हैं, वे हमारे हृदय में काँटों के समान चुभ रहे हैं।

वल्लभ की बातें सुन सैरिन्ध्री ने कहा—

वल्लभ ! यदि मेरे अपमान का तुम्हें कुछ भी ध्यान है, तो तुम अपने उस जुआरी भाई की बात मत मानो। जिसने जुए के नशे में पागल होकर अपना सर्वस्व खो दिया। हाय ! जिसने ज्ञानान्ध होकर भाई और स्त्री को दाँव पर रख दिया। इस अपमान को देखकर तुम्हें क्या करना चाहिये ?

प्यारे ! क्या इस अपमान से प्राण श्रेष्ठ है ? क्या इस से बढ़ कर और कोई दुःख है ? इतना कहते-कहते सैरिन्ध्री रोने लगी। उसके मुख पर आँसुओं की धारा बह चली।

हाय ! इस करुण दृश्य को देख वल्लभ का कलेजा फटने

लगा। वह महाबली अत्यन्त व्यग्र हो उठा। उसने सैरिन्ध्री का हाथ पकड़ उसके बहते हुए आँसुओं को पोंछ कहा—

प्रिये! बहुत हो गया। अब और अधिक भाई धर्मराज को कुछ मत कहो। यदि धर्मराज इस तिरस्कार को सुन लेंगे, तो निश्चय ही प्राण त्याग देंगे। और उनके न रहने पर हम लोग भी जीवन धारण नहीं कर सकेंगे।

सैरिन्ध्री ने कहा—प्यारे! मैं उनका तिरस्कार नहीं करती। मैं यह सब दुःखों के कारण कह गई हूँ। अब जो उचित हो करो। मैं महात्मा कंक, बृहन्नला, गंथिक और तंत्रिपाल के पास से निराश्रित हो लौटकर तुम्हारे पास आई हूँ। तुम अपने को कलंक से बचाने के लिये स्त्री की रक्षा करो। वल्लभ! यदि कल सवेरे तक वह पापी जीवित रहेगा तो मैं प्राण त्याग दूँगी।

सैरिन्ध्री की बातें सुन उन्हें बड़ा क्रोध आया, वे अपनी होंठ दाँतों से काटते हुये बोले—

हे सुन्दरी! तुम निर्भय रहो। मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा। तुम उस पापी को कल अर्द्ध निशा के समय उत्तरा के निर्जन नाट्यशाला में बुलाना। हम वहाँ तैयार रहेंगे। इस प्रकार तुम्हारे अपमान का प्रतिशोध हो जायगा। परन्तु सयानी! इस बात को कोई जानने न पावे।

वल्लभ की बातों ने संजीवनी का काम दिया। शोक सागर में डूबती हुई सैरिन्ध्री के लिये तरणनी के समा

सहायक हुई । इस प्रकार वह अभागिनी कीचक को फाँसने का उपाय सोचती हुई घर को लौटी ।

दूसरे ही दिन सवेरे कीचक द्रौपदी के पास आया और भय प्रीति दिखलाते हुए बोला—मृगलोचनी ! देखो ! मेरे कोप से तुम्हें कोई बचा सका ? प्यारी ! तुम मेरी बात मान लो । यदितुम मुझे प्यार करने लगोगी तो हम क्या यह समूचा मत्स्य राज्य तुम्हारे चरणों पर आ झुकेगा। पापी कीचक की बातें सुन उसे फँसाने के लिये मानों कुछ-कुछ राजी होते हुये सैरिन्ध्री ने कहा—

सेनापति ! तुम मुझे बहुत प्रिय मालूम होते हो, लेकिन सबों के सामने भय के कारण मैं नहीं कह सकती । यदि तुम आज आधी रात को उत्तरा के निर्जन नाट्यशाला में मिलो तो तुम्हारी बात स्वीकार कर लूँ ।

लेकिन याद रहे यह भेद किसी पर प्रकट होने न पावे । महा सुन्दरी सैरिन्ध्री की बातों को सुन कीचक मस्त हो गया । उसका रोयाँ-रोयाँ फड़क उठा । उसके हृदय की कली-कली खिल उठी । इस प्रकार अत्यन्त आनन्दित हो अपने को धन्य-धन्य कहता हुआ घर गया । इधर सैरिन्ध्री भी प्रसन्न मन हँसती हुई श्री वल्लभ के पास पहुँची और सब हाल कह सुनाई ।

धीरे-धीरे दिन का अवसान हुआ । इधर वल्लभ और उधर कीचक के मन में व्यग्रता उत्पन्न होने लगी । दोनों का क्षण प्रहरों के समान बीतने लगा । किसी प्रकार

प्रतीक्षा करते एक प्रहर रात्रि बीती। भीम चुप-चाप नाट्य-शाला के एक में कोने जा बैठे।

इधर चञ्चलता के कारण कामी का थोड़ा समय भी कल्प के समान बीत रहा था। वह सुगन्धित मालाओं तथा सुन्दर विहार की सामग्रियों से अपने को सुसज्जित कर अर्द्ध रात्रि की प्रतीक्षा करने लगा। ठीक समय पर वह चुपके धीरे-धीरे नाट्यशाला में पहुँचा। वह कामान्ध महाबली वल्लभ को सुन्दरी सैरिन्ध्री समझ कर कहने लगा—प्यारी! देखो—तुम्हारे प्रेम से वशीभूत हो अन्तःपुर की सहस्रों सुन्दरियों को छोड़कर यहाँ इस भयानक आधी रात में आया हूँ। हमारी स्त्रियाँ सदैव मेरे सुन्दर रूप की बड़ाई किया करती हैं क्या मुझसे और सुन्दर पुरुष संसार में हैं? तुम मुझे पाकर अत्यन्त प्रसन्न होगी।

उत्तर में वल्लभ ने कहा—हे सुन्दर युवा! तुमने भी ऐसा स्पर्श-सुख कभी नहीं पाया होगा। इतना कहते ही कीचक पर झपटे और बाल पकड़ कर अपनी ओर खींच लिये।

ओह! कामान्ध कीचक चौंक पड़ा। वह शीघ्र अपने बालों को छुड़ाकर वल्लभ से जा भिड़ा। इस प्रकार उस अन्धकार रात्रि में दोनों वीरों का महा भयङ्कर बाहु-युद्ध होने लगा। इसी बीच में कीचक एका-एक वल्लभ पर टूट पड़ा। परन्तु उन्होंने दोनों हाथों से पकड़ कर शीघ्र ही उसे अपनी ओर को खींच लिया। पश्चात् मुष्टिका घात से उसे पीड़ित

करने लगे। इस प्रकार दोनों घात-प्रतिघात करते हुये भयं-कर गर्जना करके दिशाओं को कंपाने लगे।

दोनों के संघर्ष से नाट्यशाला भहरा उठा। महावली कीचक के प्रहारों से वल्लभ का क्रोध धीरे-धीरे बढ़ता गया। वे क्रोधित हो कृतान्त के समान भयङ्कर हो उठे। उन्होंने तत्काल महावली कीचक को उठा कर बड़े जोर से धरती पर पटक दिया। पश्चात् वह उठना ही चाहता था कि वल्लभ उसकी छाती पर चढ़ बैठे और बड़े जोर से दबाने लगे। कीचक मारे पीड़ा के चिल्ला उठा। इसी बीच में वल्लभ ने उस पापी का गला दोनों हाथों से दबा दिया।

इस प्रकार उसके मर जाने पर भी महात्मा वल्लभ का क्रोध शांत नहीं हुआ। वे उसे जोर-जोर से भूमि पर रगड़ने लगे। फिर उसके सिर, हाथ और पैर को उसके पेट में में घुसेड़ दिये। इस प्रकार उसकी बुरी दुर्दशा कर वल्लभ ने सैरिन्ध्री को बुलाकर मशाल के प्रकाश में उस दुराचारी की दुर्दशा दिखाई।

वल्लभ ने कहा—प्रिये! जो कोई तुम्हारा अपमान करेगा उसकी यही दशा होगी। इतना कह कर महावली वल्लभ चल दिये।

इधर सैरिन्ध्री ने सभासदों को कहला भेजा कि जिस पापी ने मेरा अपमान किया था हमारे गन्धर्व पतियोंने उसकी कैसी दुर्दशा की है।

सब लोग उसी समय मशालें ले लेकर नाच घर में पहुँचे

वे सभ कीचक का हाथ, पैर और मुँह रहित रक्तसे लथ-पथ शरीर देख अत्यन्त विस्मित हुये। सबों ने एक स्वर से कहा कि गन्धर्वों ने ही इसे मारा है। धीरे-धीरे उसके प्रतापी आत्मीय लोग इकट्ठे होकर और उसे चारो ओर से घेर कर रोने लगे।

सवेरा होते ही कीचक के मृत्यु का समाचार विराट नगरी में फैल गई। सभी उत्सुकता पूर्वक दौड़ पड़े। देखते ही देखते नाट्यशाला दर्शकों से खचा-खच भर गया।

यथा समय कीचक के सम्बन्धियों ने उसके अन्त्येष्टि क्रिया की तैयारियाँ की। शव ले जाने के समय सैरिन्ध्री को बाहर खड़ी देख कीचक के भाइयों ने कहा—ओहो! भाइयों! इसी पापिनी-राक्षसी के कारण हमारे भाई की जान गई है। इस दुष्टा को पकड़ लो। इसको भी भाई के साथ चिता पर रखकर फूँक देंगे।

इस प्रकार निश्चय कर सबों ने सैरिन्ध्री को पकड़ उसके अर्थी से बाँध दिया। पश्चात् सभी उसे उठाकर श्मशान की ओर ले चले। विचारी सैरिन्ध्री महा विलाप करती हुई कहने लगी—मेरे गन्धर्व पतियों! मेरी रक्षा करो। ये सूत-पुत्र मुझे श्मशान में लिये जा रहे हैं। सैरिन्ध्री का करुण-क्रन्दन सुन महावली वल्लभ तड़क उठे और शीघ्र अपना वेष बदल श्मशान की ओर दौड़े।

इधर कीचक के महावली ज्ञाति-बान्धव जब उसके शवको जलाने की तैयारी कर रहे थे कि एका-एक वल्लभ भयंकर

वेश धारण किये हाथमें एक तमाल का वृक्ष लिये महा प्रतापी गन्धर्व के समान गर्जते हुये आ पहुँचे। उनके भयंकर वेश को देख लोग भयभीत हो भागने लगे। महाबली वल्लभ ने वृक्ष के प्रहार से सबों को वात की वात में मार डाला।

जो लोग किसी प्रकार भाग सके वे नगर में जाकर महाप्रतापी गंधर्वों का हाल कह सुनाये—इस भयंकर खबर से सारी राजधानी में सनसनी फैल गई। लोग गन्धर्वों के नाम से काँपने लगे।

यहाँ सभी दुष्टों का अन्त कर वल्लभ द्रौपदी का वन्धन खोल बोले—प्रिये! जो लोग तुम्हारी बुराई करेंगे, वे इसी प्रकार दण्ड पावेंगे। महात्मा वल्लभ सैरिन्ध्री को नगर में भेज अपना वेश बदल शीघ्र लौट आये। सैरिन्ध्री प्रसन्न होती हुई राज महल की ओर चली, लोग सैरिन्ध्री को देख-देख मारे डर के प्राण लेकर भागने लगे।

गन्धर्वों का भय।

—*—*—

गन्धर्वों के प्रताप से सारी विराट नगरी भयभीत हो गई। बच्चा-बच्चा उनका नाम सुनते ही काँप उठने लगा। इस विचित्र व्यापार ने राजा विराट को भी डाँवा-डोल कर दिया। वे अत्यन्त भयभीत होते हुये अन्तःपुर में पहुँचे और रानी सुदेष्णा से बोले—

प्रियतमे! तुम्हारी सैरिन्ध्री बड़ी सुन्दरी है। उसके गन्धर्व पति भी बड़े पराक्रमी है, ओह! महावली कीचक का मारना साधारण मनुष्य का काम है? प्यारी! गन्धर्वों के भीषण कर्मों को देख मुझे बड़ा भय मालूम होता है। मैं देखता हूँ कि इनके मारे राज की रक्षा नहीं हो सकती। अतः मेरी वात मान कर सैरिन्ध्री को घर से निकाल दो।

इधर सैरिन्ध्री राज महल में पहुँची। विराट पुत्री उत्तरा अपनी सखियों के साथ बृहन्नला से नाच सीख रही थीं, निरपराध सैरिन्ध्री को श्मशान से शकुशल लौटते देख सवको बड़ा आश्चर्य्य हुआ। वे बृहन्नला के साथ आकर अत्यन्त प्रसन्न हो बोलीं—

हे सैरिन्ध्री! बड़े भाग से तुम बच कर लौट आई। जिन लोगों ने तुम्हारा अपमान किया था वे तुम्हारे गन्धर्व पतियों के हाथ से मारे गये।

पश्चात् बृहन्नला ने कहा—सैरिन्ध्री। तुम इस भयंकर

विपद् से किस प्रकार मुक्त हुई? वे पापी लोग कैसे मारे गये?

सैरिन्ध्री ने कहा—कल्याणी! तुम्हें इससे क्या काम? तुम्हें तो केवल कन्याओं के साथ आनन्द पूर्वक रहना है। जो दुःख सैरिन्ध्री को भोगने पड़ते हैं उसकी चिन्ता तुम्हें क्या? वृहन्नले इसीसे उसे अत्यन्त दुःखी देख कर भी हँस-हँस कर बातें कहती हो।

वृहन्नला ने कहा—सैरिन्ध्री! यह बात नहीं है, वृहन्नला तुम्हारे दुःख से दुखी है। तुम उसे ज्ञान रहित पशु न समझो किसी के मनकी बात तुम क्या समझ सकतीं?

इस वृहन्नला से बातें कर सैरिन्ध्री रानी सुदेष्णा के पास पहुँची। रानी ने सैरिन्ध्री को देखते ही कहा—

सैरिन्ध्री! राजा ने आज्ञादी है कि गन्धर्वों के अत्याचार से सब लोग बुरी तरह डर गये हैं। तुम्हारे रहने से राज्य का कल्याण नहीं है अतः तुम जहाँ चाहो चली जाव। अब तुम्हारा रहना मैं अच्छा नहीं देखती।

सैरिन्ध्री ने कहा—महारानी! राजा को थोड़े दिन और क्षमा करने के लिये कहें। कुछ दिनों के बाद तो मेरे गन्धर्व पति स्वयं ही मुझे ले जायँगे। यदि हमारे पति गन्धर्व लोग राजा से प्रसन्न रहेंगे तो राज्य में किसी प्रकार की हानि नहीं होगी। रानी! मेरे पतियों के अनुकूल रहने पर इस राज्य की भलाई ही होगी।

कौरवों की गोष्ठी।

धीरे-धीरे महाबली पाण्डवों के अज्ञातवास एक वर्ष भी समाप्त हो चला। लोग राख में छिपी हुई अग्नि के समान स्वरक्षित विराट नगरी में निवास कर रहे थे। सैरिन्ध्री को अब किसी प्रकार का भय नहीं था, गन्धर्वों के अमानुषिक कार्य्यों को देख उसे अपमानित करने का किसी को साहस नहीं हुआ।

अज्ञातवास आरम्भ होते ही राजा दुर्योधन ने उनका पता लगाने के लिये देश-विदेश में गुप्तचर भेजे—परन्तु पाण्डवों का पता न चला। अन्त में साल के समाप्त होते-होते भी विफल मनोरथ हो हस्तिनापुर लौट आये और राज-दर्बार में उपस्थित हो भीष्म, द्रोण, कृप और त्रिगर्त्तराज के सन्मुख हाथ जोड़कर महाराज दुर्योधन से बोले—

महाराज! हमने बड़ी सावधानी से सारी पृथ्वी छान डाली, बड़े-बड़े नगर, पर्वत, घाटियां तथा भयंकर बनों को ढूँढ़ डाले। इतना ही नहीं प्रायः सभी तीर्थों, नदियों तथा ग्रामों में पता लगाया, परन्तु उनका कहीं पता न लगा। हाँ। उनके खाली रथों को द्वारिका जाते देख हम लोगों ने पीछा किया परन्तु उनसे भी कुछ पता न चला। मालूम होता है कि अब वे जीवित नहीं हैं। इसके पश्चात् दूतों ने गंधर्वों द्वारा कीचक की मृत्यु का समाचार भी कह सुनाया।

दूतकी बातें सुन दुर्योधन मौन हो रहा । उसे इस प्रकार शान्त देख मंत्रियों ने कहा—

महाराज ! पाण्डवों के अज्ञातवास का समय समाप्त होने वाला है । वे प्रतिज्ञा के बन्धन से मुक्त होते ही क्षुब्ध केहरी के समान कौरवों पर टूट पड़ेंगे । यदि इस समय उनका पता नहीं लगाया जायगा तो भविष्य में भयङ्कर विपत्ति का सामना करना पड़ेगा । मन्त्रियों की बातें सुन कर्ण ने कहा—

महाराज ! पांडवों को पहचानने वाले कुछ ऐसे गुप्तचरों को भेजिये जो गाँव, नगर, नदी, कुंज तीर्थों, आश्रमों; वनों और पर्वतों की कन्दराओं में पता लगावें ।

कर्ण की सम्मति का समर्थन करते हुये दुःशासन ने कहा—भाई ! पाण्डवों का भली-भाँति पता लगाया जाय । या तो विपत्ति में पड़कर वे मर गये होंगे । अथवा कहीं छिपे बैठे होंगे ।

इसी समय महामति आचार्य्य द्रोण ने कहा—पांडव बड़े धर्मात्मा, सच्चरित्र, वीर, विद्वान, और बुद्धिमान हैं । वे मरे न होंगे । कहीं छिपकर समय व्यतीत कर रहे होंगे । उन्हें अच्छी तरह खोजना आवश्यक है ।

भीष्म ने कहा—अवश्य ! मेरा भी यही अनुमान है । पांडव बड़े बुद्धिमान हैं । वे अवश्य द्रौपदी सहित किसी अज्ञात स्थान में वास कर रहे होंगे । जहाँ होंगे वहाँ की पृथ्वी हरी भरी हो गई होगी । सभी लोग धर्माचरण करते होंगे । ब्राह्मण वेद पाठ अग्निहोत्र करने में लीन रहते होंगे । प्रजायें

सन्तुष्ट होंगी तथा सर्वत्र सुख-शांि

वे असाधारण बुद्धिमान हैं। उ त की धारा वहती होगी।

व्यक्ति का काम नहीं है। का पता लगाना सामान्य

कृपाचार्य्य ने भीष्म के

कहा—अव तो अज्ञात विचारों का समर्थन कते हुये

अतः उनके अभ्युदय वास के थोड़े ही दिन वाकी हैं।

कर लेनी चाहिये पूर्व ही हम लोगों को शक्ति संग्रह

कोप और वल। हे दुर्योधन! इस समय तुम अपना

मित्रों तथा वढ़ाओ। इसके अतिरिक्त सहायकों और

देखकर क ा का भी प्रवन्ध कर लो। पश्चात् अपनी शक्ति

कि उनसे करो। हम पांडवों का वल देखकर बता देंगे

इस न्धि कर लेना चाहिये या युद्ध।

कई पूर्व महाराज विराट ने कीचक की सहायता से

मृत्यु त्रिगर्त्तराज को परास्त किया था। कीचक की

जा समाचार सुन त्रिगर्तराज ने अच्छा अवसर आया

...र्ण की ओर संकेत कर दुर्योधन से कहा—

हे महावीर! कीचक के मर जाने से विराटराज निर्बल होगया है। यदि इस समय हम लोग निकलकर उसके राज्य पर आक्रमण करें तो अवश्य ही जीत हो। दुर्योधन! मत्स्य राज सा अनन्त गोधन और कहाँ है? चलो हम लोग जीत कर वहुत सी गायें, धन और रत्नों को बाँट लेंगे। इसके अतिरिक्त मत्स्यराज के आधीन हो जाने से तुम्हारा बल और गौरव भी बढ़ जायगा।

महाबली सुशर्मा की बातों में—धन लोलुपों को चंचल

के जीभ से पानी टपक पड़ा ।

कर दिया । स्वार्थियों का अनुमोदन करते हुये दुर्योधन

तत्काल कर्ण ने उसकी बातों

से कहा— यदि महाबली भीष्म

महाराज ! स्वर्ण-संयोग है समझें तो हम लोग

आचार्य्य, द्रोण और कृप इसे अच्छा आक्रमण कर दें ।

सेना सहित शीघ्र ही मत्स्य राज्य पर ढूंढ़ने में व्यर्थ नष्ट

अपनी शक्ति को दरिद्र पाण्डवों के खोज

करना बुद्धिमानी का काम नहीं है । आनन्दित

कर्ण की युक्ति-पूर्ण बातों ने दुर्योधन को अत्यन्त खोज में

कर दिया । उसने भी नगण्य हीन पाण्डवों की

व्यर्थ समय व्यतीत करना उचित नहीं समझा । हाबली

दुर्योधन ने दुःशासन को बुलाकर कहा—भाई ! कर

कर्ण की सम्मति माननीय है । मत्स्यराज के विजय अभी

लेने पर अवश्य ही हमारी शक्ति बढ़ जायेगी । तुम मा

मनीषी भीष्म, महर्षि द्रोण, आचार्य्य कृप और महात्

विदुर से सम्मति ले सेना तैयार होने की आज्ञा दो ।

बहुत वादाविवाद के पश्चात् लोग अनुकूल हुये, यथा समय कौरवों की चतुरंगिणी वाहिनी तैयार होने लगी ।

गुप्त वेषधारी पांडव विराट राज के यहाँ सुख पूर्वक निवास कर रहे थे । कीचक के मरने पर वे उसी के समान राज-काज में राजा की सहायता करने लगे । महात्मा पाण्डवों से विराटराज को यथेष्ट सहायता मिलती थी ।

त्रिगर्त राज सुशर्मा का पराजय।

कौरवों की सहायता पा महावली त्रिगर्तराज अत्यन्त प्रसन्न हुये। उन्होंने शीघ्र त्रिगर्त्त वीरों को सुसज्जित होने की आज्ञा दी। अपनी सेना को पूर्णरूप से सुसज्जित देख त्रिगर्त्तराज कृष्ण पक्ष की सप्तमी को मत्स्य राज की ओर चल पड़े। पश्चात् दूसरे दिन कौरवों ने भी दूसरे मार्ग से प्रस्थान किया।

महावली शुशर्मा की सेना निर्भय मत्स्यराज में घुस पड़ी। राजधानी के निकट पहुँचते ही उन लोगों ने एक प्रान्त की वहुत सी गायें हरण कर लीं। यह देख गोरक्षक ग्वाले शीघ्र रथ पर सवार हो पुरी में पहुँचे और दर्बार में पाण्डवों से घिरे हुये विराट राज के पास जाकर बोले—

महाराज! त्रिगर्त्त वीरों ने वड़ी भारी सेना लेकर पुनः आक्रमण किया है। क्या करना चाहिये? वे हजारों गौओं को हर कर लिये जा रहे हैं। आप शीघ्र ही रक्षा कीजिये।

ग्वालों की बातें सुनते ही विराट राज ने शीघ्र सेना तैयार होने की आज्ञा दी। विराट राज की आज्ञा पाते ही मत्स्यराज की सेना तैयार होने लगी। बड़े-बड़े राज-पुरुष, हाथी, घोड़े और रथों पर आरूढ़ हो जन्मभूमि तथा गौओं की रक्षा के लिये चल पड़े।

क्षत्रियों का रक्त उबल पड़ा। जुझाऊ रणबाजा ने निर्बलों

के हृदय में भी वीरता का संचार कर दिया। सभी महा-राज विराट का संकेत पा अपने पुराने वैरी का नाश करने के लिये उद्यत हो गये। देखते-ही-देखते मत्स्यों की वीर-वाहिनी अत्याचारियों के दमन के लिये चल पड़ी।

राजा विराटराज की आज्ञा से महात्मा कंक, महाबली भीम, तन्त्रिपाल और ग्रन्थिक भी दृढ़ कवचधारण कर सुन्दर रथों पर बैठकर चले।

दोपहर होते-होते मत्स्यों ने त्रिगर्त्तों पर आक्रमण किया। युद्ध कुशल योद्धाओं के आमने-सामने आते ही घोर युद्ध होने लगा। दोनों ओर का दल बराबर था। बड़ी देर तक लड़ाई होती रही। परन्तु कोई किसी को नहीं हटा सका। इस भीषण समर ने सहस्रों वीरों को धराशायी कर दिया। पृथ्वी सैनिकों के रक्त से लथपथ हो गई।

धीरे-धीरे दिन का अवसान हुआ। सूर्य के पश्चिम जलधि में डूबते ही मैदान में अंधकार बढ़ जाने के कारण लड़ाई रुक गई। सात घड़ी पश्चात् चन्द्रदेवके उगते ही फिर सेनायें उठ खड़ी हुई और भयंकर युद्ध होने लगा।

इतने में त्रिगर्त्त नरेश ने अपने शरीर रक्षकों के साथ विराटराज पर बड़े वेग से आक्रमण किया। उन्होंने बड़ी शीघ्रता से विराट के सारथि को मार गिराया और उन्हें जीवित ही पकड़ अपने रथ में बांध लिया। अब क्या था? महाबली सुशर्मा महाराज विराट को कैदी बना कर ले चले। यह देख सभी मत्स्यों में हाहकार मच गया।

मत्स्यों की सेना को इस प्रकार भागते देख महात्मा कंक ने वल्लभ से कहा—वल्लभ ! देखो—सुशर्मा विराट को लिये जा रहा है। देखो हम लोगों ने इनके आश्रय में रहकर अज्ञात काल व्यतीत किया है। इसलिये उन्हें शीघ्र शत्रुओं के हाथ से छुड़ाओ।

वल्लभ ने कहा—आपकी आज्ञानुसार हम अभी महाराज को छुड़ा लाते हैं। हम अभी इस वृक्ष से शत्रुओं का नाश कर देंगे।

कंक ने कहा—वल्लभ ! ऐसा असाधारण कार्य न करो, नहीं तो लोग पहचान जायेंगे। तुम साधारण रीति से युद्ध करके विराट को छुड़ाओ।

इसी समय महावीर वल्लभ वाण वर्षा करते हुये सुशर्मा के पीछे दौड़े। सुशर्मा ने पीछे से भीम को यमराज के समान आते देखा—अतः रथ को रोक दिया। धीरे-धीरे महा समर होने लगा।

इस प्रकार वीर वल्लभ सहस्रों वीरों को मार कर सुशर्मा से जा भिड़े। इधर पांडव लोग भी अस्त्र शस्त्रों के साथ भीम की सहायता के लिये आ पहुँचे। पांडवों ने बड़ा भीषण युद्ध किया। देखते ही देखते त्रिगर्तों की सारी सेना कट गई। इधर वल्लभ सुशर्मा के सारथि को मारकर उसके रथ पर जा चढ़े और बल पूर्वक पकड़ कर बाँध लिये। पश्चात् विराट के बन्धन खोल महात्मा कङ्क के पास ले चले।

महामति कङ्क ने देखते ही वल्लभ से कहा-भाई ! त्रिगर्त-

राज हार गये। अब इन्हें छोड़ दो। परन्तु सावधान कर दो कि अब कभी धन के लोभ में पड़ कर ऐसा अनर्थ नहीं करेंगे।

इस प्रकार कङ्क की कृपा से मुक्त हो सुशर्मा विराट को प्रणाम कर चल दिये।

विराट ने सेनाओं के साथ वह शेष रात्रि वहीं विताई। सवेरे ही उन्होंने पांडवों को अपार धन देनेकी आज्ञा दे कहा—तुम्हीं लोगों ने मेरी रक्षा की है। तुमने हमें महा पराक्रमी शत्रु के हाथ से बचाया है। इस लिये तुम राज सुख का ऐश्वर्य्य भोग करो।

पांडव लोग विराट के सन्मुख हाथ जोड़कर बोले—महाराज! हम अत्यन्त सन्तुष्ट हैं कि आप दुराचारी त्रिगर्तों के हाथ से बच गये। आप दूतों को नगर में भेजिये और आज्ञा दीजिये कि नगर में जाकर आपकी विजय की घोषणा करें।

उत्तर रण-यात्रा।

इधर सवेरे ही कौरव वीरों का भीषण आक्रमण हुआ। उन लोगों ने अपनी चतुरङ्ग-वाहिनी सेना लेकर विराट नगरी घेर ली और ग्वालों को मार पीट कर साठ हजार गायें छीन ली। यह भयंकर अनर्थ देख ग्वाले घबड़ा कर रोते हुये राज-भवन में आये और राजकुमार उत्तर से बोले—

राजकुमार! कौरव लोग आपकी साठ हजार गायें बरबस लिये जा रहे हैं। आप जो उचित समझें कीजिये क्योंकि महाराज इस समय नहीं हैं। इसलिये आपही अपनी गौवों की रक्षा कीजिये।

कुमार उत्तर स्त्रियों के बीच में बैठे थे। ग्वालों की बातें सुनकर बोले—

यदि मुझे कोई उत्तम सारथि मिल जाय तो हम युद्ध में शत्रुओं को परास्त कर अपनी गौयें अभी छुड़ा ला सकते हैं।

उत्तर की बातें सुन बृहन्नला ने एकान्त में द्रौपदी से कहा—तुम उत्तर से कहो कि बृहन्नला कई बार पाडवों का सारथी बनकर भयङ्कर युद्ध में गया है और विजय प्राप्त की है। अतः उसे लेकर युद्ध भूमि में जाओ।

बृहन्नला के कथनानुसार सैरिन्ध्री राजकुमार के पास पहुँची और लज्जापूर्वक धीरे-धीरे बोली—राजकुमार! यह

वृहन्नला कई बार महावली अर्जुन के रथ पर सारथि का काम किया है। यह अर्जुन का शिष्य है।

उत्तर ने कहा—सैरिन्ध्री! तुम्हें तो ज्ञात है, परन्तु हम क्या समझ कर वृहन्नला को सारथि बनने का अनुरोध करें।

सैरिन्ध्री ने कहा—राजकुमार! यदि आपकी बहन उत्तरा वृहन्नला को कहे, तो वह उसकी बात अवश्य मान लेगा।

उत्तरा उत्तर की आज्ञा पा शीघ्र वृहन्नला के पास गई। अर्जुन ने उसे देखते ही हँसकर कहा—उत्तरा! इतना शीघ्र आने का क्या कारण है? कहो—तुम क्या सोच रही हो?

उत्तरा ने मीठे वचनों से कहा—वृहन्नला! हमारे पिता राजा सुशर्मा से लड़ने के लिये गये हैं और इधर कौरवों ने आक्रमण कर हमारे राज्य की सारी गौओं को छीन लिया है। अभी राजधानी में केवल हमारे भाई उत्तर ही हैं, परन्तु सारथि के विना वे युद्ध में नहीं जा सकते। सैरिन्ध्री कहती है कि सारथि का काम तुमने भलीभाँति किया है। अतः हमारे भाई के सारथि बन कर तुम विपद् से उद्धार करो। इस प्रकार स्नेह भरे वचनों से वृहन्नला को तुष्ट कर उत्तरा अपने भाई उत्तर के पास ले आई।

उत्तर ने दूर से ही वृहन्नला को देख कर कहा—वृहन्नला! हमने सुना है कि तुम पहले महावीर अर्जुन के सारथि थे, इसलिये हमारे सारथि बन कौरवों की सेना में ले चलो।

अर्जुन ने हँसी रूप में कहा—राजकुमार ! क्या सारथि का काम मुझे शोभा देता है ? हम नाचना गाना जानते हैं, रथ हाँकने की विद्या हम क्या जानें ?

इस प्रकार कह कर जब चलने के लिये तैयार हुये तब उत्तर ने कवच पहनने के लिये दिया। उसे उलटा पहन कर उन्होंने ऐसा भाव दिखाया मानों वे कवच पहनना जानते ही नहीं ?. वृहन्नला के इस विचित्र व्यापार को देख सभी स्त्रियाँ हँसने लगीं। राजकुमार उत्तर ने स्वयं उन्हें वर्म कवचादि पहना कर सुसज्जित किया।

इस प्रकार अर्जुन को सुसज्जित देख कहा—वृहन्नला ! यदि राजकुमार कौरवों को हरा देंगे तो उनके रङ्ग-विरंगे कपड़े छीन लाना।—हम उनकी गुड़िया बनाकर खेलेंगी।

उत्तरा की मीठी बातें सुनकर वृहन्नला ने हँस कर कहा—उत्तरा ! यदि राजकुमार कौरवों को हरा देंगे तो हम उनके अनेक रङ्ग-विरंगे कपड़े अवश्य ले आवेंगे।

इस प्रकार राजकुमार उत्तर को रथ पर बिठा कर वृहन्नला वेश धारी महावीर अर्जुन रथ पर बैठे और बड़े वेग से कौरवों की चतुरंगिनी सेना की ओर ले चले। कुछ दूर आगे जाते ही उत्तर ने निर्भयता पूर्वक कहा—वृहन्नला ! हमारा रथ शीघ्र द्रोण, कर्ण, भीष्म, दुर्योधनादि वीरों के सामने ले चलो। आज हम उन दुष्टों को निश्चय ही उचित दण्ड देंगे।

उत्तर की बात सुन अर्जुन ने बड़ी तेजी से घोड़े दौड़ाये।

घोड़े वायु वेग से उड़ते हुये उस विशाल मैदान में आये जहाँ क़ौरवों की सेना समुद्र के समान उमड़ रही थीं। भयंकर काले पर्वत के समान कौरवों की विशाल वाहिनी देख उत्तर के रोंगटे खड़े होगये। वे भयभीत हो बोले।

हे वृहन्नला! इस अपार जन समुद्र के साथ हम अकेले कैसे युद्ध कर सकेंगे? ओह! इस विशाल सेना को जिसे देवता भी नहीं जीत सकते, हम कैसे विजय करगें। सारथि! लड़ना तो दूर रहा, हम यहाँ ठहर भी नहीं सकते। मेरा हृदय धड़क रहा है। सारा शरीर सन्न होता जा रहा है। सारी सेना पिता जी के साथ चली गई है। हम अकेले क्या कर सकते हैं।

अर्जुन ने उत्तेजित करते हुये कहा—उत्तर! इस समय घवड़ा कर शत्रुओं को आनन्दित न करो। कौरवों ने क्या किया जिससे तुम इतना डर गये। बोले—चलते समय तुमने क्या बातें की थीं। लौटने पर तुम्हें लोग क्या कहेंगे। क्या उस अपमानसे जीवन श्रेष्ठ है? फिर सैरिन्ध्री ने सबके सामने मेरे सारथि पन की प्रशंशा की है। भला, कौरवों से युद्ध किये विना मैं कैसे लौट सकता हूँ। मैं कभी युद्धसे विमुख नहीं होता। तुम्हें अवश्य लड़ना पड़ेगा।

वृहन्नला की बातें सुन उत्तर और भी भयभीत हो बोला—

वृहन्नला! कौरव चाहे हमारा सर्वस्व हरण कर ले जायँ, चाहे लोग कितनी भी हँसी उड़ायें अथवा मेरा तिरस्कार करें परन्तु मैं कभी युद्ध नहीं कर सकता। इतना

कहते-कहते उत्तर धनुष वाण रख दिया और रथ से कूद कर भागा खड़ा हुआ।

यह देख वृहन्नला ने कहा—राजकुमार! यह क्षत्रियों का धर्म नहीं है। युद्ध से पीठ दिखाना कायरों का कर्म है। इस प्रकार समर भूमि से भागने के अपेक्षा सन्मुख समर में प्राण त्याग देना कितना अच्छा है।

इतने पर भी उत्तरको नहीं लौटते देख वृहन्नला रथसे कूद कर उत्तर के पीछे दौड़ पड़ा। दौड़ने में उसकी वेणी खुल गई और कपड़े हवा में उड़ने लगे।

यह देख कौरव सेना के वीर हँस पड़े। सभी आश्चर्य्य भरी दृष्टि से वृहन्नला की ओर देखने लगे और मन में विचारने लगे कि यह स्त्री वेशधारी मनुष्य कौन है?

इधर अर्जुन ने थोड़ी दूर पर उत्तर को पकड़ लिया। और वल पूर्वक रथ पर ला विठाया। इस प्रकार विवश हो उत्तर ने आर्त स्वर में कहा—वृहन्नला! तुम शीघ्र मेरे रथ को लौटा ले चलो हम तुम्हें खूब प्रसन्न कर देंगे।

उत्तर को अत्यन्त भयभीत देख महावली अर्जुन ने हँस कर कहा—हे वीर! यदि तुम कौरवों से नहीं लड़ सकते तो तुम निर्भय रथ चलाओ। हम तुम्हारी रक्षा करेंगे।

यह सुन उत्तर को कुछ धैर्य्य हुआ, इधर वृहन्नला वेशधारी अर्जुन को देख भीष्म द्रोणादि वीर आश्चर्य्य दृष्टि से देखने लगे। सभी लोगों को वृहन्नला पर सन्देह हुआ।

कौरवों के दल में भयंकर अपशकुन होने लगे। गृद्ध

मडराने तथा शृंगाल बोलने लगे। इस प्रकार विपत्ति-सूचक अपशकुनों को देख आचार्य द्रोण ने भीष्म से कहा—महात्मन! जान पड़ता है आज हम लोगों को अर्जुन के सामने हार माननी पड़ेगी। वे स्वर्ग से अनेक प्रकार के दिव्यास्त्रों का प्रयोग सीख आये हैं। इस कौरव सेना में कोई ऐसा वीर नहीं है जो महावीर अर्जुन का सामना कर सके।

कर्ण ने कहा—आचार्य! यह आपका स्वभाव है, आप बराबर हम लोगों की निन्दा और पाण्डवों की प्रशंसा किया करते हैं। यदि हम लोग मिलकर युद्ध करेंगे तो अर्जुन की क्या शक्ति है जो हरा सके।

कर्ण की बातों से प्रसन्न होकर दुर्योधन ने कहा—हे महावीर! यदि यह स्त्री वेषधारी पुरुष वास्तव में अर्जुन है तो और लड़ने की क्या आवश्यकता है, तब तो प्रतिज्ञा के पूर्व ही उन्हें पहचान लिया। अब तो उन्हें पुनः बारह वर्ष वनवास करना पड़ेगा। यदि और कोई वीर होगा तो हम लोगों के पैने बाणों से नहीं बच सकता।

इधर अर्जुन ने उत्तर से कहा—उत्तर! हमारे रथ को उस शमी के वृक्ष के पास ले चलो। यह तुम्हारा धनुष बाण बहुत ही कमजोर है, युद्ध करते समय हमारे बाहुबल को नहीं सह सकेगा। देखो! इस वृक्ष पर महात्मा पाण्डवों के शस्त्र रक्खे हैं ले आओ। हम उन्हीं के शस्त्रों के द्वारा युद्ध करेंगे।

उत्तर ने कहा—हमने लोगों से सुना है कि पहाड़ी वाले

शमी वृक्ष में एक मुर्दा टँगा है, भला कहो मैं उसे कैसे छू सकता हूँ ?

वृहन्नला ने कहा—उत्तर ! यह मुर्दा नहीं है, वस्त्र में बँधा हुआ पाण्डवों का हथियार है, तुम निर्भय ले आओ। कोई अपवित्र वस्तु नहीं है।

वृहन्नला के कहने पर राजकुमार उत्तर वृक्ष पर चढ़ गये और हथियारों को जमीन पर ले आये। वृहन्नला ने गठरी खोलकर सभी दिव्यास्त्रों को ले अक्षय तूण और अभेद्य कवच धारण किया।

इन दिव्यास्त्रों को देख उत्तर के आश्चर्य्य का ठिकाना नहीं रहा-वह बोला-वृहन्नला ! पांडव लोग कहाँ हैं ? अर्जुन ने अपना समस्त वृत्तान्त कह सुनाया जिसे सुनकर उत्तर गद् गद् हो उठा। उसने विनय पूर्वक अर्जुन को प्रणाम कर कहा—हे महावीर ! अब मैं निर्भय हो गया। आप के साथ मुझे अब काल का भी भय नहीं रहा। महावाहो ! कहिये अब मैं किधर रथ चलाऊँ।

इस प्रकार अर्जुन अत्यन्त सन्तुष्ट हो बोले—उत्तर मेरे रथ को कौरवों की सेना के बीच में ले चलो।

वीभत्सु विजय।

महाबली अर्जुन ने तत्काल अभेद्य कवच धारण कर अक्षयतूणकस गांडीव ले सम्पूर्ण दिव्यास्त्रों के साथ रथ पर बैठे। इस प्रकार अत्यन्त भयंकर धनुष टंकार तथा विकट शंखध्वनि करते हुये महावलि कौरवों की अजेय चतुरंगिणी वाहिनी की ओर चले।

अर्जुन के रथ का प्रलयकारी घोप सुन द्रोणाचार्य ने कहा—देखो! इस महारथी के रथ की चाल से पृथ्वी काँप रही है। यह निश्चय ही अर्जुन है। इसके धनुप टंकार और शंखध्वनि ने योद्धाओं को भयभीत कर दिया है। अब देखने का समय नहीं है। शीघ्र गायों को हटाकर व्यूह रूप सज्जित होकर खड़े हो जाना चाहिये। अन्यथा निस्तार न होगा।

आचार्य्य की बातें सुन दुर्योधन भी भयभीत हो बोला—सबसे पहले यह जान लेना चाहिये कि पाण्डवों के वनवास के १३ वर्ष बीत गये अथवा नहीं। मुझे सन्देह है। महामति पितामह भीष्म इसका निर्णय कर सकते हैं। इसके इसके अतिरिक्त लड़ने की तो हमने प्रतिज्ञा की है। चाहे वह कोई हो, हम उससे अवश्य लड़ेंगे। आचार्य्य अर्जुन को बहुत प्यार करते हैं, इसलिये बराबर उसकी प्रशंसा किया करते हैं। हम लोगों को भयभीत करने का एक साधन

निकाले हैं। परन्तु मेरे वीर सैनिकों ! डरने की कोई बात नहीं। कोई भयभीत हो समर से न भागना। जो भागेगा वह मेरे बाणों के द्वारा मारा जायगा। यदि यह आया हुआ वीर स्वयं देवेन्द्र भी होगा तो जीवित नहीं लौटेगा। महारथियो ! आप लोग घबड़ायें नहीं।

इसी समय कर्ण ने कहा—ओह ! महा आश्चर्य ! हमारे सभी महारथी अर्जुन के डर से भयभीत हो रहे हैं ? लोग लड़ना तक नहीं चाहते, अर्जुन ने क्या किया है ? वह हमसे किस बात में श्रेष्ठ है। आज ही हम उस धनुर्धारी का अन्त कर दुर्योधन के सामने प्रण पूर्ण करेंगे।

दुर्योधन और कर्ण की बातें किसीको अच्छी नहीं लगीं। उसी समय आचार्य कृप ने कहा—

हे कर्ण—युद्ध की सम्मति देना तुम खूब जानते हो, परन्तु तुमको यह ज्ञान नहीं है कि राज्य की रक्षा किस बात में है ? देश काल का विचार किये विना युद्ध करना बुद्धि हीनता है। इस समय क्रुद्ध अर्जुन से युद्ध करना हमारी राय में ठीक नहीं है। महावीर अर्जुन ने अकेले कुरू देश की रक्षा की है। अग्नि को तृप्त किया है तथा पाँच वर्ष कठोर तप कर शंकर का साक्षात् दर्शन किया है। तुम व्यर्थ अभिमान करते हो। तुम्हारी बातें उपयुक्त नहीं होतीं।

इसी समय अश्वत्थामा ने कहा—कर्ण ! अभी तो सारी गौओं पर भी अधिकार नहीं हुआ है। जिन वीरों को जुये

के चक्र में फँसाकर धन-धान्य हरण किये हो क्या कभी सन्मुख समर में उन्हें पराजित किये हो ?

इस प्रकार आपस में वादा-विवाद बढ़ते देख भीष्म जी दुःख प्रकट करते हुये बोले—महात्मा कृप और अश्वत्थामा ठीक कहते हैं। कर्ण का आशय नहीं समझने के कारण वे रुष्ट हो उठे हैं। कर्ण ने वीरों को उत्तेजित करने के लिये डरपोक बनाया है। परन्तु दुर्योधन ने आचार्य्य पर दोष लगाया है। अतः सभी परस्पर क्षमा कर युद्ध की व्यवस्था आचार्य्य द्रोण की मति के अनुसार निश्चित करें। महर्षि द्रोण ही अग्र होने के योग्य हैं। हे अश्वत्थामा ! तुम भी क्षमाकर इस युद्ध में सम्मिलित होओ। और आचार्य्य की मति के अनुसार काम करो।

अश्वत्थामा बोले—महात्मन ! मेरा विचार विवाद करने का नहीं है। पिता ने शुद्ध हृदय से एक वीर के गुणों की प्रशंसा की थी। पक्षपात की कोई बात नहीं थी। इस पर दुर्योधन को ऐसा कहना उचित न था।

इसी समय दुर्योधन आचार्य्य के शरण में जाकर बोले—आचार्य्य ! क्षमा कीजिये। आपके सन्तुष्ट न रहने पर हमारी भलाई नहीं है।

द्रोण ने कहा—पुत्र ! मैं तो महामति भीष्म के बातों से ही प्रसन्न हो गया हूँ।

इसके अनन्तर भीष्म ने ताराओं की चाल से वर्ष और दिन का ज्ञान कर कहा—पांडवों के निश्चय तेरह वर्ष पूरे हो

गये। गणनाके अनुसार पाँच महीने छः दिन और अधिक हो जाते हैं अब युद्ध के विना दूसरा मार्ग—नहीं रह गया है। अतः बड़ी सावधानी से उसका सामना किया जाय।

सेना को चार भागों में बाँट दो। एक भाग के साथ रक्षित दुर्योधन शीघ्र लौट जाय। दूसरा भाग गौओं को ले जाय। और दो भागों से उनका सामना करें।

सबों ने महामति भीष्म की बातें मान ली। भीष्म ने गौओं और दुर्योधन को हस्तिनापुर रवाना किया। पश्चात् सेना को व्यूह समान सज्जित कर कहा—आचार्य बीच में रहेंगें, अश्वत्थामा बायीं ओर और कृपाचार्य्य दाहिनी ओर रहें, कर्ण आगे बढ़े और हम पीछे रहकर रक्षा करें।

इस प्रकार सभी शीघ्र सज्जित हो अर्जुन कीप्रतीक्षा करने लगे। इतने में आचार्य्य द्रोण ने सबों को सम्बोधित करते हुये कहा—वीरों! आज बहुत दिनों के बाद प्यारे शिष्य अर्जुन से भेंट हुई हैं। देखिये २ उन्होंने दो बाण मेरे चरणों के पास भेज मुझे प्रणाम किया है और दो बाण कानों को छूते हुये निकल गये हैं अर्थात् उन्होंने कुशल समाचार पूछा है।

सेना के निकट पहुँचने पर महाबली अर्जुन ने उत्तर से कहा—उत्तर! तुम घोड़ों की रास खींच कर इन्हें रोको—हम देखना चाहते हैं कि कुलांगार दुर्योधन कहाँ है? मुझे और किसी से लड़ने की आवश्यकता नहीं है। दुर्योधन के हारते ही सभी हार जायेंगे। वह दुराचारी दिखलाई नहीं पड़ता। देखो वह सामने बड़ी धूल उड़ती दिखलाई पड़ती

है—जान पड़ता है कि नीचात्मा गौओं को लेकर भागा जा रहा है। अतः तुम शीघ्रता पूर्वक उसी ओर रथ ले चलो।

उत्तर ने शीघ्र ही उसी ओर रथ बढ़ाया। कौरवों ने अर्जुन के भाव को समझ लिया। अतः सभी रोकने के लिये तैयार हो गये। इसी बीच में अर्जुन आगे जा पहुँचे और गौओं को आगे बढ़ने से रोक लिये—दुर्योधन को भी विवश हो लौटना पड़ा, अतः सभी सेनायें एक में मिल गईं।

इसी समय कर्ण आगे बढ़ा और अपनी सेना के साथ अर्जुन पर बाण-वृष्टि करने लगा। इस प्रकार मस्त हाथी के समान कर्ण को अपनी ओर आते देख अर्जुन ने उत्तर से कहा—उत्तर! तुम रथ को इस सेना के बीच में ले चलो। देखो—वह सामने बाण-वृष्टि करते हुये महाबली कर्ण आ रहे हैं।

देखते-ही-देखते भयंकर लड़ाई छिड़ गई। अर्जुन को बढ़ते देख विकर्ण आगे बढ़ा। परन्तु शीघ्र ही गाण्डीव के खरतरशरों से घायल हो पृथ्वी पर गिर पड़ा। विकर्ण को गिरते देख कर्ण का भाई अधिरथ का पुत्र विकर्ण आगे आया और महाबली पाण्डुनन्दन से संग्राम करने लगा। परन्तु गाण्डीवधर ने कुछ ही देर में उसे यमलोक भेज दिया।

भाई को मरते देख कर्ण क्षुब्ध हो उठे, उनके क्रोध का ठिकाना नहीं रहा। वे बाणों से दिशाओं को एक करते हुये महाबली अर्जुन के पास आये और भयानक संग्राम करने लगे।

कर्ण ने शीघ्र ही अर्जुन के बाणों को काट उनके घोड़ों को घायल कर दिया। यह देख सभी कौरव आनन्द से जय-ध्वनि करने लगे। उस समय अर्जुन क्षुब्ध कल्पान्तक के समान क्रुद्ध हो गये और शीघ्र ही पैने बाणों से कर्ण के रथ को ढँक दिये पश्चात् एक दिव्य अस्त्रसे उन्होंने कर्णको घायल कर दिया। इस प्रकार कर्ण का सारा शरीर विद्ध हो गया। वे देखते-ही-देखते रथ पर मूर्च्छित होकर गिर पड़े। महाबली अर्जुन के सामने कर्ण को युद्ध भूमि से हट जाना पड़ा।

कर्ण के भागते ही दुर्योधन अपनी सेना के साथ आ पहुँचा। संग्राम उत्तरोत्तर भीषण हो चला। अर्जुन ने उत्तर से कहा—वीर! तुम हमारे रथ को कृपाचार्य के पास ले चलो—हम उनसे युद्ध करना चाहते हैं।

कुछ ही देर में कृपाचार्य और अर्जुन का भयंकर संग्राम होने लगा। दोनों वीरों के उल्का तुल्य बाणों से दिशायें सन्तप्त हो उठीं। कृपाचार्य ने पहले तो बड़ी वीरता से पार्थ का सामना किया। परन्तु अन्त में उनके तेज को नहीं रोक सके। अर्जुन ने उनके सारथि को मार गिराया। तथा दिव्यास्त्रों को चमक से उनके घोड़ों को भड़का दिया। जिनकी उछल कूद से आचार्य्य कृप पृथ्वी पर आ गिरे; यह देख अर्जुन ने प्रहार करना रोक दिया।

कृपाचार्य्य दूसरे रथ पर चढ़े। अर्जुन ने उनका धनुष काट दिया तथा घोड़े और सारथि को मार डाला। रथ हीन होकर कृपाचार्य को अर्जुन के सामने से हट जाना पड़ा।

धीरे-धीरे महावली अर्जुन का रथ गुरु द्रोण के पास आ पहुँचा। आचार्य्य द्रोण अपने प्रिय शिष्य को देख अत्यन्त प्रसन्न हुये। अर्जुन ने तत्काल आचार्य्य को प्रणाम किया। द्रोण भी अत्यन्त सन्तुष्ट हो आशीर्वाद दिये। पश्चात् गुरु-शिष्य संग्राम छिड़ गया। समान वलवाले दोनों वीरों का अद्भुत भयंकर युद्ध ने लोगों को आकर्षित कर लिया। सभी टकटकी बाँध कर देखने लगे।

भयंकर दिव्यास्त्रों की लड़ाई हुई। अर्जुन का युद्ध-कौशल देख महर्षि द्रोण अत्यन्त प्रसन्न हुये। इस प्रकार युद्ध करते हुये अर्जुन ने इतने वाण वरसाये कि आचार्य्य का रथ वाणों से ढंक गया। कौरवी सेना में हाहाकार मच गया।

इधर अपने पिता को गांडीवधर के शरजाल में व्यग्र देख अश्वत्थामा आगे वढ़े और एका-एक अर्जुन की ओर दौड़े। इसी वीच में अवसर पा आचार्य्य अर्जुन के सामने से हट गये।

अश्वत्थामा और अर्जुन का युद्ध छिड़ गया। वीर गुरु-पुत्र ने शीघ्रही एक तेज वाण से गांडीव की डोरी काट दी। यह विचित्र कौशल देख लोग अश्वत्थामा की प्रशंसा करने लगे। इसी वीच में महावली अर्जुन ने दूसरी डोरी चढ़ा दी। अव वे शीघ्र ही वाण वर्षा करने लगे। क्रुद्ध अर्जुन ने इतने वाण वरसाये कि उनको रोकने में अश्वत्थामा के सारे अस्त्र-शस्त्र समाप्त हो गये।

गुरु-पुत्र के हटते ही पुनः कर्ण लड़ाई के मैदान में आ डटे और अर्जुन का सामना करने लगे। समर-भूमि से भागे हुये कर्ण को पुनः आते देख अर्जुन ने क्रोधपूर्वक कहा—

कर्ण! तुमने अभिमान से कौरवों की सभा में कहा था कि हम से बढ़कर योद्धा और कोई नहीं है। आज हम रण-भूमि में तुम्हें बता देंगे। जिससे भविष्य में तुम किसी वीर का अपमान नहीं कर सकोगे। आज तुम्हारे कर्मों का फल मिलेगा। दुरात्मा! मेरे क्रोध को देख—

कर्ण ने कहा—हे अर्जुन! वीर कहते नहीं कर दिखाते हैं। तुम अपने को बड़ा वीर समझते हो। तुम्हारी इच्छा शीघ्र ही दूर हो जायगी। अभी हम यमलोक भेजते हैं।

कर्ण की अभिमान भरी बातें सुन अर्जुन बोले—सारथि पुत्र! तुझ सा निर्लज्ज इस संसार में कौन है? अरे! अभी तुम युद्ध से भागे हो और अभी शेखी मार रहे हो।

इतना कहते-कहते महाबली अर्जुन ने बाण बरसाना आरम्भ किया। उन्होंने शीघ्र ही पैने बाणों से कर्ण के तरकस की डोरी काट डाली। इधर कर्णने अत्यन्त क्रुद्ध हो दूसरी तरकससे एक अमोघ बाण लेकर अर्जुन पर चलाया। कर्ण का पैना बाण अर्जुन के हाथ में लगा जिससे कुछ क्षण तक उनकी मुट्ठी ढीली पड़ गई।

इस प्रकार अर्जुन क्रुद्ध हो उठे और लगातार बाण-वृष्टि करने लगे। उन्होंने शीघ्र ही कर्णका धनुष काट डाला और उनके बाणों को व्यर्थ कर दिया। पश्चात् अर्जुन ने उनके

घोड़ों को मार एक तेज वाण उनकी छाती में मारा। कर्ण उस तेज वाण को नहीं सह सके। शीघ्र बेहोश हो गये।

कुछ क्षण पश्चात् होश आने पर पीड़ा से अत्यन्त व्यग्र हो युद्ध करना छोड़ एक ओर भाग खड़े हुये।

इस प्रकार महावली कर्ण को भागते देख दुर्योधन से नहीं रहा गया। उसने दल बाँध कर अजेय अर्जुन पर आक्रमण किया। मेघ कभी वातूल का सामना कर सकता है? थोड़ी ही देर में सभी छिन्न-भिन्न हो भाग खड़े हुये। अन्त में अर्जुन का पितामह से भीषण समर होने लगा।

कुछ देर तक परस्पर दिव्यास्त्र चलाते रहे। अर्जुन का हस्तलाघव देख सभी चकित हो उठे। अर्जुन ने शीघ्र ही पितामह का धनुष तोड़ उन्हें एक वाण से अचेत कर दिया।

इस प्रकार सभी वीरों को वार-वार परास्त कर अन्त में अर्जुन ने गाण्डीव पर सम्मोहन नाम का दिव्यास्त्र रखा। ओह! धनुष पर रखते ही वह अस्त्र विद्युत् के समान चमक उठा। उसके प्रकाश से सबों की आँखें चौंधिया उठीं। उस वाण के छूटते ही सारी सेना मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी।

सभी सेना को मूर्च्छित देख अर्जुन ने कहा—उत्तर! उत्तरा ने चलते समय कौरववीरों के सुन्दर-सुन्दर कपड़ों को खेलने के लिये माँगा था। वीरवर! इस समय सभी मूर्च्छित पड़े हैं। तुम शीघ्र रथ से उतर कर कपड़ों को ले आओ। उत्तर ने बड़े-बड़े महारथियों के वस्त्र ले लिये।

इसी बीच में अर्जुन ने अपना देवदत्त शंख बजाया जिसे सुनते ही गौयें विराट नगर की ओर लौट पड़ीं, उत्तर भी रथ को घुमाया।

इधर कौरवों को कुछ-कुछ होश आने लगा। दुर्योधन ने कहा—वीरो! तुम लोगों ने अर्जुन को क्यों छोड़ दिया। सभी लोग उसे घेर कर इतना घायल करो कि वह घर नहीं जा सके।

दुर्योधन की बातें सुन भीष्म ने हँस कर कहा—दुर्योधन! तुम्हारी शक्ति उस समय कहाँ गईथी, जब तुम लोग बेसुध पड़े थे। अर्जुन ने वीरोचित कार्य्य किया है। वह महाबली कभी क्षात्र-धर्म के विरुद्ध कार्य नहीं कर सकता।

यदि वह चाहता तो तुम सबोंको सोते ही में मार डालता। निश्चय तुम लोग मारे जाने से बच गये हो। अब शेखी न मारो। अब भी यदि कल्याण चाहते हो तो सीधे हस्तिना-नगर लौट चलो। पितामह की बातें सुन सभी ठण्ढी साँस ले राजधानी की ओर लौटे।

विराट नगर लौटते समय अर्जुनने कहा—उत्तर! पांडवों का भेद केवल तुम्हीं जानते हो। अभी हम लोगों का प्रकट होना ठीक नहीं। तुम लोगों पर यही प्रकट करना कि हमने ही युद्ध में विजय पायी है।

उत्तर ने कहा—महाबाहो! मेरी बात का किसको विश्वास होगा? हाँ! आपकी आज्ञा के बिना आपका भेद किसी पर प्रकट न करूँगा।

अर्जुन ने कहा—ग्वालों को चलकर नगर में उत्तर-विजय की घोषणा करने कहो। हम तीसरे पहर चलेंगे। अभी मुझे बृहन्नला का रूप धारण करना है।

इधर रात्रि व्यतीत कर पांडवों के साथ विराट-राज नगर में प्रवेश किये। वहाँ पहुँचते ही अकेले उत्तर रणयात्रा का समाचार सुन अत्यन्त व्यग्र हो उठे। उन्होंने शीघ्र ही सेना-पतियों को आज्ञा दी कि जाकर उत्तर की सहायता करो। इसी समय ग्वालों ने आकर उत्तर-विजय की घोषणा की। विराट यह समाचार सुन अत्यन्त प्रसन्न हुये। उन्होंने शूर-सामन्तों से कहा—वीरो! खूब उत्साह से नगरी सजाओ और आदर पूर्वक उत्तर को नगर में लिवा लाओ। शीघ्र ही तैयारियाँ होने लगीं।

इसी समय अत्यन्त प्रसन्न हो विराट ने सैरिन्ध्री से कहा—सैरिन्ध्री! जाओ पाँसा ले आओ। इस आनन्द के समय हम कङ्क के साथ पाँसा खेलेंगे।

कङ्क ने कहा—महाराज! अत्यन्त आनन्द के अवस्था में अथवा उन्मत दशा में पाँसा नहीं खेलना चाहिये। अतः इस समय कोई दूसरा काम करने की आज्ञा दीजिये।

विराट ने कहा—कङ्क! इस समय मैं जुआ खेलना चाहता हूँ। तुम निःसङ्कोच खेलो।

कङ्क ने विराट को बहुत कुछ उदाहरण देकर समझाया। परन्तु विराट ने नहीं माना। अतः जुआ आरंभ हो गया।

जुआ खेलते समय विराट राज ने प्रसन्न हो कर कहा—

आज बड़े सौभाग्यकी बात है कि पुत्र उत्तर ने शक्तिशाली कुरुवीरों पर विजय प्राप्त की है, कंक ! मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है।

कंक ने कहा—महाराज ! बृहन्नला जिसका सारथि होगा वह निश्चय ही युद्ध में विजयी होगा।

इससे रुष्ट होकर विराटराज ने कहा—कंक ! क्या उत्तर कौरवों को नहीं हरा सकता ? तुम हमारे वीर पुत्र की उपेक्षा कर एक नर्तक की प्रशंसा करते हो।

कंक ने कहा—महाराज ! भीष्म, द्रोण, कृपादि वीरों के सन्मुख बृहन्नला को छोड़ और कौन ठहर सकता है ?

इस पर क्रोध से अधीर हो विराट राज बोले—तुम बार-बार मेरे सामने बृहन्नला की प्रशंसा कर रहे हो। हम तुम्हें क्षमा करते जा रहे हैं, यदि अपनी भलाई चाहते हो तो अब कभी मुँह से ऐसी बात न निकालना। कंक को इस प्रकार फटकार कर विराट राज ने उनके मुँह पर बड़े जोर से पाँसे फेंके। पाँसे की मार से कंक के नाकसे रक्त गिरने लगा। यह देख सैरिन्ध्री स्वर्ण पात्रमें उस गिरते हुये रक्त को रोक ली।

इसी समय उत्तर द्वार पर आ पहुँचे। मत्स्यराज यह सुनते ही नाच उठे और बोले—शीघ्र उत्तर और बृहन्नला को भीतर ले आओ। इसी समय कंक ने द्वारपाल को धीरे से कहा—बृहन्नला को कुछ देर बाद भेजना। नहीं तो मेरे नाक से रक्त गिरते देख वह रक्त गिराने वाले का नाश कर देगा।

राजकुमार उत्तर ने सभा में प्रवेश कर पिता को प्रणाम किया पश्चात् महात्मा कंक के मुँह को रक्त से लथ-पथ देख व्यग्र हो पिता से कहा—पिताजी! इन्हें किसने मारने का साहस किया है? विराट ने कहा—पुत्र! तुम्हारी विजय सुनकर हम तुम्हारी प्रशंसा कर रहे थे, परन्तु यह ब्राह्मण वार-वार वृहन्नला को प्रशंसा करने लगा इसी लिये हमने इसे दण्ड दिया है।

उत्तर ने कहा—पिताजी! यह यहाँ अन्याय हुआ। इन्हें शीघ्र प्रसन्न कीजिये, अन्यथा इनके शाप से सारा राज्य नाश हो जायगा। पुत्र की बातें सुन विराट ने तत्काल क्षमा माँगी। महात्मा कंक ने कहा—महाराज! चिन्ता न कीजिये हमने पूर्ण ही क्षमा कर दिया है।

कुछ देर के बाद वृहन्नला भी दर्बार में आये—और सब को प्रणामकर बैठ गये। राजाने उनका स्वागत कर उन्हींके सामने पुत्र की प्रशंसा आरम्भ की।

पुत्र! तुमने कौरवों को जीत कर अक्षय कीर्ति का विस्तार किया। आज हम तुम्हें पाकर सच्चे पुत्रवान हुये। वरसों अविराम लड़ने वाले कर्ण को तुमने कैसे पराजय किया? विश्व-विजयी वीर भीष्म को कैसे हराया? महा-बली अश्वत्थामा द्रोण और कृपाचार्य्य से कैसे युद्ध किया? प्यारे पुत्र! काल से भी नहीं डरने वाले उन कुरु-महारथियों की विकट मार को कैसे सह सके। तुमने असम्भव को भी संभव कर दिखाया है।

पिता की बातें सुन उत्तर ने नम्रता पूर्वक कहा—हे पिता! यह सब हमारी शक्ति से बाहर का काम है। मैं तो युद्ध से भयभीत हो भागा आता था, अचानक मार्ग में एक देवपुत्र हमारे पास आया और मेरी भलाई के लिये कौरवों को हरा कर गायों का उद्धार किया।

उत्तर की बातों से अत्यन्त विस्मित हो विराट राज ने कहा—

पुत्र! वे राजपुत्र इस समय कहाँ हैं?

पिताजी! वे अन्तर्ध्यान हो गये हैं; दो तीन दिन बाद प्रकट होंगे।

इस प्रकार सभी देवपुत्र की विरदावली गाने लगे। कुछ देर बाद वृहन्नला महाराज विराट की आज्ञा से अन्तःपुर में गये। राजकुमारियों ने वृहन्नला को देख कहा—वृहन्नला! कौरवों के वस्त्र लाये?

वृहन्नला ने हँसते हुये कौरव-महारथियों के सुन्दर वस्त्रों को दे दिया। राजकुमारी तथा उनकी सखियाँ गुड़ियों के लिये सुन्दर मूल्यवान वस्त्र पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुईं।

इसके अनन्तर महात्मा पाण्डव अज्ञातवास का अन्त करने के लिये उत्तर से एकान्त में सलाह करने लगे।

पांडवों का प्रकट होना।

निश्चित तिथि आते ही पांडव स्नानादि कर्मों से निवृत्त हो राजसी वेश धारण कर राज सभा में पहुँचे। सभी लोग महात्मा युधिष्ठिर को विराट् के सिंहासन पर बैठा कर आप भी उनके चारों तरफ बैठ गये। यथा समय सैरिन्ध्री भी सैरिन्ध्री का वेश त्याग कर सभा में उपस्थित हुई।

धीरे-धीरे दर्बार का समय आ उपस्थित हुआ। महाराज विराट मंत्रियों के सहित आ पहुँचे। वे यह अद्भुत व्यापार देख अत्यन्त विस्मित और कुपित हो बोले—

कंक! हमने तो तुम्हें जुआ खेलने के लिये सभासद बनाया था, न कि सिंहासन पर बैठने के लिये। इस समय तुम क्यों हमारे सिंहासन पर बैठे हो?

विराटराज को इस प्रकार कुपित और विस्मित देख अर्जुन ने कहा—हे राजन! ये तो देवताओं के राजा इन्द्र के बराबर बैठने वाले हैं। इनकी कीर्ति दिशाओं और विदिशाओं में फैली है। ये कुरुकुल-कमल दिवाकर महाराज युधिष्ठिर हैं। धर्मराज आपके सिंहासन पर बैठने के सर्वथा योग्य हैं।

विराट ने अत्यन्त आश्चर्यित हो कहा—यदि ये महाराज युधिष्ठिर हैं, तो इनके महाबली चारों भाई और महासुन्दरी स्त्री द्रौपदी कहाँ हैं?

अर्जुन ने कहा—राजन् ! प्रसिद्ध रसोइयाँ जीमूत का वध करने वाले जिनका नाम बल्लभ है। जिन्होंने कीचक का नाश किया है, वे महाबली भीमसेन यहीं हैं। आपके यहाँ ग्रन्थिक और तन्त्रिपाल ही नकुल और सहदेव हैं तथा महासुन्दरी सैरिन्ध्री ही द्रौपदी हैं। राजन् ! हम भीमसेन के छोटे भाई अर्जुन हैं। हम लोग अपना अज्ञातवास बड़े सुख-पूर्वक आपके यहाँ रह कर विताये है।

इसी समय कुमार उत्तर ने कहा—हे पिता ! मुझे विजय दिलाने वाले यही देव-पुत्र हैं। इन लम्बी भुजाओं वाले महावली अर्जुन ने ही कौरवों पर विजय प्राप्त की है। इन्होंने ही महाबली शत्रुओं को भगाकर आपकी गौओं को बचाया है। महाराज ! इनके भयंकर टंकार और विकट शंखध्वनि को सुन हम अधीर हो उठे थे।

यह सुनते ही विराटराज अत्यन्त आनन्दित हो उठे और अपूर्व स्वागत कर धर्मराज के पास जा बैठे। पश्चात् अपना सर्वस्व अर्पण कर उनकी यथा-विधि पूजा किये। इस प्रकार अपने भाग्य की सराहना करते हुये पांडवोंको हृदयसे लगाये।

महात्मा धर्मराज ! आपके अज्ञातवास को कुशलपूर्वक बीतते देख मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। दुराचारी कौरव आपका पता नहीं पा सके। यह बड़े सौभाग्य की बात हुई। राजन् ! हमारा अपराध क्षमा करें। अज्ञात अवस्था में हम से जो कुछ दोष हुआ हो उसे अपनी सहृदयता के द्वारा दूर कर दें।

उत्तरा-परिणय।

इसी समय विराट राज ने कहा—धर्मराज! हमारी पुत्री उत्तरा विवाह योग्य हो गई है। मैं चाहता हूं कि महाबली अर्जुन उसे स्वीकार करें।

विराट-राज की बातें सुन अर्जुन ने कहा—राजन्! आपका विचार ठीक है, इससे पांडवों और मत्स्यों में परस्पर मैत्री बढ़ जायगी। परन्तु हमने राजकुमारी उत्तरा को पुत्री के समान माना है। अतः आप उचित समझें तो उसका विवाह हमारे पुत्र अभिमन्यु के साथ कर दें। इससे मुझे भी लोक भय नहीं रहेगा।

विराट ने कहा—अर्जुन! तुम बड़े धर्मात्म हो। अब शीघ्र अभिमन्यु को बुलाकर उत्तरा का पाणि-ग्रहण संस्कार कराना चाहिये।

शीघ्र ही भगवान कृष्ण के पास एक दूत शीघ्र-गामी रथ से भेजा गया। पश्चात् चारो ओर मित्रों के यहां दूत भेजे गये। पांडवों को अज्ञातवास से कुशल-पूर्वक निवृत्त होते सुन उनके मित्र राजा लोग उनकी सहायता के लिये सेना लेलेकर चल पड़े।

निमन्त्रण पाते ही काशिराज और शिविराज एक-एक अक्षोहिणी सेना लेकर आ पहुँचे। महाबली द्रुपद, धृष्टद्युम्न और शिखिण्डी भी एक अक्षोहिणी सेना सहित आये। यथा

समय महाराज कृष्णजी राजोचित वस्त्रों एवं अलंकारों के सहित सवों को लेकर यादव वीरों के साथ आ उपस्थित हुये। इन्द्र-सेनादि दास एवं दासियाँ भी रथोंके साथ आईं।

महाराजा विराट अभिमन्यु को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुये। सारी नगरी में आनन्द छा गया। घर-घर मंगलाचार होने लगे। विराट नगर महाहर्ष से रवपूर्ण हो गया।

धीरे-धीरे विवाह की निश्चित तिथि निकट आगई। राजा विराट ने अपूर्व प्रवन्ध किया। नगरी पूर्णरूप से सजाई गई। विवाह मंडप स्वर्ण, रत्न तथा मणि-माणिक्यों से सजाया गया। इस प्रकार की अपूर्व सजावट से मत्स्य नगरी अत्यन्त शोभित हो गई।

यथा-विधि विवाह कार्य आरम्भ हुआ। सर्वत्र मंगल वाद्य वज उठे। स्थान-स्थान पर शंख भेरी ढोल आदि बजने लगे। नट-वन्दी-जन भाट और चरण स्तुति-पाठ करने लगे। यथासमय दोनों पक्ष के महामान्य व्यक्ति आ वैठे। महा-सुन्दरी स्त्रियाँ उत्तरा को सजा कर विवाह मण्डप में ले आईं। अभिमन्यु को विवाह मण्डप में बैठाया गया। शीघ्रही अग्नि प्रज्वलित की गई। महर्षि धौम्य आहुति देकर अग्नि को प्रज्वलित किये। पश्चात् वेद-विधि से वर-कन्या ने उसकी प्रदिक्षणा की।

वर-कन्या की प्रदक्षिणा समाप्त होने पर ऋत्विजों ने अग्नि को सन्तुष्ट किया। पृथ्वी की दिशायें सुगंधपूर्ण हो गईं। ब्राह्मणों के वेद पाठ से विवाह-मंडप गूँज उठा।

धीरे-धीरे सभी कार्य निर्विघ्न समाप्त हो गये। पश्चात् शान्ति-पाठ हो जाने पर विवाह कार्य समाप्त हुआ।। ओह! विराट नगरी प्रत्यक्ष इन्द्रपुरी के समान शोभित हो उठी।

विराटराज ने पाण्डवों तथा यादवों का बड़ा सत्कार किया। वलदेव, सात्यकि आदि वीर विराट की सेवा से अत्यन्त संतुष्ट हुये। द्रुपद आदि स्वजनों ने बड़ी प्रसन्नता प्रगट की। इस प्रकार सभी एक दूसरे से मिल कर विवाह मंडप से उठे। इस अवसर पर विराट ने अपार धन-धान्य, रत्न, गौ और भूमि दान किया।

इस प्रकार यह अपूर्व समारोह आनन्दपूर्वक निर्विघ्न समाप्त हुआ।

इति श्रीमहाभारत विराट पर्व समाप्त।

उद्योग पर्व ।

पांडव-मित्रों की गोष्ठी

अर्थात्

परामर्श-सभा ।

———※—※———
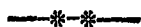
परिवर्तन-शील संसार उत्थान और पतन का नाट्य मंच है। सुख और दुःख रात्रि और दिन के समान निरन्तर एक के बाद दूसरे आते रहते हैं। धीरे-धीरे महात्मा पांडवों के दुःख की रजनी बीत गई। अज्ञात वास के अन्त होते ही सौख्य और उत्कर्ष का सूर्य्योदय हो गया।

विवाह कार्य समाप्त होजाने पर पांडवों ने अपने इष्ट-मित्रों को एकत्र कर भविष्य में क्या करना होगा विचार किया। शीघ्र ही परामर्श सभा बैठाई गई। सभी लोग विराट के भवन में इकट्ठे हुये। राजा विराट और महाराज द्रुपद के आसन ग्रहण कर लेने पर सभी लोग अपने-अपने आसनों पर आ बैठे। इस प्रकार सभी कुछ देर तक बातें करते रहे।

पश्चात् कार्य्यारम्भ के लिये सभी भगवान कृष्ण की ओर देखने लगे।

राजाओं को अपनी ओर आकर्षित देख श्रीकृष्ण जी ने कहा—हे राजाओं! कौरवों की दुष्टता आप लोगों से छिपी नहीं है। उन लोगों ने किस प्रकार कपट कर पांडवों को धोखा दिया है। जुये के जाल में फँसाकर सर्वस्व हरण कर भिखारी बनाया है। सज्जनों! पाण्डव असाधारण वीर हैं। वे अनायस सम्पूर्ण पृथ्वी को जीत सकते हैं। परन्तु इन लोगों ने सत्य की रक्षा के लिये वनवास के कठिन व्रत का पालन किया है। उपस्थित नरेशों! अब कुछ ऐसी युक्ति निकालिये जिससे उभय पक्ष का कल्याण हो? धृतराष्ट्र के पुत्रों ने क्षात्र-धर्म के अनुसार इन्हें पराजय नहीं किया है। उन लोगों ने छल और कपट से इनके राज्य को जीता है। फिर भी कौरवों की बुराई करना हमारा कर्त्तव्य नहीं है। पांडव लोग अपने बाहुबल से जीते हुये साम्राज्य को ही चाहते हैं। कौरवों ने आरम्भ से ही पांडवों पर अत्याचार किया है। अतः उभय पक्ष पर विचार करते हुये क्या करना चाहिये।

भगवान श्रीकृष्ण की निष्पक्ष बातें सुन बलदेव जी ने कहा—राजाओं! कृष्ण की बातें न्यायोचित तथा धर्मानुकूल हुई हैं। इस प्रकार दोनों पक्षों का लाभ है। पाण्डव लोग अपने बाहुबल से प्राप्त किये हुए राज्य को पाकर ही सन्तोष करना चाहते हैं। अतः कौरवों को चाहिये कि आधा राज

देकर परस्पर प्रेम-पूर्वक रहें। एक चतुर दूत दुर्योधन के पास भेजा जाय। वह महामति भीष्म, महर्षि द्रोण तथा राजा धृतराष्ट्र के सन्मुख नम्रता-पूर्वक पांडवों का सन्देश कहे। राज्य अभी कौरवों के अधिकार में है। उनसे नम्र व्यवहार करने पर ही काम निकलेगा। राजा युधिष्ठिर ने जुये का दोष जानते हुये भी कपटी शकुनि के साथ जुआ खेला है। अतः दुर्योधन दोषी नहीं है। अब तो उसे मिलाने से ही काम निकलेगा। अतः नम्रता पूर्वक सन्धिका प्रस्ताव करना हम हित-कारक समझते हैं।

महात्मा बलदेव की बातें समाप्त भी नहीं होने पायी थी कि महावीर सात्यकि अत्यन्त क्रुद्ध हो उठ खड़े हुये और बोले—हे बलदेव! मनुष्य अपने स्वभाव के अनुसार कहता है। हम आप कें दुर्वाक्यों के कारण आप को दोषी नहीं बनाते। आपकी बातों को सुनकर भी जो लोग मौन हैं, उनके विचारों पर मुझे क्रोध हो रहा है। निर्दोष युधिष्ठिर पर दोषारोपण करना क्या उचित है? यदि कपटी किसी महात्मा को धोखा दे तो क्या महात्मा दोषी हो जायगा? क्या धर्मराज ने शकुनि को जुआ खेलने के लिये खाण्डव प्रस्थ में बुलवाया था? दुर्योधन ने शठता पूर्वक कपट करके इन्हें हराया है। अब पाण्डव लोग सत्य की रक्षा कर अपने राज्य पाने के अधिकारी हुये हैं। ऐसी स्थिति उनके सामने नम्र क्यों बनें। इस नम्रता से मैं बल-पूर्वक काम लेना अच्छा समझता हूँ। फिर पांडव अपने पैतृक राज्य के लिये

उन दुष्टों का हाथ क्यों जोड़ें ? यदि कौरव धर्म प्रस्ताव नहीं मानेंगे तो हम उन्हें वरवस अधिकार में करके धर्मराज के पैरों पर गिरायेंगे । क्या आप नहीं जानते—हमारी गोष्ठी के एकत्र होने पर हमारा तेज संसार में कौन रोक सकता है ?

इस समय द्रुपद ने सात्यकि से कहा—

हे महाबाहो ! तुम ठीक कहते हो । अपने राज्य पर पांडवों का न्यायानुसार अधिकार है । परन्तु इनके राज्य पर इस समय उन्हीं कौरवों का अधिपत्य है । वे इस प्रकार उसे नहीं लौटायेंगे । दुर्योधन कितना क्रूर और नीच है । स्वयं धृतराष्ट्र विना उसकी सम्मति के कुछ नहीं कर सकते । भीष्म द्रोणादि से भी कुछ नहीं हो सकता । दुर्योधन नम्रता के प्रस्ताव को सुनकर आकाश में चढ़ जायगा । और हम लोगों को निर्बल समझेगा । वलदेव जी की बातें ठीक नहीं हैं । इस समय चारों ओर अनेक राजाओं के पास दूत भेजकर अपना वल वढ़ाना और सेना एकत्र करना चाहिये । गुप्तचरों के द्वारा हमारा भेद जानकर वे भी दूत भेजेंगे । ऐसी स्थिति में जिसका दूत पहले पहुँचेगा, उसी का कार्य्य सिद्ध होगा । अतः मेरी सम्मति से इसे शीघ्र करो ।

द्रुपद के युक्ति-पूर्ण उपदेश को सुन श्रीकृष्ण ने कहा—ठीक है ? इधर सन्धि का प्रस्ताव रहे और चारों ओर दूत भी भेजे जायँ, आप योग्य और बुद्धिमान हैं, इस कार्य को अपने हाथ में रखिये । इस समय हम लोग सभी अपने-अपने घरों को चले । यदि दुर्योधन सन्धि प्रस्ताव मान गया तो ठीक है,

अन्यथा फिर एकत्र होकर मित्रों की सम्मति के अनुसार कार्य किया जायगा।

विराट ने बड़े प्रेम से आदर सत्कार कर कृष्णादि यादवों को विदा किया। महात्मा युधिष्ठिर भावी कार्य्य-क्रम में लग गये तथा महाराज द्रुपद ने अपने पुरोहित को बुलाकर कहा—

हे विप्रवर! आप हस्तिना-नगरी जाइये और नम्रता-पूर्वक कौरवों से मिलकर पांडवों को आधा राज्य प्राप्त करने का परामर्श कीजिये। आप मधुर वचनों से उन्हें प्रसन्न रखने की चेष्टा कीजियेगा। मुझे आशा है कि विदुर जी आपकी सहायता करेंगे। महामति भीष्म, गुरुद्रोण और महात्मा कृप कभी पांडवों का विरोध नहीं करेंगे। पुरोहित के हस्तिना-नगरी जाने पर चारों ओर दूत भेजे गये।

दुर्योधन बड़ा कूटनीतिज्ञ नरेश था, इधर जो कुछ प्रस्ताव स्वीकृत हुआ, उसके गुप्तचरों ने जा सुनाया—पांडवों की गोष्ठी का समाचार सुन उसने कर्ण, शकुनि और दुःशासनको बुलाकर समझाया।

कर्ण ने कहा—महाराज! इसमें बैर करने की आवश्य-कता नहीं। अति शीघ्र दूतों को देश देशान्तरों में भेजिये और आप शीघ्रगामी रथ पर बैठ कर यादवों के पास जाइये। मुझे अभी-अभी यह जान पड़ा है कि अर्जुन यादवों के पास जा रहे हैं। आप उनसे पहले पहुँच कर कृष्ण की सेना को अपने पक्ष में कर लीजिये। यादवों की नारायणी सेना बड़ी बलवान है।
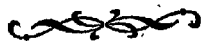
रण-निमन्त्रण ।

यथा समय रण-निमन्त्रण देने और भगवान श्रीकृष्ण को अपने पक्ष में करने के लिये महाबली अर्जुन द्वारिका चले। दुर्योधन को गुप्तचरों के द्वारा यह बात मालूम हो गई। उसने भी सब राजाओं के पास दूत भेजा और शीघ्र ही एक द्रुतगामी रथ पर बैठकर द्वारिका की ओर प्रस्थान किया।

दोनों एक साथ ही यादवों की पवित्र नगरी द्वारिका में पहुँचे। राज-भवन में पहुँचने पर श्रीकृष्ण को सोते देख दुर्योधन सिरहाने में एक स्वर्ण सिंहासन पर बैठ गये और अर्जुन पैताने बैठकर भगवान की प्रतीक्षा करने लगे।

जागते ही श्रीकृष्ण की दृष्टि अर्जुन पर पड़ी। उन्होंने कुशल पूछते हुये आने का कारण पूछा—अर्जुन ने रण-निमंत्रण देते हुये कहा—भगवन्! आप हमारे पक्ष से रहिये। इसी समय दुर्योधन भी बोल उठा—श्रीकृष्ण! मैं भी आया हूँ। इस भावी युद्ध में तुम्हें भी हमारा पक्ष लेना पड़ेगा। हम पहले आये हैं इस लिये हमारी प्रार्थना स्वीकार करो।

कृष्ण ने कहा—हे कौरवेश! निःसन्देह तुम पहले आये हो, परन्तु हमने अर्जुन को पहले देखा है। सम्बन्धी होने के कारण हम दोनों पक्षों की सहायता करेंगे। देखो हमारे पास एक अर्बुद नारायणी सेना है यह एक ओर रहेगी और दूसरी ओर हम निःशस्त्र रहेंगे। अर्जुन को हमने

पहले देखा है और दोनों में छोटे भी हैं अतः पहले ये माँगले। क्या चाहते हैं?

अर्जुन ने केवल श्रीकृष्ण को माँगा। यह देख दुर्योधन मन ही मन अत्यन्त प्रसन्न हुआ। एक अर्बुद नारायणी सेना पा गद्गद् हो उठा और तत्काल बलराम जी के पास आया। दुर्योधन का रण-निमन्त्रण अस्वीकार करते हुये बलदेव जी ने कहा—

दुर्योधन! तुम और पाण्डव हमारे सगे सम्बन्धी हो। हम इस युद्ध में शामिल नहीं होंगे। श्रीकृष्ण को हमने कई बार इसके लिये धिक्कारा है। फिर भी वे हमारी बात नहीं माने। अतः मैं उनके विरोधी दल की सहायता नहीं कर सकता। तुम जाओ, क्षत्रिय धर्म के अनुसार युद्ध करो।

बलदेव से विदा हो कृतवर्मा नरेश के पास पहुँच कर दुर्योधन ने एक अक्षौहिणी सेना प्राप्त की। इस प्रकार महाबली दुर्योधन अनेक राजाओं से मिलते महाबलवान सेना समूह का संग्रह करते कुछ ही दिनों में हस्तिनापुर पहुँचा।

इधर भगवान ने अर्जुन से पूछा—हे कौंतेय! तुमने क्या समझ कर मुझे अकेले अपने पक्ष में सम्मिलित किया। मैंने तो युद्ध न करने की प्रतिज्ञा की है।

अर्जुन ने कहा—नाथ! हम सेना और शूरवीरों के भूखे नहीं हैं। हम अकेले कौरवों का नाश कर सकते हैं। भगवन्! आप के रहने से ही हमारी विजय हो जायगी। आपकी नीति-निपुणता और बुद्धिमानी के सन्मुख एक अर्बुद नारायणी सेना

क्या है? हे वासुदेव! तुम अद्वितीय नीतिज्ञ, असाधारण, बुद्धिमान तथा हमारे बाल सखा हो। हे कृष्ण! मेरे मनोरथों को पूर्ण करो। इस भावी संग्राम में सारथि बनकर हमारी सहायता करो।

अर्जुन की बातें सुन श्रीकृष्ण अत्यन्त प्रसन्न हुये। दोनों मित्र यथा समय द्वारिका से चलकर महाराज युधिष्ठिर के पास पहुँचे। निमन्त्रित राजा लोग भी आने लगे।

पांडवों का दूत मद्र देश में पहुँच कर माद्री के भाई महाबली शल्य को कौरव-पांडवों का समाचार कहा—अपने भान्जों की विपत्ति का हाल सुन उन्हें बड़ा दुःख हुआ। वे शीघ्र ही एक अक्षौहिणी बलवान सेना तैयार कर उनकी रक्षा के लिये चल पड़े। दुर्योधन को यह समाचार मिल गया। महाबली शल्य को प्रसन्न करने के लिये उसने उनके रहने के स्थान-स्थान पर घर बनवा दिया और भाँति-भाँति के खाने-पीने आराम करने और मन बहलाने की चीजें रख दीं। महाबली शल्य समझते थे कि यह सब युधिष्ठिर ने किया है। इस प्रकार विश्राम करते हुये धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगे।

मार्ग में चलते हुए एक दिन वे उत्तम स्थान में ठहरे। वहाँ की रमणीकता ने महाबली शल्य को मोहित कर लिया। वे अत्यन्त प्रसन्न हो बोले—युधिष्ठिर को समाचार दो कि जिस कारीगर ने इस स्थान की रचना की है वह हमारे सामने आवे हम उसे इनाम देंगे।

नौकरों से महाबली शल्य की बातें सुन दुर्योधन अत्यन्त प्रसन्न हो उनके पास गया और सच्चा-सच्चा हाल कह सुनाया। महाबली शल्य दुर्योधन की सेवा से अत्यन्त प्रसन्न हो बोले—जो वर चाहो माँग लो।

मामा को इस प्रकार सन्तुष्ट देख दुर्योधनने कहा-मामा! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो हमारे सेना-पति बनें। शल्य ने तथास्तु! कहकर कहा—

दुर्योधन! अभी तुम अपने घर जाओ। हम युधिष्ठिर से मिलकर तुम्हारे पास आवेंगे।

महाबली शल्य सीधे विराट नगरी पहुँच कर युधिष्ठिर के पास गये। मामा को देख युधिष्ठिरादि पांडवों के हर्ष का ठिकाना न रहा। सभी पैरों पर गिर पड़े। पश्चात् सबों ने उनकी यथा-विधि पूजा की। शल्य ने पूजा ग्रहण कर सबों को हृदय से लगा लिया। पश्चात् दुर्योधन की सेवा और वर प्रतिज्ञा का हाल कह सुनाया।

शल्य ने कहा—युधिष्ठिर! सत्याचरण ही जीवन का ध्येय है। सत्य से ही धर्म-रक्षा तथा सत्कर्म सिद्धि होती है। ऋषियों का कथन है—सत्य से ही पृथ्वी स्थिर है तथा सूर्य्य संसार को प्रकाशित कर रहा है। निःसन्देह सत्य ही के बल से यह सृष्टि ठहरी है।

प्यारे धर्म! तुम सत्याचरण करो। दुराचारी कौरवों के अधर्माचरण से कभी विचलित न होओ। यदि तुम सत्य पर इसी भाँति दृढ़ रहोगे तो निश्चय ही तुम्हारी विजय

होगी। हे कौन्तेय! सत्य बल के सन्मुख विश्व की सम्पूर्ण शक्तियाँ काम नहीं दे सकतीं।

सत्य से ही नीच ऊँचे होते हैं और सत्य के त्याग से ही ऊँचे नीचे आते हैं।

हे कुन्ती नन्दन! क्या तुमने इन्द्र की कथा नहीं सुनी है। सत्य के परित्याग से उस देवताओं के राजा इन्द्र को भी पद-दलित होना पड़ा। त्रिशिरा और वृत्रासुर वध से इन्द्रासन छोड़कर निर्जनस्थल में वास करना पड़ा। एक नहीं अनेकों वर्ष तक जल के भीतर छिपकर रहना पड़ा। जब देवेन्द्र का इतना पतन हुआ, तब साधारण प्राणियों का क्या कहना? अतः सत्य को धारण करते हुये कार्य करो।

हे युधिष्ठिर! अन्त में सत्य की ही जय होती है। हम तुम्हारे आचरण से सन्तुष्ट हैं। एक न एक दिन तुम्हारी विजय होगी। तुम निर्भय और निश्चिन्त रहो।

मामा की बातें सुन युधिष्ठिर बोले—मामा! दुर्योधन ने छल करके हम लोगों को आपकी सहायता से वंचित किया है। आप को हमारी सहायता करनी चाहिये। मामा! इस युद्ध में कर्ण कौरवों की ओर से सेना-पति बनाये जायेंगे। ऐसी स्थिति में आप उनके सारथि बनकर युद्ध में विघ्न डाल कर अर्जुन की रक्षा कीजियेगा।

शल्य ने कहा—प्यारे युधिष्ठिर हम तुम्हारी बात मानते हैं, तुम निर्भय रहो। कर्णार्जुन संग्राम के समय हम कर्ण के सारथि बनकर उसका तेज नष्ट करने के लिये भाँति-भाँति

के प्रयत्न करेंगे। उसी दुष्टने भरी सभा में द्रौपदी का अपमान किया है। इस प्रकार युधिष्ठिर को समझा-बुझाकर दुर्योधन के पास लौट गये।

इसके अनन्तर अनेक देशों के राजा अपनी-अपनी सेनायें ले लेकर धर्मराज की सहायता के लिये आने लगे। चेदि-राज, धृष्टकेतु, कृष्ण, वीर सात्यकि तथा विराट और द्रुपदके मित्र भी अपनी २ सेना सजा कर आ पहुँचे। इस प्रकार धीरे-धीरे सात अक्षौहिणी सेना एकत्र हो गई। सभी आगे बढ़-कर कौरवों की सीमा पर विराट के उपलब्ध नगर में डेरे डाल समय की प्रतीक्षा करने लगे—

दुर्योधन के पक्ष में भी वहुत राजे आये। शल्य, भगदत्त, भूरिश्रवा, भोज-राज, कृतवर्मा, जयद्रथ अपनी-अपनी चतु-रङ्गिणी सेना ले लेकर आ पहुँचे। इस प्रकार कौरवों की ओर ११ अक्षौहिणी सेना एकत्र हुई।

पाण्डवों का सन्धि-सन्देश।

ओह! विद्वेष की अग्नि भभक उठी—

सर्वस्व-नाशकारी भयंकर युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं। लोग रातदिन सेना और धन के उद्योग में लीन रहने लगे इसी समय महाराज द्रुपद के पुरोहित पाण्डवों का सन्धि सन्देश लेकर हस्तिनापुर पहुँचे। राजभवन में जाकर उन्होंने कहा—

हे सभासदो! आप लोग धर्म जानने वाले योग्य और चतुर हैं। इस समय मैं इसी लिये आया हूँ, आप लोग जानते हैं कि धृतराष्ट्र और पाण्डु विचित्रवीर्य के पुत्र हैं। ऐसी स्थिति में क्या कारण है कि धृतराष्ट्र पुत्र ही राज्य के उत्तराधिकारी रहें? आप लोग यह भी जानते होंगे कि कौरवों ने पाण्डवों पर कितना अत्याचार किया है। इस पर भी जब सफल नहीं हुये तो अन्त में शकुनि के द्वारा उनका राजपाट छीन लिये। हाय! इन लोगों ने अमानुषिक कर्म किये, विचारी द्रौपदी का भरी सभा में अपमान किये। इन्हीं लोगों की प्रेरणा से धर्मात्मा पाण्डवों को बारह वर्ष वनवास सहन करना पड़ा। इतना दुःख सहते हुये भी महात्मा पाण्डव सन्धि करना चाहते हैं अतः आप लोग दुर्योधन को अनुकूल कर भविष्य में होने वाले वंश नाशकारी महा समर को रोकिये। युद्धिष्ठिर के पक्ष से युद्ध करने वाले

कितने ही राजे आ पहुँचे हैं। इधर दुर्योधन भी उनसे युद्ध के लिये तत्पर है। सज्जनों! आपलोग न्याय का अनुकरण कर पाण्डवों को उनका राज्य दिला दीजिये। देखिये— महानीतिज्ञ प्रतापी कृष्ण उन्हीं के पक्ष में हैं आप लोग उभय पक्ष के कल्याण के लिये सन्धि की योजना कीजिये।

ब्राह्मण की बातें सुन बुद्धिमान भीष्म बोले—हे विप्रवर! विशाल सेना एकत्र करके भी पाण्डव-लोग धर्म पर डटे हैं यह सुन कर हम अत्यन्त प्रसन्न हुये। आपकी बातें सत्य हैं। वे लोग वनवास के बाद राज्य के अधिकारी हुये हैं। महात्मन! निःसन्देह पाण्डवों का अधिकार हैं। पाण्डवों में सभी योग्य हैं, युधिष्ठिर धर्ममूर्ति ही हैं, भीम नकुल और सहदेव सब प्रकार से योग्य हैं तथा अर्जुन के समान तो संसार में कोई वीर है ही नहीं।

अर्जुन की प्रशंसा सुन कर्ण जल उठा। महामति भीष्म की बातें अभी समाप्त भी नहीं होने पाई कि एका—एक दुर्योधन की ओर देख कर पुरोहित से क्रोध पूर्वक कहने लगा।

हे ब्राह्मण! सभी लोग जानते हैं कि पाण्डवों ने जुये में अपना सर्वस्व खोया है। वे जुये के कारण ही वनवासी बने हैं, तथा अज्ञातवास पूर्ण होने के पहले ही प्रकट भी हो गये हैं। जान पड़ता है किमत्स्यों और पाँचालों को पाकर आसमान पर चढ़ गये हैं। हम लोग उनकी बातों से नहीं डरते। याद रहे! हम लोगों को भयभीत कर कोई एक पग भी भूमि

नहीं ले सकता। यदि पाण्डव धर्मानुसार राज्य लेना चाहते हैं तो प्रतिज्ञा के अनुकूल पुनः बारह वर्ष वनवास करें। प्रतिज्ञा पूर्ण करने पर महाराज दुर्योधन अवश्य ही उन्हें आश्रय देंगे। इसके अतिरिक्त यदि पाण्डव अपनी प्रतिज्ञा को छोड़ कर लड़ना चाहेंगे तो भविष्य में पछतायेंगा।

भीष्म ने कहा—कर्ण। तुम क्या कह रहे हो? तुम्हें अपनी वीरता का अभिमान है, परन्तु अधिक नहीं अभी-अभी विराट नगर में तुम छः महारथियों को चतुरंगिनी सेना सहित अकेले अर्जुन ने हराया है। उस पर भी महाबली ने तुम्हें एक बार नहीं दो-दो बार युद्ध भूमि से भगा दिया है। शर्म करो! तनिक लज्जित होओ! शीघ्र उन महाबली धर्मात्माओं से मेल करलो अन्यथा, यह सुन्दर राज मुकुट पृथ्वी पर लोटता हुआ दृष्टिगोचर होगा!

भीष्म को इस प्रकार उग्र होते देख धृतराष्ट्र ने उन्हें प्रसन्न करने के लिये कर्ण को डाँट कर कहा—

हे कर्ण! महामति भीष्म की सम्मति सबों के लिये लाभकारी है। इसमें कौरवों और पाण्डवों दोनों की भलाई है। मुझे निश्चय हो गया कि भावी युद्ध से भयंकर सत्यानाश होगा। वंशविध्वंस हुये बिना न रहेगा। मैं शीघ्रही सन्धि स्थापन के लिये संजय को पाण्डवों के पास भेजूँगा। राजा धृतराष्ट्र ने उसी समय द्रुपद पुरोहित को विदा किया और सन्धि सन्देश लेकर पाण्डवों के पास जाने के लिये

संजय को बुलाया। संजय के आ जाने पर धृतराष्ट्र ने उसे निकट बैठाकर कहा—

हे संजय! तुम शीघ्र उपलव्ध नगर जाओ। दोनों ओर की चतुरंगिणी सेना एकत्र देखकर हम बहुत भयभीत हो रहे हैं। पाण्डव लोग छल कपट नहीं जानते। वे सत्यवादी, दृढ़-प्रतिज्ञ तथा धर्म परायण हैं। वे प्राण से भी बढ़कर धर्म का पालन करते हैं। यहाँ कर्ण, शकुनि और दुर्योधन के अतिरिक्त और सभी उनसे प्रसन्न हैं। तुम उन्हें हमारी ओर से आशीर्वाद देकर कहना कि हम लोग संधि करना चाहते हैं! इस युद्ध में भयंकर क्षिति होगी। निःसन्देह यह पापी पुत्र कुरुकुल की संगृहीत शक्तियों को छिन्न-भिन्न कर देगा।

इस प्रकार महाराज धृतराष्ट्र से आज्ञा पा महाबुद्धिमान संजय एक शीघ्रगामी रथ पर बैठकर उपलव्ध नगर में आया। यथा समय महात्मा युधिष्ठिर के पास पहुँचा तथा उन्हें प्रणाम कर बोला—

हे धर्मराज! हम आपको कई वर्ष बाद कुशलपूर्वक देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुये। महाराज धृतराष्ट्र ने आपका कुशल पूछा है। इस प्रकार कुशल समाचार के पश्चात् संजय ने धृतराष्ट्र का समाचार कहा।

हे धर्मराज! आपकी प्रकृति निरन्तर धर्म की ओर रहती है। आप सुखों से बढ़कर धर्म को समझते हैं। दूसरे आप दयालु और क्षमाशील हैं। आप बार-बार दुराचारी

कौरवों को क्षमा किये हैं अतः इस बार भी यही ध्यान में रखकर कार्य कीजिये।

हे युधिष्ठिर! इस युद्ध से सर्वनाश हो जायगा। लाखों मनुष्यों की आहुति हो जायगी। सारी पृथ्वी के राजे दोनों पक्ष में हैं। इससे केवल कुरुकुल का ही नहीं वरन् सम्पूर्ण संसार की शक्तियों का नाश होगा। महात्मन्! इससे भारत की नींव हिल उठेगी। निःसन्देह इस भावी संग्राम से भयंकर पतन होगा। अतः कोई युक्ति करके परस्पर संधि कर लीजिये।

युधिष्ठिर ने कहा—हे संजय! हमारी ओर से युद्ध का विचार नहीं है। क्या किसी कारण से सूचित होता है कि हम युद्ध करना चाहते हैं? फिर तुम युद्ध के भय से इतना डर क्यों रहे हो? सुनो—यदि सरलतापूर्वक कार्य निकल जाय तो युद्ध की क्या आवश्यकता है? संजय! वासनायें वासनाओं के योग से और बढ़ती हैं। देखो—इतना ऐश्वर्यवान होनेपर भी दुर्योधन की वासनायें बढ़ती ही जाती हैं। अनन्त वासनाओं के कारण ही दुर्योधन की बुद्धि भ्रष्ट हुई है।

लोभ ने उन्हें ज्ञानहीन बना दिया है। यही कारण है कि शुभाशुभ का ज्ञान उनके हृदय से दूर हो गया है।

इसी ज्ञान हीनता से उनके हृदयमें यह बात जम गयी है कि अर्जुन कर्णसे हार जायँगे। यदि उनकी बुद्धि स्थिर रहती तो वे ऐसा कभी नहीं सोचते और न हमको कपट के द्वारा

विपत्ति में ही डालते। उन्होंने कितना बड़ा अत्याचार किया, परन्तु हमने क्षमा ही किया। अब भी हम भूले ही बैठे हैं, हम तो उनके अपराधों को क्षमा करने के लिये प्रस्तुत हैं। हमारा राज्य लौटा दें हम सन्धि के लिये तैयार हैं।

धर्मराज की धार्मिक बातें सुन संजय ने कहा—महाराज! आप के शब्द अक्षरक्षः सत्य हैं। यों तो दुर्योधन बिना युद्ध के राज्य न छोड़ेगा। आप धर्म के रहस्य को जानते हैं मैं हैं बुरा होता है फिर क्यों युद्ध के लिये तत्पर हुये हैं? यदि युद्ध ही अभीष्ट था तो क्यों वनवास के दुःखों को सहे? उस समय भी आपके सभी सहायक थे। आप स्वयं बुद्धिमान और विचारवान होकर क्यों इस नाशकारी चक्र में फँसने के लिये तैयार हैं?

युधिष्ठिर ने कहा—संजय तुम ठीक कहते हो-धर्म ही श्रेष्ठ हैं। मुझे क्षात्र-धर्म के अनुसार लड़ना पड़ता है, प्रजाओं की रक्षा के लिये युद्ध करना क्षत्रियों का प्रधान कर्तव्य है। इस विषय में धर्म की गति विधि ज्ञान कर आप मुझे दोषी बनाइयेगा। एक तरफ तो धर्म रक्षा है दूसरी ओर युद्ध निवारण है। इन दोनों में कौन उचित है? भगवान कृष्णजी के कथनानुसार हम कार्य करेंगे। हम अधर्म पूर्वक राज्य करना नहीं चाहते।

श्री कृष्ण बोले—संजय!

कौरवों की सभा में जहाँ द्रौपदी का महा अपमान हो रहा था, जिस समय उस अबला ने बार-बार सहायता के लिये

प्रार्थना की थी। उस समय धर्म कहाँ गया था? संजय! जब दुःशासन भरी सभा में द्रौपदी की साड़ी खींच रहा था तब तुमने धर्म का उपदेश क्यों नहीं दिया था? पांडवों के नाश के लिये जब लाक्षागृह निर्माण किया गया था तब यह तुम्हारा धर्म कहाँ था? इसके पूर्व? जब दुर्योधन ने भीम को जहर खिलाकर गंगा के गर्भ में डाल दिया था तब यह धर्म किधर सोता था?

कुछ भी हो—हम यहाँ पर उसकी आलोचना नहीं करते, हम तो जैसा पांडवों का हित करते हैं वैसे ही कौरवों को भी करते हैं—मेरी आन्तरिक इच्छा है कि युद्ध न हो। किसी प्रकार संधि हो जाय। संधि होने से ही दोनों पक्षों का हित है। तथापि हम सर्वस्व त्याग कर धर्म पालन के लिये युधिष्ठिर को बाध्य नहीं करेंगे। संसार में सानन्द-जीवन व्यतीत करने के लिये कौरवों का नाश करना ही पड़ेगा। उन्हें बिना मारे काम चलता नहीं दीखता। यदि बिना संहार हुये कोई मार्ग निकल आवे तो इससे बढ़ कर और क्या हो सकता है? परन्तु यदि कोई मार्ग निकल सकता है वह भी धृतराष्ट्र या उनके पुत्रों के ही द्वारा! पांडव लोग तो नम्रता का व्यवहार कर ही रहे हैं। यदि अवसर आ गया तो कठोरता का व्यवहार करने के लिये बाध्य होंगे। संजय! हमारी बातें कौरवों से जाकर कहना।

संजय! कौरवों के दूत होते हुये भी तुम हमारे शुभेच्छु हो—कृष्ण की बातें तथा जो कुछ कहा है कौरवों से कहियेगा।

इसके अतिरिक्त हमारा संदेश दुर्योधन को दीजियेगा—

भाई दुर्योधन! लोभ ही पाप का कारण है, इसी के द्वारा प्राणी शोक और संतापों मे लिप्त होता रहता है। लोभ के ही द्वारा काम और क्रोध की उत्पत्ति होती है। काम और क्रोध यही दोनों शरीर के प्रधान शत्रु हैं। हे महावीर! तुम्हारे लोभ की प्रवृत्ति पूर्ण नहीं होगी। तुम अनाधिकार लोभकर कभी सफल नहीं हो सकते। अतः अपनी दुराशाओं को त्याग कर स्वार्थत्याग और तपका अनुष्ठान करना सीखो। निःसन्देह स्वार्थत्याग से ही सुख-सौख्य की सामग्रियाँ एकत्र होती हैं। अतः इन्द्रप्रस्थ हमारे आधीन कर दो अथवा युद्ध के लिये तैयार रहो।

इस प्रकार कहते हुए धर्मराज ने कहा—संजय! अन्त में तुम इतना तक कह देना कि पांडव लोग पाँच गाँव लेकर ही संतोष करने को तैयार हैं। कुशस्थली, वृकस्थली, पांकदी, वारणावत तथा पाँचवा जो उनकी इच्छा हो गाँव मिल जाने से हम सन्धि कर लेंगे।

कौरव दूत संजय धर्मराज का संदेश लेकर कौरव सभा में पहुँचा। इधर दुर्योधन ११ अक्षौहिणी सेना के गर्व में फूल उठा था। उस नीचात्मा ने अभिमान में उन्मत्त होकर कहा—हम लोग पाण्डवों के इस धमकी में नहीं आ सकते। आधा राज्य और पाँच गाँव तो दूर रहा हम सूई की नोक भर भी पृथ्वी बिना युद्ध के नहीं देंगे।

भगवान श्रीकृष्ण और पाण्डव।

—:o:—

हा! काल ने कौरवों की बुद्धि हर ली। वे अहङ्कार में उन्मत्त हो शीघ्र ही काल के मुँह में जाने के लिये तैयार हो गये। हा! दुराचारियों ने नाश का बीज बो दिया। भीष्म द्रोणादि गुरुजनों के रहते हुये भी दुष्ट दुर्योधन अपने असत्य सिद्धान्त से नहीं हटा। वह ज्ञानान्ध युद्ध के भयङ्कर परिणाम को नहीं देख युद्ध के लिये तत्पर हो गया।

सन्धि सन्देश को इस प्रकार विफल होते देख पांडव दुखी हो कृष्ण से बोले—भगवन्! अब क्या करना होगा? उचित सम्मति दीजिये। इस आपत्ति काल से हम लोगों की रक्षा कीजिये।

श्रीकृष्ण जी ने कहा—महाराज! हम आप की आज्ञा पालन करने के लिये तैयार हैं।

युधिष्ठिर गम्भीरता पूर्वक बोले—जनार्दन! जान पड़ता है कि धृतराष्ट्र बिना राज्य दिये ही शांति स्थापन करना चाहते हैं। हम लोगों को विश्वास था कि वनवास के बाद हमारा राज्य लौटा दिया जायगा। परन्तु यहाँ तो राज्य की कौन कहे पाँच गाँव भी मिलना कठिन है। हाय! उन लोभियों ने यहाँ तक सिद्धान्त निश्चय कर लिया है कि पांडवों को राज्य दिया ही न जाय।

महात्मा युधिष्ठिर की बातें सुन श्रीकृष्ण जी ने कहा—

धर्मराज! युद्ध होना निश्चित जान पड़ता है। बिना युद्ध के पापी दुर्योधन सूई की नोक भर भी पृथ्वी न देगा। मैं देखता हूँ कि युद्ध के पहले मुझे एक बार हस्तिना नगरी जाना पड़ेगा। सम्भव है दुराचारियों का दल ठीक राह पर आ जाय। महात्मन्! मैं यथेष्ट उद्योग करूँगा। यदि किसी प्रकार उन्हें योग्य मार्ग पर ला सका तो निःसन्देह भविष्य में होने वाले भयंकर वंश नाश से कुरू कुल को बचा लूँगा।

युधिष्ठिर ने कहा—भगवन! आप कौरव के पास मत जाइये। लोभ के कारण उनकी बुद्धि मारी गई है। महात्मन! मुझे विश्वास है कि वह आपकी बात नहीं मानेगें। उनके साथी भी उनकी हाँ में हाँ मिलावेंगे। हे जनार्दन! उन अत्यारियों के यहाँ आपको भेजते मुझे भय मालूम होता है। यदि किसी प्रकार का अपमान हुआ तो हम आजन्म दुःख में दुखी रहा करेंगे।

कृष्ण ने कहा—हे धर्मराज! ठीक है! दुर्योधन महा पापी है। उसकी दुष्टता हमसे छिपी नहीं हैं। तथापि वहाँ जाना किसी न किसी रूप में अच्छा ही होगा। यदि कौरव सुधर गये तो ठीक है यदि ऐसा नहीं हुआ तो भी हमें कोई दोषी नहीं बनायेगा। इसके अतिरिक्त यदि कौरव अत्याचार करने के लिये तैयार होंगे तो उन्हें दूर करने की शक्ति हमारे पास है।

श्रीकृष्ण को इस प्रकार कहते सुन भीम ने कहा—हे

कृष्ण ! दुर्योधन क्रोधी और अदूरदर्शी है। वह ऐश्वर्य्य के मद में मत्त हो रहा है। वह कुलांगार भरत वंश के नाश के लिये ही जन्म धारण किया है। भगवन् ! मैं देखता हूँ कि इस महा समर से वंश नाश हुये विना नहीं रहेगा। हे केशव ! मैं चाहता हूँ कि दुर्योधन को किसी प्रकार मार्ग पर लाकर कुल नाश निवारण किया जाय।

उग्र स्वभाव वाले भीमसेन के मुँह से ऐसी वातें सुनकर कृष्ण को बड़ा आश्चर्य्य हुआ। उन्होंने तत्काल ही भीमसेन को वनवास की दुख पूर्ण कथायें, अपमान के समय की हुई प्रतिज्ञायें, द्रौपदी की दुर्दशा तथा कौरवों के असंख्य अत्याचार और उपद्रवों का वर्णन ओजस्विनो भाषा में कह सुनाये। कृष्ण के मुख से वीरोचित वातें सुनते ही भीम की नसों में उत्तेजना भर गई। वे एका-एक गरज उठे और वोले- हे केशव ! मैं पवित्र कुरुवंश को प्रलय के अर्णव में डूवने से वचाने के लिये नम्र हुआ था। स्वजनों का निरर्थक संहार रोकने की प्रवल इच्छा से हमने ऐसा किया था।

कृष्ण ने कहा—भीम ! सम्भव है मेरे प्रयत्न से सन्धि न हुई तव तुम्हारा ही आश्रम रहेगा। मेरे उत्तेजना करने का कारण यही है।

अर्जुन ने कहा—भगवन् ! देखिये क्या होता है? सम्भव है आपकी चेष्टा सफल हो जाय। आप उभय पक्ष के लिये समान हैं आपकी वात लोग अवश्य मानेंगे।

श्रीकृष्ण ने कहा—अर्जुन ! ठीक कहते हो, निश्चय

ही मेरे लिये दोनों पक्ष समान हैं। मैं दोनों पक्षों के हित का पूरा-पूरा ध्यान रक्खूँगा।

नकुल ने कहा—महाराज ! यदि साधारण रीति से काम नहीं निकल सके तो थोड़ा भय प्रदर्शन भी करेंगे। मुझे ीष्म द्रोणादि—आपके पक्ष में हो जायेंगे। उनकी ने आप का कार्य बहुत कुछ हो जायगा।

ने वीरता पूर्वक दिशाओं को अपने गंभीर नाद हुये कहा—भगवन् ! हमारे सभी भाई शान्ति के सभी शान्ति-शान्ति चिल्ला रहे हैं—परन्तु मैं इस इच्छुक नहीं हूँ। केशव ! द्रौपदी का भीषण मैं जीवन भर भूल सकता हूँ ? बिना दुःशासन के रक्तपात हुये वह शोक नहीं मिट सकता।

हदेव की वीरोचित बातों को सुन महावीर हा—ठीक है। अक्षरशः सत्य है। ओह ! कौरवों ने जितना ...ाचार किया है, हाय ! पाण्डवों का अपमान कर द्रौपदी को दुःख दिया है, क्या उसका बदला हो सम्भव है ? उनका समूल नाश हुये बिना प्रतिशोध नहीं हो सकी है ओह ! उन अपमानों, अत्याचारों को याद करते ही रक्तांडवों उठता है तथा भुजायें फड़कने लगती हैं। यादवेश ! वहेगी। मनस्ताप और प्रतिशोध उनके सर्वनाश हुये बिना शा नहीं सकता है ? कहिये— शोक

श्रीकृष्ण और पतिव्रता कृष्णा ।

महावीर सात्यकि की ओजस्विी वक्तृता ने योद्धाओं में कोलाहल मचा दिया । देखते ही देखते साक्षात् वीर रस उपस्थित हो गया । दिशायें उनकी प्रशंसा और शावासी से गूँज उठीं । कृष्णा जो अभी पतियों के मुँह से नम्रता का उपदेश सुनकर मौन हो रही थी—मन ही मन जल रही थी अथवा जीती ही मुर्दा सी वनी वैठी थी—सात्यकि और सहदेव की वातें सुन वोल उठी—

हे अच्युत ! दुराचारी कौरवों ने हम पर कितना अत्याचार किया है, इसके कहने की आवश्यकता नहीं । महात्मा धर्मराज केवल पाँच गाँव लेकर ही सन्तुष्ट होने के लिये तैयार हैं—परन्तु वह भी मिलता नहीं दिखाई देता । जनार्दन ! तुम कौरवों की सभा में जा रहे हो । विना सभी रोक- पाये सन्धि का प्रस्ताव स्वीकार न करना ।

कृ- ! हम पर कितना अत्याचार किया गया फिर भी हुई त- ति मौन धारण किये वैठे रहे । उन्होंने सारा अपकारण ह लिया । इस समय जव प्रतिज्ञा पूर्ण कर चुके हैं अपने ...क कर चुके हैं जव वैरियों के नाश का समय है तो भी हैं आप धारण किये हैं । पांडवों की इन वातों से हमारा अपमान ...ता जाता है । हे कृष्ण ! तुम्हारे सिवा और हमारा ...क नहीं है । हम तुम्हारी शरण में हैं । तुम्हीं दुरा-

चारी कौरवों को दण्ड दो। यदि पांडव कौरवों से युद्ध न करना चाहें तो न करें। किन्तु हमारे पिता और बलवान भाई तो अवश्य हमारे अपमान का बदला लेंगे। अभिमन्यु और मेरे पाँचो पुत्र अवश्य ही दुराचारियों का नाश करेंगे।

इस प्रकार कहते-कहते कृष्णा विकल हो उठी और रोते-रोते अपने खुले हुये केशों को हाथ में लेकर बोली—

हे केशव! जब सन्धि-प्रस्ताव चले तब दुःशासन द्वारा अपवित्र हुये इन अलकों को न भूल जाना। इसका ध्यान रखना।

कृष्ण ने कृष्णा को धीरज देते हुये कहा—द्रौपदी! घबड़ाओ नहीं। धीरज धारण करो। जिस प्रकार इस समय तुम रो रही हो इसी प्रकार कुछ ही दिनों के बाद कौरव रमणियों को रोते हुये देखोगी। कृष्णे! शांत होओ। तुम्हारे पति शीघ्रही शत्रुओं को मार कर अपना राज्य प्राप्त करेंगे।

कल्याणी! तुम मलिन न हो। देखो! कुछ ही दिनों में सारे दुराचारी कौरव अपने कर्मों का दण्ड पाते हैं। अब उनके पाप का घड़ा पूरा हो गया है। ईश्वर बड़ा न्यायी है न्याय ही उसकी प्रत्यक्ष प्रतिभा है। तुम अति शीघ्र पांडवों की क्रोधाग्नि में उन दुराचारियों को आहुति होते देखोगी। सुन्दरी! तुम्हारे अपमान करने वाले दुष्ट किसी प्रकार नहीं बच सकते। कृष्णे! मैं सत्य कहता हूँ तुम चिन्ता और शोक को दूर करो।

भगवान श्रीकृष्ण का दौत्य।
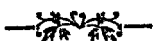
भगवान श्रीकृष्ण सन्धि दूत वन कर सात्यकि के साथ हस्तिना नगरी पहुँचे। प्रजाओं तथा साधुजनों ने उनका अपूर्व स्वागत किया। दुर्योधन ने भी यह समझा कि अधिक आदर सत्कार करने से श्रीकृष्ण हमारे पक्ष में हो जायेंगे। अतः खूब आदर सत्कार किया। नगर में पधारते ही श्रीकृष्णजी सीधे विदुरजी के यहाँ गये और पाण्डवों की माता कुन्ती से मिले। उस रात्रि में महात्मा विदुर के यहाँ निवास कर दूसरे दिन सात्यकि सहित कौरवों के दर्बार में गये।

राज भवन में सभी आ वैठे। भीष्म, द्रोण, कृप, धृतराष्ट्र, विदुर, और दुर्योधनादि—मंत्रियों और सभासदों के साथ आ विराजे। यथा समय भगवान श्रीकृष्ण भी पहुँचे।

श्रीकृष्ण ने दुर्योधनादि दुराचारियों को समझाना आरम्भ किया। उन्होंने अनेक प्रकार की उन्हें शिक्षायें दी। कुल नाश के भयंकर—परिणाम को दिखलाया—परन्तु काल-ग्रास दुर्योधन की वुद्धि ठिकाने नहीं हुई। उसने अपने नीच साथियों से परापश किया कि श्रीकृष्ण को पकड़ कर कैद कर लिया जाय। भगवान श्रीकृष्ण यह जान कर कुछ कठोरता पूर्वक वोले—

कौरवों! मैं दोनों दलों की भलाई के लिये यहाँ आया हूँ, क्षत्रिय वंश को संहार होने से वचाने के लिये मुझे यहाँ

आना पड़ा है। देखो! अपने बचन के धनी धर्मात्मा पाण्डव तेरह वर्ष वनवास पूर्ण कर आये हैं—कौरवों को उनका राज्य लौटा देना चाहिये। यदि न्याय पूर्वक कार्य्य किया जाय तो जितने भी अत्याचार उन धर्मात्माओं पर किये गये हैं वे क्षमा कर देने के लिये तैयार हैं। यदि न्याय न किया गया तो वे विवश होकर युद्ध करेंगे। ऐसी स्थिति में आप लोग जिसे उचित समझें करें।

श्रीकृष्णजी की बातें सुन सभी मौन हो रहे। भीष्म, द्रोण, कृप, तथा विदुरादि अत्यन्त प्रसन्न हुये। दुर्योधन को यह बात बड़ी बुरी लगी। श्रीकृष्ण ने उसे बार-बार समझाया, परन्तु वह दुर्म्मति टस से मस नहीं हुआ।

इस प्रकार अपना उपदेश व्यर्थ होते देख श्रीकृष्ण ने रुष्ट होकर कहा—दुर्योधन! निश्चय ही तुम्हारी बुद्धि मारी गई है। तुम्हें शुभाशुभ का ज्ञान नहीं है, हमने इतना समझाया परन्तु शोक! तुम्हारे ध्यान में नहीं आया। मुझे ज्ञात हो गया तू वंशनाश पर ही तुला हुआ है। निःसन्देह विनाश काल के समय बुद्धि विपरीत हो जाती है। याद रख! अब भी तेरे सुधार का समय है। यदि अब भी नहीं चेतेगा तो पाण्डव तेरी कामना पूर्ण करेंगे।

इसके पश्चात् सबों ने दुर्योधन को बहुत समझाया, गान्धारी स्वयं राज सभा में आकर बहुत समझाई परन्तु इस दुराचारी के शून्य हृदय पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। वह उत्तरोत्तर और उद्दण्ड होता गया।

प्रिय पाठकों ! दुर्योधन कर्ण और शकुनि ने श्रीकृष्णजी को पकड़ कर कैद करने का विचार किया था। इस समय श्रीकृष्णजी की बातें सुन सभी उसे कार्य रूप में लाने के लिये तैयार हुये ।

दुर्योधन की इतनी नीचता देख भीष्म क्षुब्ध हो उठे, उन्होंने अत्यन्त क्रोध करते हुये दुरात्मा दुर्योधन को खूब फटकारा। साथ ही श्रीकृष्ण के बलवीर्य का वर्णन करते हुये कहा—दुर्योधन ! श्रीकृष्णचन्द्र को दूत नहीं समझना, कहीं ऐसा न हो कि सुदर्शन क्षणमात्र में ही कौरवों का संहार करदे। इस प्रकार भीष्मजी ने नीच ऊँच कह कर समझाया परन्तु नीचात्माओं के हृदय में यह बात नहीं धँसी।

भगवान कृष्ण और सात्यकि ने यह भेद जान अत्यन्त क्रोध प्रकट किया। भगवान कृष्ण सभा में खड़े होकर ओजस्विता पूर्ण शब्दों में बोले—दुर्योधन ! क्या कृष्ण को पकड़ना चाहते हो? सावधान ! इतना कहते ही दिशायें प्रतिध्वनित हो उठी। भगवान का दिव्य मुख मण्डल अपूर्व तेज पूर्ण हो गया। ओह ! श्रीकृष्ण का सुदर्शन आकाश में बड़े वेग से घूमने लगा। यह देख कौरव सभा सन्न हो गई। चारो ओर निस्तब्धता छा: गई, सभी मारे डर के थर-थर काँपने लगे। ऐसा प्रतीत होने लगा कि शीघ्र ही कौरवों का नाश हो जायगा।

यह अपूर्व बल और तेज दिखला भगवान श्रीकृष्ण सभा से उठ खड़े हुये—किसी को रोकने का साहस नहीं हुआ।

वे शीघ्र सात्यकि के साथ आकर रथ पर बैठ गये। इसी समय धृतराष्ट्र मंत्रियों और सभासदों से घिरे हुये कृष्ण के पास आकर बोले—भगवन्! मैं उस नीच पुत्र को वार-बार समझाया परन्तु मेरी वात कोई नहीं मानता। मधुसूदन! हाय! मैं लाचार हो गया।

चलते समय श्रीकृष्ण ने एक वार पुनः क्रोध भरी दृष्टि से कौरव सभा की ओर देखकर कहा—धृतराष्ट्र! मैं कुरु कुल को संहार से बचाने के लिये यहाँ तक आया था। परन्तु प्रयास विफल हुआ, अब युद्ध ही एक मार्ग रह गया है, नाश अवश्यम्भावी है।

इसके अनन्तर श्री कृष्ण कुन्ती के पास पहुँचे। श्रीकृष्ण के विफल मनोरथ लौटने का सन्देश सुन कुन्ती ने कहा—

कृष्ण! कौरव चरित्र हीन हैं। वे राज मद में उन्मत्त हो रहे हैं। उन्हें शुभाशुभ का ज्ञान नहीं है। वे लोभ में इतने संलिप्त हैं कि सीधे अपने भाइयों को राज्य नहीं दे सकते। विना युद्ध के सन्धि नहीं हो सकती। अतः वार-वार संधि के लिये उद्योग करना व्यर्थ है।

माधव! अब कर्मक्षेत्र संमुख आया है। वीरता पूर्वक संग्राम क्षेत्र में विजय प्राप्त करने का समय है। क्षत्राणियाँ ऐसे समय के लिये ही पुत्र उत्पन्न करती हैं। हे कृष्ण! विना युद्ध किये काम नहीं चल सकता। तुम हमारे पुत्रों से कह देना कि वे शान्ति की आशा त्याग रणांगन में आवें और शत्रुओं के रक्त से जन्मदा को तृप्त कर अपना

अधिकार प्राप्त करें। विना क्षात्र धर्म का परिचय दिये निस्तार नहीं हो सकता।

इस प्रकार कहते हुये कुन्ती को चिन्तित और अधीर देख श्रीकृष्ण ने कहा—बुआ! आप चिन्ता न करें, पाण्डव क्षात्र-धर्म धारण कर शीघ्र ही कौरवों का नाश करेंगे। इन पापियों के नाश में अब अधिक विलम्ब नहीं है। जो माता पिता और गुरुजनों की आज्ञा नहीं मानता, जे क्षमा और दया को नहीं जानता, जिसे सत्या-सत्य, कर्माकर्म तथा धर्माधर्म का ज्ञान नहीं है, वह पृथ्वी पर मनुष्य रूप रहते हुये साक्षात् पशु है। मेरी वात असत्य नहीं हो सकता, पाप का घड़ा भरने पर ही नाश होता है।

इस प्रकार वातें कर कुन्ती से विदा हो श्रीकृष्ण आगे बढ़े। साथमें उन्होंने कर्ण को रथ पर विठा लिया। कुछ दूर आगे बढ़कर एकान्त पा कृष्ण ने कर्ण से कहा—महाबाहो! तुम अपनी उत्पत्ति का हाल नहीं जानते। हे शस्त्रधर! वास्तव में तुम माता कुन्ती के ज्येष्ठ पुत्र हो। अतः तुम्हें पाण्डवों की सहायता करनी चाहिये। वे तुम्हारे भाई हैं।

कर्ण ने कहा—माधव! तुम्हारे मुँह से यह सुन कर आज वड़ी प्रसन्नता हुई। मैं आपका हृदय से कृतज्ञ हूँ। जनार्दन! मुझे कुन्ती ने जन्मते ही त्याग दिया था। राज-सारथि अधिरथ ने मुझे पाला-पोशा तथा कौरवों ने राजपुत्रों के समान लिखा पढ़ाकर इतना बड़ा किया है। उन्होंने ही मुझे सब प्रकारसे धन-धान्य तथा गौरवशाली वनाया है, फिर

उनका साथ मैं कैसे छोड़ सकता हूँ। और ऐसे समय में जब उन्हें मेरी अत्यधिक आवश्यकता है। भगवन्! मैं यह नहीं कर सकता।

इसके पश्चात् कर्ण ने अत्यन्त नम्रता-पूर्वक गंभीर शब्दों में कहा—माधव! अज्ञानतावश पाण्डवों का तिरस्कार किया है। कौरवों के वैर भाव से प्रेरित होकर निरादर किया है तथा द्रौपदी का अपमान किया है। उसका मुझे अपार दुःख और पश्चात्ताप हो रहा है।

भगवन्! मेरी एकान्त वासना है कि युद्ध भूमि में शरीर त्याग कर गौरव का विस्तार करूँ। मुझे राज्य और धन की अभिलाषा नहीं है।

कर्ण की बातें सुन श्रीकृष्ण ने कहा—महावीर! तुम अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करो। तुम्हारी आशा फलवती होगी। मैं जा रहा हूँ। तुम कौरवों की सभा में यह संदेश सुना देना कि आज से सातवें दिन अर्थात् अमावस्या से युद्ध आरम्भ होगा।

माता कुन्ती और महाबली कर्ण ।

श्रीकृष्ण के जाते ही कुन्ती व्यग्र हो गई। भावी युद्ध की आशंका ने उसे अधीर बना दिया। वह युद्ध के भयंकर परिणामों को सोच मन-ही-मन काँप उठी। कुन्ती बड़े फेर में पड़ी। कर्ण को दुर्योधन के पक्ष में देख उसे बड़ा दुःख हुआ।

कुन्ती ने सोचा, कर्ण दुर्योधन का दाहिना हाथ है, उसीके बल पर दुर्योधन इतरा रहा है। पाण्डवों के समान ही कर्ण हमारा पुत्र है। हाय! उधर कर्ण ने अर्जुन को मारने की प्रतिज्ञा की हैऔर इधर अर्जुन ने कर्ण-वध का संकल्प किया है। तो क्या भाई-भई, एक ही उदर से उत्पन्न सहोदर दूसरे का रक्तपान करेंगे? नहीं, नहीं! ऐसा नहीं हो सकता, मैं यथा शक्ति दोनों भाइयों को नहीं लड़ने दूँगी। मैं आज ही कर्ण को अनुकूल करने की चेष्टा करूँगी। यदि कर्ण माँ की बात मान गया तो और कुछ करना हो नहीं है, कर्ण को पाण्डवों के पक्ष में आते ही दुर्योधन की सभी शेखी भूल जायगी। वह एक दम पंख कटे हुये पक्षी के समान अपाहिज हो जायगा। मुझे विश्वास है कर्ण के न रहने पर वह कभी युद्ध न करेगा।

यह सोचकर माता कुन्ती कर्ण के पास पहुँची।

कर्ण का आसुरमहाव्रत चल रहा था। वह नित्य प्रातःकाल स्नानादि कर्म से निवृत्त हो सूर्य की आराधना किया

करता था, पूजन के पश्चात् उससे कोई भी याचक जो कुछ माँगता था वह सहर्ष दिया करता था। जिस समय कुन्ती कर्ण के पास पहुँची उस समय वह आराधना कर रहा था। वह पूजा-समाप्ति की प्रतीक्षा करते हुये ठहरी रही।

पूजा समाप्त हो जाने पर कर्ण ने कुंती को अपनी प्रतीक्षा में बैठे देख कहा—देवी! मैं अधिरथ का पुत्र कर्ण आपको प्रणाम करता हूँ। कहिये क्या आज्ञा है। दास सेवा के लिये तैयार है।

कर्ण की बातें सुन कुंती ने कहा—बेटा! तुम अधिरथ के पुत्र नहीं, बल्कि पाण्डुनन्दन हो। मैं तुम्हारी माता हूँ। युधिष्ठिरादि पाँचो पाण्डव तुम्हारे भाई हैं। पुत्र! इस समय युद्ध की तैयारी हो रही है, शीघ्र ही कौरवों और पाण्डवों के बीच रणाग्नि भड़क उठेगी। अतः तुम्हें चाहिये कि तुम भाइयों की सहायता करो। पाण्डव तुम्हारे सहोदर भाई हैं।

कुन्ती की बातें सुन कर्ण ने विस्मित हो कहा—देवी! मैं आपका पुत्र हूँ? इसका प्रमाण!

कुन्ती ने कहा—पुत्र! सुनो—मैं बाल्य-काल्य में पिताके मित्र भोजराज कुन्ति के यहाँ रहा करती थी। धीरे-धीरे जब कुछ ही बड़ी हुई तो एक बार दुर्वासा जी आये। हमने उनकी मन लगाकर सेवा की। मेरी सेवा से अत्यन्त सन्तुष्ट हो बोले—पुत्री! मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ इस लिये तुम्हें एक मंत्र

बतलाता हूँ। इसके द्वारा तुम जिस देवता का स्मरण करोगी वह तुम्हारे पास आयेगा और एक पुत्र का वर देगा। इसके पश्चात् दुर्वासा जी चले गये।

पुत्र! मैं उस समय बालिका थी। बाल-स्वभाव की चञ्चलता के कारण मैंने सोचा कि इस मन्त्र की परीक्षा लेनी चाहिये। इससे तत्काल मन्त्र पढ़कर सूर्य्य की ओर देखा। उसी क्षण सूर्यदेव अपना दिव्य रूप धारण कर दिशाओं को आलोकित करते हुये पास आ पहुँचे और बोले—सुन्दरी! मैं सूर्यदेव हूँ। दुर्वासा के मन्त्र-बल से तुम्हारे पास आया हूँ। क्या चाहती हो? मैं अत्यन्त लज्जित हो हाथ जोड़ कर बोली—भगवन्! किसी अभिलाषा से आप को नहीं बुलाई। हमने भूल से आपको कष्ट दिया है। अतः क्षमा कीजिये।

सूर्य ने कहा—सुन्दरी! डरो मत। दुर्वासा का वाक्य असत्य नहीं हो सकता। जाओ! तुम्हें एक महा तेजस्वी पुत्र उत्पन्न होगा।

सूर्य की बातें सुन मैं अत्यन्त लज्जित हुई तथा शोक प्रगट करने लगी।

मुझे चिन्तित और व्यग्र देख सूर्य ने कहा—डरो मत! मेरे वर प्रसाद से तुम्हारा कुमारी-पन दूर नहीं होगा। इस प्रकार सूर्यदेव अन्तर्ध्यान होकर चले गये और मैं अत्यन्त चिन्तित होती हुई राज-भवन में आई।

पुत्र! यथा समय तुम्हारा जन्म हुआ। मैं उस समय

पूर्ण कि कर्तव्य विमूढ़ समान हो गई। उस समय मुझे कर्तव्य ज्ञान नहीं रहा। बहुत सोच-विचार के पश्चात् तुम्हें पिटारी में बन्द कर नदी में डाल दिया। संयोग वश कुरुराज सारथि अधिरथ ने तुम्हें निकाला और पुत्र के समान पालन किया। पुत्र! वास्तव में तुम्हारी माता मैं हूँ। तुम चलो—भाइयों के साथ मिलकर राज-सुख प्राप्त करो। पाँचो भाई निरन्तर तुम्हारी आज्ञा के अनुसार काम करेंगे।

महावीर कर्ण बहुत देर तक माता की बातें सुनते रहे। कुछ देर तक वे अथाह शोक-सागर में डूबगये। माता कुन्ती की शान्ति-पूर्ण प्रतिक्षा करते देख, गंभीरतापूर्वक बोले—देवी! जो कुछ आपने कहा है यदि मैं उसे मान लूँ कि मैं आपका ही पुत्र हूँ, तो आपने हमारे साथ कैसा व्यवहार किया है? क्या कोई माता पुत्र के साथ ऐसा बर्ताव कर सकती है? आपने तो मुझे एक दम मृत्यु के मुँह में डाल ही दिया था। मेरे भाग्य में जीना था अतः मैं नदी में डालने पर भी नहीं मरा। मुझे मेरे धर्मपिता अधिरथ ने नदी के प्रवाह से निकाला। इस समय आपका काम अँटका है इसलिये माता बनने के लिये आई हैं। जिस समय शस्त्र परीक्षा वाले रंगभूमि में मेरा अपमान हो रहा था, उस सयय आपने क्यों नहीं कहा था। इतने दिनों तक आप कहाँ थीं?

हाय! अधिरथ ने मेरा पालन-पोषण किया। दुर्योधन के अन्नसे मेरा शरीर पालन होरहा है। उन्हीं की कृपा से हमारा

सूत पुत्र का कलंक मिटा है। उन्हीं के द्वारा मैं अंग राज का सुख भोग रहा हूँ। अब विपत्ति के समय में उनका साथ कैसे छोड़ दूँ? मैं महाराज दुर्योधन के उपकारों को आपके किस उपकार, किस दया तथा किस स्नेह और प्रेम के बदले भूल जाऊँ।

मैं कभी दुर्योधन का साथ नहीं छोड़ सकता। फिर भी आप माता बनकर आई हैं और याचना करती हैं तो मैं अवश्य आपकी सहायता करूँगा। मैं यह संकल्प करता हूँ कि युद्ध में अर्जुन को छोड़ कर और किसी को नहीं मारूँगा। यदि अर्जुन न रहा तब भी आपके पाँच पुत्र रहेंगे और यदि मैं न रहा तब भी पाँच पांडव रहेंगे। मैंने अर्जुन को मारने की प्रतिज्ञा की है।

इतना कहकर महाबली कर्ण उठ खड़े हुये और राजभवन की ओर चले! कुन्ती भी लज्जित और विस्मित होती हुई विदुर के घर की ओर चली।

कुरुक्षेत्र की समर भूमि ।

भगवान कृष्ण को भग्न मनोरथ लौटते देख पाण्डवों की क्रोधाग्नि भभक उठी । वे शीघ्र दुराचारियों का अन्त करने के लिये तैयार होगये । विना युद्ध के काम चलते न देख उन लोगोंने वाध्य होकर—सेनाओं को तैयार होने कीआज्ञा देदी ।

वर्षों से अधर्म के अत्याचार से पीड़ित हो आज धर्म उसका नाश करने के लिये तैयार हुआ । प्रत्येक वस्तु की संसार में सीमा होती है—आवश्यकता से अधिक अमृत भी विपरीत गुण प्रकट करता है । अत्यन्त संघर्ष करने से चन्दन से भी अग्नि प्रकट हो जाती है । इसी प्रकार अनन्त शान्तिधारी पाण्डव भी क्षुब्ध हो उठे ।

शीघ्र ही सेना पतियों की योजना की गई । भीम सात्यकि, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, द्रुपद, विराट और चेकि, तान सप्त महावीरों ने एक-एक अक्षोहिणी सेना का भार अपने उपर लिया, इस प्रकार सभी शस्त्रास्त्र सज्जित हो अपनी-अपनी सेनायें ले कुरु क्षेत्र के निकट हिरण्यवती नदी के किनार पहुँच कर शिविर डाल डट गये ।

कुरुक्षेत्र ही युद्ध-भूमि चुनी गई । दुर्योधन भी अपनी ग्यारह अक्षौहिणी सेना लेकर उसी रात्रि में आ डटा । उसने अपनी सेना में द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण, शल्य, जयद्रथ, सुदक्षिण, कृतवर्मा, भूरिश्रवा, शकुनि और वाह्लीक को सेनापति बनाया ।

इसके अनन्तर सभी सेना के आ जाने पर दुर्योधन ने समस्त सैन्य का अभिभावक बनने के लिये महामति भीष्म से अनुरोध किया—दुर्योधन की प्रार्थना सुन भीष्मजी ने कहा—वत्स! मैं तुम्हारी बात स्वीकार करूँगा, परन्तु तुम और पाण्डव हमारे लिये समान हो। मैं तुम्हारी ओर से लड़ूँगा। परन्तु युद्ध की सम्मति पाण्डवों को ही दूँगा। हाँ! तुम्हारी प्रसन्नता के लिये पाण्डव पक्ष के एक हजार योधाओं को प्रतिदिन अवश्य मारूँगा।

दुर्योधन ने पितामह की बात मान ली। महामति भीष्म को प्रधान सेनापति बनते देख कर्ण इर्ष्या के मारे जल उठा और मारे क्रोध से दुर्योधन के पास जाकर बोला—राजन्! जब तक भीष्म सेनापति होंगे मैं शस्त्र धारण नहीं करूँगा। उनके मरने पर ही शस्त्र उठाने के लिये मुझे बाध्य कीजियेगा। मैं उनका प्रधान सेनापतित्व नहीं देख सकता।

उधर पाण्डवों ने अर्जुन को प्रधान सेना पति बनाया। दोनों सेनाओं के प्रस्तुत होने पर रात में दुर्योधन ने अपने पक्ष के प्रसिद्ध वीरों को बुला कर बारी-बारी से पूछा कि कौन कितने दिनों में पाण्डवों को हरा सकता है?

दुर्योधन की बातें सुन महामति भीष्म ने कहा—यदि मैं चाहूँ तो एक माह में ही अकेले पाण्डवों को सारी सेना सहित मार सकता हूँ। द्रोण ने भी एकही माह की प्रतिज्ञा की। कृपाचार्य ने कहा मैं छः मास में अकेला विजय पा

सकता हूँ। इसी बीच में कर्ण बोल उठा। मैं केवल पाँच दिनों में पाण्डवों का पूर्ण सत्यानाश कर सकता हूँ। उसके दुःसाहस को देख भीष्म पितामह हँसते हुये बोले— कर्ण! अर्जुन की इतनी मार खाकर भी तुम उन्हें अभी नहीं पहचान सके, ठहरो। पहचान लोगे। जिस दिन अर्जुन का मोर्चा डटेगा उसी दिन पता लगेगा।

भीष्म की बातें सुनते ही कर्ण जल उठा। वह अधिक कर ही क्या सकता था? जलता-भुनता भीष्मजी की ओर वक्र दृष्टि से देखता एक ओर चला गया।

इधर युधिष्ठिर ने भी अपने सेनापतियों को बुलाकर सबसे पहले अर्जुन से पूछा—भाई! तुम कितने दिनों में कौरवों को सेना सहित हरा सकोगे?

युधिष्ठिर की बातें सुन अर्जुन ने कहा—महाराज! भगवान श्रीकृष्ण की सहायता से मैं पल भर में सारे कौरवों को नष्ट कर सकता हूँ। भगवान शंकर का पशुपतास्त्र जिसके द्वारा पल मात्र में सृष्टि का संहार होता है हमारे पास है। पशुपतास्त्र का प्रतीकार भीष्म द्रोण, कर्ण कृपादि कोई नहीं जानते। फिर भी मैं साधारण अस्त्र-शस्त्रों के प्रयोग से लड़ूंगा। इन साधारण लड़ाइयों के लिये पशुपतास्त्र नहीं है।

सवेरा होते ही दुर्योधन ने शकुनि-पुत्र उल्लूट को दूत बनाकर पाण्डवों के पास भेजा। वह पाण्डव सभा में आकर दुष्ट दुर्योधन की कही खरी खोटी सुनाकर युद्धके लिये ललकार गया।

—*—

महर्षि व्यास का आशीर्वाद
और
दिव्यचक्षु की प्राप्ति

युद्ध आरम्भ होने के दिन जब दोनों सेनायें अपनी-अपनी मोर्चाबन्दी कर रही थीं सहसा व्यास जी आये और धृतराष्ट्र से बोले—राजन्! भावी बड़ी बलवान होती है, हमने तुम्हें बार-बार आकर सचेत किया कि अपने दुराचारी पुत्र को रोक। परन्तु मैं देखता हूं कि समय बड़ा बली है, उसके सम्मुख किसी की कुछ नहीं चलती। निःसन्देह उसी के इशारे से संसार के सभी कार्य होते हैं। धृतराष्ट्र! तुम्हारे पुत्र और भतीजे उसी की प्रेरणा से मरने-कटने के लिये तैयार हुये हैं।

अब यह भयंकर संग्राम किसी प्रकार नहीं रुक सकता। मैं देखता हूँ कि कुरुवंश का नाश हुये बिना नहीं रहेगा। अब और कुछ बाकी नहीं है। दोनों ओर की सेनायें व्यूह रचना कर रही हैं। आज अमावस्य की भयंकर काल रात्रि है, आज ही कौरवों के नाश का प्रथम दिन है।

इस प्रकार युद्ध का भयं णाम दिखलाते हुये महर्षि व्यास ने कहा—पुत्र! यदि तुम्हारी इच्छा युद्ध देखने की हो, तो हम योगबल से तुम्हें दिव्य-दृष्टि दे सकते हैं। उसके

द्वारा रण-भूमि में जो कुछ होगा तुम यहीं से बैठे-बैठे देख सकोगे ।

महर्षि व्यास की बातें सुन धृतराष्ट्र ने कहा—भगवन् ! मुझे ऐसा नहीं चाहिये । मैं अपने नेत्रों से अब इस अवस्था में ज्ञाति-बान्धवों का नाश नहीं देखना चाहता । हाँ ! यदि कोई ऐसा उपाय हो कि घर बैठे युद्ध का हाल जान लिया करूँ तो उसकी उचित व्यवस्था कर दें ।

व्यास जी ने कहा—पुत्र ! तुम्हारी कामना पूर्ण होगी । घर बैठे-बैठे ही युद्ध का हाल जान लिया करोगे । मैं संजय को वर देता हूँ । मेरे आशीर्वाद से इसे दिव्यदृष्टि हो जायगी जिसके द्वारा युद्ध की गुप्त से गुप्त बातें जान लेगा । संजय तुमसे यहीं युद्ध का सब हाल सुनायेगा । यदि वह युद्ध में भी जायगा तो अक्षत देह से सभी हाल जानकर तुम्हारे पास आकर कहेगा । संजय मेरे वर प्रसाद से दोनों पक्ष के महारथियों के मन की बात को भी जान लेगा ।

इस प्रकार संजय को वर देकर व्यास जी चले गये । व्यास जी के आशीर्वाद से संजय निर्भय हो गये । युद्धकाल तक के लिये उनका शरीर अक्षत हो गया । वे प्रतिदिन निर्भय रणभूमि में घूमते और सभी हाल जान कर जन्मान्ध धृतराष्ट्र के पूछने पर कह सुनाते थे ।

दोनोंसेनाओं में बड़े-बड़े शिविर बनने लगे । असंख्य धनुष, बाण, प्रत्यंचा, कवच और सहस्रों प्रकार के अस्त्र-शस्त्र आदि एकत्र होने लगे । अनाज, पानी, चारा, घांस, ईंधन-

लकड़ी आदि और तिन, भूसी, आग, घी, शहत, जल और घायलों की चिकित्सा के लिये सब प्रकार की औषधियाँ एकत्र की गईं। हाथी, घोड़े, रथ, ऊँट तथा भाँति-भाँति की सवारियाँ लाई गईं।

धीरे-धीरे दोनों पक्ष जब अपनी-अपनी सामग्रियाँ एकत्र कर चुके तब आपस में निश्चय किये कि धर्म-युद्ध होगा। रथी, रथी के साथ, अश्वारोही-अश्वारोही के साथ, हाथी के सवार हाथी के सवारके साथ तथा पैदल-पैदल के साथ लड़ें। जो किसी दूसरे के साथ लड़ रहा हो, जो भयभीत हो गया है, युद्ध से भाग रहा हो तथा जो शरण में आया हो उस पर प्रहार न किया जाय। दोनों पक्ष ने निष्कपटल होकर लड़ना स्वीकार किया।

कुरुक्षेत्र की भूमि गोल मंडलाकार थी। उसका विस्तार पाँच योजन से कम न था। दोनों पक्ष आधे-आधे भाग पर अधिकार किये थे। पाण्डव पूर्व की ओर डटे थे और कौरव पश्चिम की ओर व्यूह निर्माण कर रहे थे।

भीष्म-पर्व ।

महासमर का आरम्भ

और

अर्जुन का मोह

हाय ! देखते-ही-देखते संसार की सबसे प्राचीन सभ्यता के नाश का चक्र चल गया। भारत की सभ्यता, वीरता, धीरता, तेजस्विता, गंभीरता, कलाकौशल तथा गौरवगरिमा के लुप्त होने का समय उपस्थित हो गया। पाठकों! यही महासमर भारत के कल्पान्त का कारण हुआ।

शान्ति की चेष्टायें विफल हो गईं। महात्माओं तथा पूज्य ज्ञातिबान्धवों के हितोपदेश व्यर्थ हो गये। दुराचारी दुर्योधन और उनके साथियों ने किसी की बात को नहीं माना। भीष्म, द्रोण,, विदुर, कृप, कृष्ण, धृतराष्ट्र और गंधारी सब ने उस अत्याचारी को समझाया। परन्तु मूढ़ कालग्रास अपने नाशकारी सिद्धान्त पर ही डटा रहा।

सवेरा होते ही रणवाद्य से दिशायें पूरित हो उठीं। हाथियों और घोड़ों के चिग्घार तथा रथों के निर्घोष से से अवनि और अम्बर एक हो गया। देखते-ही देखते तुमुल कोलाहल मच गया। ओह! खड्ग, तोमर, शक्ति, शूल, परशु, धनुष, बाण आदि नाना प्रकार के ध्वंसकारी अस्त्रशस्त्रों से समरांगण चमक उठा।

दोनों सेनायें व्यूह रचनाकर आमने-सामने खड़ी हो गईं। इसी समय सफेद घोड़ों के रथ पर आरूढ़ हो गांडीव धारण किये महारथी अर्जुन रणभूमि में प्रवेश किये। भगवान कृष्ण ने प्रतिज्ञानुसार अर्जुन के रथ का सारथ्य ग्रहण किया। उधर महामति भीष्म भी दिव्य रथ पर बैठ कर अपनी सेना के अग्र भाग में आये। दोनों महारथियों के आगे आने पर दोनों दलों के वीरों ने विजय की प्रचण्ड गर्जना से अपने-अपने महारथियों का स्वागत किया। ओह! एक साथ ही अगणित योद्धाओं के सिंहनाद, रण-वद्यों का भयंकर निर्घोष तथा हाथी घोड़ों की चिग्घाड़ से कुरुक्षेत्र भरा उठा।

अर्जुन ने श्री कृष्ण से कहा—हे जनार्दन! जिस समय कौरव और पाण्डव संग्राम करने के लिये उद्यत हुए उसी समय हस्तिनापुर में महाराज धृतराष्ट्र ने सञ्जय से पूछा कि हे सञ्जय! धर्मक्षेत्र में युद्ध की इच्छा से एकत्र हुए मेरे और पाण्डु पुत्रों ने क्या किया?

धृतराष्ट्र की बातें सुन सञ्जय ने कहा कि महाराज!
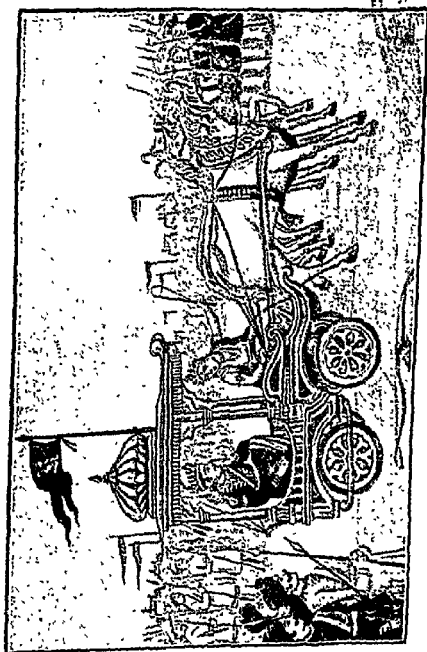
कृष्णार्जुन रथपर बैठे हुये रणभूमि में।

श्री विश्वेश्वर प्रेस, काशी में मुद्रित।

दुर्योधन पाण्डवों की सेना को देखकर द्रोणाचार्य्य के निकट आकर कहने लगा।

हे गुरुदेव! यह आपके अति बुद्धिमान् शिष्य धृष्टद्युम्न ने कैसी उत्तमता से व्यूह रचना कर पाण्डवों की सेना को स्थापित किया है। उस सेना में अर्जुन भीमसेन के तुल्य बड़े बड़े शूर वीर युयुधान और राजा विराट् तथा राजा द्रुपद आदि महारथी हैं।

हे आचार्य! उधर धृष्टकेतु, चेकितान, काशीनरेश, राजापुरुजित्, कुन्ति, भोज, राजा सैब्यादि वीर शिरोमणि विराजमान हैं। अति पराक्रमी युधामन्यु और अभिमन्यु उत्तमौजा और द्रौपदी के पाँचों पुत्र महारणधीर हैं।

हे द्विजराज! अपनी सेनाके शूरवीरों का नाम सुनिये। मेरे तरफ आप और भीष्म, कर्ण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, विकर्ण, सौमदत्त, भूरिश्रवादि संग्रामवेत्ता हैं।

मेरी सेना में बहुत से शूरवीर जो कि हमारे लिये अपने प्राणों को भी छोड़ने को तय्यार हैं उभय पक्षपाती भीष्म पितामह द्वारा रक्षित मेरा दल अपूर्ण तथा भीमरक्षित शत्रुदल पूर्ण मालूम होता है। अतः आप लोग व्यूह ने चारों तरफ स्थित होकर भीष्म जी की रक्षा करें। यह सुनकर— श्री भीष्मपितामहजी ने दुर्योधन को आनन्द देते हुए सिंह की तरह गर्जन करके अपना शंख बजाया। इस प्रकार शंख, भेरी, गोमुख आदि बाजे बजने लगे जिनका शब्द दिगन्त में छा गया।

इसके पश्चात् श्वेत वर्ण के घोड़ों से युक्त दिव्य रथ पर श्रीकृष्ण चन्द्र और अर्जुन दिव्य शंख बजाये। श्रीकृष्ण ने पाञ्चजन्य, अर्जुन ने देवदत्त तथा भीमसेन ने पौण्ड्रक नामक शंख बजाया। युधिष्ठिर ने अनन्त विजय नामक शंख तथा नकुल-सहदेव ने सुघोष और मणिपुष्पक शंख बजाया। इस भाँति काशिराज, शिखंडी, धृष्टद्युम्न, विराट्, अपराजित सात्यकि। राजा द्रुपद और द्रोपदी के पाँचो पुत्र तथा महा-बाहु अभिमन्यु अपने-अपने शंखों को बजाये। उन शंखों के शब्द ने आकाश और पृथ्वी में फैलकर धृतराष्ट्र पुत्रों के हृदय को विदीर्ण कर दिया।

अर्जुन ने कौरवों को सन्मुख खड़े देखकर धनुष को उठाते हुए श्रीकृष्ण से कहा कि हे अच्युत! दोनों सेनाओं के मध्य में मेरे रथ को खड़ा करो। जिससे संग्राम-भूमि में खड़े हुए योधाओं को मैं देखूँ कि किन-किन वीरों से मुझे युद्ध करना है।

केशव! दुर्बुद्धि दुर्योधन की प्रीति करने वाले मतिहीन राजाओं को मैं देखना चाहता हूँ।

अर्जुनके यह वचन सुनकर श्रीकृष्णने भीष्मपितामह तथा द्रोणाचार्य्य आदि वीरों के सामने अर्जुनके रथको खड़ा करके कहा कि हे पार्थ! युद्ध के लिये उद्यत इन कौरवों को देखो।

अर्जुन ने उस दल में अपने चाचा, बाबा, गुरु, मामा, भाई, पुत्र, पौत्र, मित्रजन, श्वसुर, तथा बन्धुओं को स्थित देख परम दया पूर्ण ग्लानि युक्त कहा—

हे कृष्ण! युद्ध के लिये उद्यत निज जनों को देखकर मेरे अङ्गअङ्ग शिथिल हुए जाते हैं और मुख सूखा जाता है। मेरा शरीर काँपता है, गाण्डीव हाथ से गिरा जाता है, तथा मेरी त्वचा जली जाती है। मैं यहाँ खड़े रहने में समर्थ नहीं हूँ। मेरा मन भ्रम में है और मैं अशुभप्रद शकुनों को देख रहा हूँ। संग्राम में स्वजनों को मारकर मैं कल्याण नहीं देखता हूँ प्रभो! युद्ध में विजय और राज्य तथा सुखकी मेरी इच्छा नहीं है।

हे गोविन्द! हमको राज्यभोग तथा जीवन से क्या प्रयोजन? क्योंकि जिनके लिये राज्यभोग और सुख की कामना की जाती है। वे इस युद्ध में प्राण और धनकी आशा त्याग कर मरने को खड़े हैं। हे मधुसूदन! आचार्य, पिता, पुत्र, पितामह मामा, श्वशुर, पौत्र, शाले और सम्बन्धी यह सब मुझको मारें तो भी हे कृष्ण! मैं इन्हें मारने की इच्छा नहीं करता हूँ। हे जनार्दन! मैं इन्हें त्रैलोक्य के राज्य के लिये तो मारना ही नहीं चाहता फिर पृथ्वी के राज्य के लिये क्या मारूँगा? धृतराष्ट्र के पुत्रों को मारकर क्या प्रसन्नता होगी? इन आततायियों के मारने से मुझको पापही मिलेगा। मैं धृतराष्ट्र पुत्रों को मारने के योग्य नहीं हूँ। हे माधव! स्वजनों को मारकर हम कैसे सुखी होंगे? ये लोग लोभवश कुलक्षय कृत दोष और मित्र द्रोह कृत दोष को नहीं देखते।

हे जनार्दन! कुलक्षय होने से सनातन कुल धर्म नाश

हो जाता है, धर्म के नाश होने से अधर्म छा जाता है। अधर्म होने से कुल स्त्रियाँ व्यभिचारिणी हो जाती हैं तथा उनसे वर्णसंकर संतान उत्पन्न होती है। वर्णसंकर से कुल-धर्म नष्ट हो जाता है। मैंने सुना है कि कुल धर्म नष्ट होने से निरन्तर नरक में वास करना होता है। ओह! मैं बड़ा पाप करने को उद्यत हूँ। हाय! राज्य सुख के लिये स्वजनों को मारने का प्रवन्ध कर रहा हूँ। धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधनादि रण में निःशस्त्र मुझे मारें तो ठीक है। इतना कहकर अर्जुन तत्काल धनुष वाण रख कर शोकग्रसित हो रथ के पिछले भाग में जाकर वैठ गये।

भगवान श्रीकृष्ण गीतोपदेश देते हुये।

श्री विश्वेश्वर प्रेस, काशी में मुद्रित।

गीतोपदेश ।

—*—*—
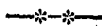
(१)

इस प्रकार अर्जुन को विषाद-पूर्ण देख भगवान कृष्ण ने हँसते हुये कहा—हे पार्थ ! तुझे ऐसे समय में यह मोह कहाँ से उत्पन्न हुआ ? हाय ! तुम मूर्खों के समान यश और स्वर्ग के नाश करनेवाले इस महा दुःखदायी चक्र में क्यों फँस रहे हो। हे अर्जुन ! क्या यह क्लीवता और कायरता तुम्हारे योग्य है ? अपनी दुर्बलता को त्याग वीरों के समान उठो और क्षात्र-धर्म का पालन करो।

भगवान कृष्ण के उत्तेजना-पूर्ण वचनों को सुन अर्जुन ने कहा—अच्युत ! अपने पूज्य गुरुजनों को मार कर राज्य प्राप्त करने की अपेक्षा संसार में भीख माँगकर निर्वाह करना मैं श्रेष्ठ समझता हूँ। भला आपही कहिये—इन लोगों के मारे जाने पर हम जीवित रह कर क्या सुख-भोग कर सकेंगे ? भगवन् ! मैं भयंकर अनिष्ट देख रहा हूँ। मुझे कुछ नहीं सूझता। हम आपकी शरण में हैं, आप हमें सन्मार्ग का उपदेश दीजिये।

प्रिय पाठकों ! इस प्रकार अर्जुन के महा मोह उत्पन्न होने पर भगवान कृष्ण ने एक से एक ज्ञानोपदेश किया। धर्म, कर्म, भक्ति-ज्ञान और योग की शिक्षायें दी, पश्चात् व्यापक

धर्म, आत्मा, जीव और दिव्य विभूतियों का वर्णन किया। इस प्रकार अमूल्य गीतोपदेश के द्वारा अर्जुन का मोह दूर हुआ और वे युद्ध के लिये कटिबद्ध हुये। अर्जुन के मोह-नशाक उपदेशों को लोग आज गीता-ज्ञान के नाम से पुकारते हैं। गीता ज्ञान की खान है। उसे हृदयंगम करने से दुःखियों का दुःख, मोहियों का मोह, अज्ञानियों का अज्ञान और दुर्बलों की दुर्बलता जाती रहती है। वह ज्ञानोपदेश इतना गंभीर, सत्य, अखण्डनीय तथा महत्त्वपूर्ण है कि पाँच सहस्र वर्ष बीतने पर भी आज भारत के ही कोने-कोने में नहीं बल्कि सम्पूर्ण पृथ्वी पर छा रहा है।

भगवान कृष्ण ने पहले तो साधारण रीति से समझाया कि हे अर्जुन! अपने धर्म को छोड़ देना बहुत बुरा है। क्षत्रिय-धर्म से विमुख होते ही लोग तुम्हारी हँसी करेंगे। जिन राजाओं को तुमने युद्ध में जीत लिया है वे भी तुम्हारी निर्बलता तथा क्लीवता देख तुम्हारी हँसी करेंगे और तुम्हारे शत्रुओं के सन्मुख कहेंगे कि अर्जुन कादर हो गया। भयभीत होकर युद्ध से भाग गया। अर्जुन! क्या यह अपमान तुम देख सकोगे?

अर्जुन ने कहा—हे नाथ! मैं मित्र, ज्ञाति-बांधवों तथा कुल संहार के भीषण परिणामों को सोच व्यग्र हो रहा हूँ। वास्तव में कुल संहार के मोह ने ही मुझे किं कर्तव्य विमूढ़ बना दिया है।

अर्जुन की बातें सुन भगवान मुसकराते हुए बोले—अर्जुन

तुम बातें तो ज्ञानियों के समान करते हो पर वास्तव में ज्ञानी नहीं हो। क्या ज्ञानी इस प्रकार जीवन-मरण के लिये रोया करते हैं। क्या तुम्हारे मारने से सभी मर जायँगे? अर्जुन क्या तुम ब्रह्मज्ञान की बातें भूल गये?

हे अर्जुन मृत्यु कुछ भी नहीं है। यह सब आत्मा का खेल है। आत्मा देह को धारण करती तथा उसका उपभोग कर समयानुसार पुराने वस्त्र के समान उसे त्याग नवीन देह धारण करती है। तुम्हारे शरीर में जो आत्मा बसी है वह अमर है। हे अर्जुन! प्राणियों के नेह में पड़कर तुम व्यर्थ क्यों शोक करते हो?

देखो—शरीर नाशवान है। एक-न-एक दिन इसका नाश निश्चय है, परन्तु यह बात आत्मा के लिये नहीं है। आत्मा सत और अमर है, उसका नाश नहीं हो सकता। वह न तो किसी शस्त्र से कट सकती और न अग्नि से जल सकती है, न तो पानी ही डुबा सकता है और न वायु ही सुखा सकती है। आत्मा—अभेद्य, अशोष्य, अदाह्य, अबंध और सनातन है। अतः आत्मा को अविनाशी जान कर युद्ध करो।

तुम्हारे लिये युद्ध ही स्वर्ग का द्वार है। क्लीवता के वशीभूत होकर तुम पीछे न हटो। युद्ध से विमुख होते ही तुम्हारे दोनों लोक बिगड़ जायँगे। न तो तुम्हें पृथ्वी का राज्य ही मिलेगा और न स्वर्ग ही। अतः मोह को दूर कर युद्ध के लिये तैयार हो जाओ।

(२)

इस प्रकार सांख्य योग का वर्णन करते हुये भगवान ने कर्मयोगकी शिक्षा देना आरम्भ किया। उन्होंने कहा—अर्जुन! कर्म ही प्रधान वस्तु है, प्रत्येक मनुष्य को कर्म करने का अधिकार है। प्रत्येक कर्म का फल ईश्वराधीन है, इस समय युद्ध करना ही तुम्हारा सत्कर्म है। सत्कर्म पालन करने वाले ही सुख-सौख्य के अधिकारी होते हैं। अतः कर्मफल को त्याग कर अपने पुनीत कर्तव्य को अपनाओ।

हे कौन्तेय! फलाशा को छोड़ कर कर्तव्य पालन ही सच्चा योग है। इस भाँति कर्तव्य पालन करने वाला ही सच्चा योगी और सन्यासी है, अतः मन की इच्छाओं को त्याग कर केवल अपना कर्तव्य पालन करो। निःसन्देह तुम्हें आशातीत लाभ होगा।

क्लिष्ट वृत्तियाँ दुःख दायिनी हैं—उनसे सदैव दूर रहो। अक्लिष्ट वृत्तियों के धारण करते ही तुम्हारा अहंकार दूर हो जायगा। तुम्हारी वासनायें जाती रहेंगी और तुम स्वयं सम्पन्न हो जाओगे। हे धनुर्धर! अक्लिष्ट वृत्तियों के धारण करते ही उसके वहते हुये प्रवाह में क्लिष्ट वृत्तियाँ स्वयं ही नष्ट हो जायँगी तथा संचित कर्म वह जायगा। इस प्रकार कर्म की संचना न होने पर तुम मुक्त हो जाओगे। अतः आत्मा का ध्यान कर उसी में सन्तुष्ट हो और मन की इच्छाओं को त्याग दो।

हे वीर श्रेष्ठ! सुख-दुःख, हानि-लाभ जय-पराजय

और जन्म-मरण को समान भाव से देखो, दुःख से दुःखी और सुख से सुखी न हो। इच्छा शक्ति को बलवान बनाओ, कभी भयभीत न हो और न अक्रोध को ही छोड़ो।

अर्जुन! तुम समदर्शी बनो। सब को समान समझो, सदैव अपनी इन्द्रियों को आधीन रक्खो। तथा मन को सन्मार्ग पर लगाओ। कभी उसे विषयों की ओर न जाने दो। विषयों का ध्यान होते ही मन और इन्द्रियाँ चंचल हो जाती हैं। मन और इन्द्रियों के नष्ट होते ही काया का नाश हो जाता है।

विषयों के ध्यान से संग उत्पन्न होता है और संग के संसर्ग से काम प्रकट होता है। इच्छा पूर्ति न होने पर क्रोध होना स्वाभाविक है। इस प्रकार क्रोध से मोह और मोह से स्मृति का नाश होते ही, सर्वस्व नाश हो जाता है। इस लिये कामनाओं को त्याग कर निःस्वार्थ भाव से निर्भय निरहँकार तथा निःस्पृह हो कर्तव्य करो। इसी का प्राप्ति नाम ब्राह्मीस्थिति है। इसी के द्वारा अक्षय ब्रह्मानन्द की होती है।

(३)

भगवान कृष्ण के सुन्दर उपदेश को सुन कर अर्जुन के मन में कौतूहल उमड़ पड़ा। उनके मनमें अनेक प्रकार के तर्क वितर्क होने लगे। उन्होंने सोचा कि जब बुद्धि-नाश से ही सर्वस्व नाश होता है तो केवल बुद्धि स्थिर करके क्यों

न भगवान का ध्यान किया जाय ? फिर इन भयंकर कर्मों की क्या आवश्यकता है ? अतः बोले—

हे भगवन् ! यदि बुद्धियोग ही श्रेष्ठ है, तो फिर कर्म योग करने की क्या आवश्यकता ? दुरंगी बातों से मुझे और भ्रम में न डालिये, मुझे एक मार्ग बतलाइये जिससे हमारा कल्याण हो।

श्री कृष्ण ने कहा—कर्म तो पंचभौतिक शरीर का प्रधान विषय है। कर्म के बिना मनुष्य एक क्षण नहीं रह सकता। जब तक शरीर है कर्म नहीं छूट सकता। खाना, पीना, बैठना, उठना, सोना, जागना ये सब कर्म ही तो हैं। कर्मों को इस प्रकार करना चाहिये कि जिससे उसमें आसक्त न हो जाय अर्थात् उसके बंधन में न फँसे। फलाफल से विरक्त होकर कर्म करना ही कर्मयोग का अर्थ है।

हे पार्थ ! इसी कर्मयोग की सिद्धि के लिये प्रजापतियों ने सृष्टि काल में ही यज्ञ की रचना की थी। यज्ञ कर्मों का रूप है। ऋषियों के कर्म और यज्ञों को एक ही माना है। अखिल ब्रह्माण्ड में जो कुछ हो रहा है। सब यज्ञ (कर्म) ही है !

सारा संसार अन्न के द्वारा जीवित रहता है, अन्न मेघ से उत्पन्न होता है और मेघ यज्ञ कर्म से होता है। अतः कर्म और यज्ञ एक ही है। कर्म से ही योगियों ने सिद्धि प्राप्त की है।

हे कौंतेय ! कर्मों का त्याग नहीं हो सकता। यदि मैं कर्म करना छोड़ दूँ, तो संसार कर्मों से मुख मोड़ ले।

कर्महीन होते ही समस्त संसार का उच्छेद हो जायगा । अतः कर्म करना आवश्यक है, तुम स्वार्थ त्याग कर कर्मयोग को अपनाओ । जो कुछ करो, निःस्वार्थ करो ।

(४)

हे शत्रुनाशन ! वर्ण, कुल, गोत्र, स्वभाव, संस्कार, परिस्थिति, हृदय की प्रेरणा तथा शास्त्राज्ञा से जो निश्चित किया जाता है-ऋषियों ने उसे धर्म के नाम से पुकारा है। सत्कर्म ही धर्म है। धर्म पर दृढ़ रहना ही जीवन का उद्देश्य है। महात्माओं का वचन है—कि धर्म पालन करते हुए शरीर का उत्सर्ग करना परम पुरुषार्थ है—इसके अतिरिक्त अधर्माचरण तथा परधर्म अत्यन्त भयावह और सन्ताप दायक है।

हे विजय ! धर्म ही सर्वस्व है। इसी के द्वारा इस लोक में सुख और मरने के उपरान्त स्वर्गादि लोकों की प्राप्ति होती है। ऋषियों ने कहा है—जो अभ्युदय और उन्नति का कारण है वही धर्म है।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौच मिन्द्रियनिग्रहणम् ।
धी विद्या सत्यमक्रोधे धर्मस्य दश लक्षणम् ॥

धैर्य धारण करना, क्षमा करना, मन के बुरे विचारों को रोकना, चोरी न करना, शुद्धता और पवित्रता, उत्तम बुद्धि, विद्याध्ययन, सत्य भाषण तथा क्रोध न करना यही धर्म के दस लक्षण हैं। इन्हीं के एकत्र होने से धर्म का रूप बनता है।

जब तक कर्म योग की प्रधानता तथा कामना त्याग की की प्रवृत्ति रहती है। तब तक धर्म भी व्यापक और उन्नत शील रहता है। इसके विपरीत जब लोग इच्छाओं के वशीभूत होकर तथा कामनाओं के क्रीत दास बनकर कर्मयोग (यज्ञ) के रहस्य को भूल जाते हैं तब धर्म भी शनैः-शनैः लोप होने लगता है। सर्वत्र पाप का साम्राज्य बढ़ जाता है।

हे अर्जुन! इस प्रकार जब-जब धर्म की ग्लानि होती है तब-तब मैं अधर्म का नाश करने के लिये तथा पापियों का संहार कर धर्मात्माओं की रक्षाके लिये प्रत्येक युग में अवतार धारण कर धर्म की संस्थापन करता हूँ।

(५)

हे श्वेत वाहन! इस संसार में गुण कर्मानुसार मैं ही चतुर्वर्णों का कर्त्ता हूँ। यद्यपि मैंने ही चारों वर्णों की सृष्टि की है तथापि मैं इनसे परे हूँ। इसी भाँति प्राणियों को कर्म में लिप्त नहीं होना चाहिये। संकल्प विकल्प से रहित होकर सत्कर्म करना ही यथार्थ धर्म है।

संसार ब्रह्ममय है, वह त्रिकाल में समग्र ब्रह्माण्ड में व्याप्त और प्रत्येक प्राणी के देह में स्थिर है। जो कुछ हो रहा है सभी ब्रह्म यज्ञ है। अतः सब कुछ ब्रह्म मय जान कर स्वकर्मानुष्ठान करो। हे महाबाहो! सदैव ज्ञान-यज्ञ का अवलम्बन करो। द्रव्ययज्ञ से ज्ञानयज्ञ ही श्रेष्ठ है।

इसके लिये तुम्हें श्रद्धा और संयम को अपनाना होगा। संशय को दूर कर श्रद्धा को बढ़ाओ पश्चात् ज्ञान को धारण कर कर्तव्य कर्म को करो।

कर्तव्य पथ पर आरूढ़ होते ही देह-बुद्धि नष्ट हो जाती है। साधक यही समझता है कि खाना, पीना, सोना, जागना, चलना, फिरना, आदि शरीर के धर्म हैं। इनका होना स्वाभाविक है। समस्त सृष्टि स्वयं स्वाभाविक गुणों पर चल रही है। अतः वे अपने को कर्ता नहीं समझते। ज्ञान न होने के कारण ही प्राणी अपने को कर्ता और भोक्ता समझ कर बन्धनों में पड़ता है। ज्ञान वालों को अहंकार नहीं होता। अहंकार के निरोध से उनकी दृष्टि सम हो जाती है। समान दृष्टि होने पर श्वान, श्वपच 'पण्डित' ब्राह्मण और गौ समान जान पड़ते हैं, इस प्रकार अभ्यस्त हो जाने पर मनुष्य निर्लिप्त और निर्विकार होकर ब्रह्म में लीन हो जाता है।

(६)

त्याग और तप से सिद्धियाँ होती हैं। मनुष्य सब कुछ कर सकता है। आत्मा की उन्नति ही उन्नति और अवनति ही पतन है। वास्तव में आत्मा ही मित्र और वही शत्रु है। यद्यपि आत्मा ही सर्वस्व है तथापि आत्मोद्धार साधारण क्लिष्ट ही नहीं वरण महाक्लिष्ट और दुष्कर कार्य है।

हे अर्जुन! आत्मोद्धार के बिना कल्याण कहाँ? जीवन

संग्राम में विजय प्राप्त करने के लिये आमोद्धार की आवश्यकता है। आत्मोद्धार को ही समस्त सिद्धियों का द्वार जानना।

इसके लिये स्थिर बुद्धि को अपनाओ। अपने व्यवहारिक कर्मों को विवेक पूर्ण करो तथा मन के व्यापार को स्थिर रक्खो—निश्चय ही आत्मोद्धार हो जायगा। फिर और कुछ जानना शेष नहीं रह जायगा। ब्रह्म प्राप्ति ही आत्मोद्धार का रहस्य है। मन वड़ा चंचल है। यद्यपि इसका रोकना वड़ा कठिन है तथापि अभ्यास और वैराग्य के द्वारा उस की स्थिरता की जा सकती है। उसके स्थिर होते ही बुद्धि स्थिर हो जाती है और प्राणी आगे वढ़ता है।

हे पार्थ! इस योग का निरन्तर अभ्यास करते रहने पर प्राणी निश्चय ही परम धाम का अधिकारी होता है। मान ली जाय कि एक जन्म में नहीं हुआ फिर भी वह प्रयत्न और अभ्यास विफल नहीं होता—दूसरे जन्म में पुनः उदय होता है और वह प्राणी आपसे आप उसे करने लगता है। इस प्रकार जन्म जन्मान्तरों के पश्चात् पूर्ण सिद्धि का अधिकारी हो जाता है।

हे अर्जुन! तल्लीन होकर पालन करने वाले विरले ही व्यक्ति हैं। मेरी अगाध प्रकृति से पार पाना साधारण काम नहीं है। जो लोग वचन कर्म और मनसे लवलीन रहते हैं—वेही उद्धार पाते हैं।

(७)

हे जिष्णु ! यह समस्त पृथ्वी चराचर भूत मेरी ही माया का कारण है। इस अपार ब्रह्माण्ड का प्रभाव और प्रलय मेरी सत्ता से होता है। हे पाण्डुनन्दन ! इस संसार में मेरे सिवा और कुछ भी नहीं है। मैं सबों का कर्ता, पालक और रक्षक हूँ ! मैं ही आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी का कारण हूँ।

हे पार्थ ! ये सभी भूत हमारे ही बनायें हैं। हैं ही इनके भीतर रम रहा हूँ, आकाश का शब्द, वायु का स्पर्श अग्नि का रूप ,जल कर रस और पृथ्वी की गन्ध हैं ही हूँ। मैं ही नक्षत्रों का तेज, रवि शशि की प्रभा, पुरुषों का पुरुषार्थ, तपस्वियों का तप, सभी भूतों का बीज तथा प्राणियों का प्राण हूँ।

मैं ही सनातन ब्रह्म हूँ, संसार मेरी माया से ओत-प्रोत हो रहा है। त्रिगुणात्मिक माया के द्वारा लोग मुझे भूल जाते हैं—और कल्पित देवताओं की उपासना करने लगते हैं। इस प्रकार उनकी वृत्तियाँ कामनाओं के मार्ग पर शीघ्रता से बढ़ जाती हैं।

हे पार्थ ! मैं भूत भविष्यत और वर्तमान से परे हूँ—जो मेरा जिस प्रकार स्मरण करता है मैं उसी प्रकार उसे फल देता हूँ। शरीर त्याग के समय जो मुझे स्मरण करता है उसकी भावना के अनुसार ही फल मिलता है। महावीर ! भावनाओं के अनुकूल ही सिद्धि भी होती है।

हे अर्जुन! इसी सिद्धान्त के अनुसार तुम भी काम करो। अपने कर्मों को मुझमें समर्पण कर युद्ध के लिये तैयार हो जाओ। मेरा स्मरण करते हुये कार्य करो निःसन्देह तुम्हारी सिद्धि होगा। तुम शीघ्र आत्म समर्पण कर दो।

(८)

हे शत्रधर! संसार जन्म मरण के आधीन है। जन्म लेने और मरने के कारण ही इसका नाम जगत पड़ा है। जबतक आत्मदर्शन नहीं होता तब तक भवबंध से मुक्ति नहीं हो सकती। इस विशाल ब्रह्माण्ड में सृष्टियाँ उत्पन्न हो मग्न होती रहती हैं। दिन रात, सप्ताह, पक्ष, माह, ऋतु, अयन, वर्ष, शताब्दि, संवत्सर और युग एक के बाद दूसरे बीतते रहते हैं। एक हजार वर्ष बीतने पर ब्रह्मा जी का दिन भी बीत जाता है। इस प्रकार ब्रह्मा की रात्रि बीतते ही महा प्रलय हो जाता है। परन्तु परमात्मा ज्यों-का-त्यों अटल रहता है।

हे महाबाहो! जिस प्रकार अनन्त आकाश में भिन्न-भिन्न वायुमण्डल हैं उसी प्रकार यह अखिल ब्रह्माण्ड हमारे भीतर अठखेलियाँ कर रहा है। एक नहीं अनेकों लोक, रवि, शशि, भुवन, ग्रह, नक्षत्र बड़े-बड़े समुद्र तथा भूभाग स्थिर हैं। स्थिर बुद्धि वाले जिन्होंने आत्मदर्शन कर लिया है, वेही इसे जानते हैं। हे अर्जुन! दैवी प्रकृति के द्वारा ही मैं जाता जाता हूँ।

हे धनञ्जय ! सारा संसार मुझमें ही है, मैंही इसे धारण कर रहा हूँ। मैं ही माता-धाता पिता और ऊँकार हूँ। मैंही वेद, यज्ञ, कर्म, औषधि, अग्नि और होम हूँ। जगत की गति, स्थिति और प्रलय हूँ। तुम मुझे सब प्रकार से अनन्त जान कर मेरी उपासना करो। जो अनन्य होकर मेरी उपासना करते हैं मैं उनकी अभिलाषाओं को पूर्ण करता हूँ। हे अर्जुन ! रूपानान्तरोंसे की हुई पूजा भी मुझे ही प्राप्त होती है। अतः तुम सर्वस्व अर्पण कर युद्ध करो। अर्जुन ! अनन्त भक्ति-भाव से प्रेरित होकर जो हमारी शरण में आता है वह निःसन्देह परमपद पाता है।

(९)

इसके उपरान्त भगवान ने अपनी दिव्य विभूतियों का वर्णन करते हुये कहा—अर्जुन ! मेरी विभूतियों से कोई परे नहीं है।

हे जितेन्द्रिय अर्जुन ! सम्पूर्ण प्राणियों के अन्तःकरण में रहने वाला परमात्मा, सब भूतोंके उत्पत्ति और पालन, संहार होने का कारण, बारह आदित्यों में विष्णुनामक आदित्य, अग्नि आदि ज्योतियों में विश्वव्यापक किरण युक्त सूर्य मरुद्गणों में मरीचि और अश्विनी आदि नक्षत्रों में चन्द्रमा मैं ही हूँ।

चारों वेदों में सामवेद, देवताओं में इन्द्र, ज्ञानेन्द्रियों में मन, जीवों में ज्ञानशक्ति, रुद्रों में शंकर, यक्ष और राक्षसों में कुबेर, आठ वसुओं में अग्नि, शिखरवाले पर्वतों में मेरु,

पुरोहितों में वृहस्पति, सेनापतियों में स्वामिकार्तिकेय, जलाशयों में सागर, महर्षियों में भृगु, वाणी में ॐकार, यज्ञों में जपयज्ञ, स्थावरों में हिमाचल, समस्त वृक्षों में पीपल, देवर्षियों में नारद ऋषि, सिद्धों में कपिल मुनि, अश्वों में ऊच्चैश्रवा, मनुष्यों में राजा, शस्त्रों में वज्र, गौवों में कामधेनु, प्रजा उत्पन्न करनेवालों में कामदेव और नागों मेंवासुकि मैं ही हूं।

सर्पों में अनन्त, जलवासियों में वरुण, पितृगणों में अर्यमा दण्ड देने वालोंमें यमराज, दैत्योंमें प्रह्लाद, नाश करने वालों में काल, मृगों में राजसिंह, पक्षियों में गरुड़, वेगवानों में वायु, शस्त्र धारियों में राम, मत्स्यों में मगर और सरिताओं में गंगा मैं ही हूं।

हे अर्जुन! आकाशादि का आदि, मध्य और अन्त करने वाला, चौदह विद्याओं में आत्मज्ञान, वादविवादियों में तत्त्व निर्णय करने वाला, अक्षरों में उँकार, समासों में द्वन्द्व, समस्तकाल में कालरूप, कर्मफल देने वालों में विश्वतो मुखी, संहार करने वालों में मृत्यु, तथा भाग्योदय, कीर्ति, श्रीलक्ष्मी शोभा वाणी, स्मृति, वुद्धि, धैर्य, क्षमादि सब मैं ही हूं।

साम और ऋचाओं के मध्य वृहत्साम, छन्दों में गायत्री छन्द, महीनों में अगहन, ऋतुओं में वसंत, छलियों में जुवा, तेजस्वियों में तेज, जयशालियों में जय, उद्योगियों में व्यवसाय, सत्यवानों में सत्य तथा वृष्णिवंशियों में वासुदेव

भगवान का विराट दर्शन ।

श्री विश्वेश्वर प्रेस, काशी में मुद्रित ।

तुमको उपदेश कर रहा हूँ, पांण्डवों में तुम जो मुनियों में वेद व्यास और कवियों में शुक्राचार्य मैं ही हूँ।

शिक्षा देने वालों में दण्ड, जीतने वालों में नीति, गोपनीयों में मौन और ज्ञानियों में ज्ञान मैं ही हूँ

हे अर्जुन ! सम्पूर्ण जीवों का जो कारण है वह मैं ही हूँ कार्य विना कारण के कुछ भी नहीं हो सकता इस लिये चराचर का कारण मैं ही हूँ।

मेरी दिव्य विभूतियों का अन्त नहीं है यहाँ पर हमने तुमसे संक्षेप में वर्णन किया है।

हे अर्जुन ! जो वस्तु, ऐश्वर्य्य, शोभा तथा सामर्थ्य युक्त हैं उसे हमारी ही चिच्छक्ति के अंश से उत्पन्न जानो।

हे विजय ! इन विभूतियों को पृथक पृथक जान कर क्या तुम्हारा अर्थ होगा सबका मुख्य भेद यह है कि यह समस्त जगत् हमारे अंश से व्याप्त हो रहा है।

(१०)

भगवान की दिव्य विभूतियों का वर्णन सुन अर्जुन अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसके हृदय में बड़ा कौतूहल होने यह देख श्रीकृष्ण ने अर्जुन को तत्काल अपना विराट रूप दिखलाया। सहस्रों सूर्य सा तेजवान उस अद्भुत और अपूर्व रूप को देख अर्जुन को बड़ा आश्चर्य हुआ। उस रूप में सहस्रों नेत्र, मुख, हाथ, पाँव सूर्य, चन्द्र लोक भुवन, ग्रह, नक्षत्र, पृथ्वी, आकाश, पाताल, दिशायें तथा समुद्रों को देख अर्जुन के विस्मय का ठिकाना न रहा। उन्होंने देखा

भगवान का रूप दशों दिशाओं में व्याप्त है। महर्षि सिद्ध गंधर्व यक्ष, मरुत वसु आदि सभी हाथ जोड़े खड़े हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शंकर ध्यान मग्न बैठे हैं। बड़े-बड़े योद्धा भस्माग्नि में पतंगों के समान विकराल मुंह में प्रवेश होकर नाश हो रहे हैं।

उस भयंकर रूप को देख अर्जुन के रोंगटे खड़े हो गये। उन्होंने हाथ जोड़कर कहा—हे देवोत्तम ! आप कौन हैं ? शीघ्र बतलाइये। मैं आपके इस रूप को देखकर अत्यन्त भयभीत हो रहा हूँ। हे पुरुषोत्तम ! आप को बार-बार नमस्कार करता हूँ। बतलाये आप कौन हैं ?

तब भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—हे अर्जुन ! मैं लोक-नाशकारी काल हूँ। मैं ही संसार का नाश करता हूँ। हे वीरवर ! इस युद्ध में खड़े हुये वीरों को मैं पहले ही मार चुका हूँ—हे महाबाहो ! तुम तैयार हो जाओ। निर्संयता पूर्वक शत्रुओं से लड़ो। तुम तो केवल निमित्त मात्र हो।

(११)

इसके उपरान्त अर्जुन ने कहा—भगवन् ! आपके इस विराट रूप को देख मैं अत्यन्त भयभीत हो रहा हूँ। मुझे अब अपना पूर्व रूप दिखलाइये। अर्जुन के इस प्रकार कहते ही श्रीकृष्ण ने अपना सौम्य रूप धारण कर कहा—हे पार्थ ! मेरे भक्त ही इस रूप को देख सकते हैं।

भगवान के विराट रूप ने अर्जुन को बड़े आश्चर्य में डाल दिया। अब ये हाथ जोड़कर बोले—भगवन् ! आपके भक्त

भगवान श्री कृष्ण का सौम्य रूप धारण कर उपदेश देना।

श्री विश्वेश्वर प्रेस, काशी में मुद्रित।

किस रूप की उपासना करें ? आपके उस अविनाशी रूप की निर्गुण अथवा सगुण किस रूप से उपासना करनी चाहिये ?

कृष्ण ने कहा—हे धनंजय ! निर्गुण उपासना अत्यन्त कठिन है। सिद्ध योगी ही जिन्होंने इन्द्रियों को वशीभूत कर लिया है। मन को किसी देश में बाँध दिया है तथा धारणा और ध्यान को एकाग्र कर रक्खा है वे ही कर सकते हैं। सुनो—अपनी उपासना का मैं सब से सरल मार्ग बताता हूँ। समस्त कर्मों को हमारे चरणों में समर्पण करके कर्मयोग द्वारा मेरी भक्ति करो। निःसन्देह इसी के द्वारा तुम्हें परमात्मा की प्राप्ति होगी। हे शत्रुनाशन ! जो राग-द्वेष मानापमान, निन्दास्तुति, लाभालाभ, जय-पराजय, आदि वासनाओं से विरक्त रह मेरी उपासना करते हैं—निश्चय ही उन्हें कैवल्य पद प्राप्त होता है ।

(१२)

इस प्रकार उपदेश देते हुए श्रीकृष्ण ने कहा—महाबाहो ! यह संसार कर्म-क्षेत्र है। इस शरीर को ऋषियों ने क्षेत्र कहा है। आत्मा इस क्षेत्र का क्षेत्रज्ञ है। क्षेत्र के अन्तर्गत जो 'तत्त्वमसि' विचार है वही ज्ञान है और उसी से मोक्ष साधन होता है। क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ दोनों अनादि हैं, इन्हीं दोनों के संयोग से सृष्टि की स्थिरता है। क्षेत्रज्ञ आकाश के समान सूक्ष्म तथा विकार रहित है। सांसारिक विकार तो क्षेत्र के गुण हैं।

हे अर्जुन! क्षेत्रज्ञ के गुणों को धारण करो। अहिंसा, क्षमाशीलता, कर्तव्य परायणता, सरलता, शौच, सन्तोष, धीरता, स्थिरता, दृढ़ता, आत्मसंयम, शब्दादि विषयों से विरक्ति, अहंकार त्याग, अचल भक्ति-भाव, सत्य व्यवहार, इन्द्रिय निग्रह, कामादि विषयों से पृथक, विहार और विलास में उन्मत्त न होना, घरवार के ममता जाल से दूर रहना, सुख दुःख, हानि लाभ, जीवन मरण, यश अपयश, निन्दा स्तुति, हर्ष-विषाद आदि भावों पर समान दृष्टि रखना तथा मोक्ष साधन में प्रवृत्त रहना ही क्षेत्रज्ञ का प्रधान गुण हैं। हे शत्रुनाशन! इसी को ज्ञान-मार्ग कहते हैं। इसी को अपनाओ, निःसन्देह तुम्हारी तरणी अनायास इस भवसागर से पार हो जायगी।

(१३)

इसके अनन्तर भगवान ने अर्जुन से कहा—हे अर्जुन! अब मैं तुझे वह ज्ञान बतलाता हूँ जिसके जानने पर कुछ जानना शेष नहीं रहजाता—तुम ध्यान पूर्वक सुनो।

प्रकृति और पुरुष से ही यह संसार है। सृष्टि उत्पन्न करने वाली सामग्रियों को ही ऋषियों ने माया रूप प्रकृति माना है। प्रकृति ही इस विश्व का एकमात्र कारण है। इसी प्रकृति रूपी गर्भाशय में बीजारोपण कर अनादि ब्रह्म सृष्टि का विस्तार करता है।

प्रकृति गुणमयी है, इसके सत्व, रज और तम नाम के तीन गुण हैं।

हे अनघ! उक्त तीनों गुणों के मध्य संतोगुण निर्मल और प्रकाशमान तथा निरुपद्रव होने के कारण देह को सुख और ज्ञान की संगति देता है। रजोगुण अप्राप्त वस्तुकी इच्छा और काम शक्ति उत्पन्न करने वाला तथा विषयादि में प्रीति कराने वाला है अतः वह जीवात्मा को कर्मों में आसक्त करके बन्धन कराता है। तम अज्ञान से उत्पन्न होता है वही समस्त राग और मोह को उत्पन्न कराता तथा आलस्य और निद्रा के द्वारा जीवात्मा को बाँधता है। सतोगुण से सुख प्राप्त होता है, रजोगुण कर्म में लगाता है तथा तम ज्ञानको घेरकर प्रमाद से युक्त करता है। सतोगुण रज और तमको दबा- कर सुखों से युक्त करता है। रजोगुण सत और तम को दबाकर कर्म में युक्त करता है उसी प्रकार तमो गुण भी सत, रज को जीतकर प्राणियों को राग और मोहों में प्रवृत्त करता है।

हे अर्जुन! जिस समय देह और सब इन्द्रियों के द्वारों में शब्दादि विषय रूप सुखों का प्रकाश हो—उसी समय सत्वगुण की वृद्धि होती है। जब यज्ञादि कर्मों की प्रवृत्ति, गृहादि कर्मों का उद्यम, संकल्प, अशान्ति और इच्छा हो तब रजोगुण की उत्पत्ति जानना तथा जिस समय विवेकनाश, उद्योग में बुद्धि न होना, स्थिर बुद्धि त्याग और मोह हो तो तमोगुण की वृद्धि मानना।

सतोगुण वृद्धि काल में मृत्यु होने पर मनुष्य स्वर्ग जाता है रजोगुण वृद्धिसमय में मृत्यु होने से कर्मवीरों में

उत्पन्न होता है तथा तमोगुण वृद्धि काल में मृत्यु होने पर प्राणी पशु आदि योनियों में जन्म लेता है।

हे अर्जुन! पुण्य कर्म का फल निर्मल और सात्विक है। रजोगुणका फल दुःख है और तमोगुणका फल अज्ञान है। सतोगुण से ज्ञान उत्पन्न होता है, रजोगुण से लोभ तथा तमोगुण से मोह तथा अज्ञान उत्पन्न होता है। सात्विकता से स्वर्ग जाते हैं रजोगुण वाले पुरुष दुःख भोगते हुए मृत्युलोक में रमते हैं तथा तमोगुणयुक्त पुरुष अधम योनियों में प्राप्त होकर नरक में जाते हैं।

इस प्रकार गुणों का वर्णन कर अर्जुन से कहा—हे वीभत्सु! इन तीनों गुणों के जीतने पर प्रत्यक्ष आत्मदर्शन होता है। तुम इनसे भी श्रेष्ठ हो जाओ।

इसी समय पार्थ ने विस्मिति होकर पूछा—भगवन्! इन तीनों गुणों से श्रेष्ठ कैसे हो सकता हूँ? आप कृपया इनके लक्षण और गुण बताइये।

श्रीकृष्ण ने कहा—हे अर्जुन इन गुणों पर विजय प्राप्त करो। इन्हीं तीनों गुणों को जीत कर लोग परमात्मा को पाते हैं। जो इन गुणों से उदासीन रहता है जो सबको समान दृष्टि से देखता है। जो मिट्टी और स्वर्ण में एक भाव रखता है जो काम क्रोधादि शत्रुओं तथा लोभ मोहादि इच्छायों का परित्याग कर शत्रु और मित्र को एक रूप में देखता है। वास्तव में वही गुणातीत हो जाता है। हे अर्जुन! वही मेरी भक्ति कर सकता है। अतः तुम त्रिगुणा

लीण होकर उठ खड़े होओ और अत्याचारियों का अन्त कर पृथ्वी का भार हरण करो ।

(१४)

इस भाँति गुणों और गुणातीत का वर्णन कर भगवान ने कहा—हे अर्जुन ! अब मैं एक गूढ़ ज्ञान कहता हूँ। यह संसार उलटा टँगा हुआ अश्वत्थ वृक्ष के समान है निःसन्देह इस ब्रह्माण्ड की जड़ ऊपर की ओर और शाखायें नीचे की ओर लटकी हैं। ऋषियों ने ब्रह्म को ही इसका मूल तथा चराचर विस्तार ही इसकी शाखायें कही हैं।

हे महाबाहो ! तीनों गुणों से इस वृक्ष की शाखायें पुष्ट होती हैं तथा इन्हीं की प्रेरणा से शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गंध के पत्ते फूट निकलते हैं। मूल में ब्रह्म का निवास है और शाखाओं पर जीवों का वास है।

हे अर्जुन ! इस प्रकार वह विश्व-वृक्ष परब्रह्म के द्वारा पोषित होता है। ब्रह्म ही उसका आदि, मध्य और अन्त है !

सूर्य, चन्द्र इनमें जो तेज है, जिसके द्वारा यह जगत प्रकाशित होता है, वह उसी का है। परमेश्वर पृथ्वी में प्रवेश करके अपनी अपरिमित माया-शक्ति के बल से समस्त भूतों को धारण कर रहा है, वही अमृत रूप चन्द्रमा होकर समस्त औषधियों का पोषण (पुष्ट) करता तथा जठराग्नि (उदरगतअग्नि) होकर समस्त प्राणियों

की देह में स्थित हो प्राण अपान वायुओं से मिलकर भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य इन चारों भोज्य पदार्थों को पाचन करता है।

(१५)

हे अर्जुन! संसार में क्षर और अक्षर दो प्रकार के पुरुष हैं। नाशवान् ब्रह्मादि से लेकर स्थावरान्त पर्य्यन्त सभी भूत क्षर हैं तथा जो निर्विकार मायोपाधि रहित, देह के नाश होने पर भी जिसका नाश नहीं होता ऐसा पुरुष अक्षर है। क्षर अक्षर से भिन्न पुरुषोत्तम ही परमात्मा कहलाता है। वही अविनाशी ईश्वर सब का पालन करता है। वह क्षर पुरुष से अलग और संसार बीज स्वरूप अक्षर पुरुष से भी उत्तम, सभी लोकों पुराणों और वेदों में पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्ध है। जो पुरुष मोह रहित होकर उसको पुरुषोत्तम जानता है—वही सर्वज्ञ है। हे निष्पाप! यह परम तत्त्व बोध कराने वाला अत्यन्त गुप्त परमोत्तम ज्ञान है जिसको भली-भाँति जानकर पुरुष बुद्धिमान और ब्रह्म वेत्ता हो जाता है। अतः तुम उस ब्रह्म को जानो।

(१६)

हे पाण्डव! मोक्ष और बन्धन ही जीव गति के भेद हैं दैवी सम्पद मोह का नाश करने वाला और आसुरी सम्पद मोह को जोड़ने वाला है। तुम सदैव दैवी सम्पदाओं के अधिकारी बनो—

भगवान कृष्ण की बातें सुन अर्जुन ने कहा-भगवान्!

दैवी और आसुरी सम्पद क्या है? मुझे समझा कर कहिये—

भगवान ने कहा—ईश्वर के अतिरिक्त किसी से नहीं डरना, इच्छा शक्ति की प्रबलता, मनोबल की वृद्धि, चित्त की शुद्धि, इन्द्रियों का दमन, सत्यासत्य विचार, दान यज्ञ, तप क्षमा करना, वेदाध्ययन, सरलता, शान्ति, अक्रोध, अहिंसा, त्याग, इर्ष्या-मत्सर रहित होना, विषय वासनाओं में आसक्त न होना तथा सर्वदा मन वचन और कर्म से पवित्र रहना ही दैवी सम्पद है। इसके अतिरिक्त विपरीत आचरण, आसुरी सम्पद है।

वास्तव में सात्विक वासनायें ही दैवी सम्पद हैं। इन्हीं के द्वारा परब्रह्म की प्राप्ति होती है। जो लोग आसुरी सम्पद के अधिकारी हैं—वे सदैव रौरवादि नरकों को भोगते रहते हैं—हे अर्जुन! तू ध्यान-पूर्वक—दैवी सम्पद को धारण कर, काम क्रोध से दूर रह, ये तीनों ज्ञान के नाश करने वाले नरक के द्वार हैं। जो मनुष्य इन तीनों से मुक्त होकर शुभा चरण करता है। वह निःसन्देह मुझे पालेता है।

(१७)

कृष्ण की बातें सुन अर्जुन ने कहा कि हे भगवन्! जो लोग शास्त्रोक्त विधि छोड़कर श्रद्धायुक्त कर्म करते हैं उनकी क्या निष्ठा है।

भगवान ने कहा—हे अर्जुन प्राणियों की सात्विक, राजस तामस यह तीन भाँति की श्रद्धा होती है। यह पूर्व जन्म के

साथ ही उत्पन्न होती है उनको तुम सुनो—समस्त मनुष्यों की श्रद्धा सात्विक होती है। इसी से वे श्रद्धावान् कहे जाते हैं। इस विषय में प्रधानता यह है कि जैसी जिसकी श्रद्धा होती है वैसा ही वह करता है। जो पुरुष देवताओं का पूजन करता है वह सात्विक, यज्ञादिकोंको पूजने वाले राजस तथा भूत प्रेतादिकों के पूजा करने वाले तामस कहलाते हैं। दम्भ, अहङ्कार, काम आसक्ति और आग्रह से युक्त हो घोर तप करते हैं। तथा वहुत से लोग मुझको पञ्चभूत अथवा शरीर में व्याप्त जानकर शास्त्र विरुद्ध तप करते हैं वे मूर्ख असुर (अतिक्रूर) स्वभाव वाले हैं।

(१८)

समस्त पुरुषों को तीन प्रकार के आहार प्रिय होते हैं वैसे ही यज्ञ, तप और दान आदि भी तीन भाँति के हैं उनको विस्तार पूर्वक कहता हूँ। सुनो—

हे अर्जुन! आयु, उत्साह, वल, आरोग्य, सुख, प्रीति वर्द्धक, मधुर, पदार्थ रसयुक्त, सुन्दर अन्नादिक सात्विक जनों को प्रिय होते हैं। कडुवा, खट्टा, खारा, गरम तीखा, रूखा तथा जिसके खाने से शरीर में दाह हो वह राजसी है। ठण्ढा अन्न, रसहीन, दुर्गन्ध युक्त, वासी, अपवित्र और जूठे पदार्थ तामस जनों को प्रिय होते हैं।

हे अर्जुन! यज्ञ करना ही चाहिये। ऐसा एकाग्र मन से दृढ़ निश्चय करके श्रद्धा भक्ति पूर्वक जो वेद की विधि से यज्ञ किया

जाता है वह सात्विक यज्ञ है। जो यज्ञ प्रसिद्धि के लिये तथा स्वर्ग की प्राप्ति की कामना से किया जाता है वह राजस यज्ञ है। जिस यज्ञ में अविधि, अन्नदान, मन्त्र-दक्षिणा और भक्ति नहीं है। वही तामस यज्ञ है।

देवता, ब्राह्मण, गुरु इनका पूजन करना, पवित्रता से रहना, ब्रह्मचर्य और अहिंसा रत रहना यह लक्षण शारीरिक तप के हैं। किसी के चित्त को दुःख न देना, सत्य बोलना, प्रिय और हित की बातें कहना, वेदाभ्यास करना यह वचन का तप कहलाता है। मन की प्रसन्नता, सरल स्वभाव, मौन, विषयादिकों से मन का निग्रह तथा अपने और पराये में सदैव शुद्ध चित्त रहना मानस तप के लक्षण हैं। फल की आशा को छोड़कर जो तप उत्तम श्रद्धा से एकाग्रचित्त द्वारा किया जाता है वही सात्विक कहलाता है। जो तप कपट से सत्कार और प्रतिष्ठा के लिये किया जाता है वह क्षणिक और अनित्य राजस तप कहलाता है। बिना उचित अनुचित बिचार किये मूढ़ता धारणकर अपनी आत्मा को पीड़ादेने के लिये जो कुछ तप किया जाता है वह तामस कहलता है।

फल की इच्छा छोड़कर उत्तम स्थान में सत्पात्र को बिना उपकार का बिचार किये जो दान दिया जाता है वह सात्विक कहलाता है।

इस दान से लेने वाला मुझ पर उपकार करेगा ऐसी फलकी इच्छा करके अथवा इस भाँति विचार करके जो दान दिया जाता है वह राजस कहलाता है। अपवित्र स्थान

में, कुसमय और कुपात्र में जो दान दिया जाता है वह तामस दान कहलाता है ।

(१९)

"ॐ तत् सत्" यह तीनों शब्द ब्रह्मवाचक हैं। तीनों शब्दों के उच्चारण से ब्राह्मण, वेद और यज्ञ का निर्माण हुआ है। इसी कारण उक्त विधि के अनुसार यज्ञदान और तप को ओंकार पूर्वक वेदवेत्ता करते हैं। मोक्ष की इच्छा करने वाले पुरुष तत् शब्द का उच्चारण करके फल की इच्छा को छोड़कर अनेक भाँति के दान यज्ञ और तप करते हैं।

वस्तु का अस्तित्व और पदार्थों के आच्छादन में 'सत्' शब्द का प्रयोग होता है उसी भाँति श्रेष्ठ कर्म में सत् शब्द बोला जाता है। यज्ञ, दान, तप इन तीनों में सत् शब्द का व्यवहार होता है इनके सम्बन्धी कर्मों में भी व्यवहृत किया जाता है।

हे कौन्तेय ! हवन, दान, तप और जो कुछ कर्म बिना श्रद्धा के किये जाते हैं वे सब असत् हैं। इनसे इस लोक और परलोक का कुछ फल नहीं होता। अतः श्रद्धा-भक्ति युक्त कर्म करना चाहिये।

(२०)

अर्जुन ने कहा—हे हृषीकेश ! संन्यास और त्याग इनका सारभूत अर्थ पृथक्-पृथक् सुनने की इच्छा है अतः कृपया वर्णन कीजिये ।

हे अर्जुन ! फल की इच्छा त्याग ही संन्यास कहलाता है । नित्यनैमित्तक कर्म को करते हुये फल की इच्छा त्याग देने को भी विद्वान् पुरुष त्याग कहते हैं । कितनेही परिडतजन शास्त्र निषिद्ध मदिरादि न पीने को ही त्याग कहते हैं परन्तु कुछ ऋषियों ने कर्म, दान, तप और यज्ञ का त्याग निषेध माना है । त्याग भी सात्विकादि भेद से तीन भाँति का है ।

हे अर्जुन सुनो—यज्ञ, दान, तप तीनों ही करने योग्य हैं इनका त्याग उचित नहीं है क्योंकि तीनों बुद्धिमानों के चित्त की शुद्धि के कारण है ।

हे अर्जुन ! किसी काम में आसक्ति न रखकर फलाशा को छोड़कर कर्मों का आचरण करना चाहिये । यही मेरा निश्चित मत है । श्रुत्यादि द्वारा कहे हुए नित्य कर्मों का कभी भी त्याग करना उचित नहीं है । जो कोई पुरुष अज्ञानता से नित्यकर्मों का त्याग कर देता है वह तामस त्याग कहलाता है । जो पुरुष दुःख जानकर त्यागता है वह त्याग राजस है इस त्याग से कोई अर्थ सिद्ध नहीं होता ।

हे अर्जुन ! कर्म अवश्य करना चाहिये इस बुद्धि से जो कर्म किया जाता है और साथ ही कर्मफल की आशा नहीं रखता वही सात्विक त्याग है । सुखद कर्म में सुख का और दुःखद कर्म में दुःख का आचरण न करने से सात्विक त्याग के द्वारा कर्म बुद्धि और बलकी प्राप्ति होती है निःसन्देह इसीको निवृत्ति प्राप्ति और सन्यास कहते हैं । शरीरधारी मनुष्य संपूर्ण कर्मों का त्याग नहीं कर सकता इस कारण

कर्म फल की आशा को छोड़कर जो कर्म करता है वही त्यागी कहलाता है।

काम्यकर्म करने वाले पुरुषों की मृत्यु होने पर पापकर्म के द्वारा नरक में पुण्य कर्म के द्वारा स्वर्ग में तथा पाप पुण्य मिश्रित कर्मों के प्रभावसे मनुष्यों में जन्म होताहै परन्तु काम्यकर्मत्यागी (संन्यासी) पुरुष को उक्त फल कदापि नहीं होते।

(२१)

हे अर्जुन! ज्ञान, कर्म, कर्त्ता इनके विवरण साँख्य शास्त्र में कपिल मुनिने, सत, रज, तम गुणों के भेदसे कहे हैं। हे कौन्तेय! मैं तुम से कहता हूँ—सुनो! समस्त प्राणि-मात्र में तृण पर्यन्त ज्ञान द्वारा एकाकी, अविनाशी जो आत्म-भावना देखी जाती है वही—सात्विक ज्ञान है। जो ज्ञान समस्त प्राणी मात्र में सुख दुःखादि भेद से पृथक्-पृथक् देखा जाता है उसी को राजस ज्ञान जानो। जिस ज्ञान से एक देह, एक प्रतिमा में अथवा ईश्वर में भ्रम रूप विचार हो वही ज्ञान तामस कहलाता है।

सत्त्वादि भेदसे कर्म के भी तीन भेद हैं। हे अर्जुन! जो कर्म नित्य किया जाता है, जो आसक्ति रहित हो, राग द्वेष से वर्जित हो, तथा फल की इच्छा त्याग करके किया जाता है वह सात्विक कर्म कहलाता है। जो कर्मफल की आशा करके अहंकार पूर्वक अत्यन्त कष्ट से किया जाता है वह राजस कर्म कहलाता है। कार्य करने से अन्त में क्या फल होगा? पर

पीड़ा द्रव्यादिकों का क्षय तथा अपनी सामर्थ्य इनका कुछ भी ध्यान न रखकर कार्य में तत्पर रहना तामस कर्म कहा है।

फल की इच्छा छोड़कर निराभिमान कर्म करने में धैर्य, उद्यम करनेमें तत्पर, कार्य की सिद्धि-असिद्धि, तथा विकार रहित कर्म करनेवाले कर्त्ता सात्विक कहे जाते हैं। पुत्र पौत्रादि में प्रीति युक्त, कर्म फल की इच्छा करने वाला, लोभी, दूसरे को पीड़ा देने वाला, भीतर बाहर अपवित्र, प्रियाप्रियके प्राप्त होने में हर्ष-विषाद करने वाला कर्ता राजस कहलाता है। जो उचित मार्ग को छोड़कर विवेकशून्य, अनम्र, कपट से दूसरों का तिरस्कार करनेवाला, कपटी, आलसी, दुखी, फल की आशा से कार्य करने वाला कर्त्ता तामस कर्ता है।

(२२)

जिससे पदार्थ के तत्त्व को जान कर कार्य करने में प्रवृत्त होता है वह बुद्धि चित्त, और धृति भी सत्त्वादि गुणों के भेद से तीन प्रकार के हैं। सुनो—जो बुद्धि धर्म में प्रवृत्ति, अधर्म में निवृत्ति, योग्य कार्यमें अभय, निन्दित कर्म में भय, बन्ध और मोक्ष में उचित विचार बताती है वह बुद्धि सात्विकी है। जिस बुद्धि से धर्म और अधर्म, कार्य और अकार्य का भली-भाँति ज्ञान न हो सके उस बुद्धि को राजसी जानना। जो बुद्धि अधर्म को धर्म, पाप को पुण्य तथा झूठ को साँच, बताने वाली हो वह बुद्धि तामसी है।

चित्त वृत्ति की एकाग्रता होने से अन्य विषयों

का चिन्तन न करती हो तथा जिस धृति से मन प्राण और इन्द्रियाँ इनकी क्रियाओं का नियम नहीं किया जाता हो वही सात्विकी धृति (धैर्य) है। जिससे धैर्य पूर्वक धर्म, अर्थ, काम धारण किये जाते हैं और जिसके द्वारा पुरुष फल की इच्छा करता है वह धैर्य राजसी है। जो पुरुष अज्ञानवश दूषित बुद्धि को धारण कर अत्यन्त निद्रा, भय, शोक, खेद और अभिमान युक्त रहता है उस पुरुष का धैर्य्य तामसी जानना।

सत्वादि गुण के भेद से सुख तीन भाँति के हैं, उनको सुनो—जिस सुख में दृढ़ निश्चय होने से मनुष्य रमता है और जिससे दुःख का नाश होता है। जो सुख प्रथम विष की भाँति हो और अन्त में अमृत तुल्य फल दे तथा आत्म-सम्बन्धी बुद्धि को प्रसन्न करनेवाला हो उस सुखको सात्विक कहते हैं। जो सुख विषयेन्द्रियों के संयोग से प्रथम अमृत के तुल्य प्रतीत हो और अन्त में विष के तुल्य दुःख देने वाला हो तो उसे राजस कहते हैं। जो सुख आदि अन्त में बुद्धि को मोहित करने वाला, निद्रा, आलस्य और प्रमाद उत्पन्न करता हो वह तामस कहलाता है। इस विषय में कहाँ तक कहूँ सत्वादि तीनों गुणों से पृथ्वी पाताल, स्वर्ग से लेकर समस्त मनुष्य पशु, पक्षी आदिक कोई नहीं छूटे हैं तीनों गुण एक रूप से समस्त जगत् में व्याप्त हो रहे हैं।

(२३)

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, इन चारों वर्णों के भेद से

स्वभाव जन्म स्वरूप तथा गुण द्वारा पृथक्-पृथक् विभाग किये हैं।

चित्त की शान्ति, इन्द्रियों का जीतना, शरीर से तीन प्रकार का तप, मन और शरीर की शुद्धि, क्षमा, सहज स्वभाव, वेद और शास्त्र में यथावत ज्ञान का निश्चय, गुरु वेद शास्त्र कर्म—कर्मफल और कर्मफल दाता (ईश्वर) में भक्ति-पूर्वक श्रद्धा यही ब्राह्मणों के स्वाभाविक कर्म हैं।

शूरवीर होना, तेज, धैर्य, चतुरता, युद्धसे न भागना, उदारता और प्रजा पालन यह क्षत्रियों से स्वभाव सिद्ध कर्म हैं। खेती करना, गौ चराना, वाणिज्य करना, यह वैश्य के स्वाभाविक कर्म हैं। ब्राह्मणादिक तीनों वर्णों की सेवा करना यह शूद्र का कर्म हैं।

(२४)

जो पुरुष अपने भले-बुरे स्वधर्म को ग्रहण करके कार्य करते हैं वे निश्चिय ही ज्ञान रूप सिद्धि को पाते हैं। हे अर्जुन! धर्मानुकूल स्वकर्म करते हुए प्राणी अलभ्य ज्ञान पाता है।

जिस परमेश्वर से समस्त स्थावर जंगमात्मक प्राणीमात्र की उत्पत्ति अथवा उनकी इन्द्रियादिकों की कर्म में प्रवृत्ति होती है; जिस परमेश्वर ने इस जगत को चारों ओर व्याकर रक्खा है उस परमेश्वर की उपासना करने से मनुष्य को चित्तशुद्धि पूर्वक ज्ञान प्राप्त होता है। परधर्म से अपना धर्म नीच भी हो तो भी अपने ही धर्मानुकूल आचरण

करना श्रेष्ठ है। क्योंकि अपने धर्म के अनुकूल आचरण करने से मनुष्य दुःखों का अधिकारी नहीं होता।

हे अर्जुन! स्वभाव-कर्म यदि दोषयुक्त भी हो तो भी उसे त्याग करना उचित नहीं है जैसे धूम्र से युक्त अग्नि रहती है उसी भाँति समस्त धर्म कर्म किसी न किसी दोष से अवश्य युक्त ही रहते हैं।

हे अर्जुन! जो पुरुष स्त्री पुत्रादि में आसक्त न होकर अहंकार रहित फल की इच्छा को न करते हुये निःस्वार्थ कर्म करता है वह कर्मासक्ति त्याग कर नैष्कर्म सिद्धि (मोक्ष) पाता है।

यह सुन अर्जुन बोले—हे अच्युत! आपके अनुग्रह से मेरा मोह नष्ट हुआ मुझे अपना स्वरूपकी स्मृति होगई तथा सन्देह जाता रहा। हे जनार्दन! निःसन्देह मैं आपके सन्मुख खड़ा हूँ अब जो आज्ञा हो—कहिये।

महासमर का श्रीगणेश

और

युधिष्ठिर की शिष्टता।

भगवान के गीतोपदेश को सुन अर्जुन का मोह तत्काल जाता रहा। उनके शोक पूरित अश्रुकण एका-एक सूख गये, देखते-ही-देखते वे प्रलयंकर शंकर के समान क्षुब्ध हो उठे। भगवान श्रीकृष्ण यह देखते ही रथ को आगे बढ़ाये। इस प्रकार अर्जुन और श्रीकृष्ण को हर्षित देख पाण्डव वीरों ने गगन भेदी नाद से अवनि और अम्बर को एक कर दिया। ओह! वीरों के सिंहनाद के साथ ही अनेकों रण-वाद्य बज उठे।

दोनों ओर के जुझाउ बाजे बज रहे थे। भयंकर युद्ध के श्री गणेश का समय निकट था, दोनों पक्ष के सेनापति भिड़ जाने की आज्ञा देने ही वाले थे कि अचानक एक आश्चर्य जनक घटना आ घटी। महाराज युधिष्ठिर एका-एक अस्त्र-शस्त्र रखकर रथसे उतरे और बिना किसी से कुछ कहे हुये कौरव सेनापति श्रीभीष्मपितामह की ओर चल पड़े।

धर्मात्मा युधिष्ठिर के इस आचरण से पाण्डवों को अत्यन्त कष्ट हुआ। चारो भाई अपने-अपने रथ से उतर

पड़े और युधिष्ठिर के पीछे-पीछे चले। श्रीकृष्णजी से भी नहीं रहा गया वे भी उनके साथ हो लिये। यह विचित्र व्यापार देख पाण्डव पक्ष में कौतूहल मच गया।

मार्ग में चलते हुये अर्जुन ने कहा—हे धर्मराज! आप क्यों इस प्रकार निःशस्त्र हो शत्रुओं की सेना में जा रहे हैं? अर्जुन को इस प्रकार पुकारते देख भीम ने भी कहा-महाराज! इस समय आप पैदल ही क्यों शत्रु सेना में जा रहे हैं? नकुल और सहदेव से भी न रहा गया वे भी एक साथही बोल उठे—भाई! आप हम लोगों को छोड़कर कहाँ जा रहे हैं?

परन्तु धर्मराज निश्चल चित बढ़ते ही गये, उन्होंने किसी की भी बात का उत्तर न दिया। धर्मराज के इस मौन ने और भी लोगों को शंकित और चिन्तित कर दिया। एक टक उन्हें निहारने लगे।

इस प्रकार पाण्डवी सेना को व्यग्र देख कृष्ण ने मुसकाते हुये कहा—वीरों! चिन्ता न करो। महाराज युधिष्ठिर गुरुजनों की आज्ञा के विना युद्ध करना नहीं चाहते अतः भीष्म, द्रोणादि गुरुजनों से आज्ञा लेने के लिये जा रहे हैं।

भगवान कृष्ण की बातों से पाण्डव वीरों की चिन्ता तो जाती रही। परन्तु उधर कौरवों का विस्मय बढ़ गया। वे समझने लगे कि युधिष्ठिर डर कर भीष्म पितामह के शरण में दौड़ा आ रहा है। लोग उनकी भाँति २ की

आलोचना करने लगे। इस प्रकार शत्रुओं की सेना आनन्द से फूल उठी।

इसी समय महात्मा युधिष्ठिर बालब्रह्मचारी पितामह भीष्म के पास पहुँचे। अर्जुनादि पाण्डव भी उनके निकट आ खड़े हुये। युधिष्ठिर ने पितामह के चरण छूये और कहा—

महात्मन्! हम आप से युद्ध की आज्ञा माँगने आये हैं। हमे यथामति सम्पति और आशीर्वाद दीजिये।

पितामह अत्यन्त प्रसन्न हो प्रेम पूर्वक बोले—राजन्! मैं तुम्हारे आचरण से अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूँ। यदि मुझसे बिना मिले ही युद्ध आरम्भ कर देते तो अवश्य ही दुःख होता। हम तुम्हें हृदय से आशीर्वाद देते हैं, तुम्हारी ही विजय होगी। हे धर्मराज! कर्तव्य वश मुझे कौरवों के पक्ष में होना पड़ा है। परन्तु हृदय तुम्हारे साथ है। तुम अपने पक्ष में करने के अतिरिक्त और जो चाहो वर माँगलो।

पितामह को प्रसन्न देख धर्मराज ने कहा—हे पितामह! आप कौरवों की ओर से लड़िये परन्तु हित कारक उपदेश मुझे देते रहिये।

भीष्म ने कहा—पुत्र! हमारी इच्छा मृत्यु होगी। इच्छा नहीं रहते हुये मुझे कोई नहीं मार सकता। मेरे रहते हुयें तुम्हारी विजय नहीं हो सकती। तुम किसी दिन आकर हमसे मिलना, हम उपदेश देंगे।

इस प्रकार पितामह से आशीर्वाद ले गुरु द्रोण के पास पहुँचे और युद्ध के लिये अनुमति माँगी। द्रोणाचार्य ने कहा—पुत्र! तुम्हारी शिष्टता से मैं अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ हूँ। मेरी आज्ञा के बिना यदि युद्ध आरम्भ कर देते तो, मुझे अवश्य क्रोध होता और हृदय में तुम्हारे हार की दुर्भावना उत्पन्न होती। पुत्र! मैं प्रसन्न होकर आशीर्वाद देता हूँ—तुम्हारी ही विजय होगी। कौरवों का अन्न खाने के कारण मुझे उनका पक्ष लेना पड़ा है अतः इसके अतिरिक्त और जो कुछ तुम चाहो हम सहर्ष देने के लिये तैयार हैं।

युधिष्ठिर ने नम्रता पूर्वक कहा—भगवन्! आप कौरवों की ओर से लड़िये, परन्तु मुझे ऐसा उपदेश दीजिये जिससे हमारा कल्याण हो।

द्रोण ने हँसते हुये कहा—बेटा! जब भगवान ही तुम्हारे पक्ष में हैं, तब हम क्या उपदेश दे सकते हैं। इसके अतिरिक्त धर्म तुम्हारा रक्षक है। पुत्र! इस युद्ध में तुम्हारी ही विजय होगी। परन्तु जब तक मैं युद्ध में उपस्थित रहूँगा, तब तक तुम विजय नहीं पा सकते। अतः शीघ्र हमें अन्त कर देने की चेष्टा करना।

इसके पश्चात् कृपाचार्य के पास पहुँचे। यथा विधि प्रणाम कर युधिष्ठिर ने कहा—

आचार्य! आज्ञा दीजिये, हम शत्रुओं का नाश करें। आचार्य ने आशीर्वाद देते हुये कहा—पुत्र! हम कौरवों के

क्रीत-दास हो रहे हैं, तथापि हम आशीर्वाद देते हैं, जाओ ! इस युद्ध में तुम्हारी ही विजय होगी ।

अन्त में धर्मराज मामा शल्य के पास पहुँचे और प्रणाम कर बोले—मामा ! युद्ध की अनुमति माँगने तथा पूर्व प्रतिज्ञ की स्मृति दिलाने आया हूँ ।

शल्य ने कहा—बेटा ! मैं कपट में आकर वचन बद्ध हो गया हूं । परन्तु हृदय तुम्हारा ही है । अपनी की हुई प्रतिज्ञा मैं नहीं भूला हूँ । जाओ ! भगवान तुम्हारा मङ्गल करेंगे ।

इस प्रकार सबों से मिलकर पाण्डव वीर शत्रुओं की सेना से बाहर निकल आये । इसी बीच में कर्ण को अपने पक्ष में मिला लेने के विचार से चेष्टा के लिये कृष्ण कर्ण के पास जाकर बोले ।

महाबीर ! भीष्म के जीवित रहते तक तुमने शस्त्र न धारण की प्रतिज्ञा की है । अतः तुम्हारे अपमान करने वाले भीष्म जब तक न मारे जायँ, तब तक तुम हमारी तरफ होकर युद्ध करो । भीष्म के मरने पर दुर्योधन की सहायता के लिये चले जाना ।

कर्ण ने उत्तर दिया—केशव ! मैं महाराज दुर्योधन की अनुमति के विपरीत कुछ नहीं कर सकता । मैं दुर्योधन के लिये शरीर उत्सर्ग करने को प्रस्तुत हूं ।

हे कृष्ण ! दुर्योधन ने मेरे ही बल पर युद्ध का आयोजन किया है । मेरा आपके पक्ष में आना क्या विश्वासघात

नहीं होगा? मधुसूदन! क्या आप इसे योग्य समझते हैं? मेरी प्रतिज्ञा अचल है। मैं पाण्डवों के पक्ष से नहीं लड़ सकता। असत्य, भाषण, मित्र-घात तथा प्रतिज्ञा भंग के समान संसार में और दूसरा पाप नहीं है।

इस प्रकार कृष्ण असफल हो पाण्डवों की सेना में आ मिले। कौरवों की सेना से बाहर निकलते ही धर्मराज ने जोर से पुकार कर कहा—इस सेना में जो कोई हमारा शुभेच्छु हो तथा धर्म का रक्षक हो वह निर्भय हमारे पास चला आवे, हम उसे प्रेम- पूर्वक अपनाने को तैयार हैं।

यह सुनते ही धृतराष्ट्र के उपपत्नी का पुत्र महाबली युयुत्सु कौरवों की सेनासे बाहर हो बोला—मैं अधर्मी कौरवों को त्यागता हूँ। धर्म की रक्षा के लिये उनसे लड़ूँगा। धर्मराज ने उसे हृदय से लगा लिया। सभी लोग धर्मराज की प्रशंसा करने लगे। चारों ओर एक साथ ही दुन्दुभी और भेरी बज उठे।

युद्ध का पहला दिन।

ओह! देखते ही देखते लड़ाई का बिगुल बज उठा। चारो ओर से एक साथही दुन्दुभी और भेरी के शब्द सुनाई पड़ने लगे। मारू वाजा कर्ण गोचर होते ही वीरों की बाँछें खिल उठीं वे तत्काल सिंह गर्जन करते हुये रथों पर जा चढ़े और अपने-अपने धनुष को उठा लिये।

इसी समय दुर्योधन की आज्ञा पा दुःशासन ने महाबली भीष्म पितामह को व्यूह के आगे किया और बड़े-बड़े प्रतापी महारथियों को लेकर पांडवों पर आक्रमण करने के लियें पैर बढ़ाया। यह देखते ही पाण्डु वीर महाबली भीम मत-वाले साँड़ की तरह गर्जते हुये अपनी सेना लेकर शत्रुओं पर टूट पड़े। देखते ही देखते महा समर का श्री गणेश हो गया। प्रलयार्णव की उत्ताल तरङ्गों के समान दोनों सेनायें प्रचण्ड वेग से परस्पर भिड़ गयीं। उन वीरों के के सिंहनाद से दिशायें गूँज गईं तथा पृथ्वी थर्रा उठी।

ओह! तत्काल भयङ्कर संघर्ष हो चला। देखते ही देखते महा घोर संग्राम होने लगा। सेना की चाल से इतनी धूल उड़ी कि सर्वत्र अन्धकार ही अन्धकार छा गया। दिशायें तम पूर्ण हो गईं तथा सूर्य धूम्राछन्न हो उठा। इसी समय दोनों पक्ष के महारथी अपने-अपने जोड़ के वीरों और महा-रथियों से भिड़ गये। महारथी अर्जुन भीष्म पितामह के साथ डट गये। भीमसेन दुर्योधन से जा भिड़े। युधिष्ठिर

मद्रराज से युद्ध करने लगे। विराट भगदत्त के साथ भिड़ गये तथा सात्यकि कृतवर्मा से जा लड़े। इसी प्रकार परस्पर दोनों सेना सेनाओं के वीरों का घमासान युद्ध होने लगा।

कुछ देर तक वीरों का बड़ा ही घोर युद्ध होता रहा परन्तु कोई किसी को नहीं हटा सका। दोनों सेनाओं की विकट मोर्चा तथा दुर्भेद्य व्यूह रचना किसी से भी नहीं टूट सका। सैनिकों का मारो काटो शब्द, शंख और भेरी की भयंकर ध्वनि, महावीरों का गगन तेटी सिंहनाद, धनुष, प्रत्यञ्जाओं की टङ्कार, शस्त्रों की झंन्कार, दौड़ते हुये मत्त गजों का घण्ट नाद और रथो की वज्र तुल्य घर-घराहट से दिशायें भर गईं तथा पृथ्वी और आकाश एक हो गया।

दोपहर तक इसी प्रकार भयंकर युद्ध होता रहा। परन्तु कोई भी आगे नहीं बढ़ सका। पश्चात् महाबली भीष्म पाण्डवों के एक अरक्षित और व्यूह के कमजोर स्थान पर महारथियों को लेकर दौड़ पड़े।

पाण्डवों के उस व्यूह भाग का रक्षक महाबली अर्जुन का तेजस्वी पुत्र अभिमन्यु था। एका-एक शत्रुओं को आक्रमण करते देख वह तनिक भी भयभीत नहीं हुआ बल्कि और निडर होकर शत्रुओं का नाश करने लगा। उसने देखते-ही-देखते कृतवर्मा और शल्य को पैने बाणों से छेद दिया। कृपाचार्य के स्वर्ण खचित धनुष को काट गिराया तथा भीष्म को भी व्यग्र कर दिया।

अभिमन्यु की विकट मार से भीष्म क्रोधित हो उठे।

उन्होंने शीघ्र ही अभिमन्यु के रथ की ध्वजा काट डाली और सारथी को घायल कर उसे तीन बाणों से छेद दिया— परन्तु वीर बालक समर में हिमालय सा अचल रहा।

अभिमन्यु क्षुब्ध केहरी के समान कड़क उठा। उसने शीघ्रही बाणों की विकट वर्षा से कौरवों को कंपा दिया। उसके धनुष से छूटे हुये बाण दिशाओं में भर गये। वह कौरवों के बीच में निर्भय युद्ध करता हुआ आगे बढ़ चला। इसी समय अर्जुन-तनय ने अवसर पाकर भीष्म के रथ की ऊँची तालध्वज काट दी जिसके गिरते ही कौरवों के दल में हाहाकार मच गया। सभी प्रचण्ड वेग से भीष्म की रक्षा के लिये दौड़ पड़े। इसी समय भीम आदि दश महारथियों ने आकर कौरवों के विकट आक्रमण को रोक लिया।

इसी समय उत्तर ने शल्य पर आक्रमण किया। बाण लगने से उत्तर का हाथी बिगड़ उठा और शल्य के रथ के घोड़ों को कुचल डाला। महाबली शल्य ने अत्यन्त क्रोधित हो एक भारी लौह शक्ति से उत्तर को मार गिराया।

उत्तर के गिरते ही पाण्डवी सेना में हाहाकार मच गई। सभी शोक से व्याकुल हो गये। दिन का अवसान भी हो रहा था। सूर्य पश्छिम जलधि के निकट पहुँच चुके थे, सेनापति अर्जुन की आज्ञा से लड़ाई बन्द हो गई। इस प्रकार इस भयंकर युद्ध का पहला दिन समाप्त हुआ।
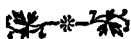
युद्ध का दूसरा दिन ।

इस प्रकार दिन भर भयंकर संग्राम कर दोनों सेनायें अपने-अपने शिविरों में पहुँची । उधर कौरव अपनी जीत से प्रसन्न हो रहे थे और इधर उत्तर की मृत्यु से पांडव दल में दुःख और शोक छा रहा था । अपनी पराजय देख युधिष्ठिर अत्यन्त डर गये और भाइयों, मन्त्रियों तथा श्री सभासदों को बुलाकर श्रीकृष्ण से बोले—

हे केशव ! भीष्म के सन्मुख बड़े-बड़े महारथियों के छक्के छूट गये । वे अग्नि रूप होकर हमारी सेना को जला रहे हैं । हाय ! हमारे ही अपराध से हमारे भाइयों और सहायकों को यह मार सहनी पड़ती है—मधुसूदन ! मैं इसकी अपेक्षा तपस्वी जीवन व्यतीत करना चाहता हूँ ।

युधिष्ठिर को शोकातुर देख श्रीकृष्ण ने उत्साह देते हुये कहा—

हे धर्मराज ! आप को शोक करना उचित नहीं । आपके बड़े-बड़े महाबली महारथी और धनुर्धारी सहायक हैं । आप क्यों चिन्ता करते हैं ? जब महारथी धृष्टद्युम्न आपके प्रधान सेनापति हैं ? तब आप चिन्ता क्यों करते हैं ? इस प्रकार सबों ने कह सुन कर धर्मराज को उत्तेजित किया ।

दूसरे दिन सवेरा होते ही मारू बाजा बज उठा । पांडवो

ने फिर अपनी सेना का व्यूह बनाया। चारों ओर से किले-बन्दी कर सब के आगे अर्जुन का कपिध्वज खड़ा किया। उनके दाहिने बायें हजारों महारथी खड़े हुये बीच में उनकी रक्षा के लिये लाखों वीर शस्त्रास्त्रसज्जित हो हुये। बीच में धर्मराज का श्वेत पताका का रथ खड़ा किया गया। इस प्रकार युद्ध के लिये सूर्य्योदय की बाट जोहने लगे।

पांडवों के विकट व्यूह को देख दुर्योधन ने आचार्यादि वीरों से कहा—महावीरों! आप लोग संसार के अद्वितीय वीर हैं। आप लोग भी व्यूह रचना कर युद्ध कीजिये। यह बात सबों को पसन्द आई देख भीष्म ने भी तत्काल एक दुर्भेद्य व्यूह की रचना की।

देखते ही देखते भगवान दिवाकर पूर्वाचल से निकल पड़े। अब क्या था जुझाऊ बाजे बज उठे, दोनों ओर की सेनायें झुक पड़ी और मार काट करने लगी। कुछ ही देर में प्रलय का दृश्य उपस्थित हो गया।

बड़ी लड़ाई हुई सहस्रों सैनिक कट-कट कर पृथ्वी पर गिरने लगे। रणस्थलि रक्त रंजित हो उठी—भीष्मका तेज उठते हुये दिवाकर के समान बढ़ने लगा। उन्होंने आज फिर पाण्डव सेना में हाहाकार मचा दिया।

अपनी सेना को कलकी तरह पुनः पीड़ित देख अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा—भगवन्! आप शीघ्र मेरे रथ को भीष्म के पास ले चलिये। महावीर भीष्मजी बाणों से हमारी सेना का नाश कर रहे हैं।

शीघ्रही धनंजय का कपिध्वज दुराचारी कौरवों का संहार करता हुआ भीष्म के पास पहुँचा। दोनों प्रचण्ड तेजधारी पराक्रमी वीर भिड़ गये। इस प्रकार भीष्मार्जुन का परस्पर भयंकर युद्ध होने लगा। दोनों ओर के सैनिक उत्सुक हो इन महारथियों का युद्ध देखने लगे।

इसी समय महावली वृकोदर ने कौरवों पर भीम वेग से आक्रमण किया। भीम के भयंकर आक्रमण से कौरवी सेना में हाहाकार मच गई। उनकी गदा के घात से हाथियों के झुंड चिग्घाड़ करते हुये भूमि पर गिरने लगे। शत्रुओं के वड़े-वड़े रथी महारथी सहित चूर-चूर होकर पृथ्वी में घुसने लगे तथा वड़े-वड़े योद्धा वात-की-वात में मरने लगे। भीम ने वड़े २ वीरों को खींच-खींच कर पीस डाला।

इस प्रकार भीम के उग्र रूप को देख सारी कौरवी सेना घवड़ाई हुई ओर रक्षा के लिये भीष्मके पास भाग खड़ी हुई।

इस प्रकार भागते देख कलिंगों ने भीम के आक्रमण को रोकना चाहा। यह देख भीम और भी प्रज्वलित हो उठे और अविराम गदा घात से उन्हें चूर-चूर कर दिये।

महावली भीम ने प्रलय मचादी। भीम के भीषण कर्म को देख भीष्म स्वयं उस ओर मुड़े और भीमसेन के तथा उनके रक्षकों के घोड़ों को काट डाले। इसी समय महावली सात्यकि ने आकर भीष्मके सारथि को मार गिराया सारथि के मारते ही घोड़े भड़क उठे और रथ को लेकर कौरव वीरों को कुचलते हुये रण भूमि से भागे।

भीष्म को न देख अच्छा अवसर जान अर्जुन और उनके तेजस्वी पुत्र ने भीम वेग से कौरवों पर आक्रमण किया। दोनों पिता पुत्र विकराल बाणों से शत्रुओं को यमलोक भेजने लगे। अर्जुन और अभिमन्यु की भयंकर मार से कौरवी सेना काँप उठी। देखते-ही-देखते भीष्म का रचा हुआ दुर्भेद्य व्यूह छिन्न-भिन्न हो गया।

इसी समय महात्मा भीष्म पुनः युद्धभूमि में लौट आये और कौरवों का सर्वनाश देख आचार्य्य द्रोण से बोले—

हे आचार्य! देखो। धनंजय किस प्रकार कौरवों का नाश कर रहे हैं। वह देखिये अभिमन्यु क्या कर रहा है? अब आज सेना संगठित कर अर्जुन से युद्ध नहीं हो सकता। देखिये—सारी सेना भागी जा रही है। दोनों महारथियों की मार से सबों के पैर उखड़ चुके हैं। उधर देखिये भानु भी अस्ताचल पर पहुँचना ही चाहते हैं। इस समय सेना को डेरों पर जाने की आज्ञा देने के अतिरिक्त और क्या हो सकता है?

भीष्म की बातें समाप्त होते ही कौरवी सेना में हाहाकार मच गयी। सबों ने युद्ध के मैदान की ओर पीठ कर दी। यह देख कृष्णार्जुन ने आनन्द-पूर्वक जोर से शंख बजाया।

देखते-ही-देखते सूर्यास्त हो गया। पृथ्वी पर धीरे-धीरे अंधकार का साम्राज्य बढ़ने लगा। दोनों सेनायें अपने-अपने शिविरों में पहुँची और भविष्य पर विचार करती हुई विश्राम करने लगीं।

युद्ध का तीसरा दिन।

सूर्योदय होते ही युद्ध का डंका बज गया। यथा समय दोनों सेनायें जा भिड़ी। आज भी अर्जुन ने बड़ी वीरता दिखाई उनके विचित्रबल—विक्रम और प्रचण्ड प्रताप को कौरव नहीं सह सके। उनके प्रलय कारी बाणों से घबड़ा कर सारी सेना भागने लगी।

अपना विकट पराजय देख दुर्योधन का मुँह पीला पड़ गया। अत्यन्त शोका-कुल होता हुआ भीष्म के पास पहुँच कर बोला —

हे पितामह! आप और द्रोणादि वीरों के रहते हुये कौरवी सेनामें हाहाकार मच रही है—यह कैसी बात है? अपनी सेना की दुर्दशा देख कर भी आप लोग यत्न नहीं करते इससे तो स्पष्ट विदित होता है कि आप लोग पाण्डवों से मिले हैं। उन्हें आप जान बूझ कर जिताना चाहते हैं। यदि हम इसे पूर्व में जानते तो कभी युद्ध ही नहीं ठानते।

दुर्योधन की बातें सुन भीष्म की आखें लाल हो उठीं उन्होंने भौंहे टेढ़ी करके कहा।

दुर्योधन! तुम यह क्या कह रहे हो हो? हमने तुम्हें बार-बार कहा है कि पाण्डव बड़े पराक्रमी हैं—उनका जीतना कपट का पाँसा नहीं है। तुम यह कभी न समझना

कि पितामह अपने कर्तव्य में त्रुटि करते हैं। मैं शक्ति भर तुम्हारी सहायता करूँगा।

इतना कहते-कहते भीष्म उस अपार तरंग पूर्णजन-सागर में कूद पड़े और शीघ्रही धनुष को मण्डलाकार कर विद्युत तुल्य वाण वरसाने लगे। महावीर भीष्म के पैने वाणों ने वात-की-वात में प्रलय मचा दी। चारोओर वड़े वड़े महारथी कटकट कर गिरने लगे। इस प्रकार भीष्म की मार से पाण्डव पक्ष के वीर भय और विस्मय से काँप उठे। धीरेधीरे पाण्डवी सेना के पैर उखड़ गये। पाण्डवों का भयंकर पराजय महातेजस्वी कृष्ण से नहीं देखा गया उन्होंने अर्जुन को धिक्कारते हुये कहा—

हे अर्जुन! क्या तुम विक्षिप्त से हो? यदि होश में हो! यदि तुम्हारी बुद्धि ठिकाने हो तो तुम शीघ्र भीष्म पर आक्रमण करो—देखो! भीष्म की मार से तुम्हारी सारी सेना भागी जा रही है। रणस्थल में तुम्हें रहते हुये पाण्डव सेना की यह दुर्दशा हो। शोक!

इस प्रकार कहते हुये भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन के रथ को भीष्म के सन्मुख ले आये।

फिर दोनों महारथियों में घोर युद्ध होने लगा। अर्जुन ने अपने हस्त लाघव से बार-बार भीष्म के धनुष को काट डाला। महात्मा भीष्म अर्जुन की चतुरता और हस्त लाघव देख अत्यन्त प्रसन्न हो प्रशंसा करने लगे। और इधर अर्जुन भी वृद्ध पितामह की वीरता धीरता और गंभीरता

देख विस्मित हुये विना नहीं रहे। वे भीष्मजी की वीरता से इतने मुग्ध हो गये कि उन्हें अधिक पीड़ित करने का विचार छोड़ दिये।

इधर पाण्डवों ने भीम वेग से कौरवों पर आक्रमण किया। उधर भीष्म को महावली अर्जुन रोक रक्खे थे—पाण्डवों को अपना विक्रम दिखाने का अच्छा अवसर मिला। महावली पाण्डुवीरों ने कौरवों के दश सहस्र रथ, सात सौ हाथी, सौ पूर्वी वीर और सहस्रो क्षुद्रक देशके वीरों को मार गिराया।

कौरवों की धीरजा छूट गयी। उनका उत्साह जाता रहा। वे अत्यन्त पीड़ित हो भाग खड़े हुये। इसी समय दुर्योधन की आज्ञा से उस दिन का युद्ध समाप्त हुआ।

भीषण समर
और
इरावान वध ।

—*—*—

इसी प्रकार चौथे पाचवें और छठे दिन लड़ाई हुई। प्रति दिन पाण्डवों की ही जीत रहती। सातवें दिन कौरवों ने महा विकट व्यूह बनाया। पाण्डवों ने भी शृङ्गाटक नामक व्यूह बना कर कौरवों का सामना किया।

भयंकर निर्घोष करता हुआ भीष्म का रथ आगे बढ़ा। पितामह को सूर्य समान आते देख अर्जुन उन्हें रोकने के लिये आगे बढ़े परन्तु वृद्ध समझ कर उनसे कठोर युद्ध नहीं किये। फल यह हुआ कि कुछ ही क्षण में भीष्म का मार से पाण्डवी सेना विचलित हो उठी।

भीम से यह नहीं देखा गया। वे क्रोध पूर्वक भीष्म से जा भिड़े। यह देख उसी समय दुर्योधन भी भीष्म की सहायता के लिये आ पहुँचे। परस्पर बड़ी लड़ाई हुई। भीष्म से युद्ध करते हुये महाबली भीम ने अद्भुत कार्य किया। उन्होंने एक ही प्रहार में भीष्म के सारथि को मार गिराया, सारथि हीन घोड़े भड़क उठे और पितामह को रण भूमि से ले भागे।

धृतराष्ट्र पुत्रों को देख भीम की क्रोधाग्नि दहक उठी,

उन्होंने बात-की-बात में कितने ही कौरवों को मार गिराया, भीम को इस प्रकार संहार करते देख धृतराष्ट्र-पुत्र बुरी तरह डर गये और भाग चले। अपने पुत्रों की दुर्दशा का हाल सुन धृतराष्ट्र बड़े दुखी हुये।

धीरे-धीरे युद्ध का आठवा दिन पहुँचा। आज नाग कन्या उलूपी से उत्पन्न अर्जुन तनय इरावान ने बड़ी वीरता दिखाई। वह नागलोक से पिता की मदद के लिये बड़ी भारी सेना लेकर आया था। उसने देखते-ही-देखते कौरवों की अनन्त सेना काट डाली।

इरावान को बढ़ते देख सुबल देश के सैनिकों ने घेर लिया। परन्तु इरावान हिमालय सा अचल खड़ा रहा। उसने शीघ्र ही सहस्रों सैनिकों को धराशायी कर दिया। दुर्योधन ने शकुनि की रक्षा के लिये एक और सेना भेजी परन्तु इरावान के सन्मुख कोई जीता न बचा। शकुनि किसी प्रकार भाग कर प्राण बचा सका।

इरावान की मार से कौरवी सेना को काँपते देख दुर्योधन के क्रोध का ठिकाना नहीं रहा। उसने शीघ्रही उसे मारने के लिये बकासुर के सम्बन्धी आर्ष्यश्रृङ्ग को भेजा। दोनों में बड़ी लड़ाई हुई। इरावान ने आर्ष्यश्रृङ्ग को घायल कर दिया। तब आर्ष्यश्रृङ्ग ने माया करना आरम्भ किया। वह तत्काल आकाश में उड़ गया और बाण-वृष्टि करने लगा। परन्तु इरावान ने वहाँ भी उसका साथ नहीं छोड़ा। वहाँ भी उसे बाणों से पीड़ित करता रहा। इरावान की मार

से आर्य्यश्रृङ्ग का शरीर चलनी हो गया। इस प्रकार वह राक्षस अत्यन्त क्रोधित हो उठा और शीघ्र ही भयंकर रूप धारण कर इरावान को मोहित कर तीक्ष्ण खड्ग से उसका सिर काट लिया। इरावान के मरने पर कौरवों को बड़ा आनन्द हुआ।

अर्जुन अविराम युद्ध में लगे थे। उन्हें इस घटना की कुछ भी खबर नहीं हुई। घटोत्कच भाई इरावान को मरते देख क्षुब्ध हो उठा और दानवी दल लेकर कौरवों पर टूट पड़ा। दुर्योधन की रक्षा में वंग नरेश ने अपना शरीर दे दिया। बड़े-बड़े वीरों की आहुतियाँ पड़ गई परन्तु घटोत्कच का क्रोध शान्त नहीं हुआ। उसकी मार से कौरवी सेना भयभीत हो भाग खड़ी हुई।

यह देख भीष्म आगे बढ़े और वीरों को शान्त्वना दे लौटा लाये। उन्होंने भगदत्त को घटोत्कच से लड़ने के लिये उत्साहित किया तथा दुर्योधन को स्वरक्षित स्थान पर पहुँचा दिया।

युद्ध करते हुये अर्जुन भीमके मुँहसे इरावान की मृत्यु सुन अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे। वे प्रलयकारी काल के समान कौरवों का अन्त करने लगे। आज कौरव चमू में भीमार्जुन का अपूर्व बल विक्रम देखा गया।

धीरे-धीरे सूर्यास्त हो गया। कौरवी सेना निराश और उत्साह हीन होकर अपने शिविर की ओर लौट चली।

कृष्ण का प्रतिज्ञा भङ्ग

पाण्डवों की मार से अपनी सेना को व्यथित देख दुर्योधन विलाप करते हुये अपने मंत्रियों और शूर सामन्तों से बोला—वीरो! बड़ी आश्चर्य की बात है। भीष्म, द्रोण, और कृपाचार्य के रहते हुये पाण्डव नहीं जीते जा सके। हाय! क्या सचमुच पांडवों की ही विजय होगी?

दुर्योधन को विलाप करते देख कर्ण ने शांत्वना देते हुये कहा—हे भरतवंशावंश! आप शोक न करें। मैं निश्चय ही पांडवों पर विजय प्राप्त कर आपका मनोरथ सफल करूँगा। भीष्म पांडवों पर दया रखते हैं, दूसरे वे बड़े अभिमानी हैं, अपनी योग्यता से बढ़कर बातें किया करते हैं। यदि वे शस्त्र त्याग कर सेनापति का पद मुझे दे दें, तो हम दिखला दें कि किस प्रकार वे नष्ट किये जाते हैं।

इसके अनन्तर दुर्योधन उसी प्रकार विलाप करता हुआ भीष्म के शिविर में पहुँचा और उन से बोला—हे महावीर! आपके रहते हुये हमारी आशायें फलवती नहीं हुईं, शोक! मुझे तो आपका बड़ा भरोसा था। हे शत्रुमर्दन! पांडवों पर प्रीति, मुझसे द्वेष अथवा हमारे दुर्भाग्य के कारण यदि आप पांडवों का संहार करने में मुँह मोड़ते हों तो सेनापतित्व का पद हमारे शुभ-चिन्तक महाबली कर्ण को दे दीजिये।

दुर्योधन के वाक्य-बाणों से भीष्म क्षुब्ध हो बोले—

राजन्! मैं प्राणों की बाजी लगा कर नित्य पांडवों का सामना कर रहा हूँ, किन्तु तुम हमारा अपमान करने में बाज़

नहीं आते। मोह के कारण तुम्हारी बुद्धि नष्ट होगई है, इस समय तुम ज्ञानान्ध हो रहे हो इसी कारण मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ। अर्जुन की वीरता तुम नहीं जानते? गंधर्वों के हाथ से तुम्हें किसने बचाया था? विराट नगर में अर्जुन द्वारा पराजय स्मरण नहीं है? पांडवों का बल पौरुष देखते हुये फिर भी तुम्हें आश्चर्य हो रहा है। हम अपनी प्रतिज्ञा पर अटल हैं। जाओ, कल हमारा महायुद्ध होगा।

दूसरे दिन सवेरे ही महाबली भीष्म ने सर्वतोभद्र नामक व्यूह बनाया। पांडव भी व्यूह रचना कर आगे बढ़े। आज भीष्म ने बड़ा उग्र रूप धारण किया। उन्होंने दावाग्नि के समान पाण्डव चमू को जलाना आरम्भ किया। कुछ ही देर में भीषण प्रहार से पाण्डवी सेना भागने लगी।

भीष्म का प्रहार उत्तरोत्तर बढ़ताही गया। महापैने अस्त्र शस्त्रों ने पांडव दल को ढँक लिया। भीष्म की मार से बड़े-बड़े महारथी घबड़ा उठे, सभी विह्वल और व्याकुल हो गये। चारों ओर सेना की दुर्दशा और अर्जुन की उदासीनता देख कृष्ण को बड़ा क्रोध हुआ, उन्होंने रथ खड़ा कर कहा—

हे अर्जुन! यह क्या कर रहे हो? क्षात्र धर्म स्मरण कर सन्ताप को त्याग युद्ध करो। भीष्म की मार से सारी सेना भागी जा रही है। अर्जुन ने कहा—

भगवन्! पूज्यों को मार कर नरक की यन्त्रनाओं से बनवास का दुःख कहीं अच्छा था। मैंने आपके उपदेश से युद्ध किया है। मैं आपकी आज्ञा-पालन के लिये तैयार हूँ।

श्रीकृष्ण ने हँसते हुये अर्जुन का रथ भीष्म के सन्मुख खड़ा कर दिया। परन्तु भीष्म की भीषण बाण-वर्षा से अर्जुन व्यग्र हो उठे। भीष्म ने सहस्रों योद्धाओं को मार गिराया।

भीष्म द्वारा पांडवों का सर्वनाश होते देख श्रीकृष्ण अत्यन्त क्रोधित हो उठे। वे शीघ्र-रथ चक्र ले भीष्म की ओर दौड़ पड़े। क्रोधावेश में अपनी प्रतिज्ञा का ज्ञान नहीं रख सके।

भगवान कृष्ण के रौद्र रूप को देख सारे कौरव थर्रा उठे। महामति भीष्म धनुष बाण रख कर सिर झुका लिये और नम्रता-पूर्वक हाथ जोड़कर बोले—भगवन्! लीजिये यह भीष्म का सिर आपको भेंट है। अर्जुन ने तुरत रथ से कूद कर श्रीकृष्ण का हाथ पकड़ लिया।

पितामह भीष्म की नम्रता और शिष्टता से श्रीकृष्ण का क्रोध जाता रहा। उन्होंने रथचक्र को पृथ्वी में डाल अर्जुन से कहा—धनंजय! तुम इतने बड़े वीर और साहसी होकर भी इस प्रकार मोह में क्यों लिप्त हो जाते हो! क्या अब तक तुम्हारा मोह और शोक नहीं गया? शोक! भीष्म पितामह तुम्हारी सेना का इस प्रकार नाश करें और तुम तमाशा देखते रहो। गाण्डीव को धिक्कार है।

श्रीकृष्ण की बातों से अर्जुन अत्यन्त लज्जित हुये और भगवान के पैरों पर गिरकर क्षमा माँगते हुये बोले—भगवन्! अब मुझे कभी शिथिल नहीं देखेंगे।
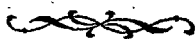
भीष्म का अन्त

युद्ध का नौवाँ दिन बड़ा भयंकर था। बड़े-बड़े वीरों के हुङ्कार से पृथ्वी काँप उठी थी। भीष्म की विकट मार से भगवान कृष्ण को अपनी प्रतिज्ञा त्यागनी पड़ी थी। शिविर में पहुँचते ही पाण्डव आपस में विचार करने लगे।

उसी रात में सभी श्रीकृष्ण के साथ पितामह के पास पहुँचे और बोले-भगवन्! किस प्रकार हमारी विजय होगी। पितामह ने कहा—पाण्डवो! जब तक हमारे हाथ में धनुष है तब तक तुम्हारी विजय नहीं हो सकती। देवता भी मेरा सामना नहीं कर सकते। परन्तु मैं अब संसार में नहीं रहना चाहता हूँ। मैं तुम लोगों पर अत्यन्त प्रसन्न हूँ। मैं अब अपने नाश का उपाय बतलाता हूँ। सुनो—

तुम्हारे पक्ष का योद्धा द्रुपद-पुत्र शिखण्डी पूर्व जन्मका स्त्री है। वह मुझे मारने के लिये शंकर की तपस्या कर वर पाया है। उसी से हमारी मृत्यु होगी। मैं नपुंसक और स्त्रियों पर शस्त्र नहीं चलाता। उसे देखते ही मैं शस्त्र चलाना बन्द कर दूँगा। उस समय तुम लोग मुझे मार लेना।

इसके अनन्तर पाण्डवगण पितामह को प्रणाम कर

शिविर की ओर चले। सभी पितामह भीष्म की उदारता और सरलता पर मुग्ध हो वारंवार प्रशंसा करने लगे। इधर अर्जुन लज्जा और आत्मग्लानि में डूब गये। इस प्रकार पाण्डवों को मोहावेश में देख श्रीकृष्ण ने अनेक उपदेश दिया। जिससे उनके मोह जाते रहे और वे शत्रुओं के नाश ने लिये तैयार हो गये।

सूर्यदेव के क्षितिज में पहुँचते ही युद्ध का डंका वज उठा। दोनों और की सेनायें आत्मोसर्ग के लिये तैयार हो गईं। वड़ी भीषण लड़ाई हुई। पांडवों के प्रवल पराक्रम से कौरवी सेना भाग खड़ी हुई।

इसी समय पितामह भीष्म आगे वढ़े और काळान्तक के समय संहार करने लगे। उन्होंने पैने वाणों से दस सहस्र अश्वरोही और एक लाख पैदल सेना को काट गिराया। इस प्रकार कुछ ही देर में पाण्डव सेना में घोर आतंक और विकट शोक छा गया।

उसी समय शिखण्डी की रक्षा करते हुये अर्जुन आगे वढ़े। शिखण्डी को अपनी ओर आते देख भीष्म ने अपना मुँह फेर लिया। अव क्या था? शिखण्डी के लिये यह स्वर्ण संयोग था। अर्जुन ने कहा—वीरवर! यही तुम्हारे लिये उत्तम समय है, तुम शीघ्र ही पितामह को वाणों से विद्ध कर दो।

पितामह ने आज भी अपना विचित्र कौशल दिखलाया। उनके प्रवल आक्रमण से अर्जुन विचलित हो उठे। इस

प्रकार भीष्म को भयंकर नाश करते देख अर्जुन शिखण्डी के पीछे होकर पितामह पर प्रहार करना आरम्भ किये। इसी बीच में अनेकों वीर भीष्म पर प्रहार करने लगे। परन्तु बाल ब्रह्मचारी भीष्म अचल रहे।

यह भीषण युद्ध देर तक चलता रहा। अर्जुन ने निशाना लगाकर भीष्म का धनुष काटडाला। उन्होंने शीघ्र ही दूसरा धनुष लेकर युद्ध करना आरम्भ किया। अर्जुन ने बार बार उनके धनुष को काटा, परन्तु भीष्म पितामह विचलित नहीं हुये। हाँ अत्यन्त क्षुब्ध होकर उन्होंने अर्जुन पर एक शक्ति फेंकी। परन्तु अर्जुन ने बीच ही में उसका अन्त कर दिया।

इस प्रकार संग्राम करते हुये भीष्म ने सोचा कि मरने के लिये इससे अच्छा अवसर हाथ नहीं आयेगा। रणभूमि में युद्ध करते हुये प्राणोत्सर्ग करना सद्यः स्वर्ग से कम कम नहीं है।

इधर अर्जुन और शिखण्डी बराबर उन्हें बाणों से पीडित कर रहे थे, धीरे-धीरे उनका शरीर बाणों से एकदम विद्ध गया। कुछ ही देर में पितामह का प्रयेक अंग घावों से भर गया। इस भाँति सूर्यास्त होते-होते वे भी रथसे लुढ़क पड़े। उनके इस प्रकार गिरते ही कौरव-सेना में हाहाकार मच गया। सर्वत्र शोक और सन्ताप की काली घटायें घिर गईं।

शर-शैय्या पर।

पराक्रमी 'द्यु' वसु के गिरते ही हाहाकार मच गया। दुर्योधन शीघ्र ही दुःशासन को आचार्य्यके पास भेजा। महर्षि द्रोण अमंगल समाचार सुनते ही रथ पर मूर्छित हो गिर पड़े। सभी लोग किं कर्तव्य विमूढ़ हो एक दूसरे की ओर देखने लगे, होश में आते ही आचार्य ने युद्ध वन्द करने की आज्ञा दी, सभी कौरव और पाण्डव एकत्र ही भीष्मजी के पास पहुँचे।

सबों ने श्रद्धा पूर्वक पितामह को प्रणाम किया और उनके चारो ओर घेर कर खड़े हो गये। पश्चात् भीष्म ने सबों का स्वागत कर कहा-वीरों! हमारा सारा शरीर वाणों से विद्ध है, हम इन वाणों पर लेटे हुये वीरोचित सुख का अनुभव कर रहे हैं परन्तु हमारा सिर नीचे लटक रहा है। यदि आप लोग उचित तकिये का प्रवन्ध कर दें तो वहुत उत्तम हो।

भीष्म की वातें सुन दुर्योधन ने वहुत से तकिये मँगवाये परन्तु पितामह ने उनको ग्रहण नहीं किया। उन्होंने निकट ही खड़े अर्जुन को कातर दृष्टि से देखा—अर्जुन शोक-संताप से व्याकुल हो रहे थे। उनके युग लोचनों से आँसुओ की झड़ी अविराम चल रही थी। उन्होंने पितामह के संकेत को समझ लिया और गाण्डीव उठा कर तीन वाणों के द्वारा

लटकते हुये सिर को ऊँचा कर दिया। वे वाण तकिये का काम देने लगे। शर शय्या के अनुरूपही तकिया भी लग गया। इस प्रकार सन्तुष्ट हो पितामह ने बड़े प्रेम से अर्जुन को हृदय से लगा लिया।

इसके अनन्तर भीष्म ने जल पीने के लिये माँगा। कौरव वीर शीघ्र दौड़ गये और भाँति-भाँति के मिष्टान्न और स्वादिष्ट निर्मल शीतल जल ले आये। परन्तु पितामह ने अस्वीकार कर दिया। वे आशाभरी दृष्टि से पार्थ को ओर देखने लगे। अर्जुन ने तत्काल गाण्डीव को उठाया और उनके दक्षिण ओर वरूणास्त्र से पृथ्वी को फाड़ कर पाताल गंगा का जल बाहर किया।

शीघ्रही विमल शीतल जल की धारा प्रवाहित होकर पितामह के मुँह में गिरने लगी।

इसी वीच में दुर्योधनादि वीरों ने पितामह की चिकित्सा के लिये वैद्यों को बुलवाया। परन्तु उन्होंने अस्वीकार करते हुये कहा—दुर्योधन! अब मुझे चिकित्सा कराने तथा शरीर से अस्त्र शस्त्रों को निकालने की आवश्यकता नहीं है। अब मेरे शरीर त्यागने का समय आ गया है। सूर्य उत्तरायण होने पर हम शरीर त्याग करेंगे। उस समय शरशैय्या सहित इस शरीर को दग्ध कर देना।

प्रिय पाठकों! बाल ब्रह्मचारी भीष्म की ओर निहारो। सारा शरीर बाणों से छिदा है। फिर भी उनके मुख मण्डल पर दुःख के चिन्ह दिखलाई नहीं पड़ते। कितनी बड़ी

धीरता और गंभीरता है। कैसा अपूर्व उत्साह और बल-विक्रम है। निःसन्देह जब तक पृथ्वी पर जीवोंकी सृष्टि होती रहेगी तब तक महात्मा भीष्म का नाम—बाल ब्रह्मचारी पितामह की कीर्ति दिशायों में गूँजती रहेगी।

इसके पश्चात् सभी कौरव और पाण्डव पितामह की प्रदक्षिणाकर वहाँ से चलने लगे, सबों के चले जाने पर पितामह ने दुर्योधन को बुलाकर कहा—पुत्र! देखो! अब मेरा अन्तिम काल आ पहुँचा है। तुम लोग अविवेकिताको त्यागकर बुद्धिमानी से कामलो। परस्पर एक होकर इस सर्वस्वनाशकारी युद्ध को अन्त कर दो। हमारी मृत्यु को ही इस युद्ध का पर्याप्त मूल्य समझ कर संसार को वीर्य हीन होने से बचाओ। वत्स! यदि तुम इस बात को मान लोगे तो मैं अत्यन्त सुख से शरीर को त्याग सकूँगा। भीष्म के इतना कहने पर भी दुर्योधन की मति नहीं फिरी। भीष्म के सदुपदेशों का उपहास करता हुआ वह चला गया।

यथा समय पितामह के चारों ओर गहरी खाई खोद कर पानी से भर दिया तथा उनकी रक्षा के लिये कौरवों और पाण्डवों ने सिपाहियों का प्रबन्ध कर दिया।

कर्ण की सहृदयता।

संजय के मुँह से भीष्म शर-शैय्या का समाचार सुन धृतराष्ट्र अत्यन्त दुखित हुये। वे सोचने लगे, ओह! स्वयं भगवान परशुराम जिन्हें नहीं जीत सके, वही अखण्ड ब्रह्मचारी आज महाबली शिखण्डी की मार से धराशायी हों, आश्चर्य! हाय! कौरवों के आशाधार सर्व श्रेष्ठ योद्धा दश दिनों तक असंख्य पाण्डव दल का संहार कर डूबते हुये दिवाकर के समान अस्त होगये!

हाय! दुर्योधन का मान-भंग हो गया। शोक! मुझे अब बड़ा भय हो रहा है। मैं चिन्ताग्नि में दग्ध हो रहा हूँ। प्रतापी भीष्म के साथ ही हमारी आशायें भी चली गईं। उनमें सोचने और विचारने की शक्ति नहीं रही।

पितामह के शर-शैय्या शायी होने का समाचार सुनते ही कर्ण भी रागद्वेष भूलकर उनकी सेवा में उपस्थित हुये। भीष्म भयंकर शस्त्रों के आघात के कारण प्राणों को ब्रह्म-रंध्र में खींच कर आँखें बन्द किये योगियों के समान समाधि में लीन हो रहे थे। पितामह को इस अवस्था में पड़े देख कर्ण का हृदय भर आया, वे राग द्वेष को भूल अत्यन्त नम्र हो बोले—महात्मन्! आप का द्वेषी अधिरथ पुत्र कर्ण आपको प्रणाम करता है।

भीष्म ने कष्ट-पूर्वक आँखें खोलकर कर्ण को देखा—

उन्होंने बड़े प्रेम से कर्ण को हृदय से लगा लिया। दोनों गद्गद् कण्ठ हो एक दूसरे को देखने लगे। कुछ देर बाद भीष्म ने कहा—कर्ण! तुमने बराबर मुझसे स्पर्द्धा की है। यदि तुम इस समय नहीं आते तो मुझे अवश्य दुःख होता। अब मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ। पुत्र! हमने हृदय से कभी वैर नहीं किया और न कभी घृणा ही की। हम तुम्हें उत्तम मार्ग पर लाने के लिये ही कठोर वचन कहा करते थे। पुत्र! हम तुम्हारी धार्मिकता और वीरता से अत्यन्त प्रसन्न हैं। मुझे विश्वस्त-सूत्र से पता लगा है कि तुम वास्तव में कुन्ती के पुत्र हो। तुम अपने सहोदर भाई पांडवों से मेल करलो। इतने ही में यह भयङ्कर वैर-भाव स्वयं मिट जायगा। पुत्र! किसी प्रकार इस अमंगलकारी युद्ध को बन्द कर दो। इससे उभय पक्ष का कल्याण होगा।

कर्ण ने कहा—हे पितामह! आप सत्य कहते हैं। मैं कुन्ती का पुत्र हूँ, परन्तु अधिरथ ने मुझे पाला है—दुर्योधन की कृपा से मुझे यह सन्मान मिला है। हमारे ही कारण यह द्वेषाग्नि फैल उठी है। महात्मन! हमने पाण्डवों से युद्ध करने की प्रतिज्ञा की है। अतः आप आज्ञा दीजिये। भीष्म ने बार-बार समझाया परन्तु कर्ण अपने सिद्धान्त पर ही दृढ़ रहा। पितामह ने कहा—पुत्र! यदि अनिवार्य्य ही है तो जाओ क्षात्र-धर्म के अनुसार स्वर्ग प्राप्त करो।

द्रोण-पर्व ।

द्रोण का सेनापतित्व
और
युधिष्ठिर को पकड़ने की प्रतिज्ञा

---*-*---
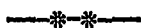
रणचण्डी अट्टहास करती हुई थिरक उठी । सारा विश्व कुरुक्षेत्र के मैदान में एकत्र हो धांय-धांय करते हुये भस्मीभूत होने लगा । दावाग्नि के समान प्रज्वलित रणाग्नि में बड़े-बड़े वीरों की आहुतियाँ पड़ गईं । परन्तु ज्ञानान्ध कौरवों को ज्ञान नहीं हुआ । निःसन्देह विनाश के समय बुद्धि विपरीत हो जाती है ।

महामति भीष्म के सदुपदेशों का प्रभाव कुछ भी नहीं पड़ा । महाबली कर्ण अपनी टेक पर डटा रहा । पितामह ने बार-बार कहा कि हमारे प्राणों के मूल्य को ही इस युद्ध का पर्याप्त मूल्य समझ कर रणाग्नि की आहुती बन्द कर दो ।

इससे उभय पक्ष का कल्याण होगा। परन्तु सब व्यर्थ हुआ। हा! पितामह के पुनीत प्रस्ताव को कर्ण ने ठुकरा दिया और नाश के मुँह में जाने वाले दुर्वृत्त दुर्योधन ने अस्वीकार कर दिया।

पितामह भीष्म के शर-शय्या पर पड़ते ही कर्ण की प्रतिज्ञा पूरी हो गई। उसे शस्त्रास्त्र सज्जित रथ पर बैठे देख दुर्योधन अत्यन्त प्रसन्न हुआ। शोक-सागर-निमग्न, सेनापति-विहीन कौरव सेना के हर्ष का ठिकाना न रहा। कर्ण की शान्त्वना ने कुछ क्षण के लिये कौरवों की सेना का शोक दूर कर दिया।

कर्ण की शान्त्वना ने दुर्योधन की मुर्झाई हुई आशा-लता को पुनः हरा-भरा कर दिया। उसकी सारी चिन्तायें जाती रही। वह हृदय से पुलकित होता हुआ बोला—

भैया कर्ण! हमने यह भयंकर महा भारत तुम्हारे ही बल-बूते पर ठांना है। तुम्हीं हमारे आधार हो। पतवार-हीन नौका के समान अरक्षित कौरवी सेना की रक्षा करो। भाई! अब तक पितामह ने जो कुछ किया, खूब किया। उन्होंने अपना अद्भुत बल-विक्रम दिखलाया। अब क्या करना चहिये? इसका निर्णय करो। भीष्म के बाद सेनापति का उत्तराधिकारी कौन हो?

कर्ण ने कहा—महाराज! निःसन्देह आप का मुझ पर भरोसा और पूर्ण विश्वास है और मैं भी आपकी सेना के लिये पूर्ण-रूप से कटिबद्ध हूँ। परन्तु इस समय सबसे

श्रेष्ठ शुक्र और वृहस्पति के समान तेजस्वी महाधनुर्धर आचार्य महामति द्रोण को प्रधान आसन देना चाहिये। वे अद्वितीय वीर और हम लोगों के आचार्य हैं। भीष्म के बाद वेही इस पद के योग्य हैं। हम लोग सभी सहर्ष उनकी आज्ञा का पालन करेंगे।

कर्ण की मंत्रणा के अनुसार दुर्योधन गुरु द्रोण के पास पहुँच कर बोला—आचार्य! इस अशान्त अर्जुन के उत्ताल-तरंगों में कौरवी सेना की रक्षा कीजिये। आपही सर्व पूज्य तथा पूर्ण योग्य हैं। भगवन्! इस अपार रण-सागर में हमारी नाव का पतवार अपने हाथ में ले देवेन्द्र के समान रक्षा करते हुये शत्रुओं का संहार करें।

इसके अनन्तर यथा विधि आचार्य को सेनापतित्व के पद पर अभिषिक्त किया गया। चारों ओर रण-वाद्य बजने लगे। आचार्य के जय-निनाद से दिशायें गूँज उठीं। कौरवी सेना में सर्वत्र आनन्द की धारा वह चली। भेरी दुन्दुभि और पणव ने पृथ्वी और आकाश को एक कर दिया।

दुर्योधन के सन्मान से सन्तुष्ट हो आचार्य ने कहा—वत्स! तुम्हारे शिष्टाचार से मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ। मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ति के लिये विकट संग्राम में असंख्य वीरों का संहार कर प्रतिदिन शिविर में लौटूँगा। मेरा बल-विक्रम तुम्हारे ही मंगल-साधन में लगेगा। पुत्र! मैं अपनी शक्ति भर तुम्हारी ही सहायता करूँगा। केवल

धृष्टद्युम्न से मैं न लड़ूँगा। इसके अतिरिक्त और तुम क्या चाहते हो?

आचार्य्य को प्रसन्न देख दुर्योधन ने कहा—भगवन्! मेरी इच्छा है कि आप युधिष्ठिर को जीते जी पकड़ लाइये। उनके पकड़ लाने में ही हमारा काम स्वयं सम्पन्न हो जायगा। मैं जुआ में फिर फँसाकर उन्हें वन में भेजूँगा—जिससे युद्ध स्वयं मिट जायगा। परन्तु आचार्य्य! स्मरण रहे! युधिष्ठिर की मृत्यु न होने पावे। नहीं तो अर्जुन किसी को भी जीवित न छोड़ेगा।

दुर्योधन के नीचाशय से आचार्य को बड़ा दुःख हुआ। वे बोले—दुर्योधन! धर्मराज का पकड़ना साधारण काम नहीं है। जब तक अर्जुन उनके साथ है तब तक युधिष्ठिर पर विजय पाना असंभव है। हाँ! यदि अर्जुन उनसे किसी बहाने हटा दिये जायँ तो निःसन्देह युधिष्ठिर पर अधिकार किया जा सकता है।

इसी समय त्रिगर्त्तराज सुशर्मा और संसप्तकों ने कहा—हम लोग अर्जुन को युद्ध के लिये ललकार कर दूर भगा ले जायेंगे—आप युधिष्ठिर को पकड़ने का आयोजन कीजिये। इस प्रकार द्रोण ने युधिष्ठिर को पकड़ने की प्रतिज्ञा की। इस भयंकर भेदका पता पाण्डवों को लग गया। उन लोगों ने निश्चय किया कि अर्जुन धर्मराज के पृष्ठ भाग में सर्वदा उपस्थित रहें।

आज युद्ध का ग्यारहवाँ दिन है। सेनानायक आचार्य्य

द्रोण दुर्भेद्य व्यूह रचना कर आगे बढ़े। कृपाचार्य्य, कृतवर्मा और दुःशासन पृष्ठभाग से और जयद्रथ, कलिंग नरेश तथा दुःसह आदि दाहिनी ओर से आचार्य्य की रक्षा के लिये तैयार हो गये। स्वयं दुर्योधन कर्ण को लेकर सबसे आगे बढ़ा। कर्ण की सूर्यचिन्ह वाली पताका फहराते देख कौरव वीरों का उत्साह बढ़ गया। रणस्थल आचार्य्य और महाबली कर्ण के जय निनाद से गूँज उठा।

देखते-ही-देखते रणाग्नि प्रज्वलित हो उठी। आचार्य्य स्वर्ण रथ पर आरूढ़ हो दावाग्नि के समान भयंकर रूपधारण कर पाण्डव सेना का नाश करने लगे। बिजली की कड़क के समान भयंकर टंकार करते हुये वज्र के समान प्रलयकारी शरवृष्टि करते बढ़े। कुछ ही देर में आचार्य्य के अविराम भीषण बाण-वृष्टि ने पाण्डवी सेना में खलबली मचा दी।

आचार्य्य को क्रोधित कृतान्त के समान आक्रमण करते देख महाबली पाण्डव क्षुब्ध हो उठे। स्वयं युधिष्ठिर आचार्य्य से जा भिड़े। सहदेव शकुनि से, सात्यकि कृतवर्मा से तथा धृष्टकेतु कृपाचार्य्य से लड़ने लगे। इसी समय महाबली भीम का शल्य के साथ भयङ्कर गदायुद्ध होने लगा। कुछ ही देर में शल्य भीमकी मारसे मूर्च्छित होकर गिर पड़े।

भीम की क्रोधाग्नि दावाग्नि के समान दहक उठी। वे निर्भय कौरव सेना का संहार करने लगे। यह देख पांडवी सेना भी बड़े वेग से कौरवों पर टूट पड़ी। उनके प्रचण्ड आक्रमण से कौरवी सेना काँप उठी। इस प्रकार अपनी

सेना को भयभीत देख आचार्य्य ने शान्त्वना दे पाण्डवों पर भीषण आक्रमण किया। उन्होंने क्षण मात्र में युधिष्ठिर के शरीर रक्षकों को मार गिराया तथा उन्हें स्वयं मूर्च्छित कर दिया।

युधिष्ठिर के घायल होते ही सेना में यह अफवाह फैल उठी कि युधिष्ठिर पकड़े गये। अर्जुन उस समय दूर— व्यूह के दूसरे भाग में कौरवों से लड़ रहे थे। इस बात के सुनते ही वे शीघ्र शत्रुओं के दुर्भेद्य वाहिनी को चीरते हुये वायु वेग से चल पड़े।

भाई धर्मराज को मूर्च्छित देख अर्जुन के क्रोध का ठिकाना न रहा। वे तत्काल प्रलयकारी शंकर के समान प्रलयंकर हो उठे और गांडीव से भयंकर शर-वृष्टि करने लगे। क्षणमात्र में ही दिशायें वाणों से भर गईं। सर्वत्र अंधकार छा गया। अर्जुन के वज्र तुल्य वाणों ने कौरवों को छिन्न-भिन्न कर दिया। कौरवी सेना भाग खड़ी हुई। इसी समय सूर्यास्त होते देख आचार्य्य ने विवश हो युद्ध बन्द करने की आज्ञा दी।

त्रिगर्त्तों का पराजय
और
भगदत्त-वध

सन्ध्या बीतते ही दोनों सेनायें अपने-अपने शिविरों में पहुँची। दुर्योधन के निराश-मुख-मण्डल को अवलोक आचार्य ने कहा—पुत्र! हमने पूर्व ही कहा था—अर्जुन के रहते हुये युधिष्ठिर का पकड़ लेना साधारण काम नहीं है। जब तक गाण्डीवधर समर-भूमि से नहीं हटाया जायगा तब तक देवता भी धर्मराज को नहीं पकड़ सकते।

त्रिगर्त्तराज ने कहा—भगवन्! अर्जुन के सामने एक नहीं चलती, तथापि कल हम उसे ललकार कर रणक्षेत्र से दूर ले जायेंगे और अधिक समय तक अटका रखेंगे। इधर आप धर्मराज को पकड़ लीजियेगा। मैं अपने पाँचो भाइयों और सेना सहित प्रतिज्ञा करता हूँ। अग्नि साक्षी हैं, जब तक शरीर में प्राण रहेगा, कोई भी त्रिगर्त्त वीर अर्जुन की मार से न हटेगा। इस प्रकार प्रतिज्ञा कर सूर्योदय होते ही सभी युद्ध के लिये तैयार हुये।

प्रातःकाल होते ही घमासान युद्ध आरम्भ हुआ। सहस्रों त्रिगर्त्तों ने वीर अर्जुनको युद्ध के लिये ललकारा और दक्षिण की ओर भाग चले। त्रिगर्त्तों की ललकार से क्षुब्ध हो अर्जुन ने धर्मराज से कहा—धर्मराज! मैं त्रिगर्त्तों का नाश करने के लिये जा रहा हूँ। आज पाञ्चाल वीर

सत्यजित आपकी रक्षा करेंगे। आचार्य्य द्रोण से आप सतर्क रहियेगा। कदाचित् वीर सत्यजित मारा जाय तो आप रणभूमि त्याग दीजियेगा।

इस प्रकार युधिष्ठिर को समझा कर अर्जुन बड़े वेग से टंकार मचा शत्रुओं के हृदयों को दहलाने वाला शंख वजाते हुये त्रिगर्त्तों के पीछे वढ़े। उधर त्रिगर्त्त वीर भी एक चौरस मैदान में व्यूह वनाकर अर्जुन का सामना करने के लिये तैयार थे। आज सभी प्रतिज्ञा-बद्ध हो वीर गति प्राप्त होने के लिये उन्मत्त हो रहे थे।

देखते-ही-देखते अर्जुन का दिव्य रथ त्रिगर्त्तों के सामने जा पहुँचा। त्रिगर्त्तों की सेना एक साथ ही अर्जुन पर टूट पड़ी। अर्जुन भी त्रिगर्त्तों की सेना पर भीषण वाण वर्षा करने लगे। पार्थ के प्रवल प्रहार से त्रिगर्त्त-सेना काँप उठी और भागने की तैयारी करने लगी।

परन्तु तत्काल ही रात्रि की भयंकर प्रतिज्ञा स्मरण कर तथा अपने राजा द्वारा उत्साहित हो उत्तेजित हो उठी।

त्रिगर्त्तों को इस प्रकार निर्भय रणाग्नि में कूदते देख अर्जुन ने कृष्ण से कहा—भगवन्! आप मेरे रथ को आगे वढ़ाइये। मैं त्रिगर्त्तों के उत्साह को पूर्णरूप से भंग कर देना चाहता हूँ।

भगवान कृष्ण के रथ चलाने का कौशल देख अर्जुन चकित हो उठे तथा अत्यन्त उत्साहित हो त्रिगर्त्तों का नाश करने लगे। इस समय त्रिगर्त्तों ने भी वड़ी वीरता

दिखाई। उन लोगों ने एक साथ बाण-वर्षा कर कृष्णार्जुन को ढँक दिया।

अपने को शत्रुओं के शस्त्रों से आच्छादित देख पार्थ ने वायव्य अस्त्र का उपयोग किया। देखते-ही-देखते शत्रुओं के सभी शस्त्र छिन्न-भिन्न हो गये। पश्चात् भल्लास्त्र-द्वारा शत्रुओं का संहार करने लगे। क्षण मात्र में ही सहस्रों सैनिक धराशायी हो गये। जो शेष बच रहे वे भाग खड़े हुये।

त्रिगर्तों को पराजित कर अर्जुन विजय-शंख ध्वनि करते हुये युधिष्ठिर की सहायता के लिये चल पड़े। मार्ग में दुर्योधन द्वारा नियुक्त किये हुये सैनिक रास्ता रोक कर खड़े हो गये। अर्जुन ने अपने रण-कौशल से उन्हें बात-की-बात में नष्ट कर डाला।

अर्जुन को निःशंक आगे बढ़ते देख प्रागज्योतिष नरेश महाबली भगदत्त अपने ऐरावत के समान प्रसिद्ध हाथी पर बैठ कर रोकने के लिये आगे बढ़ा। देखते-ही-देखते भगदत्तार्जुन महा समर होने लगा। अर्जुन ने क्रोधकर के बड़े-बड़े पैने बाण छोड़े। परन्तु महाबली भगदत्त ने सबों को काट गिराया। इसी समय भगदत्त ने अपना मत्त हाथी कृष्णार्जुन के रथ पर झुका दिया। महामत्त कुंजर के प्रहार से अर्जुन का रथ चूर-चूर हो जाता, परन्तु श्रीकृष्ण ने चतुराई से बचा लिया। तब अर्जुन ने क्रुद्ध होकर तीक्ष्ण बाणों से हाथी के ऊपर की लौह-जाली को काट डाला

और विषैले बाणों से महावली भगदत्त को भी पीड़ित कर दिया।

अर्जुन की मार से महावली भगदत्त क्षुब्ध हो उठा और शीघ्रही तोमर नामक अस्त्र चलाया। जिससे अर्जुन का किरीट टेढ़ा हो गया। उन्होंने किरीट को सम्हाल कर कहा—भगदत्त ! अब शीघ्रही तुम्हारा अन्त होगा। तुम एक बार अपने इष्ट-मित्रों को देख लो।

अर्जुन की बातें सुन महावली भगदत्त जल उठा, उसने शीघ्रही अर्जुन पर अंकुश से प्रहार किया।

भगदत्त के अमोघ वज्र तुल्य भयंकर अंकुश को वेग पूर्वक आते देख श्रीकृष्ण ने बीच ही में शीघ्रही रोक लिया। अर्जुन के लिये यह बात असह्य हो गई। उन्होंने कृष्ण से कहा—

भगवन् ! आप यह क्या किये ? आपने तो शस्त्र न धारण करने की प्रतिज्ञा की थी मैं तो शस्त्रधारी होकर लड़ ही रहा हूँ। केशव ! आपका यह आचरण ठीक नहीं है।

इतना कहते-कहते अर्जुन ने तीक्ष्ण बाणों से भगदत्त के हाथी को मार डाला और अर्द्धचन्द्रबाण से भगदत्त का भी अन्त कर दिया। इस प्रकार महावली अर्जुन कौरवों का नाश करते हुये आगे बढ़े।

इधर पार्थ को रणभूमि में न देख आचार्य्य ने व्यूह रचना कर युधिष्ठिर को पकड़ने का आयोजन किया। आचार्य्य स्वयं युधिष्ठिर और उनके शरीर रक्षकों पर टूट पड़े। देखते-ही-देखते घमासान युद्ध होने लगा। द्रोण के वज्र

तुल्य वाणों ने पाण्डवी सेना को कंपा दिया। आचार्य्य के भीषण मार से युधिष्ठिर व्यथित हो उठे।

महात्मा धर्मराज और पांडवी सेना को द्रोण के द्वारा इस प्रकार विचलित होते देख पांचाल वीर महापराक्रमी सत्यजित आ पहुँचा और बड़े वेग से आक्रमण कर द्रोण के घोड़ों और सारथि को बाणों से छेद डाला। कुछ ही क्षण में कौरव वीरों का नाश करते हुये द्रोण के रथ की ध्वजा भी काट गिराया। सत्यजित बड़ी देर तक वीरता पूर्वक द्रोण का सामना करता रहा।

सत्यजित ने आज अपना विचित्र कौशल दिखलाया। उसके प्रवल पराक्रम से कौरव भयभीत हो गये। आचार्य्य द्रोण वीरवर सत्यजित के प्रहार से अत्यन्त क्षुब्ध हो उठे—उन्होंने सत्यजित के रहते अपनी प्रतिज्ञा पूर्ति न होते देख तत्काल अर्द्धचन्द्रशर द्वारा वीर सत्यजितका शिर काट डाला।

महावली सत्यजित के गिरते ही धर्मराज रणस्थल से हट गये। आचार्य्य,-युधिष्ठिर को न देख और भी क्षुब्ध हो निरन्तर बाण वर्षा द्वारा पाण्डव सेना का संहार करने लगे। इसी समय गाण्डीव से शर वृष्टि करते हुये अर्जुन भी आ पहुँचे। अब क्या था? क्षण मात्र में ही कौरव दलमें हाहाकार हो उठा। संध्या काल होते ही युद्ध बन्द किया गया। कौरव शोक करते तथा पाण्डव जय निनाद से दिशाओं को कंपाते हुये शिविरों में पहुँचे।

दुर्भेद्य चक्रव्यूह-निर्माण

और

अभिमन्यु की रणयात्रा।

—※—※—

नित्यकी हार से दुर्योधन शोकित हो उठा। कौरव सेना में सर्वत्र उदासी छा गई। वीरों का उत्साह और उमंग जाता रहा। अर्जुन की मार से अचल सैनिकों का साहस छूट गया।

अपनी इस प्रकार पराजय देख दुर्योधन शोक और ग्लानि से अत्यन्त अधीर होता हुआ आचार्य्य के पास पहुँच कर रोते हुये बोला—भगवन! हमारी आशाओं पर पानी फिर गया। पाण्डवों पर आपकी विशेष प्रीति होने के कारण हमारा मनोरथ सिद्ध नहीं हो सकता। हाय! मुझे ऐसी आशा नहीं थी।

दुर्योधन की कुटिलता पूर्ण बातें सुन द्रोण ने कहा—दुर्योधन! मैं अपनी पूरी शक्ति लगा देता हूँ। परन्तु गाण्डीवधर को वीरता और कृष्ण की नीतिज्ञता के सन्मुख हमारी कुछ नहीं चलती है। अच्छा! आज तुम फिर अर्जुन को कहीं दूर ले जाओ। मैं आज दुर्भेद्य चक्रव्यूह रचूँगा। उसके द्वारा निसन्देह तुम्हारा मनोरथ सिद्ध होगा। यदि ऐसा नहीं हुआ तो पाण्डव पक्ष के किसी श्रेष्ठ वीर का

मरण होगा। मैं आज ही उस व्यूह के द्वारा पाण्डवी सेना का नाश कर दूँगा।

आचार्य्य की बातें सुन दुर्योधनादि कौरवों का चित कुछ शान्त हुआ। इसी समय संसप्तकों ने आकर कहा कि मैं सूर्योदय के पूर्व ही अर्जुन को ललकार कर दूर ले जाऊँगा और सायंकाल तक रोक रक्खूँगा। इधर द्रोण अर्जुन के न रहने पर पाण्डवों का नाश कर दें। इस प्रकार निश्चय कर संसप्तको ने रात्रि बीतते ही अर्जुन को ललकारा।

इधर सूर्योदय होते ही महामति द्रोणने दुर्भेद्य चक्रव्यूह की रचना की। इस विचित्र व्यूह का नाम सुनते ही युधिष्ठिरादि चिन्तित हो उठे। इस विद्या को वीरवर अर्जुन के अतिरिक्त और कोई नहीं जानता था। पाण्डवी सेना में सर्वत्र निराशा सी छा गई।

इसी समय अर्जुन का महातेजस्वी पुत्र अभिमन्यु उस ओर आया और धर्मराजादि पाण्डवों को अत्यन्त व्यग्र देख बोला—महाराज ! आप क्यों चिन्तित हैं? कहिये—क्या शत्रुओं के द्वारा किसी अनिष्ट की आशंका है?

अभिमन्यु की बातें सुन धर्मराज ने चक्रव्यूह का हाल कह सुनाया।

वीरवर अभिमन्यु ने हँसते हुये कहा—महात्मन्! आप क्यों अधीर हो रहे हैं। मुझे माता के गर्भ में ही इस विद्या का ज्ञान प्राप्त हुआ है। मैं प्रवेश कर सकता हूँ—एक

नहीं उसके छः द्वारों को तोड़ सकता हूँ। परन्तु बाहर नहीं आ सकता। इसी समय भीम बोल उठे। ओह! तब क्या है? जब तुम व्यूह के भीतर प्रवेश कर छः द्वारों को तोड़ सकते हो तब एक द्वार से निकलना तो हमारे आधीन है। मैं गदाघात से व्यूह के उस द्वार को चूर-चूर कर दूँगा।

भीम को इस प्रकार भरोसा देते देख युधिष्ठिर ने अभिमन्यु को युद्ध में जाने की आज्ञा दी। इस प्रकार सेनापति के पद पर अधिष्ठित हो राज मुकुट और दिव्यास्त्र धारण कर वह अपनी माता के पास पहुँचा। पुत्र को युद्ध के लिये प्रस्तुत देख सुभद्रा अत्यन्त प्रसन्न हुई और वीरोचित आशीर्वाद देते हुये बोली—बेटा! धर्मरक्षा के लिये अत्याचारियों का नाश करो। कभी भी शत्रुओं से भयभीत हो युद्ध में पीठ न दिखाना।

इस प्रकार माता से विदा हो वीर बालक अभिमन्यु उत्तरा के शिविर में पहुँचा। अपनी धर्मपत्नी को अत्यन्त व्यग्र तथा शोक-सन्तप्त देख कहा—प्रिये! तुम रोती क्यों हो? उत्तरे! आज सौभाग्य का दिन है। शोक को त्याग कर प्रसन्नता पूर्वक मुझे युद्ध में जाने की आज्ञा दो। आज महाराज ने मुझे सेनापति के पद पर अधिष्ठित किया है।

पति की बातें सुन उत्तरा काँप उठी। आज कई दिनों से वह भयंकर स्वप्न देख रही थी। वह पति के पैरों पर रोती हुई गिर पड़ी और बोली—नाथ! आज आप रणक्षेत्र में न जाइये। न मालूम क्यों मेरे मन में बुरी-बुरी भावनायें

अभिमन्यु-प्रिये ! शीघ्र चक्रव्यूह भेद कर तुमसे आ मिलूँगा।

श्री विश्वेश्वर प्रेस, काशी में मुद्रित।

उठ रही हैं। भावी अनिष्ट की आशंका ने मुझे कँपा दिया है। नाथ! आज मेरी सम्मति मान कर रणभूमि में न जाइयें। इतना कहते-कहते उत्तरा के नेत्रों में जल भर आये।

इस प्रकार अपनी अर्द्धाङ्गिनी को शोक विह्वल देख उसके आँसुओं को पोंछते हुये अभिमन्यु ने कहा—प्रिये! तुम इतना अधीर क्यों होती हो? छिः! वीरजाया, वीरवधु और वीर पुत्री होकर इस प्रकार शोक करती हो? प्रिये! इस धर्म पालन में तुम्हें सहयोग देना चाहिये। तुम किसी प्रकार की चिन्ता न करो। लोग मुझे क्या कहेंगे? साथ ही चक्र-व्यूह के द्वारा अपनी सेना को हार होते मैं कैसे देख सकूँगा? प्रिये! शीघ्र चक्र-व्यूह भेद कर तुमसे आ मिलूँगा।

इसी समय सुभद्रा अस्त्र-शस्त्र लेकर आ पहुँची और बोली—बेटा, आओ! मैं तुम्हें अपने हाथों से सजा दूँ।

सुभद्रा की बातों ने उत्तरा को और भी व्यग्र बना दिया, वह सास के पैरों पर आ गिरी और रो-रोकर स्वप्न की बातें सुनाने लगी। सुभद्रा ने हृदय से लगा कर कहा—पुत्री! शोक न करो। भावी बलवान होती है, विधि-विधान के विपरीत काम नहीं हो सकता। तुम ऐसे समय में प्रसन्नता प्रकट कर पति को रण-क्षेत्र में जाने की आज्ञा दो। अपने धर्म का पालन करो। परन्तु इस उपदेश का कुछ फल न हुआ। उत्तरा और भी अधिक व्यग्र हो विलाप करने लगी। सुभद्रा ने अनेक प्रकार से उपदेश देते हुये कहा—

पुत्री ! धर्म ही सर्वस्व है, वीरों को धर्म के लिये आत्मोत्सर्ग करने को कटिबद्ध रहना चाहिये। ममता और मोह से धर्म रक्षा नहीं हो सकती। तुम क्षत्रिय नंदिनी हो ! वीर पत्नी हो ! तुम्हें युद्ध से भयभीत होना नहीं चाहिये। रण ही क्षत्रियों का नित्यधर्म है। छिः ! आदर्श महावीर की पुत्र-वधु तथा महावीर की स्त्री होकर इस प्रकार विह्वल हो रही हो। शोक ! बेटी अपने गौरव को धन्यवाद दो।

इस प्रकार समझाते-बुझाते उत्तरा का शोक वेग दूर हुआ। माता सुभद्रा ने अपने हाथों से अभिमन्यु को सज्जित किया। पश्चात् युद्ध के लिये आदेश देती हुई बोली— बेटा ! युद्ध से पीठ दिखा कर पिता और माता के उज्ज्वल कीर्ति को कलंकित नहीं करना। मैं आशा करती हूँ कि तुझ-सा पुत्र पाकर वीर प्रसविनी कहला कर गौरव प्राप्त करूँगी। इस भाँति माता की शिक्षा पा षोडश-वर्षीय वीर बालक अभिमन्यु शस्त्रास्त्र सज्जित हो रथ पर बैठ कौरवी सेना की ओर बड़े वेग से चला।

अभिमन्यु वध।

षोडष-वर्षीय वीर बालक अभिमन्यु का रथ कौरवों को कँपाता हुआ चक्र-व्यूह के द्वार पर पहुँचा। द्वार रक्षक जयद्रथ ने अभिमन्यु को रोका, परन्तु वीर अर्जुन तनय ने वज्र तुल्य वाणों से बात-की-वात में जयद्रथ को मूर्च्छित कर डाला और इन्द्र के समान व्यूह को तोड़ भीतर घुस गया। पाण्डवी सेना व्यूह द्वार पर लड़ती ही रही परन्तु प्रवेश न कर सकी। चारों पाण्डव भी महादेव जी के वर प्रसाद से जयद्रथ द्वारा परास्त होकर पीछे हट गये।

उधर वीर बालक युद्ध में बढ़ता ही गया। उस अपार जन समुद्र में अकेला अभिमन्यु को देख कौरवों को बड़ा विस्मय हुआ, वे उत्साह और आनन्द से उन्मत्त हो थिरकने लगे। सभी हँसते हुये सिंह शिशु का उपहास करने लगे।

वीर बालक अपना अपमान कब सह सकता था? उसने शीघ्र ही प्रचण्ड उल्का के समान तीक्ष्ण वाणों से कौरवों का संहार करना आरम्भ कर दिया। कुछ ही देर में विशाल-वाहिनी नाच उठी। पृथ्वी रुंड-मुण्डों से पट गई। द्रोण निर्मित दुर्भेद्य व्यूह काँप उठा। इस प्रकार अपार-जन समुद्र में अकेला दहाड़ता हुआ अभिमन्यु आगे बढ़ा। धीरे-धीरे उसने छः द्वारों को अपने रण-कौशल से तोड़

डाला । सातवें द्वार में प्रवेश करते ही दुर्योधन से महायुद्ध होने लगा । वीर बालक ने महाबली दुर्योधन को शीघ्र ही व्यग्र कर दिया । दुर्योधन की दुर्गति देख कर्ण, कृप, द्रोण, शल्य और अश्वत्थामा आदि वीर जिन्हें अभिमन्यु ने पहले ही हरा दिया था, आक्रमण किये । परन्तु फिर भी इस तेजस्वी वीर ने अमोघ बाणों से मार भगाया । इस प्रकार विजय-निनाद से रणस्थल को कँपाते हुए अभिमन्यु निर्भय कौरवी सेना में घूमने लगा ।

अभिमन्यु को इस प्रकार दहाड़ते देख शल्य ने बड़ी वीरता पूर्वक आक्रमण किया, परन्तु वह शीघ्रही इस विकट धनुर्धर बालक के प्रहार से मूर्च्छित हो गया । शल्य को मूर्च्छित होते देख उसका भाई सामने आया । अभिमन्यु ने अपने पैने बाणों से उसके सारथि घोड़ों और अंग रक्षकों का नाश कर उसे मार गिराया । ओह ! वीर बालककी मारसे कौरवों के छक्के छूट गये ।

अभिमन्यु ने बड़ा भीषण समर किया । उसकी मार से कौरवी सेना घबड़ा कर भागने लगी । यह देख दुर्योधन ने वीरों से कहा—महारथियो ! शोक ! एक बालक अकेला प्रलय मचा रहा है और आप लोग उसका प्रतिकार नहीं करते । जान पड़ता है कि आचार्य्य द्रोण उसकी रक्षा करना चाहते हैं ? नहीं तो अभी तक वह बचा रह जाता ? इस मूढ़ का शीघ्र संहार कीजिये ।

दुर्योधन की बातें सुनते ही सभी दौड़ पड़े । दुःशासन

आगे पहुँचा। अभिमन्यु ने अपने अग्नि समान वाणों से शीघ्र ही दु:शासन को मूर्च्छित कर दिया। इसी समय कर्ण आगे बढ़े और अभिमन्यु पर वाण बरसाने लगे। अभिमन्यु ने तुरत ही उनके वाणों को काट उन्हें विचलित कर दिया। अभिमन्यु ने बड़े वेग से आक्रमण कर दुर्योधन के पुत्र लक्ष्मण तथा शल्य के पुत्र रूकमको मार डाला। कोशल-नरेश तथा महारथ आदि महारथियों को हँसते-हँसते पृथ्वी पर सुला दिया।

अभिमन्यु की मार से कर्णादि महारथी अत्यन्त व्यग्र हो आचार्य्य के पास जाकर बोले—आचार्य्य! आज अर्जुन-तनय के तीव्र वाणों से कौरवी सेना का संहार हो रहा है। शीघ्र कोई उपाय कीजिये अन्यथा इस महाकाल से निस्तार नहीं होगा।

आचार्य ने कहा—अभिमन्यु इन्द्र के समान बलधारी और अपने पिता के समान ही रणधीर है। इसका जीतना साधारण खेल नहीं है। जब तक इसके हाथ में धनुष और वाण है तब तक इसे कोई नहीं जीत सकता। इसे शस्त्र-विहीन करने पर ही सफलता मिलेगी।

द्रोणाचार्य के परामर्श के अनुसार सप्तरथियों ने एक साथ ही अभिमन्यु पर आक्रमण किया। चारों ओर से बराबर प्रहार होने लगे। दो हाथ सहस्रों हाथों का कब तक सामना कर सकता है। धीरे-धीरे घोड़े और सारथि मारे गये। अन्त में धनुष भी काट डाला, परन्तु अभिमन्यु

विचलित नहीं हुआ। उसने शीघ्र ही खड्ग निकाल लिया और सहस्रों वीरों का सिर काट डाला। इसी समय दुष्ट कौरवों ने मिलकर खड्ग भी खण्डित कर दिया।

अपने को शस्त्र-हीन देख अभिमन्यु तनिक भी विचलित नहीं हुआ। वह शीघ्र ही रथ चक्र लेकर शत्रुओं पर टूट पड़ा। ओह! सुदर्शन के समान उस रथ चक्र से सहस्रों अत्याचारियों को चूर-चूर कर दिया। अभिमन्यु के इस तेज को देख कौरव घबड़ा उठे। इसी समय अश्वत्थामा ने अभिमन्यु के रथ-चक्र को तीक्ष्ण वाणों से काट डाला।

अभिमन्यु निरस्त्र हो गया। शत्रुओं के वाण उसके शरीर में विद्ध होने लगे। सारा शरीर वाणों से भर गया। शरीर से रक्त की धारा वह चली। फिर भी हँसता हुआ रण क्षेत्र में घूमता ही रहा। उसने आचार्य्य से कहा—आचार्य! यह क्या हो रहा है? क्या यही धर्म-युद्ध है? एक निरस्त्र पर सहस्रों का इस प्रकार निर्दयता-पूर्वक अत्याचार करना क्षत्रियों का कर्म है? कहिये आप तो बुद्धिमान हैं।

इसके अनन्तर उसने दुर्योधन से कहा—पहले मुझे शस्त्र दो, तब मुझ पर शस्त्र प्रहार करो। दुर्योधन ने भय के कारण शस्त्र देना अस्वीकार कर दिया। उसने महारथियों को ललकारते हुये कहा—वीरो! क्या देखते हो? अब शीघ्र ही इस केहरी का अन्त कर दो।

दुर्योधन की वात सुनते ही सभी एकदम टूट पड़े और

भयंकर वाण वरसाने लगे। इसी समय दुःशासन पुत्र ने अभिमन्यु के सिर पर भयंकर गदा प्रहार किया। ओह! इस प्रकार कौरवों के भयंकर अत्याचार से सिंह शिशु अभिमन्यु मां वसुन्धरा की गोद में सदा के लिये सो गया।

अभिमन्यु! तुम अब नहीं हो, परन्तु तुम्हारी कीर्ति दिशाओं में गूँज रही है। जब तब सूर्य और चन्द्र विद्यमान रहेंगे—तुम्हारा सुयश चन्द्र अतीताकाश में चमकता रहेगा।

अभिमन्यु के गिरते ही कौरव विजयोत्साह से उन्मत्त हो उठे। उनके विजय-सूचक शंख-ध्वनि को सुन पांडव दल में शोक छा गया। पांडवी सेना भागने की तैयारी करने लगी। इसी समय धर्मराज ने कहा—वीरों! भागते क्यों हो? अभिमन्यु ने प्राण त्याग कर क्षात्र-धर्म का पालन किया है। आओ! हम लोग भी उसका अनुकरण करें।
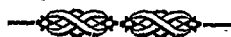
उत्तरा-विलाप
और
श्रीकृष्ण का ज्ञानोपदेश

पाण्डव शिविर में शोक छा गया। सभी अभिमन्यु के मृत शरीर को देख-देख रोने लगे। महा धैर्य्यवान युधिष्ठिर भी इस समय विचलित से उठे। वे रो-रो कर कहने लगे हाय! मैं अभिमन्यु को खोकर अर्जुन के सामने कैसे मुँह दिखाऊँगा। भीम नकुल और सहदेव भी अविराम आँसू बहा रहे थे।

कृष्णा और सुभद्रा के शोक के ठिकाना न था। उत्तरा अपने पति के निर्जीव शरीर से लिपट कर रोते-रोते मूर्छित हो गई थी, दास—दासियाँ तथा राज—सुन्दरियाँ अत्यन्त अधीर हो विलाप कर रही थीं। हाय! आज पाण्डव शिविर में प्रत्यक्ष शोक सागर उमड़ पड़ा था।

इसी समय संसप्तकों को परास्त कर कृष्णार्जुन शिविर की ओर लौटे। मार्ग में अनेक अपशकुनों को देख पार्थ बड़े व्याकुल हो रहे थे, उन्होंने कृष्ण से भी अपशकुनों का हाल कहा—भगवान सब कुछ जानते थे परन्तु पार्थ से कुछ न बोले।

धीरे-धीरे कपिध्वज चतुरंगिनी के निकट पहुँचा। भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को लेकर सीधे वहीं पहुँचे। जहाँ

अनन्त करुणा का श्रोत और शोक की धारा वह रही थी। ओह! सुभद्रा के गोद में अभिमन्यु के निर्जीव शरीर को देखते ही पार्थ मानों अपने को भूल गये। उनकी सुध बुध जाती रही, वे एका-एक अपार शोक-सागर में डूब गये।

इधर कृष्णार्जुन को देखते ही सुभद्रा और उत्तरा का शोका वेग उमड़ पड़ा। वह रोती हुई अभिमन्यु के निर्जीव शरीर को उठाकर भगवान के पाद पद्यों के निकट रख कर बोली—भैया! हाय यह क्या हुआ? हाय! हमारा चिराञ्छित धन कहाँ गया? महावली अर्जुन-हा अभिमन्यु! हा अभिमन्यु! कहते हुये उसके निर्जीव शरीर से लिपट कर रोने लगे।

भगवान श्रीकृष्ण ने सबों को अत्यन्त व्यग्र देख समझाना आरम्भ किया। उन्होंने आत्माको अमरता और शरीर की क्षणभंगुरता बताते हुये कहा—शोक न करो। अभिमन्यु ने क्षत्रिय धर्म का पालन किया है। युद्ध में प्राणोत्सर्ग करना क्षत्रियों का परम धर्म है। काया नाशवान है, आत्मा अमर है अतः अभिमन्यु के लिये शोक करना अनुचित है।

अर्जुन की भयंकर प्रतिज्ञा

और

जयद्रथ-वध ।

महावीर पार्थ को शोक विह्वल देख कृष्ण ने कहा—महाअनर्थ ! भयंकर अत्याचार ! क्या इससे भी वढ़कर पाप हो सकता है ? क्या क्षत्रिय वीर ऐसा अधर्म युद्ध कर सकते हैं ? हाय ! आज धर्म प्राण देश से धर्म का नाम उठ रहा है। जिन अधर्मियों ने अभिमन्यु को मारा है उनको वार-वार धिक्कार है, वे नराधम हैं। हाय ! इन अत्याचारियों का वध कर पृथ्वी का भार हरने वाला कोई क्षत्रिय वीर नहीं ? हा ! क्षत्रियों का वल जाता रहा। क्या पृथ्वी वीर्य हीन हो गई ?

भगवान की वांतें सुन अर्जुन उत्तेजित होकर वोले—केशव ! पृथ्वी वीरों से खाली नहीं है। मैं उन दुराचारियों का अन्त कर पृथ्वी का भार हरूँगा।

अर्जुन को और भी उत्तेजित करने के लिये श्रीकृष्ण वोले—हे पार्थ ! तुम्हें शोक न करना चाहिये। इस समय तुम्हें पुत्र हन्ताओं से प्रतिशोध लेना चाहिये। इसी समय सैनिकों तथा भाइयों के द्वारा अर्जुन को युद्ध का समस्त वृत्तान्त मालूम हुआ। युधिष्ठिर ने कहा भाई ! यदि

जयद्रथ हमलोगों को प्रथम द्वार पर नहीं अटकाता तो हम लोग अभिमन्यु के साथ ही व्यूह में प्रवेश कर जाते। फिर हम लोगों के रहते हुये कोई भी अभिमन्यु को नहीं छू सकता था। शोक! जयद्रथ ने हम लोगों को नहीं जाने दिया।

अर्जुन को जयद्रथ के ऊपर बड़ा क्रोध हो आया। मारे क्रोध के उनका श्रेष्ठ शरीर काँपने लगा। उन्होंने कड़कते हुये कहा—जयद्रथ! कल हमारे हाथों से तेरा मरण होगा। तुझे कोई नहीं बचा सकता। मैं शपथ पूर्वक प्रतिज्ञा करता हूँ कि कल सूर्यास्त के पहले यदि मैं तुझे न मारूँ तो स्वयं ही अग्नि में जल कर मर जाऊँगा।

अर्जुन की भयंकर प्रतिज्ञा सुनते ही जयद्रथ थर्रा उठा, परन्तु दुर्योधनादि कौरवों ने उसे ढाढ़स देकर कहा—सिन्धु-नरेश! अन्यत्र तुम्हारी रक्षा नहीं हो सकती। यहाँ द्रोण कर्णादि के रहते हुये तुम्हें कोई नहीं मार सकता।

दूसरे दिन आचार्य्य द्रोण ने दुर्भेद्य शकट व्यूह का निर्माण किया। उसी के बीच में जयद्रथ छिपा दिया गया। आचार्य्य स्वयं धनुष बाण लेकर द्वार पर जा डटे।

यथा समय पाण्डवी सेना आ पहुँची। लड़ाई आरम्भ हो गई। आज अर्जुन की प्रभा धधकते हुये सूर्य के समान दिखाई पड़ रही थी। वे दुर्मर्षण और उसकी सेना को हराते हुये निर्भय आगे बढ़े। दुःशासन के पराजय होते ही अर्जुन द्रोण निर्मित व्यूह के द्वारा पर पहुँच गये।

आचार्य्य को देख पहले उन्होंने प्रणाम किया पश्चात् भयानक संग्राम के लिये तैयार हो गये।

शकट व्यूह के द्वार पर बड़ी लड़ाई हुई। भोज और कृतवर्मा गाण्डीव के पैने बाणों की मार से भाग खड़े हुये। परन्तु अर्जुन का आचार्य्य पर कुछ वश न चल सका, इस भाँति लड़ते-लड़ते दोपहर बीत गया परन्तु अर्जुन व्यूह के भीतर न जा सके यह देख भगवान कृष्ण शीघ्र रथ को घुमा कर व्यूह के दूसरे भाग में जहाँ पर हाथियों का झुण्ड खड़ा था ले गये। अर्जुन ने क्षणमात्र में ही व्यूह को तोड़ डाला। भगवान कृष्ण रथ को बड़े वेग से व्यूह में घुसा दिये।

अर्जुन को निर्भय व्यूह में घुस जाने का समाचार सुन दुर्योधन अत्यन्त दुःखी हो शीघ्र आचार्य्य के पास जाकर बोला—हे आचार्य्य! आपके रहते हुये अर्जुन व्यूह में घुस गया? शोक! क्या आप नहीं जानते कि अर्जुन ने जयद्रथ को मारने की कठिन प्रतिज्ञा की है। इधर आपने जयद्रथ को अभयदान दिया है। महात्मन्! जान पड़ता कि आप का मन हमसे कुछ फिरा हुआ है। अथवा आप पाण्डवों का पक्ष लेते हैं।

द्रोण ने कहा—दुर्योधन! अर्जुन व्यूह के द्वार से व्यूह में नहीं घुसा है। अर्जुन क्या हजार इन्द्र भी इस मार्ग से व्यूह में प्रवेश नहीं कर सकते। श्रीकृष्ण के समान चतुर सारथि के होने से वह हाथियों के झुण्ड के पास से व्यूह में प्रवेश किया है। अच्छा! मैं यहीं रहता हूँ, तुम यह

हमारा अभेद्य कवच पहन लो और अर्जुन के साथ जाकर युद्ध करो।

इधर पांडवोंने बड़े जोरसे कूदकर द्वारपर आक्रमण किया। आचार्य ने धृष्टद्युम्न को मारने के लिये तीक्ष्ण बाण छोड़ा परन्तु सात्यकि ने उसे काट गिराया। इस प्रकार सात्यकि और द्रोण का भयंकर युद्ध होने लगा। द्रोण ने युधिष्ठिर को पकड़ने का बड़ा यत्न किया, परन्तु कृतकार्य नहीं हो सके।

उधर अर्जुन बीच व्यूह में पहुँच गये। दुर्योधन भी आकर अर्जुन से भिड़ गया। असंख्यों वीर एक साथ ही टूट पड़े। परन्तु अर्जुनका बाल भी बांका न हुआ। वे निर्भय शत्रुओं के हृदय को दहलाते हुये विचरण करने लगे।

बहुत देर के बाद श्री कृष्ण के शंखध्वनि को सुन कर धर्मराज ने अर्जुन की सहायता के लिये सात्यकि को भेजा। वीरवर सात्यकि भी अर्जुन के समान ही उसी मार्ग से व्यूह में पहुँच कर शत्रुओं का नाश करने लगे।

सात्यकि को भेजकर भी धर्मराज शान्त नहीं हुये। उन्होंने शीघ्र भीम को जाने की आज्ञा दी। महाबली भीम सबों को मारते-काटते आचार्य द्रोण के पास पहुँचे।

कुछ देर तक गुरु शिष्य लड़ते रहे। अन्त में पराक्रमी भीमसेन ने गदा घात से गुरु का रथ चूर-चूर कर दिया। आचार्य्य किसी प्रकार कूद कर अपनी जान बचा सके। भीमसेन महाबली धृतराष्ट्र-पुत्रोंका वध करते हुये आगे बढ़े।

कुछ ही देर में मारते-काटते शकट व्यूह में पहुँच गये। थोड़ी ही दूर बढ़ने पर भीम ने अर्जुन को भीम विक्रम से शत्रुओं का नाश करते हुये तथा सात्यकि को भोज और कम्बोज राज से लड़ते देखा।

भीम को निर्भय बढ़ते देख धृतराष्ट्र के ३१ पुत्र एकबार ही टूट पड़े। महाबली भीम सबों को क्षणमात्र में पृथ्वी पर सुलाकर आगे बढ़े। इसी समय कर्ण से बड़ा भयंकर संग्राम हुआ। कर्ण ने भीम को निःशस्त्र कर दिया। वीरवर कर्ण चाहते तो भीम को मार डालते। परन्तु कुन्ती के सामने की हुई प्रतिज्ञा को स्मरण कर मौन हो रहे।

उधर सात्यकि और भूरिश्रवा का भयंकर युद्ध हो रहा था। दोनों रथहीन हो खड्ग युद्ध कर रहे थे। भूरिश्रवा सात्यकि का सिर काटना ही चाहता था कि कृष्ण ने संकेत किया। अर्जुन ने तत्काल ही एक दिव्य वाण से भूरिश्रवा का तलवार वाला हाथ काट गिराया। सात्यकि क्रोधोन्मत्त होरहे थे। उन्होंने उसी के खड्गसे उसका सिर काट लिया। सात्यकि तथा अर्जुन के इस कार्य्य से कौरव निन्दा करने लगे। परन्तु अर्जुन के फटकारने पर सभी शान्त हो रहे।

भयङ्कर लड़ाई हुई, रक्त की नदी बह गयी। धीरे-धीरे सूर्यास्त का समय भी निकट आ गया। अर्जुन अत्यन्त चिन्तित हुये। देखते ही देखते योग माया की प्रेरणा से सूर्य्य डूबता दिखलाई पड़ा। हाय! अर्जुन की प्रतिज्ञा पूरी नहीं हुई।

पहली प्रतिज्ञा के भंग होने पर अर्जुन अपनी दूसरी प्रतिज्ञा पूर्ति के लिये तैयार हुये। रणक्षेत्र में ही चिता तैयार होगई। श्रीकृष्ण के आदेशानुसार वे गाण्डीव लेकर जा बैठे।

कौरवों के हर्ष का ठिकाना नहीं रहा। सभी अर्जुन को जलते हुये देखने के लिये दौड़ पड़े। जयद्रथ भी आ पहुँचा। अभिमानी जयद्रथ कृष्णको वार-वार कुवाक्य कह कर प्रसन्न होने लगा। इसी समय सहसा सूर्य्य क्षितिज में दिखाई पड़ा। सूर्य्यास्त नहीं हुआ था, कृष्ण की आज्ञा से योग माया ने छिपा लिया था।

सूर्य को देखते ही कृष्ण ने कहा—अर्जुन तैयार हो जाओ अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करो। देखो अभी दिन बाकी है। पार्थ ने शीघ्र ही एक अमोघ अस्त्र गाण्डीव पर रक्खा और आमन्त्रित कर चला दिया। देखते-ही-देखते जयद्रथ का सिर कट गया और अर्जुन का अमोघ वाण उसे उड़ा लेचला। कुरुक्षेत्र के पास ही में उसका पिता तप कर रहा था, उसी की गोद में जा पहुँचा। जयद्रथ के पिता ने आँख मूँदे हुये ही उसे फेंक दिया। वर प्रसाद के कारण उसका सिर भी टुकड़े-टुकड़े होकर उड़ गया।

अर्जुन की प्रतिज्ञा पूरी हो गई। भगवान कृष्ण पांचजन्य से दिशाओं को रवपूर्ण करते हुये कौरवी सेना से बाहर निकले।

महाबली घटोत्कच का अन्त।

शकट व्यूह के पराजय ने दुर्योधन को अत्यन्त खिन्न और क्रुद्ध कर दिया। वह मारे क्रोध और शोक के अंधा होता हुआ आचार्य के पास पहुँच कर बोला—

हे आचार्य्य! आपके रहते हुये यह कैसा अनर्थ हो रहा है? क्या कारण है कि पाण्डवों की ही विजय होती जाती है? संसार श्रेष्ठ धनुर्धर के रहते हुये हमारी यह दशा हो! जयद्रथ को मार कर पार्थ प्रतिज्ञा पूर्ण कर लें? हाय! आपके सेनापतित्व से मुझे क्या लाभ हुआ? आपही कहिये महात्मन्! मैं आपके इस व्यवहार से ऊब गया हूँ। यदि इसी प्रकार पराजय होती गई, तो अभी ही मर जाना अच्छा है।

दुर्योधन की कुटिलता-पूर्ण बातें सुन आचार्य्य ने कहा—दुर्योधन! तुम व्यर्थ लाल-पीले पड़ते हो। हमने पहले ही कहा था कि अर्जुन अजेय है। जब महा धनुर्धर भीष्म तक जिसके बाणों को नहीं सह सके, तो जयद्रथ की क्या शक्ति थी? यह सब तुम्हारे कर्मों का फल है, अब रोते क्यों हो? जैसा किये हो भोगना ही पड़ेगा। जाओ, सावधानी से युद्ध करो। मैं भी पाञ्चालों पर आक्रमण करता हूँ।

दुर्योधन के जाने पर द्रोण आगे बढ़े। दोनों पक्ष के सैनिक मशालें जला-जला कर घोर युद्ध करने लगे। कुछ ही देर में आचार्य्य ने पाण्डव पक्ष के हजारों वीरों को मार डाला।

उधर दुर्योधन भी आगे बढ़ा, परन्तु युधिष्ठिर के पैने बाणों से व्यग्र हो भाग खड़ा हुआ ।

इसी समय भीम और द्रोण भिड़ गये। महाबली घटोत्कच गुरु-पुत्र से युद्ध करने लगा। भीम ने शीघ्र ही आचार्य्य के सारथि और घोड़ों को मार कर उन्हें रथहीन कर दिया और घटोत्कच से अश्वत्थामा व्यग्र हो गये। उसी समय भीम और सोमदत्त में लड़ाई होने लगी। भीम ने एकही गदाघात में सोमदत्त को मूर्च्छित कर दिया। पिता को मूर्च्छित देख वाह्लीक भीम से लड़ने लगा, परन्तु भीम ने एक ही आघात में उसका अन्त कर दिया। इस प्रकार मतवाले सांड़ की तरह गर्ज-गर्ज कर भीम ने धृतराष्ट्र के नौ पुत्रों को मार डाला। महर्षि द्रोण भी पुनः दूसरे रथ पर बैठ कर आ पहुँचे और युधिष्ठर से घोर युद्ध करने लगे।

ठीक इसी समय कर्ण ने पाण्डव दल पर बड़े वेग से आक्रमण किया। सारी सेना घबड़ा उठी और भाग चली, अपनी सेना की दुर्दशा देख अर्जुन आगे बढ़े और कर्ण के प्रहारों को रोक उनके रथ के घोड़ों और सारथि को मार डाले। यदि शीघ्र ही कृपाचार्य्य नहीं आ जाते तो कर्ण के प्राण संकट में आ गये थे।

कर्ण इस अपमान से क्षुब्ध हो उठे। वे देखते ही देखते संतप्त सूर्य्य के समान तैजस हो गये। उन्होंने क्षण-मात्र में ही भीषण वाण वर्षा से पाण्डवी सेना को विचलित कर दिया। विशाल चतुरङ्गिणी वाहिनी भाग खड़ी हुई।

अपनी सेना को भागते देख युधिष्ठिर अर्जुन से बोले—भाई! शीघ्र ही सूत-पुत्र के बढ़ते हुये वेग को रोको। युधिष्ठिर की बात सुन कर अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा—भगवन्! आप हमारे रथ को कर्ण के पास ले चलिये। उसकी उछल-कूद सहन नहीं होती।

श्री कृष्ण ने इन्द्र की दी हुई शक्ति की बात का स्मरण कर कहा—अर्जुन! इस समय कर्ण से भिड़ना ठीक नहीं। कर्ण आवश्यकता से अधिक क्रुद्ध है, इस समय महाबली घटोत्कच को भिड़ा दो।

महाबली घटोत्कच कर्ण से जा भिड़ा। उसने माया फैला कर ऐसा युद्ध किया कि कौरव दल में हाहाकर मच गया। सर्वत्र त्राहिमाम्! त्राहिमाम्! शब्द होने लगी। कर्ण स्वयं घबड़ा उठा। भयङ्कर विकट परिस्थिति छा गई।

ऐसी स्थिति में कर्ण ने इन्द्र-प्रदत्त शत्रुनाशिनी शक्ति का ही आश्रय लिया। कर्ण ने उसे अर्जुन के लिये स्वरक्षित रख छोड़ा था परन्तु विवश होकर उसे घटोत्कच पर चलाना ही पड़ा। शक्ति के प्रहार से घटोत्कच का अन्त हो गया। परन्तु कर्ण के हाथ से वह शक्ति भी चली गई।

घटोत्कच के मरते ही पाण्डव दल में शोक छा गया। इसी समय श्रीकृष्ण ने सारा भेद कह सुनाया। कर्ण के हाथ से शक्ति निकल जाने की बात सुन सभी अत्यन्त प्रसन्न हुये। इस प्रकार लड़ते हुये दोनों पक्ष की सेनायें उस रात में वहीं विश्राम कीं।

द्रुपद-विराट-वध।

प्रातः काल होते ही फिर दोनों सेनायें डट गईं। कल दिन की पराजय से शोकार्त्त दुर्योधन द्रोणाचार्य्य के पास पहुँच कर बोला—

आचार्य्य! मैं देखता हूं कि आप युद्ध में पक्षपात कर रहे हैं। आप पाण्डवों को अधिक मानते हैं यदि ऐसा नहीं है तो आप रात में पाण्डवों के विश्राम के लिये युद्ध क्यों बन्द करते? आप शत्रुओं का नाश नहीं वल्कि रक्षा कर रहे हैं। क्या कारण है कि उनकी जीत पर जीत होती जाती है? और हम नित्य हारतेही जाते हैं। आचार्य्य! अब और नहीं देखा जाता। यदि आप कहें तो हम-दुःशासन महावली कर्ण और महारथी शकुनि के साथ रणांगण में उतर कर पाण्डवों का नाश करदें।

दुर्योधन की कुटिलता पूर्ण बातों ने आचार्य्य के क्रोध को भड़का दिया। उन्होंने दुर्योधन को फटकारते हुये कहा—दुर्योधय! तुम महा निष्ठुर और निर्दय हो। मैं नित्य प्राणों की वाजी लगाकर युद्ध करता हूँ उस पर भी तुम कहते हो कि आचार्य्य पाण्डवों का पक्ष करते हैं। शोक! इस प्रकार कह कर आचार्य्य पुनः वोले—ठीक है। शकुनि समान वीर अवश्य ही अर्जुन को मार सकेंगे। जाओ तुम लोग जाकर अर्जुन का सामना करो। हम पांचालों से युद्ध करने जाते हैं।—

सूर्य के दिखाई पड़ते ही दोनों सेनायों में भयंकर युद्ध आरम्भ हो गया। कौरवी सेना दो भागों में विभक्त हो गई। एक द्रोणाचार्य्य के साथ वढ़ी और दूसरी कर्ण के पीछे-पोछे चली। द्रोण वड़े वेग से पाँचालों पर टूट पड़े। उनके प्रवल आक्रमण को देख दुर्योधन ने केशव से कहा—हे कृष्ण! सवसे पहले द्रोण और कर्ण का अन्त करना चाहिये। इन्हीं दोनों के रहने से दुर्योधन उछल रहा है। श्रीकृष्ण ने वातों का समर्थन करते हुये कहा—ठीक है विना कर्ण और द्रोण के अंत किये कौरवों पर विजय साधारण ही नहीं असंभव है।

महात्मा द्रोण को संतप्त सूर्य के समान पांचालों के दल में निर्भय घुसते देख युधिष्ठिर उनकी रक्षा के लिये दौड़ पड़े। द्रुपद और विराट भी आगे वढ़ कर द्रोण पर प्रहार करने लगे। परन्तु द्रोण ने उनके शस्त्रों को वात की वात में काट डाला। इसी समय विराट ने तोमार और द्रुपद के प्रास से आचार्य्य पर प्रहार किया।

द्रुपद और विराट के प्रहार से आचार्य्य क्षुब्ध हो उठे। उन्होंने शीघ्र ही तीक्ष्ण अस्त्रों से उनके अस्त्र-शस्त्रो को काट डाला पश्चात् अपने अमोघ अस्त्रो से दोनों को शीघ्र ही स्वर्ग भेज-दिया।

विराट और द्रुपद के गिरते ही पाण्डव दल में हाहाकार मच गया। सभी दुःख और शोक से व्याकुल हो उठे।

द्रोण-वध।

रथी पिता को इस प्रकार द्रोण के हाथ से मरते देख धृष्टद्युम्न की क्रोधाग्नि भड़क उठी। उस महावीर ने दाँतों से होंठ दाबते हुये उच्च स्वर में कहा—द्रोण! ठहर जा। मैं आज ही तुझे मार कर प्रतिशोध लूँगा। यदि मैं प्रतिज्ञा पालन न कर सकूँ तो परलोक में हमारी सद्गति न हो।

इस प्रकार भयंकर प्रतिज्ञाकर धृष्टद्युम्न वीर पांचालों को लेकर द्रोणाचार्य्य पर टूट पड़े। उधर अर्जुन भी आचार्य्य पर बाण बरसाते हुये आगे बढ़े। इतना होते हुये भी आचार्य्य अचल के समान अचल ही रहे। उनका तेज उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। वे प्रलयकारी युद्ध करते हुये पाण्डव सेना में इन्द्रके समान शोभित हुये। जिस भाँति शक्रने दानवों का दलन किया था, उसी भाँति आज द्रोणाचार्य्य ने पांचालों तथा पाण्डव वीरों को विमर्दित कर दिया। वे रथ पर बैठे हुये धधकते पर्वत के समान आगे बढ़े।

आचार्य्य का विकट विक्रम तथा अपूर्व हस्त-लाघव देख युधिष्ठिरादि भयभीत हो उठे, भीम का भीम बल इस चलते हुये मध्याह्न के मार्तन्ड के आगे तुच्छ हो गया। निःसन्देह द्रोणाचार्य्य ने आज असंभव कृत्य कर दिखाया।

महातेजस्वी द्रोण के वज्र तुल्य वाणों से लाखों धराशाय़ी हो गये, सहस्रों मुंड हीन रुण्ड रंणागन में नाचने लके हो अनेकों वीर अंगहीन हो वसुन्धरा के वक्ष पर चि के पीछे- विकट विक्रम धारी आचार्य्य ने अपने तेज से ६ पड़े। प्रलय का श्मशान बना दिया। हा—

आचार्य्य का प्रलयकारी रूप देख युधिष्ठिर की सेना अत्यन्त भयभीत हो उठी। यह देख कृष्ण ने अर्जुन का रथ द्रोण के सामने खड़ा किया। दोनों अद्वितीय वीर एक दूसरे पर प्रहार करने लगे। धीरे-धीरे बहुत समय बीत गया परन्तु कोइ अपने स्थान से हटा ही नहीं। यह देख श्रीकृष्ण ने विचार किया कि बिना किसी कौशल के द्रोण-वध नहीं हो सकता। वे जानते थे कि बिना हर्ष-विषाद एक साथ तथा बिना अश्वत्थामा की मृत्यु का समाचार सुने आचार्य्य शरीर नहीं छोड़ सकते। अतः यही निश्चय कर श्रीकृष्ण ने भीम से कहा—

महावीर! तुम आज युद्ध में जाकर अश्वत्थामा को कहीं दूर फेंक दो जिससे वे सूर्यास्त तक रणभूमि में नहीं पहुँच सकें। इधर तुम अवन्ति राज के अश्वत्थामा नाम के हाथी को मार कर कौरवी सेना में यह हल्ला कर दो कि अश्वत्थामा मर गया। अश्वत्थामा मर गया।

भीम ने श्रीकृष्ण की बात मानली। वह शीघ्र ही भयंकर गदा लेकर अश्वत्थामा की खोज में निकल पड़ा। इधर भगवान कृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा—जब द्रोणचार्य्य आपके

पास पूछने के लिये आवें तो आप कह दीजियेगा। कि अश्वत्थामा मर गया।

युधिष्ठिर बड़े सत्यवादी थे प्रथम तो उन्होंने अस्वीकार कर दिया परन्तु कृष्ण के बार-बार समझाने पर विवश होकर उन्हें स्वीकार करना पड़ा।

उधर भीम ने अश्वत्थामा को दूर फेंक कर अश्वत्थामा नाम के हाथी को मार डाला। सारी सेना में खलबली मच गई। सभी अश्वत्थामा के लिये शोक करने लगे।

पुत्र की मृत्यु का समाचार सुन द्रोण अत्यन्त विकल हुये। उन्हें विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने निश्चय किया कि चलकर युधिष्ठिर से पूछें। वहाँ पहुँचने पर निश्चय ही पता लग जायेगा। इस प्रकार वे युधिष्ठिर के पास आये और अश्वत्थामा की मृत्यु का समाचार पूछने लगे। युधिष्ठिर ने कृष्ण के बताये हुये रीति से लज्जित होते हुये कहा— अश्वत्थामा 'हतो नरो वा कुंजरो'। जिस समय युधिष्ठिर के मुख से नरो शब्द समाप्त हो रहा था कि श्रीकृष्ण ने बड़े जोर से पाँचजन्य शंख बजा दिया जिससे द्रोणाचार्य्य 'वा कुंजरो' शब्द नहीं सुन सके। युधिष्ठिरके मुँह से अश्वत्थामा हतो, सुनते ही उनकी संज्ञा लुप्त होगई। वे अस्त्र-शस्त्रों को त्याग प्राणत्याग के लिये समाधिस्थ होकर बैठ गये। इस भाँति महाबली आचार्य्य को शस्त्र हीन तथा पूर्ण शान्त देख धृष्टद्युम्न रथ से कूद पड़ा और खड्ग लेकर आचार्य्य की ओर बड़े वेगसे दौड़ा। धृष्टद्युम्न का व्यापार देख अर्जुन

का हृदय द्रवित हो उठा, उन्होंने दौड़ कर धृष्टद्युम्न को इस पाप-कर्म से बचने के लिये कहते हुये कहा—महावीर! ठहरो! ठहरो! आचार्य्य का इस प्रकार वध न करो। परन्तु वहाँ कौन सुनता है। धृष्टद्युम्न शीघ्र ही आचार्य्य के पास पहुँचा और तीक्ष्ण खड्ग से क्षण मात्र में ही उनके सिर को काट डाला। इस प्रकार महातेजस्वी आचार्य्य का अन्त हुआ। कौरवी सेना भाग खड़ी हुई।

सूर्य के ढलते-ढलते अश्वत्थामा भी रण क्षेत्र में आ पहुँचे। अपने पक्ष के बड़े बड़े महारथियों को इस प्रकार भागते देख उन्होंने कारण पूछा—

धृष्टद्युम्न द्वारा पिता की मृत्यु का समाचार सुन अश्व-त्थामा की आँखे लाल हो उठीं। उनके क्रोधका ठिकाना न रहा। उन्होंने दिशाओं एवं विदिशाओं को रव पूर्ण करते तथा रण-स्थल को कँपाते हुये कठिन प्रतिज्ञा की कि मैं आज ही पाण्डव वीरों का संहार कर डालूँगा।

ऐसी प्रतिज्ञा कर अश्वत्थामा ने पहले नारायणास्त्र का प्रयोग किया। उस अस्त्र के छूटते ही वज्र के समान भयं-कर शब्द हुआ। पृथ्वी काँप गई तथा मेरू हिल उठे। देखते-ही-देखते भयंकर जल-वृष्टि होने लगी। महा अंधकार छा गया। सूर्य की किरणें तेजहीन हो गईं। इस प्रकार नारायणास्त्र से पांडवों का भयंकर नाश होने लगा।

श्रीकृष्ण के सिवा उसका प्रतिकार और किसी को नहीं मालूम था। उन्होंने बड़े जोर से कहा—सभी साष्टांग कर

लो। इससे इस अस्त्र का प्रभाव जाता रहेगा। सबों ने श्रीकृष्ण की आज्ञा का पालन किया, केवल भीम खड़े डटे रहे। इस महाअस्त्र के द्वारा उनका अन्त ही होने वाला था कि श्रीकृष्ण ने दौड़कर उन्हें पेट के नीचे छिपा कर बचा लिया।

नारायणास्त्र के विफल हो जाने पर अश्वत्थामा ने भयंकर युद्ध करना आरम्भ किया। कुछ ही देर में पांडव पक्ष के बड़े-बड़े वीर काँप उठे। अपनी सेना की दुर्दशा देख अर्जुन आगे बढ़े और अश्वत्थामा के प्रहारों को रोकने लगे। अश्वत्थामा का क्रोध और भी बढ़ गया। उन्होंने शीघ्र ही आग्नेय अस्त्र आमन्त्रित कर कृष्णार्जुन पर चला दिया।

ओह! आग्नेय अस्त्र ने प्रलय का दृश्य उपस्थित कर दिया। आकाश और पृथ्वी अग्नि की लपटों से पूरित हो उठी। पाण्डव सेना में हाहाकार मच गया। देखते-ही देखते एक अक्षौहिणी सेना भस्म हो गई। इसी समय ब्रह्मास्त्र के द्वारा अर्जुन ने आग्नेय अस्त्र का प्रतिकार किया। अपने दोनों अस्त्रों को विफल होते देख अश्वत्थामा अत्यन्त लज्जित हुये और समर-भूमि को छोड़ कर एक ओर निकल भागे।

इधर संजय ने धृतराष्ट्र से द्रोण वध तथा आज के भीषण युद्ध का वर्णन किया। जिसे सुनते ही मूर्च्छित हो गये। होश में आते ही चिन्ता सागर में डूबे हुये बार-

बार कहने लगे । हाय ! कौरवों के आशाधार महातेजस्वी वज्रकर्मा आचार्य्य मारे गये ? शोक ! महारथी धृष्टद्युम्न ने महापराक्रमी-किसी से भी नहीं मरने वाले जगद्गुरु द्रोण को मार डाला । इस प्रकार सोचते-विचारते अश्वत्थामा के नाराय-णास्त्र और अनलास्त्र के विफल होने पर पश्चात्ताप करते हुये बोले—

संजय ! अब कौरवों का शीघ्र ही सर्वनाश होगा । जब भीष्म-द्रोण मारे गये तब और कौन वीर है जो अर्जुन का सामना कर सके ।

इति श्री महाभारत द्रोणपर्व समाप्त ।

कर्ण-पर्व ।

कर्ण का सेनापतित्व

और

शल्य का सारथ्य

कौरव पाण्डवों के आचार्य्य, परम पराक्रमी प्रलय-कालीन जलते हुये सूर्य के समान महा तेजस्वी उग्रकर्मा महर्षि द्रोण सर्वदा के लिये समर-क्षेत्र में सो गये। ओह! कौरव दल में भयंकर शोक छा गया। महावीर अश्वत्थामा पितृ-शोक से अत्यन्त व्याकुल हो विलाप करने लगे। दुर्योधनादि कौरव भी अत्यन्त शोकाकुल हो उठे। सबों के चेहरे पर विषाद की रेखायें दौड़ गईं। सर्वत्र सन्नाटा छा गया।

अपने वीरों को शोक-सागर में डूबते देख दुर्योधन ने कहा—वीरो! जो होना था, हो गया। अब आगे क्या

करना चाहिये—निश्चय कीजिये। शत्रुओं का जिस प्रकार संहार हो आप लोग उपाय करें।

दुर्योधन की बातों ने करुणा के श्रोत में वीर रस उत्पन्न कर दिया। वीरों के भुजदण्ड फड़कने लगे तथा भौंहें टेढ़ी हो गईं। क्रोधाग्नि की ज्वाला ने शोक धारा को सुखा दिया। इसी समय आचार्य्य पुत्र वीर अश्वत्थामा बोले—

वीरों! आदित्य ब्रह्मचारी भीष्म और आचार्य्य स्वधर्म पालन करते हुये वीर-गति को प्राप्त हो चुके। अब सफलता की आशा के लिये हमलोगों को चाहिये कि महारथी कर्ण को सेनापति का पद प्रदान करें। अस्त्र-विद्या के मर्मज्ञ कर्ण अवश्य ही शत्रुओं को जीतेंगे।

अश्वत्थामा की बातें सुनकर दुर्योधन ने कहा—भाई कर्ण! अब तुम्हारा ही भरोसा है! आचार्य्य और पितामह दोनों पाण्डवों को मानते थे। इसलिये वे पाण्डवों को विजय नहीं कर सके। मुझे आशा है तुम पाण्डवों को परास्त कर सुखी करोगे। यथा समय कर्ण का अभिषेक हुआ। चारों ओर मंगल वाद्य बज उठे।

कौरव सेना में नवीन उत्साह का संचार हो गया। कुछ क्षण के लिये पितामह और आचार्य्य का शोक लोग भूल गये। सबों का ध्यान महातेजस्वी कर्ण की ओर आकृष्ट हो गया। देखते ही देखते वीरों के हृदय से शोक और संताप की विस्मृति हो गई। सभी एक स्वर से गर्ज उठे। सेनापति कर्ण के जय निनाद से आकाश और पृथ्वी एक

होगई। वीरों के गम्भीर गर्जन से दिशायें गूँज उठी तथा रणस्थल रव पूर्ण हो गया।

इसी समय कर्ण सबों को उत्साहित करते हुये आ पहुँचे और दिशाओं को प्रतिध्वनित करते हुये जोर से बोले—

वीरों! प्रतिज्ञा पूर्ति तथा शत्रुओं को नाश करने के लिये प्राणोत्सर्ग कर दो। प्रतिज्ञा पूर्ति के लिये शरीर को न्योछावर कर दो। आज भीषण समर होगा। मुझे देखना है कि कौन-कौन वीर प्राणों के मोह को छोड़कर पांडवों का नाश करने के लिये तैयार है। आओ और रणांगण में प्रलयंकर नृत्य करते हुये महाबली पांडवों का संहार कर दो।

कर्ण की ओजस्विनी वक्तृता ने वीरों में जान उत्पन्न कर दी—लोग अभी-अभी जो पांडवों की मार से रो रहे थे, एका-एक काल के समान क्रोधित हो गरजते हुये बोल उठे—

हमारी सेना के एकमात्र कर्णधार! आप निर्भय और निश्चिन्त रहें। कौरव वीर प्राण रहते विचलित नहीं हो सकते। हम लोग आपके साथ अचलों को भी चला सकते हैं, मेरु और विन्ध्यादि पर्वतों को चूर-चूर कर सकते हैं तथा रत्नेश को भी बरबस बांध सकते हैं। रात्रि बीतने दीजिये। हम लोग कल दिखादेंगे—वीरता किसे कहते हैं? प्रत्येक सैनिक आपके सेनापतित्व में हँसते-हँसते उत्सर्ग होने के लिये तैयार है।

सैनिकों की बातें सुन दुर्योधन अत्यन्त प्रसन्न हो कर्ण का स्वागत करते हुये बोले—

महावीर ! इस भयंकर स्थिति में तुम्हीं एक मात्र कर्ण-धार हो—इस जर-जर कौरव तरणी के तुम्हीं आशाधार तथा पतवार हो। अब तुम्हारा ही भरोसा है।

दुर्योधन की बातें सुन कर्ण ने शान्त्वना देते हुये कहा—कुरुराज ! आप निर्भय रहो कल मैं निश्चय ही पाण्डवों का सर्वनाश करूँगा।

प्रातःकाल होते ही सेनायें मैदान में आ डटी। महावीर कर्ण ने अपनी सेना की रक्षा के लिये मकरव्यूह बनाया। नेत्रों के स्थान पर शकुनि और उलूक को स्थापित किया। मस्तक पर महारथी अश्वत्थामा, कण्ठ प्रवेश की रक्षा के लिये भाइयों सहित दुर्योधन को तथा दक्षिण भाग के लिये कृपाचार्य को नियुक्त किया। इसके अतिरिक्त कृतवर्मा के सेनापतित्व में नारायणी सेना, त्रिगर्त्तराज के साथ संसप्तक वीर और मद्र देश की सेना के साथ महाबली शल्य अगल-बगल से रक्षा करने के लिये तैयार हुये। महावली कर्ण स्वयं मुख स्थान पर डट कर खड़े हो गये।

उधर अर्जुन भी अर्द्धचन्द्राकार व्यूह बनाकर शत्रु की प्रतीक्षा कर रहे थे।

यथा समय संग्राम आरम्भ हुआ। दोनों सेनायें परस्पर बड़े वेग से भिड़ गईं। दोनों पक्षके योद्ध प्राणों का मोह त्याग कर भीषण समर करने लगे। महावली कर्ण ने अपूर्व वीरता का परिचय दिया। कर्ण के अविराम वाण-वर्षा से सहस्रों योद्धाओं के हाथ पैर कट-कट कर पृथ्वी पर गिरने लगे।

देखते-ही-देखते पृथ्वी रूंड-मुंडों से पटने लगी। ओह! सर्वत्र रक्त की धारा बह चली। पाण्डव सेना में हाहाकार मच गया।

अपनी सेना की दुर्दशा देख नकुल कर्ण पर टूट पड़े और भीषण वाण-वर्षा के द्वारा उन्हें व्यथित कर दिये। नकुल के प्रहारों से कर्ण अत्यन्त क्षुब्ध हो उठे। वे मारे क्रोध के दाँते पीसते हुये विषधर सर्प के समान वाण छोड़ने लगे। उन्होंने कुछ ही क्षण में नकुलके सारथि और घोड़ों को मार गिराया। नकुल महावली कर्ण की मार से भाग खड़े हुये। किन्तु कर्ण ने नकुल के गले में धनुष डालकर खींच लिया और हँसते हुये कहा—नकुल! तुम युद्ध के योग्य नहीं हो; जाओ। अब कभी कौरवों से लड़ने का साहस न करना। यदि कर्ण चाहते तो नकुल का अन्त कर देते परन्तु माता कुन्ती के सामने की हुई प्रतिज्ञा को स्मरण कर उन्हें छोड़ दिये।

महावली कर्ण ने आगे बढ़कर पांचालों पर आक्रमण किया। उनके प्रखर वाणों ने पांचालों में प्रलय मचा दी। देखते-ही-देखते उनके सहस्रों महारथी धराशायी हो गये। हजारों रथ चूर-चूर हो उठे तथा अनेकों अश्वारोही कट गये। जो बचे थे प्राण लेकर भाग खड़े हुये। ओह! सूर्य तुल्य प्रचण्ड पराक्रमी कर्ण की मार से पाण्डवी सेना भाग खड़ी हुई।

महारथी अर्जुन उस समय संसप्तकों से युद्ध कर रहे

थे। पाण्डवी सेना विचलित होते देख भगवान कृष्ण ने कहा—अर्जुन शीघ्र ही संसप्तकों का अन्त करो। देखो ! कर्ण की मार से तुम्हारी सेना भागी जा रही है।

श्रीकृष्ण की चेतावनी ने जादू का काम किया। अर्जुन का क्रोध और दूना हो गया। वे साक्षात इन्द्र के समान उन पर टूट पड़े। क्षणमात्र में ही उन्होंने संसप्तकों का नाश कर दिया। भगवान कृष्ण ने कपिध्वज को कर्ण की ओर बढ़ाया। मार्गमें अश्वत्थामा और दुर्योधन ने रोकना चाहा—परन्तु प्रलयकारी सूर्य के समान अर्जुन ने शीघ्र ही दोनों के सारथि और घोड़ों को मार कर रथों को चूर-चूर कर दिया। अर्जुन के उग्र रूप और भीषण गति—विधि को देख ऐसा अनुमान होने लगा कि आज ही कौरवों का अन्त कर डालेंगे।

महाबली अर्जुन ने दिशाओं को बाणों से भर दिया। उनके बाण मुशल, परिघ, भुशुण्डी और तुपक से बढ़ कर कौरवी सेना का संहार करने लगे। कुछ ही देर में सुदृढ़ कौरवी सेना भाग खड़ी हुई। देखते-ही-देखते दिवाकर अस्ताचल में जाकर विलीन हो गये। धीरे-धीरे अंधकार बढ़ने लगा। रात्रि के आते ही युद्ध बन्द हो गया।

दूसरे दिन प्रातः काल कर्ण ने दुर्योधन से कहा—महाराज ! आज हमारा अर्जुन के साथ भीषण युद्ध होगा और यही हमारा अर्जुन से अन्तिम युद्ध है। आज या तो हमहीं रहेंगे या अर्जुन हीं। राजन ! अर्जुन में कई बातों की

श्रेष्ठता है। देखिये—उनके पास गाण्डीव दिव्य धनुष है। उनके दोनों तूण अक्षय हैं, उनका अग्निका दियारथ भी कभी नहीं टूटता। उनके घोड़े वायु वेग से चलने वाले हैं। इसके अतिरिक्त उनके सारथि स्वयं भगवान कृष्ण हैं। यदि श्रीकृष्ण के समान हमें कोई सारथि मिल जाय तो हम अर्जुन को आज अपना बल—विक्रम दिखा सकते हैं। महाबली शल्य इस योग्य हैं। यदि उन्हें राजी कीजिये और हमारे रथ के पीछे-पीछे अस्त्र-शस्त्रों से भरी हुई गाड़ियों का प्रबन्ध रखिये तो हम गाण्डीवधारी को द्वैरथ युद्ध में परास्त कर सकते हैं। आज स्वयं देवेन्द्र भी आवें तो अर्जुन की रक्षा नहीं कर सकते। कुरुराज! आज कर्ण के पुरुषार्थ को देखना।

कर्ण की बातें सुनकर दुर्योधन अत्यन्त आनन्दित हो उठा और शल्य के पास जाकर विनय-पूर्वक बोला—मामा! श्रीकृष्ण के समान रथ हाँकने की विद्या आपके अतिरिक्त और कोई नहीं जानता। मैं नतमस्तक होकर आपकी प्रार्थना करता हूँ, कृपया महाबली कर्ण की सहायता कीजिये। आप उनका सारथ्य ग्रहण कर मेरे डूबते हुये जहाज को इस अपार रण-सागर से पार लगाइये।

महाबली शल्य तो यह चाहते ही थे, उन्होंने स्वीकृति देते हुये कहा—वत्स! ठीक है-हम सारथि हो सकते हैं, परन्तु महाबली कर्ण को प्रतिज्ञा करनी होगी। रथ चलाते समय हमारी समझ में जो उचित बात आयेगी, हम उसे अवश्य

कहेंगे। उस समय कर्ण को उसे रोकने का अधिकार न होगा। यदि कर्ण को स्वीकार हो तो हम सारथि बन सकते हैं।

महाबली कर्ण ने शल्य की बात मान ली। कुछ ही देर में तेजस्वी कर्ण का रथ चल पड़ा। रथ में सूर्य के समान बैठे हुये कर्ण को देख दुर्योधन गद्गद् कंठ से कहा—हे परम सखा! जिस कार्य को पितामह और आचार्य नहीं कर सके उसे तुम कर दिखाओ। जाओ शत्रुओं पर विजय प्राप्त करो, इस प्रकार कौरव वीर कर्ण की मंगलकामना करते हुये जय-जयकार किये।

वीरवर कर्ण का रथ भयंकर निर्घोष करता हुआ पांडवों की ओर आगे चला। महारथी शल्य ने रथ को कुछ दूर पर ले जाकर खड़ा कर दिया।

रथको स्थिर देख कर्ण ने कहा—हे मद्रराज! मेरा रथ शीघ्र ही पाण्डव-सेना में पहुँचाइये। मैं आज ही पाण्डवों को परास्त करना चाहता हूँ, आज मैं अपने बल-विक्रम से अभिमानी अर्जुन का अभिमान बात-की-बात में नष्ट करूँगा।

कर्ण की अभिमान भरी बातों को सुन शल्य ने व्यंग पूर्वक कहा—सूत पुत्र! अभिमान की बातें न कहो—जिन से देवता, दानव, गन्धर्वादि डरते हैं उन्हीं पाण्डवों की अवज्ञा करते हो। ओह! रणभूमि में जब गांडीव के के भयङ्कर टङ्कारों को सुनोगे और भीम का प्रलयकारी युद्ध

देखोगे तो तुम्हारी बोली बन्द हो जायगी। याद रखो! उनका अपूर्व रण कौशल देख तुम ऐसी बात कभी निकाल न सकोगे। कर्ण ने शल्य की बातों का उत्तर न देकर कहा—मद्रराज! शीघ्र रथ बढ़ाइये। आप देखते रहिये, मैं किस प्रकार पाण्डवों का संहार करता हूँ।

घोड़े वायु वेग से शत्रुओं का संहार करते हुये आगे बढ़े। कर्ण की विकट शंखध्वनि ने कौरव वीरों को उत्साहित कर दिया सभी महारथी दुर्योधन के साथ कर्ण के पीछे हो लिये। महाबली कर्ण पांडवी सेना में पहुँच कर सैनिकों से कहते हुये बढ़ने लगे कि जो अर्जुन को दिखा देगा वह आज मुझसे मुँह माँगा पावेगा।

कर्ण की बातों से हँसते हुये शल्य ने कहा—सूत-पुत्र! इतनी शीघ्रता न करो। उतावला होना ठीक नहीं, व्यर्थ धन न गँवाओ। अर्जुन स्वयं ही तुम्हारे सामने आयेगा। इस प्रकार कहते हुये पुनः बोले—कर्ण! कृष्णार्जुन को मारने की यह अनाधिकार प्रतिज्ञा करते समय तुम्हारा कोई शुभचिन्तक न था जो तुम्हें रोकता। ओह! तुमसे शुभा-शुभ विचारने की शक्ति जाती रही। मैंने जान लिया। तुम गले में पत्थर बाँध कर समुद्र पार होना चाहते हो, तौभी यदि तुम कल्याण के इच्छुक हो तो सेना सहित युद्ध करो। अकेले पांडव दल में न घुसो। देखो हम तुम्हारी और कुरुराज की भलाई के लिये कह रहे हैं।

कर्ण ने कहा—वीरवर! मुझे अपनी भुजाओं पर

भरोसा है। तुम मुझे विचारों से डिगाना चाहते हो। परन्तु नहीं, स्वयं इन्द्र भी मुझे सङ्कल्प से विचलित नहीं कर सकते।

कर्ण को इस प्रकार दृढ़ देख शल्य ने पुनः कहा—ऊँट जब तक पहाड़ के निकट नहीं जाता तब तक वह अपने को ही बड़ा समझता है। तुम तभी तक ये बातें कर रहे हो जब तक तुमने गाण्डीव की टङ्कार नहीं सुनी। कपि-ध्वज के निर्घोष से तुम्हारी शेखी भूल जायगी।

क्या सर्प गरुड़ का, मूसा चिलार का और बकरी बाघ का सामना कर सकती है।

शल्य के व्यंग वाक्यों से कर्ण अत्यन्त क्षुब्ध हो बोला—मूर्ख बकवादी! तुम क्या जानते हो? गुणी ही गुण का हाल जानता है। अर्जुन के बल विक्रम का हाल हम जानते हैं, तुम्हें क्या मालूम? आज मेरे बल-विक्रम को देखना। प्रलयकारी सर्पास्त्र की सहायता से अर्जुन के शरीर को छिन्न-भिन्न कर दूँगा। उसके प्रहार से कृष्णार्जुन कोई नहीं बच सकते।

शल्य! तुम कायर हो। इसी लिये कायरता की बातें करते हो। शोक! अपने मुँह से शत्रुओं की प्रशंसा करते हो। कुलांगार! मुझे भयभीत करना चाहता है? प्रतिज्ञाबद्ध होने के कारण तुझे छोड़ रहा हूँ, अन्यथा अभी यमलोक भेज दिये होता।

शल्य ने पुनः हँसते हुये कहा—कर्ण! तुम ज्ञानान्ध हो

रहे हो। तुम व्यर्थ ही गर्ज रहे हो, मैं तुम्हारे हित के लिये ही कह रहा हूँ। तुम क्या लड़ोगे? कृष्णार्जुन को रथपर देखते ही काँप उठोगे। धीरे-धीरे दोनों का विवाद बढ़ गया। कर्ण को बे तरह गर्म देख दुर्योधन ने शल्य को हाथ जोड़ किसी तरह शान्त किया।

कौरवों को युद्ध के लिये कटिवद्ध देख युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा—महावाहो! देखो—सामने वह कर्ण का स्वर्ण-रथ दिखाई दे रहा है। तुम जाओ, सूतपुत्र से संग्राम करो। हम कृपाचार्य से लड़ेंगे, भीम दुर्योधन से भिड़ गये। युधिष्ठिर की आज्ञा से नकुल वृषसेन के साथ, सहदेव शकुनि के साथ तथा सात्यकि कृतवर्मा से लड़ने के लिये आगे वढ़े।

थोड़ी ही देर में कपिध्वज कौरवी सेना के निकट पहुँच गया। श्रीकृष्णार्जुन को आते देख शल्य ने कहा—हे कर्ण! जिन्हें तुम देर से ढूँढ़ रहे थे—वे स्वयं आ रहे हैं।

वह सामने धूल उड़ती दिखाई दे रही है। उनके रथ को देखो-कितना भयंकर वज्र तुल्य निर्घोष हो रहा है। यह हृदय दहलाने वाली गाण्डीवकी ही टङ्कार है। कर्ण! क्या मेघों के समान गम्भीर शब्द नहीं सुनरहे हो? देखो! देखो! कपिध्वज के भार से पृथ्वी काँप रही है। ठहर जाओ! अभी-अभी उस शत्रु-नाशक वीर का अपूर्व बल-विक्रम ज्ञात हो जाता है।

कर्ण अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे, उनकी आँखें अंगारे के समान दहक उठीं, उन्होंने दाँतें पीसते हुये कहा—

शल्य! वह देखो? काल के समान संसप्तकों ने कपि-ध्वज को घेर लिया है। जान पड़ता है कि कृष्णार्जुन का रथ हमारे पास तक नहीं पहुँच सकता। संसप्तकों के वीरत्वसिंधु में ही डूब जायगा। जान पड़ता है कि संसप्तकों के द्वारा ही आज अर्जुन का मरन होगा।

शल्य ने हँसते हुये कहा—कर्ण! यह क्या कह रहे हो। सूर्य को शीतल करना, समुद्र को सुखा देना तथा वायु को रोक देना जितना असम्भव है उससे भी कहीं असम्भव अर्जुन का संहार करना तथा रोक रखना है। तुम्हें अभी क्या मालूम? जरा अर्जुन को सामने आ जाने दो। ठहरो! अभी कुछ ही देर में तुम्हारी बढ़-बढ़ कर कही हुई सारी बातें निकल जायेगी। पार्थ के पैने बाणों से तुम विकल हो उठोगे।

अर्जुन-भर्त्सना।

महावली कर्णको किसी प्रकार अधीर तथा भयभीत न होते देख अन्तमें शल्य ने कहा—सूत पुत्र ! देखो भीषण-कर्मा वृकोदर बहुत दिनों का वैर स्मरण कर वक्र दृष्टि से कौरवी सेना को देखते हुये कृतान्त के समान शोभित हो रहे हैं। इतना कहकर मद्रनरेश ने कर्ण के रथ को उस स्थान पर ले जाकर पहुँचा दिया—जहाँ भीम कौरवों का संहार कर रहे थे।

कर्ण को सन्मुख देख भीम की क्रोधाग्नि भभक उठी। उन्होंने शीघ्र एक वाण छोड़कर कर्ण के शरीर को वेध दिया। कर्ण भी जल उठे और एक पैना वाण छोड़े जिसकी मार से भीम के हृदय से रक्त की धारा वह चली। अब तो भीम और दहक उठे। उन्होंने तत्काल ही एक पर्वत फाड़नेवाला वाण धनुष पर रक्खा और कान तक खींच कर बड़े जोर से कर्ण पर चला दिया। सहस्र यत्न करने पर भी महावली कर्ण उस वाण को नहीं रोक सके। वे तत्काल उसकी चोट से मूर्च्छित होगये। मद्रनरेश महावली कर्णको बेहोश देख रण-स्थल से भगा लाये। महावली भीम घूम-घूम कर कौरवी सेना का संहार करने लगे।

मूर्च्छा टूटने पर कर्ण पुनः मैदान में आये। सामने ही उन्होंने नकुल सहदेव की रक्षा में युधिष्ठिर को युद्ध करते

देखा। शल्य की इच्छा नहीं थी तथापि कर्ण ने युधिष्ठिर पर आक्रमण किया। कुछ देर तक दोनों महारथियों में लड़ाई होती रही। कर्ण ने क्रोध करके तीन वाण चलाया। शत्रु के आघात से क्रुद्ध हो धर्मराज ने पैने वाणों से उनके सारथि और घोड़ों को व्यग्र कर दिया।

प्रतापी कर्ण अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने एक वाण से युधिष्ठिर और नकुल के घोड़ों को मार डाला तथा दूसरे वाण से धर्मराज का शिरत्राण गिरा कर नकुल के धनुप की डोरी काट दी। महावली कर्ण के भीपण कर्म को देख शल्य घवड़ा उठे। युधिष्ठिर की दीनावस्था पर उन्हें वड़ी दया आई। उन्होंने कर्ण को रोकने के अभिप्राये से कहा—

कर्ण! आज तुम्हें गाण्डीव धर से लड़ना है, अभी ही सारावल न खर्च कर दो। सभी शस्त्रास्त्रों के समाप्त हो जाने पर अर्जुन के सामने जाने पर तुम्हारी अवश्य ही हँसी होगी। परन्तु कर्ण ने शल्य की वातों पर ध्यान नहीं दिया। उसने शीघ्र ही तीनों पांडवों को घायल कर रणभूमि से भागने के लिये विवश कर दिया। इसी समय शल्य ने पुनः कहा—

हे कर्ण! देखो, महारथी भीम तुम्हारे प्रिय सखा दुर्योधन से युद्ध कर रहे हैं, तुम शीघ्र अपने मित्र को नाश होने से वचाओ।

कर्ण ने मित्र को विपत्ति में देख युधिष्ठिरादि पाण्डवों को छोड़ कर महावली भीम की ओर दौड़े। इधर घायल

युधिष्ठिर अत्यन्त लज्जित हो दोनों भाइयों के साथ शिविर में लौटे पश्चात् नकुल सहदेव को भीम की सहायता के लिये भेज चारपाई पर गिर पड़े। अनेक चिकित्सक घायल युधिष्ठिर की चिकित्सा करने लगे।

इधर अर्जुन ने भयानक संग्राम कर संसप्तकों को हराया। आगे बढ़ते ही उन्हें गुरु पुत्र अश्वत्थामा से लड़ना पड़ा। इस प्रकार लड़ते-भिड़ते सबों को परास्त करते अर्जुन उस स्थान पर पहुँचे जहाँ युधिष्ठिर युद्ध कररहे थे। धर्मराज को न देख पार्थ अत्यन्त विस्मित हो भीम से पूछे—भीम ने शिविर में लौटने की बात कह सुनाई।

भीमसेन के मुँह से यह समाचार सुनते ही कृष्णार्जुन बड़े वेग से शिविर की ओर बढ़े। रथ से उतर कर दोनों ने युधिष्ठर को प्रणाम किया। युधिष्ठिर को अच्छी अवस्था में देखकर उन्हें सन्तोष हुआ। कृष्णार्जुन को अति शीघ्र रणस्थल से आते देख युधिष्ठिर ने समझा कि कर्ण मारे गये, अतः प्रसन्न हो रूँधे कण्ठ से बोले—

हे जनार्दन! हे जिष्णु! तुम लोगों ने कर्ण का संहार किया, इससे हम अत्यन्त प्रसन्न हैं। कहो तुम लोग कुशल पूर्वक हो न? वह नित्य हम लोगों को तंग किया करता था, भीष्म तथा द्रोणके द्वारा जो कष्ट मुझे नहीं हुआ, वह कर्ण के द्वारा मिला। इसी हेतु उसका मृत्यु-संवाद सुनने के लिये हम उत्सुक हो रहे हैं। अर्जुन ने कहा—

धर्मराज! संसप्तकों को परास्त कर मुझे अश्वत्थामा

से युद्ध करना पड़ा। हमने शत्रुओं के दल में रुधिर की नदी बहा दी। हमारे बाणों की मार से अश्वत्थामा कर्ण की सेना में जा घुसे। मैंने पीछा किया परन्तु बीच ही में भीमसेन द्वारा आपका समाचार सुन यहाँ चला आया। चलिये कर्ण के साथ अब हमारा युद्ध देखिये। कर्ण द्वारा पराजित युधिष्ठर उसे अब तक जीवित जान आपे से बाहर हो गये। उन्होंने क्रोध करते हुये कहा—

अर्जुन! तुमने तो बार-बार कर्ण के मारने की प्रतिज्ञा की है, तुमने कहा है कि मैं अकेला ही कर्ण को मारूँगा? तुम्हारी प्रतिज्ञा कहाँ चली गई? हाय! भीम को अकेला शत्रुओं के व्यूह में छोड़ कर यहाँ चले आये? शोक! मुझे ऐसी आशा नहीं थी। हमने तुम्हारे बल-विक्रम पर भरोसा करके ही १२ वर्ष का दीर्घकाल समाप्त किया है, परन्तु तुमने हम लोगों को आकाशमें चढ़ाकर एकदम पटक दिया। धिक्कारहै तुम्हारे बल-विक्रम को। इस गांडीव को और उस अक्षय तूण को धिक्कार है। हाय! तुम्हारे दिव्यरथ को भी धिक्कार है। अर्जुन! जब तुम सूत-पुत्र के प्रहारों से अपनी सेना की रक्षा नहीं कर सकते तो धनुष धारण करना व्यर्थ है। यदि तुममें योग्यता नहीं हो तो यह धनुष और तूणीर किसी योग्य योद्धा को दे दो। ऐसा करने से मुझे लोग पुनः अपमानित तो नहीं करेंगे—और राज भंग तो नहीं देखेंगे?

युधिष्ठिर की बातें समाप्त होने के पूर्व ही अर्जुन का क्रोध उबल पड़ा। मारे क्रोध के वे थर-थर काँपने लगे,

उन्होंने शीघ्र शत्रुओं का नाश करने वाले खड्ग को निकाल लिया—

अर्जुनके इस व्यवहार को देख श्रीकृष्ण घबड़ाकर बोले—

महावीर ! तुमने तलवार क्यों निकाल ली । यहाँ पर तुम्हारा कोई शत्रु तो है नहीं । धर्मराज को कुशलित देख तुम्हें प्रसन्न होना चाहिये, तुम उन्मत्तों के समान आचरण क्यों कर रहे हो । महाबाहो ! शान्त होओ ।

श्री कृष्ण की बातें सुन तेजस्वी अर्जुन ने युधिष्ठिर की और क्रोध पूर्वक देखते हुये कृष्ण से कहा—

हे मधुसूदन ! अपमान करने वाला ही शत्रु होता है । हमने इसी लिये खड्ग को बाहर किया है—तुम्हें जो कुछ कहना हो कहो ।

श्रीकृष्ण चिन्तित हो अर्जुन की बुद्धि को धिक्कारते हुये बोले—अर्जुन ! ज्ञानान्धों के समान क्रोधावेश में ज्येष्ठ भ्राता को मारने के लिये तुम्हें उद्यत देख हम अत्यन्त विस्मित और दुखित हो रहे हैं । पार्थ ! हमारे सदुपदेशों का यही प्रतिफल है ? अरे ! सूत-पुत्र के बाणों से व्यथित होने के कारण महात्मा युधिष्ठिर क्षुब्ध होकर अनुचित वचन कहे हैं । अतः उनकी प्रसन्नता के लिये तुम शीघ्र कर्ण का संहार करो ।

कृष्ण की बातों को सुन अर्जुन ने खड्ग को मियान के भीतर कर लिया । परन्तु उनका क्रोधावेग कम नहीं हुआ । वे क्रोध-पूर्वक युधिष्ठिर से कठोर बचन बोले—

राजन्! आपने क्या समझ कर हमें धिक्कारा। आप तो युद्ध-भूमि से कोसों दूर बैठे हैं। शत्रुओं का नाश करने वाले भीमसेन हमारी निन्दा कर सकते हैं। हम उनके वाग-वाणों को सह सकते हैं। आपकी रक्षा तो सर्वथा हमी लोग करते हैं। अतः हमारी निन्दा करना आपको शोभा नहीं देता। हम लोग आपकी भलाई के लिये स्त्री-पुत्र और प्राणों का मोह त्याग कर रात-दिन लगे हैं तथापि आप वाक्य-वाणों से पीड़ित करने की चेष्टा करते हैं। शोक! यह विपत्ति जिसमें करोड़ो आत्माओं की आहुति हो रही हैं—किसकी बुलाई हुई है? तुम्हीं ने जुआ खेल कर यह सारी विपत्ति बुलाई है। अब दूर हम करें? अव कभी ऐसा न कीजियेगा। कहे देता हूँ।

अर्जुन की बातें समाप्त होने पर सन्ताप-संतप्त युधिष्ठिर शय्या से उठकर दुःखपूर्वक बोले—

अर्जुन! हमने तुम्हें दुर्वचन कहकर निश्चय ही बुरा काम किया है। मेरे दुर्व्यवहार के कारण ही तुम्हें इतना दुःख हुआ है। भाई! हम बड़े ही मतिमन्द और भीरु हैं। निःसन्देह हमारे ही कारण कुल का नाश हुआ है। अतः खड्ग से हमारे शिर को शीघ्रही पृथक कर दो।

भाई की बातें सुन अर्जुन का क्रोध जाता रहा। वे उनके नम्र वचन से प्रसन्न भी हुये और लज्जित भी। वे तत्काल उनके चरणों में गिर कर नम्रता पूर्वक बोले—महाराज! हम क्रोधावेश में आकर कठोर वचन कहे हैं। आप

कृपापूर्वक क्षमा कीजिये। इस प्रकार कहते हुये अर्जुन भाई के पैरों में लिपट गये।

अर्जुन को अपने पैरों में पड़े रोते देख युधिष्ठिर ने हृदय से लगा लिया और उनके आँसू पोंछने लगे। इस प्रकार दोनों प्रेम के आवेश में आकर विलाप करते रहे। कुछ ही देर में दोनों का हृदय शुद्ध हो गया। परस्पर मन का मैल जाता रहा।

किसी प्रकार विलाप शान्त होने पर धर्मराज ने कहा—तुम्हारी बातें बुरी नहीं हुईं। तुम्हारे कठोर वचन चेतावनी के समान हितकर हैं। तथापि हमने तुम्हें क्षमा किया। प्यारे अर्जुन! हमने जो कुछ कहा है, उसे तुम क्षमा करना। तुम्हें क्रोध न करना चाहिये। भाई! बीती बातों को छोड़ दो—देखो शत्रुओं के द्वारा सेना का नाश हो रहा है। जाओ! मैं आज्ञा देता हूँ कर्ण का संहार करो।

युधिष्ठिर की आज्ञा पा अर्जुन ने कहा—महाराज! आपके चरणों की सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि कर्ण को मारे बिना आज रणस्थल से नहीं लौटूँगा।
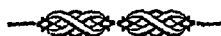
भीम का भयंकर संग्राम
और
दुःशासन वध

—:॰:—

महावली भीमसेन प्रलयंकर शंकर के समान शत्रुओं का अविराम संहार कर रहे थे। अपनी आँखों के सामने ही कर्ण को सोमक सेना का संहार करते देख वे ससार्चिके समान प्रज्ज्वलित हो उठे और वड़े वेग से दुर्योधन की सेना में घुस पड़े। महावली भीम ने शत्रुओं के वीच में अपना महो अद्भुत पराक्रम दिखलाया। कुछ ही देर में उनकी विपम मार से कौरवों के धीरज छूट गये। कौरवो सेना का भयंकर नाश होते देख दुर्योधन, अश्वत्थामा, दुःशासन आदि वीरों ने एक साथ ही भीम पर आक्रमण किया।

भयंकर समर हुआ। पृथ्वी रक्तक्त हो उठी, चारों ओर शत्रुओं के रुण्ड-मुण्ड ही दिखाई पड़ने लगे। कहीं तिल भर भी भूमि नहीं वची? भीम प्रसन्नता-पूर्वक गंभीर गर्जन करते हुये आगे वढ़े। इसी समय दुःशासन ने निर्भयता पूर्वक वाण वृष्टि करते हुये भीम का सामना किया। भीम भी हुँकार से दिशाओं को कँपाते हुये दुःशासन से जा भिड़े। दोनों वीर विपैले साँपों के समान तीक्ष्ण वाण छोड़ने लगे। देखते-हो-देखते दिशायें वाणों से भर गईं। दोनों को एक

दूसरे के बाणों ने तोप दिया। फिर भी दोनों वीर एक दूसरे को मार डालने के प्रयत्न में लगे रहे। उनके असंख्य बाणों से सैनिक कट-कट कर गिरने लगे।

दुःशासन के जहरीले बाणों से महापराक्रमी भीम को बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने शीघ्र ही धनुष पर चढ़ाकर विद्युत तुल्य एक चमचमाती हुई शक्ति छोड़ी। दुःशासन ने उल्का के समान धधकती हुई उस शक्ति को आते देख बड़े जोर से एक साथ ही दस बाण चलाये। दुःशासन के प्रलयकारी पैने बाणों ने शक्ति को बीच ही में काटकर गिरा दिया। प्रलयकारिणी शक्ति से दुःशासन को मुक्त होते देख कौरववीर अत्यन्त प्रसन्न हो दुःशासन के वीरता की प्रशंसा करने लगे।

भीम की शत्रु संहारिणी शक्ति को काट कर दुःशासन ने रणस्थल में आश्चर्यजनक कौशल दिखलाया। उसने शीघ्र ही तीन तीखे शरों से भीमसेन का वज्र शरीर छेद दिया। उनके धनुष को काट डाला तथा सारथि को मूर्च्छित कर दिया। दुःशासन के व्यवहार से भीम कालग्नि के समान दहक उठे। उन्होंने शीघ्र ही पैने बाणों से दुःशासमके धनुष और ध्वज-दण्ड को टुकड़े-टुकड़े कर दिया तथा सारथि को यमलोक भेज दिया।

परन्तु दुःशासन विचलित नहीं हुआ। उसने घोड़े की रास सम्हाल एक नया धनुष ले भीम पर वज्र समान बाण चलाया। ओह! वह बाण भीमसेन के शरीर को छेदता

हुआ निकल गया। महा पराक्रमी वीर भीम उसकी मार से दोनों हाँथ के बल पृथ्वी पर गिर पड़े, परन्तु तत्काल ही उठ खड़े हुये।

महाबली भीम अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे, उन्होंने गर्जते हुये कहा—दुरात्मा! ठहर! तू प्रहार कर चुका, अब मैं प्रहार करता हूँ, रोक—इतना कहते-ही-कहते भीम ने दारुण वज्र-गदा बड़े वेग से चला दी। दुःशासन उसे नहीं रोक सका। वह एक ही झटके में रथ से बीसों गज की दूरी पर औंधे मुँह पृथ्वी पर जा गिरा। रथ और घोड़े चूर २ हो गये। दुःशासन में उठने की शक्ति भी नहीं रही, वह थरथर काँपता हुआ पृथ्वी पर लोट गया।

तत्काल रण-स्थल में दुःशासन को पड़े देख भीम को कौरवों का अत्याचार याद हो आया। विष खिलाने, लाक्षा-गृह में आग लगाने, वनवास का क्लेश, द्रौपदी का अपमान आदि सभी विपत्तियाँ नेत्रों के सन्मुख नाचने लगीं। महा-बली भीम मारे क्रोध के लाल हो उठे। वे शीघ्रही रथ से कूद पड़े और दुःशासन की छाती पर जा बैठे। उन्होंने अपनी की हुई प्रतिज्ञा पूर्ति के लिये एक चमकती हुई तेज धार वाली तलवार निकाल ली और उसे उसके छाती में घुसेड़ दी। तत्काल दुःशासन की छाती से रक्त की धार बह चली।

महाबली भीम ने दुःशासन का उष्ण रक्त अपनी अँगुली में लेकर निकट ही चित्ररथ खड़े हुये वीरों से कहा—हे

कौरवों! आज हम अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर रहे हैं। याद है न! हम आज अपनी प्रतिज्ञा से छूट गये। इस यज्ञाग्नि में दुःशासन रूपी पशु का प्रथम बलिदान तथा पहली आहुति समाप्त हो चुकी अब दुर्योधन रूपी द्वितीय पशु की बाकी है। उसके पड़ते ही रणचण्डी सन्तुष्ट हो उठेगी और यह यज्ञ पूर्ण हो जायगा। इतना कहते-कहते भीमसेन चिकट अट्टहास करते हुये हँस पड़े और रक्त से तरबतर हो लाल-लाल आँखें किये कौरवी दल पर झुक पड़े। उनके भीषण रूप को देख कौरवों के छक्के छूट गये। कितनों के हाथ से हथियार छूट गये, कितने डर के मारे आँखें मूँद लिये, कितने भय के मारे चिल्लाने लगे और कितने भाग खड़े हुये। इस प्रकार सारी सेना भयभीत हो संग्राम भूमि से भाग खड़ी हुई।
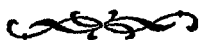
कर्णार्जुन-महासमर

और

दुर्योधन की युद्धलिप्सा

महा तेजस्वी कर्ण पाण्डव सेना का संहार करते हुये रणस्थल में आगे बढ़ रहे थे। उनके अपार तेज से दिशायें प्रज्वलित हो उठी थीं। बड़े-बड़े पाण्डव महारथियों के दाँत खट्टे हो गये थे। लोग भागना ही चाहते थे कि वीरवर अर्जुन धर्मराज के निकट से चलकर रणक्षेत्र में आ पहुँचे। गाण्डीव की टंकार ने भागती हुई पाण्डवी सेना में जान डाल दी। लोग अचलों के समान डट कर मरने-मिटने के लिये तैयार हो गये।

दोनों वीर विपक्षी सेना का नाश करते हुये आगे बढ़ रहे थे। सिंह समान दोनों पराक्रमी वीरों की मार से बड़े-बड़े सैनिक विचलित होने लगे। क्षुब्ध सिंह के सामने मृगों के समान ही सैनिकों की गति हुई। सभी व्यग्र होकर इधर-उधर दौड़ने लगे।

इसके अनन्तर महाबली अर्जुन का कपिध्वज रथ भयंकर निर्घोष करता हुआ हस्ती चिन्हवाले वीरवर कर्ण के रथ के सामने आ डटा। दोनों महावीरों को आमने-सामने डटे देख

दोनों ओर के सैनिकों ने गर्जते हुये जयध्वनि की। दोनों ओर से रण-वाद्य वजने लगे। अट्टहास कारी जय निनाद से दिशायें गूँज उठीं।

अव क्या था? दोनों वीर अपने-अपने धनुष को उठा लिये और एक दूसरे पर प्रहार करने लगे। महावली कर्ण ने शीघ्र ही अर्जुन को बाणों से छेद दिया। अर्जुन ने भी अपने पैने वाणों से कर्ण को घायल कर दिया। इसके अनन्तर दोनों महावली एक दूसरे पर वाण वृष्टि करने लगे। उनके अपार शर वृष्टि से चारों दिशायें भर गईं। सर्वत्र अन्धकार छा गया। सारी सेना बाणों से ढँक गई।

ओह! पृथ्वी और आकाश एक हो गया। बड़े-बड़े भूधरों को फाड़नेवाले वाण दिशाओं में मँड़राने लगे। दोनों वीरों के कोदंड की टंकार से रणस्थल भहराने लगा। कर्णार्जुन का भयानक युद्ध उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। देखते-ही-देखते प्रलयकाल उपस्थित हो गया।

दोनों महारथियों ने सद्यः प्रलय का रूप खड़ा कर दिया दोनों दलों के वीर बात-की-बात में कट-कट कर धराशायी हो रहे थे। रणस्थल भयंकर क्रन्दन तथा वीभत्स चित्कार से पूरित हो रहा था। युद्ध का वीभत्स तथा करुणोत्पादक दृश्य देख अश्वत्थामा का हृदय भर आया उन्होंने दुर्योधन का हाथ पकड़ गद्गद कण्ठ हो कहा—

हे कुरुकुलावतंश! इस प्रलयकारी युद्ध को बन्द करो।

हाय ! जिस रणाग्नि में श्रेष्ठ वीर पितामह तथा आचार्य्य द्रोण डाले गये, बड़े-बड़े योद्धा संहारे गये तथा सहस्रों निरापराध मूक पशुओं की तरह मारे गये, उस नाशकारी समराग्नि को शीघ्र बुझा दो। हे कुरुकुलोत्तम! इस युद्ध को जिससे सर्वनाश हो जाय, धिक्कार है। देखो! आचार्य और पितामह दोनों मारे गये। हम और कृपाचार्य अवध्य होने के कारण जीवित हैं। महावीर कर्ण के मरते ही तुम अनाथ हो जाओगे। फिर तुम्हारा भी जीवित रहना कठिन ही है। अतः बुद्धिमान के समान काम करो। मुझे आज्ञा दो मैं अर्जुन के पास जाकर युद्ध बन्द करने की प्रार्थना करूँ। मुझे विश्वास है—प्रतापी कुन्ती नन्दन हमारी प्रार्थना को अवश्य स्वीकार कर युद्ध बन्द कर देंगे।

दुर्वृत्त दुर्योधन बड़ी देर तक महाबली अश्वत्थामा की बातें सोचता रहा। इस प्रकार कुछ देर सोचने के उपरांत बोला—

आचार्य पुत्र! तुम जो कुछ कह रहे हो ठीक है, परन्तु दुःशासनादि आज्ञाकारी भाइयों को भीम के द्वारा मरवाकर कैसे शान्त रह सकता हूँ? मित्रवर! तुम्हीं सोचो—भीम की बातें हमारे लिये कितनी भयदायक तथा लज्जास्पद हैं। मैं बन्धु-बान्धवों तथा इष्टमित्रों को मरवाकर बिना विजय प्राप्त किये युद्ध बन्द नहीं कर सकता। महावीर! मैं व्यग्र हो रहा हूँ। अब या तो विजय ही प्राप्त करूँगा अथवा संग्राम भूमि में शूर-वीर योद्धाओं के

समान हँसते-हँसते प्राणोत्सर्ग करूँगा। युद्ध बन्द करना ठीक नहीं।

अश्वत्थामा! अभी किस बात का डर है? महाबली कर्ण पांडवों का संहार कर रहे हैं। इस अपार जन-सागर में कर्ण रूपी मेरू को कौन डिगा सकता है? अर्जुन रूपी सिन्धु-कल्लोल-लोल क्या कर्ण रूपी महामेरू से भिड़ सकता है? कदापि नहीं। महाबली कर्ण को अर्जुन से लड़ने दीजिये।

आचार्य्य पुत्र! आप महावीर होकर क्यों भयभीत हो रहे हैं—क्या अर्जुन से भयभीत हो गये हैं? आप और कृपाचार्य्य दोनों शत्रुओं के व्यूह में अकेले संग्राम किये हैं। आप दोनों महावीर अवध्य हैं—आप और कृपाचार्य्य के रहते हुये कौन हमारा बाल बांका कर सकता है। कहिये—मैं यथार्थ कह रहा हूँ अथवा नहीं? महाबली कर्ण की सहायता कीजिये, मुझे आशा है—धनुर्धारियों में श्रेष्ठ कर्ण अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करेंगे।

कर्ण वध।

—*—*—
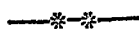
कर्णार्जुन-महासमर चल रहा था। दोनों वीर भयंकर रूप धारण कर एक दूसरे पर प्राणों की वाजी लगा कर विचित्र शस्त्र-कौशल दिखलाते हुये भीषण प्रहार कर रहे थे। ओह! दोनों महारथियों के वज्र तुल्य वाणों से दिशायें तेज पूर्णतथा धनुष की टंकार से विजली के समान कड़क हो रही थी, इतने में अधिक जोर से खींची जाने के कारण महावली अर्जुन के गाण्डीव की डोरी तड़ाक से टूट गई। ओह! उसके महा भयानक शब्द से दिशाएँ गूँज उठीं।

गांडीव धनुष की डोरी टूटते ही महावली कर्ण को अवसर मिल गया। कर्ण में अविराम वाण-वृष्टि करने की विचित्र शक्ति थी। उन्होंने भीषण वाण-वृष्टि द्वारा क्षणमात्र में ही कृष्णार्जुन को पैने शरों से आच्छादित कर दिया। पाण्डव वीरों ने अर्जुन की रक्षा करने का प्रयत्न किया, परन्तु कर्ण के वज्र-तुल्य वाणों को वे नहीं काट सके। देखते ही देखते कृष्णार्जुन भीषणरूप से घायल हो गये। कौरवी सेना पराक्रमी कर्ण के अद्भुत तेज को देख थिरक उठी।

महावीर पाण्डु-तनय के क्रोध का ठिकाना न रहा। उन्होंने शीघ्रही धनुष को झुकाकर डोरी चढ़ाई और देखते-ही-देखते कर्णके वाणों को व्यर्थ कर अम्बर को पैने शरों से

चूर्ण कर दिया। ओह! दिशायें और विदिशायें पार्थ के वाणों से भर गईं। इस प्रकार क्षणमात्र में ही महाबली अर्जुन के वज्र तुल्य वाणों ने कर्ण की दुर्गति कर डाली। कुछ ही देर में कौरवों के बड़े-बड़े योद्धा गांडीव के शरों से घायल हो भागने लगे, परन्तु परम तेजस्वी रविपुत्र गांडीव-धर के सामने ही निर्भय डटे रहे।

इस भाँति प्रहरों रणाग्नि अट्टहास करती रही, इस प्रलयकारी द्वन्द में बल वीर्य पराक्रम और विचित्र युद्ध-कौशल के प्रभाव से कभी अर्जुन कर्ण से बढ़ जाते और कभी कर्ण अर्जुन से। इसी प्रकार भयंकर संग्राम अविराम चलता रहा।

भयंकर समराग्नि को उग्र रूप धारण करते देख महाबली कर्ण ने सोचा—इस प्रकार लड़ने से प्रतिज्ञा पूरी नहीं हो सकती। मुझे सबसे पहले दुर्द्धर्ष शत्रु विजय पर विजय करना होगा। अतः यत्न-पूर्वक रखे हुये नागास्त्र का उप-योग ही उचित और अनिवार्य्य है। ऐसा सोचकर महाबली कर्ण ने विष से बुझा हुआ कराल काल के समान अपना भयंकर नागास्त्र निकाला। ओह! तेजस्वी रवि-पुत्र ने उस प्रलयकारी अस्त्र को धन्वा पर चढ़ा दिया और जोर से खींचा।

महातेजस्वी कर्ण को भयानक नागास्त्र खींचते देख शल्य अत्यन्त चिन्तित हुये, उन्होंने समझा कि अब अर्जुन नहीं बच सकते। अतः वे कर्ण को लक्ष्य भ्रष्ट करने के लिये

तत्काल बोल उठे—कर्ण ! यह सर्पास्त्र अर्जुन का सिर नहीं काट सकेगा। इससे कोई अच्छा अस्त्र चलाओ। कर्ण ने कहा—ऐसा नहीं हो सकता। कर्ण धनुष पर रखे हुये अस्त्र को छोड़े विना दूसरा अस्त्र नहीं छूते।

इतना कहते हुये कर्ण ने उस भयंकर अस्त्र को छोड़ दिया और कहा—

अभिमानी अर्जुन! यह काल रूप नागास्त्र तुम्हारा नाश कर देगा। तुम इसबार अवश्य मारे गये।

रवि-पुत्र का भयानक नागास्त्र प्रलयकारी सप्तार्चि के समान प्रज्वलित हो उठा और अर्जुन की ओर वढ़ा। उस भयंकर अस्त्र को आकाश में जलते देख कृष्ण को बड़ी चिंता हुई। ऐसे समय में अर्जुन के रथ के घोड़ों ने बड़ा काम किया। वे कृष्ण के संकेत पाते ही घुटने तोड़ कर जमीन पर बैठ गये जिससे अग्रभाग झुककर नीचा हो गया। देखते-ही-देखते भयानक सर्पास्त्र निकट आ गया। अर्जुन के सिर पर साधकर मारा हुआ वह दिव्यास्त्र मस्तक पर न लगकर इन्द्र के दिये हुये सुदृढ़ किरीट पर गिरा। महावली अर्जुन बाल-बाल बच गये परन्तु किरीट चूरचूर हो गया।

अब क्या था? अर्जुन की क्रोधाग्नि आहुती पाकर दहक उठी। उन्होंने श्वेत वस्त्रसे अपने बालों को बाँध लिया और वेक्रुद्ध सर्पके समान फुफकार कर खड़े होगये। क्रोधित महावीरने कालके लौह दण्ड के समान दो प्रलयकारी बाण अपने तूणीर से निकाल लिया और हँसते-हँसते गांडीव पर रख

कर चला दिया। ओह! उस वज्रशर ने जाकर कर्ण के वज्र हृदय को छेद दिया। उनकी छाती से रक्त की धारा बहने लगी। महाबली कर्ण बीभत्सु के बाण से विह्वल हो उठे। उनकी मुट्ठी ढीली पड़ गई। धनुष और तूणीर छूट पड़े। उन्हें तत्काल मूर्च्छा आ गई। देखते-ही-देखते लड़खड़ा कर रथ पर गिर पड़े। धर्मात्मा अर्जुन ने प्रहार करना बन्द कर दिया—

अर्जुन के इस धार्मिक भाव को देख कृष्ण ने कहा—धनंजय! यह क्या कर रहे हो? यह उदासीनता और विरक्ति कैसी? क्या बुद्धिमानलोग शत्रु के दुर्बल होने पर समय की प्रतीक्षा करते हैं?

कृष्ण की चेतावनी ने अर्जुन को सावधान कर दिया। उन्होंने शीघ्र ही बाण निकालकर धनुष पर रक्खा—इसी समय कर्ण की मूर्च्छा टूटी परन्तु असह्य वेदना के कारण वे परशुराम के दिये हुये दिव्यास्त्रों का चलाना भूल गये। उन्होंने अत्यन्त अधीर और विह्वल होते हुये हाथ उठाकर कहा—हाय! धर्मशास्त्रों और महर्षियों ने कहा है कि धर्म धार्मिक जनों का साथ देता है। हमारी धर्म में दृढ़-भक्ति है—परन्तु न मालूम क्यों धर्म हमारा साथ छोड़ रहा है। इस प्रकार कहते हुये रवि-सुत रथ पर उठ बैठे। युद्ध में उनका मन नहीं लग रहा था, वे लापरवाही के साथ शत्रुओं का प्रहार रोकने लगे।

कर्ण की शिथिलता उदासीनता तथा व्यामोह देख

श्रीकृष्ण ने पार्थ से कहा—विजय! यही सुअवसर है, कर्ण की बुद्धि इस समय ठिकाने नहीं है। देखो यह स्वर्ण-संयोग हाथ से न निकलने पाये।

कृष्ण की बातें सुनते ही अर्जुन क्रोधित कृतान्त के समान कर्ण पर प्रहार करने लगे। कर्ण भी क्रुद्ध होकर ब्रह्मास्त्र पवनास्त्र, वायव्यास्त्र, समान भयंकर अस्त्र-शस्त्रों को छोड़ने लगे। अर्जुन भी उनके अपूर्व अस्त्रों का प्रतिकार करते हुये महाबली रविसुत को आश्चर्य में डाल प्रलयंकर कृत्य करने लगे।

हा! इसी समय कर्ण के रथ का पहिया अचानक कीचड़ में फँस गया। देखते-ही-देखते वह भारी रथ कीचड़ के बीच में पूर्ण रूप से धँस गया। भीषण समर होते समय अपनी दुरवस्था देख कर्ण के नेत्रों में आँसू भर आये। उन्होंने समझ लिया कि गौ-शाप * वाला समय निकट आ पहुँचा है। कर्ण ने कहा—हे अर्जुन! तुम धर्मात्मा हो, वीर क्षत्री हो तथा क्षात्रधर्म के ज्ञाता हो? ठहरो! थोड़ी देर के लिये युद्ध बन्द रखो, दैवयोग से हमारे रथ का पहिया कीचड़ में धँस गया है, जब तक

* एक गौ दलदल में फँसी थी। कर्ण ने देखकर भी उसकी रक्षा नहीं की। इसीलिये गौ ने मरते समय शाप दिया था कि—तुम्हारी भी इसी प्रकार मृत्यु होगी। युद्ध के समय तुम्हारा रथ दलदल में फँस जायगा और तुम मारे जाओगे।

हम पहिये को कीचड़ से न निकाल लें—तुम क्षत्रिय-धर्म के अनुसार प्रहार न करो।

विह्वल कर्ण की आरत-वाणी सुनकर मधुसूदन ने कहा—हे कर्ण! तुम्हारे मुख से यह बात सुन कर महा आश्चर्य हुआ। हमारा अहोभाग्य है कि तुम्हें क्षात्र-धर्म स्मरण हो गया। ठीक है, नीच प्राणी विपत्ति में ही अपनी नीचता को भूलते हैं तथा ज्ञानालाप करते हैं. तुम्हारी भी यही दशा है। लाक्षागृह-षडयंत्र और द्यूत सभा में तुम भी थे, द्रौपदी के चीरहरण के समय तुम्हारी सम्मति काम कर रही थी—उस समय तुम्हारी धर्म-प्रवृत्ति कहाँ थी? सूत पुत्र! सप्त महारथियों ने मिलकर जब बालक अभिमन्यु का वध किया था उस समय यह धर्माधर्म का ज्ञान कहाँ था? अब इस इस समय तुम्हें धर्म की दुहाई देना केवल धर्म की विडम्बना मात्र है।

जनार्दन की खरी बातें सुन कर महाबली कर्ण चुप हो गये। मारे लज्जा के उत्तर नहीं दे सके। वे शीघ्र एक हाथ से रथ के पहिये को खीचने लगे और दूसरे हाथ से पाँव के द्वारा प्रत्यञ्चा खींच कर पार्थ पर वाण बरसाने लने। इस समय तेजस्वी कर्ण का विचित्र रण-कौशल देखा गया। कर्ण के धन्वा से एक वाण भनभनाता हुआ निकला और अर्जुन की छाती में जा लगा। उस भयंकर वाण की मार से अर्जुन विकल हो उठे, ओह! गांडीव हाँथ से छूट गया। वे अचेत हो गये।

कर्ण को अवसर मिल गया। वे दोनों हाथों से पहिया को निकालने लगे। परन्तु इतना कीचड़ में धँस गया था कि तिल-मात्र भी नहीं हिला। इधर अर्जुन को स्वस्थ्य देख भगवान कृष्ण ने कहा—वीरवर! अब किस समय की प्रतीक्षा कर रहे हो? रथ पर आरूढ़ होने के पूर्व ही रविपुत्र का सिर काट डालो।

इतना सुनकर अर्जुन ने कुन्ती* के दिये हुये वाण को इन्द्र के वज्र के समान निकालकर अपने धनुष पर रक्खा। पश्चात् उस महाभीषम वाण को कान तक खींच कर बड़े जोर से कर्ण पर चला दिया। ओह! उस अमोघ वाण के छूटते ही दिशायें आलोकित हो उठीं। तथा वज्र-निर्घोष से भी भयंकर शब्द हुआ—जिसके सुनते ही वीरों के कान के पर्दे फट गये। ओह! वह भयंकर वाण प्रचण्ड उल्का के समान समराब्धि को सन्तप्त करता हुआ प्रचण्ड वेग से आगे बढ़ा और क्षणमात्र में ही महावीर कर्ण के सिर को काट डाला। सहसा सबोंने शरदऋतुके आकाश मण्डल से गिरे हुये सप्तार्चि के समान महातेजस्वी कर्ण के शिर को धड़ से पृथक होकर रक्त से लथपथ हो पृथ्वी पर गिरते हुये देखा—

---

* कर्ण को भगवान् परशुरामजी ने पाँच वांण दिया था। इन्हीं वाणों के द्वार कर्ण को मृत्यु का शाप था। कर्ण के आसुर व्रत के समय श्रीकृष्ण की सम्मति से कुन्ती उन्हें माँग लाई थी।

महा तेजस्वी कर्ण की कटी हुई गर्दन से रक्त की धारा बहते देख पांडव वीरों को अपार आनन्द हुआ। वे सिंहनाद करते हुये विकट शंखध्वनि करने लगे। देखते ही देखते श्रीकृष्णार्जुन—जय-घोष से आकाश गूँज उठा। श्रीकृष्ण ने भी बड़े जोर से पाञ्चजन्य बजाया।

कर्ण के गिरते ही दुर्योधन बालकों के समान अत्यन्त विलाप करने लगा। उसके दुःख की सीमा न रही, सभी कौरव वीर उस महावीर के शव को घेर कर बैठ गये और उसके वीरता की प्रशंसा करते हुये छाती पीट-पीट कर रोने लगे।

कौरवों को दुखी देख शल्य ने कहा—वीरों! कर्ण, वीर गति को प्राप्त हुये हैं। उनके लिये शोक न करो। कर्ण सामन्य योद्धा नहीं थे, कर्णार्जुन के समान भीषण समर हमने कभी नहीं देखा था। ओह! कर्णने अपूर्व रण-कौशल दिखलाया—परन्तु विजय श्री पाण्डवों के ही आधीन थी।

दुर्योधन का हृदय उमड़ पड़ा। वह कर्ण के वियोग को नहीं सह सका। मानसिक वेदना ने उसे बेचैन कर दिया, उसे कुछ काल के लिये मूर्च्छा सी आ गई। चेतना आने पर, हा कर्ण! हा बन्धु! कह कर विलाप करने लगे। लोग बड़ी कठिनता से दुर्योधन को रण-भूमि से उठाकर शिविर में ले गये। अनेक प्रकार से शान्त्वना देने पर भी दुर्योधन का शोक दूर नहीं हुआ।

उधर सायंकाल में संजय के मुँह से कर्ण-वध की बातें सुनते ही धृतराष्ट्र मूर्च्छित हो गये। सचेत होने पर मन्त्रियों ने बहुत समझाया—शान्त्वना दी। उन्होंने सोचा सोचा, हाय ! विधि-विधान को मिटाने की किसी में शक्ति नहीं है।

※ इति श्री महाभारत कर्ण पर्व समाप्तः ※

शल्य-पर्व ।

समराग्नि की ज्वाला

और

शल्य की आहुति

पाठकों ! भावी बड़ी बलवान है, जो होना है अवश्य होकर रहेगा। निश्चय ही हानि-लाभ, यश-अपयश और जीवन-मरण विधि-विधान के आधीन है।

महात्मा कृपाचार्य काल भैरव की क्रीड़ा-भूमि रण-क्षेत्र का भयंकर वीभत्स दृश्य देख द्रवित हो उठे। कौरवी सेना की दुर्दशा देख उन्हें बड़ी दया आई, वे शीघ्र ही दुर्योधन के पास जाकर बोले—

दुर्योधन ! आज युद्ध के सत्रह दिन बीत गये, हाय ! असंख्य वीरों का संहार हुआ। तुम्हारी मेघों के समान सम्पन्न सेना को अर्जुन-रूपी प्रबल वातूल ने पूर्ण रीति से

छिन्न-भिन्न कर दिया। हे कुरुकुलोत्तम! अब अपनी रक्षा की चेष्टा करो। प्रबल शत्रु को देख कर युद्ध करना मूर्खता है, हमारी सम्मति है कि पांण्डवों से सन्धि कर लो। हम इसी में कल्याण देख रहे हैं।

दुर्योधन ने कहा—आचार्य्य! आप ठीक कह रहे हैं। किन्तु मृत्यु शैय्या पर पड़े रोगियों को जिस प्रकार औषधि अच्छी नहीं लगती, उसी प्रकार आपका उपदेश यह मुझे प्रिय नहीं लगता। हाय! जिन पांडवों के साथ हमने इतना अत्याचार किया है, उनके साथ सन्धि की आशा कैसे की जा सकती है? वे सन्धि करने पर कभी तैयार न होंगे। इसके अतिरिक्त जिस विशाल-वैभव को हमने बुद्धि-बल से प्राप्त कर आज तक उपभोग किया है, उसे दूसरे के अनुग्रह से दीनता-पूर्वक कैसे ले सकते हैं? हाय! जिस पृथ्वी पर हमने सार्व-भौम शासन किया है, वहीं पांण्डवों के दास बन कर कैसे जीवित रह सकते हैं? हम उस जीवन से युद्ध भूमि में प्राण त्याग देना ही उत्तम समझते हैं और यही हमारा धर्म है।

दुर्योधन की बातें सुन कर कौरव वीरों ने उनकी मुक्त-कंठ से प्रशंसा करते हुये कहा—महाराज! आप किसी को सेनापति बना कर युद्ध की आज्ञा दीजिये—हम लोग भी शत्रुओं के साथ संग्राम कर वीर गति प्राप्त करना चाहते हैं।

योद्धाओं को उत्साहित देख सबों की सम्मति से दुर्योधन

ने मद्रराज शल्य को सेनापति पद पर अभिषिक्त किया। रात्रि में ही सबों ने निश्चय कर लिया कि कोई भी पांडवों से अकेला युद्ध न करे, सब लोग परस्पर एक दूसरे की रक्षा करते हुये युद्ध करें।

प्रातः काल होते ही कौरवी सेना समर भूमि में जा पहुँची। विशाल कुरुक्षेत्र का कोना-कोना प्रवल प्रतापी शल्य के जयनिनाद से गूँज उठा। ओह! वीर सैनिकों के प्रातःकालीन गर्जन से दिशायें सिहर उठीं।

सेनापति शल्य ने सेना की रक्षा के लिये दुर्भेद्य सर्वतो-भद्र व्यूह बनाया। व्यूह के वीच में दुर्योधन को रक्खा। संसप्तकों के साथ कृतवर्मा बाईं ओर, यवन-वाहिनी के साथ कृपाचार्य दाहिनी ओर तथा काम्बोजों को लेकर अश्वत्थामा पीछे की ओर से रक्षा के लिये तैयार हुये। महावीर शल्य मद्रदेश के वीरों के साथ स्वयं मुँह पर आ डटे। इसके अनन्तर पाण्डवों पर आक्रमण करने के लिये वीर योद्धाओं को लेकर पिता-पुत्र शकुनि और उलूक आगे बढ़े।

सेनापति शल्य को दिव्य रथ पर वैठे हुये भयंकर टंकार करते देख—दुर्योधन की मुरझाई आशा-लता फिर लहरा उठी। उसके निराश हृदय में फिर एक बार पुनः आशा का संचार हुआ। वीरों की तत्परता तथा सैनिकों के सिंहनाद ने उसके शोक को दूर कर दिया।

उस ओर पांडवों ने भी आज अपनी सेना का विकट व्यूह बनाया। शकुनि और उलूक को वेग पूर्वक आक्रमण

करते देख पांडव वीर भी आगे बढ़े। नकुल और सहदेव अपनी सेना के सहित शकुनि और उलूक से जा भिड़े। धृष्टद्युम्न शिखण्डी और सात्यकि महाबली शल्य की सेना के साथ लड़ गये। कृपाचार्य की सेना से युद्ध करने के लिये सोमक वीरों के साथ भीम चले तथा कृतवर्मा द्वारा रक्षित संसप्तकों से लड़ने के लिये स्वयं अर्जुन बढ़े।

धीरे-धीरे घमासान युद्ध आरंभ हो गया। देखते-ही देखते शल्य का बल विक्रम असह्य हो उठा। उनकी भीषण मार से अजेय पांडवी सेना विचलित हो गई। सर्वत्र हाहाकार होने लगा। महापराक्रमी शल्य ने अकेले ही पांडव वीरों के होश उड़ा दिये।

महाराज युधिष्ठिर महाबली शल्य के पैने बाणों से व्याकुल हो गये। देखते-ही-देखते उनकी क्रोधाग्नि भड़क उठी, उन्होंने सबों के सामने प्रतिज्ञा की कि मैं निश्चय ही आज प्रतापी शल्य का वध करूँगा।

उन्होंने भाइयों से कहा—वीरों! यातो आज हम ही मारे जायँगे अथवा शल्य को ही मार कर युद्ध निवृत्त करेंगे। आओ! सात्यकि हमारे दाहिने ओर और धृष्टद्युम्न बायीं ओर चले। धनंजय हमारे पीछे रहें और भीमसेन आगे बढ़ें तथा नकुल सहदेव हमारे चक्र की रक्षा करते हुये साथ-साथ चलें।

इस प्रकार सुसज्जित हो धर्मराज शल्य के पास पहुँचे। शत्रुओं को संगठित देख प्रतापी शल्य ने भयंकर बाण वृष्टि

की। देखते-ही-देखते सारी पांडवी सेना उसी में छिप गई। पाण्डवों का एक बाण भी शल्य के शरीर में नहीं लगा। युधिष्ठिर ने भी खूब बाण-वृष्टि की, दोनों ओर से मूसलाधार वृष्टि के समान बाण बरसने लगे।

दोनों महारथी सिंह के समान परस्पर भिड़ गये। दोनों एक दूसरे को मारने का अवसर ढूँढ़ने लगे। इसी समय प्रतापी शल्य ने एक तीक्ष्ण बाण छोड़कर धर्मराज का धनुष काट डाला। धनुष के कटते ही धर्मराज की क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो उठी। उन्होंने शीघ्र ही दूसरा धनुष लेकर शल्य के सारथि और घोड़ों को मार कर विकट सिंहनाद किया। शल्य विरथ हो अश्वत्थामा के रथ पर जा चढ़े। यह देख पांडव वीरों ने विकट हर्ष-ध्वनि की।

शल्य दूसरे रथ पर बैठ कर पुनः युधिष्ठिर के सामने आये। आते ही उन्हें पांडव पांचाल और सोमक वीरों ने घेर लिया। अपने शत्रुओं के व्यूह में सेनापति को घिरे देख दुर्योधन स्वयं सेना लेकर रक्षा के लिये बढ़े।

संग्राम उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। महाबली शल्य ने एक भयंकर बाण युधिष्ठिर की छाती में मारा—जिससे वे काँप उठे, तत्काल ही अपार क्रोध करते हुये उन्होंने भी एक ऐसा शर चलाया जिसकी चोट से महाबली शल्य अचेत होकर रथ पर गिर पड़े। शल्य की दुर्गति देख कृपाचार्य ने छः बाणों से युधिष्ठिर के सारथि को मार गिराया। इधर भीम ने शल्य के धनुष को टुकड़े-टुकड़े कर उनके घोड़ों को

मार डाला तथा सात्यकि धृष्टद्युम्न आदि पांडव वीरों ने शल्य की सेना को वाणों से आच्छादित कर दिया।

भयंकर वाण वृष्टि ने प्रलय मचा दी। महावली शल्य इस अनन्त वाण-वर्षा से घवड़ा उठे! घोड़ों के मरते ही वे रथ से कूद पड़े और खड्ग लेकर युधिष्ठिर की ओर दौड़े। परन्तु भीमसेन ने बीच ही में उनके खड्ग को काट दिया। खड्ग के खंडित हो जाने पर भी शल्य का क्रोध शान्त नहीं हुआ। वे निरस्त्र ही युधिष्ठिर पर आक्रमण करने के लिये दौड़े। यह देख युधिष्ठिर ने अत्यन्त क्रोध पूर्वक एक प्रचंड शक्ति शल्य के ऊपर चला दी। ओह! वह भयानक शत्रुनाशिनी शक्ति शल्य की छाती फाड़ती हुई एकदम भीतर धँस गई। देखते-ही-देखते शल्य धड़ाम से धरती पर गिर गये। तत्काल कौरवी सेना में हाहाकार होने लगा। क्षण-मात्र में ही सेनायें भागने लगी। दिशायें धूल से भर गईं। सर्वत्र अन्धकार छा गया।

महायुद्ध का अन्त ।

कौरवी सेना को भागते देख पांडवों का उत्साह दूना हो गया। वे भयंकर सिंहनाद करते हुये कौरवों पर टूट पड़े और भयंकर संहार करने लगे। अपनी सेना की दुर्दशा देख दुर्योधन ने सारथि से कहा—मेरा रथ शीघ्र आगे बढ़ाओ। मुझे आगे बढ़ते देख सैनिक युद्ध-भूमि में लौट आयेंगे। ऐसा ही हुआ। राजा को संग्राम-भूमि में डटे देख पैदल सेना लौट आई और पुनः युद्ध करने लगी। सभी प्राणों का मोह त्याग कर पांडवों पर शस्त्र-वृष्टि करने लगे—परन्तु अर्जुन ने कुछ ही देर में सबों के प्रहार को व्यर्थ कर दिया।

महाबली धनञ्जय आज साक्षात धनञ्जय के समान देखे गये। उनके गाण्डीव से उल्का के समान भयंकर बाण निकल-निकल कर कौरवों का नाश करने लगे। देखते-ही-देखते भयंकर जन-पद ध्वंस हो गया, सारी सेना में खलबली मच गई।

इसी समय धृतराष्ट्र के बारह पुत्रों ने भीम पर एक साथ ही भीमवेग से आक्रमण किया—परन्तु वे कुछ नहीं कर सके। भीम ने बल-पूर्वक पटक-पटक कर सबों को समरांगण में पीस डाला, इस प्रकार प्रतिज्ञा-पूर्ति कर वे गंभीर गर्जन से दिशाओं को कँपाने लगे।

शत्रुओं की सेना को अरक्षित देख कृष्ण ने कहा—धनञ्जय ! अब शीघ्रता करो, यही अवसर है। सारी कौरवी सेना मारी जा चुकी है, जो कुछ थोड़ी शेष रह गयी है उसे भी अन्त कर बहुत काल की जलती हुई शत्रुता-रूपी अग्नि को बुझा दो ।

अर्जुन ने कहा—भगवन् ! धृतराष्ट्र के पुत्रों का नाश हो गया। केवल एक दुर्योधन बचा है, वह भी अपने सहायकों के सहित मारा जायगा। आज पृथ्वी अत्याचारियों के भार से मुक्त हो जायगी। अब केवल पाँच सौ घोड़े, दो सौ रथ, एक सौ हाथी और तीन हजार पैदल ही कौरवों के शेष रह गये हैं। अश्वत्थामा, कृपाचार्य, शकुनि, उलूक और कृतवर्मा ही महारथियोंमें बचे हैं। आज इन सबों को मार कर धर्मराज को अजातरिपु कर देंगे।

इस प्रकार निश्चित कर भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन का रथ कौरवों के सामने पहुँचा दिया। इसी समय अपनी प्रतिज्ञा-पूर्ति के लिये सहदेव शकुनि की ओर दौड़ पड़े और सामने ही दुरात्मा शकुनि और उसके पुत्र उलूक को खड़े देख जोर से गरज उठे—दुरात्मा! आ अब, धर्म युद्ध कर, तू ही सभी अनर्थों की जड़ है। आज तुम्हें कपट-द्यूत का परिणाम भोगना पड़ेगा। इतना कहते-ही-कहते महाबली सहदेव ने अपने पैने बाणों से शकुनि को व्यग्र कर दिया। तथा उलूक का शिर काट कर पृथ्वी पर डाल दिया।

पुत्र के शिर को रणाङ्गण में नाचते देख शकुनि का हृदय

भर गया, उसकी आँखें डबडबा आईं। अब उसे भीष्म-विदुरादि के सदुपदेश याद आने लगे, परन्तु अब क्या होता है? अब वह क्रोधित माद्री-तनय के प्रहारों से बचने की चेष्टा करने लगा, परन्तु कृतकार्य नहीं होसका। बाण-युद्धमें विफल हो जाने पर गदा तथा खड्ग युद्धके लिये तैयार हुआ। सहदेव ने उसके खड्गऔर गदा को टुकड़े-टुकड़े कर डाला। इसी समय शकुनि ने महाक्रोध करके एक अमोघ 'प्रास' चलाया, परन्तु महावली सहदेव ने देखते-ही-देखते उस 'प्रास' को टुकड़े-टुकड़े कर शकुनि की दोनों भुजायें को काट डाला। ओह! तत्काल ही सहदेव के कोदण्ड से छोड़ा हुआ एक तेज वाण ने शकुनि के सिर को काट गिराया।

दुराचारी शकुनि के सिर को रण-भूमि में आँधी से टूटे हुये पर्वत शिखर के समान गिरते देख कौरवों का कलेजा कांप उठा। चारों ओर भगदड़ मच गई। भीमार्जुन ने उन्हें घेर लिया और अपने अमोघ बाणोंसे सबों को धराशायी कर दिया। अवध्य होने के कारण तीन योद्धाओं को छोड़ उस ग्यारह अक्षौहिणी सेना में कोई भी जीवित नहीं बच सका। भीमार्जुन को विकराल रूप धारणकर प्रलय करते देख दुर्योधन का हृदय दहल उठा। अब उसे जीत की आशा न रही। दशों दिशायें सूनी दीख पड़ने लगी। अपना भीषण संहार हुआ देख वह युद्ध के मैदान से एक ओर भाग खड़ा हुआ।

दुर्योधन पलायन।

सत्य है—विनाश होने पर ही सद्बुद्धि आती है, तथा पश्चात्ताप होता है, दुर्योधन की भी यही गति हुई। ग्यारह अक्षौहिणी सेना सहित बड़े-बड़े वीरों को रणाग्नि में डाल देने पर अब उसे होश हुआ। भीष्म-विदुरादि के उपदेश ध्यान में आने लगे। वह अकेला रण-भूमि से केवल एक गदा हाथ में लेकर पैदल ही पूर्व दिशा की ओर चला। निकट ही एक तालाब में जिसमें उसने जलस्तम्भ बनवाया था छिप रहने के लिये तेजी से बढ़ा।

कुछ ही दूर आगे बढ़ने पर कौरव शून्य रण-स्थल से लौटते समय संजय ने दुर्दशाग्रस्त दुर्योधन को अत्यन्त घबड़ाये हुये जाते देखा। संजय को सन्मुख देख दुर्योधन पागलों के समान उसके बदन से लिपट गये और बोले—संजय! तुम्हारे अतिरिक्त अपने पक्ष में और किसी को जीवित नहीं देखता। कहो—हमारी सेना और सहायकों की क्या दशा हुई? क्या तुम जानते हो?

संजय ने कहा—महाराज! आपकी सारी सेना सहायकों के सहित मारी गई, कौरव पक्ष के केवल तीन ही आदमी जीते बचे हैं।

इतना सुनते ही दुर्योधन मूर्च्छित हो धड़ाम से धरती पर गिर पड़े और कुछ देर के बाद जरा होश हुआ तब लम्बी

साँस खींचते हुये बोले—हे संजय! हमारा समाचार हस्तिना नगरी पहुँचा देना। पिता जी से कह देना कि आपका पुत्र दुर्योधन घायल होकर समर-भूमि से हट आया है और तालाब के जलस्तम्भ में छिप कर प्राण बचा रहा है। संजय! मेरे लिये अब संसार शून्य है। बन्धु-बान्धवों, सहायकों तथा इष्ट-मित्रों के बिना मैं कैसे जीवित रह सकूँगा? इतना कहते ही कुरुराज जल में कूद पड़े और बीच में बने हुये जलस्तम्भ में घुस कर छिप गये। इसी समय रणभूमि से भागते हुये घायल अश्वत्थामा, कृपाचार्य, और कृतवर्मा आ पहुँचे।

उन्होंने संजय से कहा—संजय! अहोभाग्य है कि हम तुम्हें जीवित देख रहे हैं। कहो! हमारे सम्राट् दुर्योधन का भी कुछ समाचार जानते हो? वे जीवित तो हैं?

संजय ने दुर्योधन के छिपने की बात कह सुनाई। सभी कुरुराज की दुर्गति देख बड़ी देर तक विलाप करते रहे। पश्चात् अश्वत्थामा और कृपाचार्य ने कृतवर्मा को संजय के साथ शिविर में भेज दिया और आप दोनों दुर्योधन से मिलने के लिये रह गये। परन्तु कुछ ही देर पश्चात् शिविर की ओर चल पड़े।
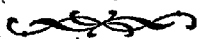
युयुत्सु की शिष्टता।

कौरवों का भयंकर सर्वनाश देख युयुत्सुने विचार किया-महापराक्रमी पांडवों ने कौरवों की अजेय सेना का १८ दिनों में ही सर्वनाश कर दिया। मेरे सभी भाई दुर्बुद्धि के कारण मारे गये। केवल मैं ही एक बच-रहा हूँ। मुझे क्या करना चाहिये? उसका ध्यान कौरव कुल-कामिनियोंकी ओर गया। उसने सोचा—कौरवों के शिविर में जितनी दास और दासियाँ थी, सभी भाग गईं। इस समय राज-स्त्रियों को लेकर हमें राजधानी में पहुँचा देना चाहिये।

इस प्रकार सोचते-विचारते महात्मा युयुत्सु धर्मराज के पास पहुँच कर अपना अभिप्राय कह सुनाये। महात्मा धर्मराज युयुत्सु की बातों से अत्यन्त प्रसन्न हो बोले—भाई! कौरव भी हमारे भाई ही थे, उनकी स्त्रियों को आदर-पूर्वक नगरी में पहुँचा दो, हम तुम्हारी शिष्टतासे अत्यन्त प्रसन्नहैं।

यथा समय स्त्रियों और मन्त्रिओं को लेकर युयुत्सु राजधानी में पहुँचे। विदुरने उनकी शिष्टतासे आनन्दित हो कहा—युयुत्सु! कौरव-कुल ललनाओं को रक्षित नगरीमें पहुँचाकर तुमने अपने धर्म का पालन किया है। वत्स! तुम धर्मात्मा हो। धर्मने ही इस युद्ध-रूपी दावाग्निसे तुम्हारी रक्षा की है। हाय! तुम्हारे पिता की अदूरदर्शिता तथा चंचलता एवं स्वार्थता के कारण ही कौरवों का भयंकर सर्वनाश हुआ है।
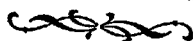
दुर्योधन की खोज में।

शिविर के जनशून्य हो जाने पर संजय सहित तीनों वीर पुनः तालाव के निकट आये और कुरुराज को पुकारते हुये बोले—महाराज! आप जल से बाहर आइये और शत्रुओं से लड़कर विजय प्राप्त कीजिये। शत्रुओं के पास भी अब बहुत थोड़ी सेना रह गई है, यदि हमलोग पुरुषार्थ करें, तो निश्चय ही उन्हें मार भगावेंगे।

दुर्योधन ने कहा—वीरो! आप लोगों को जीवित देख हम अपना अहोभाग्य समझ रहे हैं। परन्तु क्या करूँ? मैं बेतरह घायल हो रहा हूँ। मेरा एक अंग भी अक्षत नहीं बचा है। आप लोग भी थके हैं। इस समय आराम कीजिये—कल हम सब लोग मिलकर शत्रुओं पर आक्रमण करेंगे।

अश्वत्थामा ने कहा—कुरुराज! आप जल से बाहर आइये और निश्चिन्त होकर बैठिये। हम अकेले शत्रुओं का संहार करेंगे। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि बिना शत्रुओं का नाश किये कवच नहीं उतारूँगा। पाण्डव शिविर के कई व्याधे वहीं पर विश्राम कर रहे थे। वे इन लोगों की इस प्रकार बातें सुनते ही सभी समझ गये। वे पुरस्कार के लोभ से शीघ्र शिविर की ओर दौड़ पड़े और धर्मराज से सारा वृतान्त कह सुनाये। दुर्योधन को न पाने से उदास बैठे हुये पाण्डव प्रसन्न हो उठे।

पाण्डव शिविर में भीषण सिंहनाद और कलकल शब्द होने लगा। आनन्द ध्वनि से दिशायें छा गईं। सभी एक बार ही बड़े वेग से दिशाओं तथा विदिशाओं को कँपाते हुये चल पड़े।

यह कोलाहल सुन अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा ने दुर्योधन से कहा—महाराज! विजयोन्मत्त पाण्डव लोग इधर आ रहे हैं। रहिये यहीं हम लोग भी छिप जायँ। दुर्योधन अच्छा कह कर उसी जल स्तम्भ में जा बैठे और इधर तीनों वीर अपने-अपने रथ के घोड़ों को एक विशाल वट वृक्ष के नीचे खोल दिये और आप उसी वृक्ष पर छिप कर जा बैठे।

इतने में पाण्डव वीर भी उस तालाब पर आ पहुँचे। धर्मराज ने कहा—हे कृष्ण! अब क्या होगा? जब तक दुर्योधन जीवित रहेगा, सुख की नींद सोने न देगा।

श्रीकृष्ण ने कहा—धर्मराज! बिना कौशल किये काम नहीं चलेगा। तुम उसे कड़ी-कड़ी बातें सुनाओ, जिससे वह उत्तेजित होकर बाहर निकले। श्रीकृष्ण के कथनानुसार धर्मराज ने जोर-जोर से कहना आरम्भ किया—

दुर्योधन! तुमने अपने पक्ष के साथियों का नाश करा दिया। धिक्कार है! अपने बन्धु-बान्धवों को मरवा कर अपनी जान बचाने के लिये जलस्तम्भ में जा छिपे बैठे हो। लज्जा नहीं आती? शोक है तुम्हारी इस कायरता पर। प्राणों का मोह करके वीर बनते हो, जल से बाहर निकलो।

मुझे मार कर राज्य प्राप्त करो अथवा हमारे हाथ से मर कर स्वर्ग जाओ।

श्रीकृष्ण की युक्ति काम कर गई। धर्मराज के वाक्य-बाणों से अत्यन्त पीड़ित हो दुर्योधन बोला—युधिष्ठिर! प्राण जाने से मनुष्य भयभीत हो तो आश्चर्य ही क्या है? परन्तु प्राण बचाने के लिये भयभीत हो कर मैं यहाँ नहीं आया हूँ। रथ तथा शस्त्रास्त्र न रहने से मैं थक गया हूँ, तुम कुछ देर तक ठहरो और विश्राम करो, हम शीघ्र ही विश्राम से निवृत्त होकर तुमसे लड़ेंगे।

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—दुर्योधन! हम विश्राम कर चुके हैं। तुम शीघ्र जल से बाहर होकर हमसे युद्ध करो।

दुर्योधन ने कहा—धर्मराज! बन्धु-बान्धव तथा धनहीन राज्य भोगने की इच्छा मुझे नहीं है। हम तुम्हें अब भी जीतने की शक्ति रखते हैं, परन्तु भीष्म द्रोणादि पूज्यों तथा कर्णादि मित्रों के मारे जाने से युद्ध नहीं करना चाहते। तुम्हीं धन-धान्य तथा बन्धु-बान्धव-हीन इस श्मशान तुल्य राज्य को भोगो। मैं विरक्त होगया हूँ। शोक! मैं शेष जीवन वन में ही विताऊँगा।

युधिष्ठिर ने कहा—वाह! खूब वैराग्य है। वंश का नाश कराकर तुम्हें वैराग्य हुआ है। हम भिक्षुक नहीं हैं कि इस प्रकार राज्य का दान लें। शीघ्र निकल आओ हम तुम्हें मार कर राज्य प्राप्त करेंगे।

धर्मराज के कटु वाक्यों को सुन कर दुर्योधन जल से

बाहर निकल कर बोला—धर्मराज ! तुम्हारे पास सेना, रथ, घोड़े और शस्त्रादि हैं, हम निरस्त्र तथा विरथ हो तुम्हारे साथ कैसे युद्ध कर सकते हैं? हाँ ! एक-एक आदमी यदि हमारे साथ युद्ध करो, तो हम बल-विक्रम दिखा दें—धर्मानुसार लड़ाई करो ।

सहस्रों के साथ एक का संग्राम करना अधर्म है—वीरों को कभी अधर्म नहीं करना चाहिये । महाराज ! आप तो धर्मात्मा हैं । हम कायर और बलहीन नहीं हैं—हम किसी से नहीं डरते । हम तुम लोगों से धर्म युद्ध करने के लिये तैयार हैं ।

दुर्योधन के मुँह से धर्म की बातें सुन धर्मराज ने हँसते हुये कहा—अब तुम्हें धर्म याद आया है । अत्याचारों के करते समय यह धर्म ज्ञान कहाँ चला गया था? भयंकर अनीति महाअधर्म और कपटाचार के समय यह धर्म भाव कहाँ था? अच्छा ! कवच पहन कर हथियारले लो । हम पाँचों भाइयों में से जिसके साथ तुम्हारा जी चाहे युद्ध करो । हम लोगों में से एक को भी यदि मार सको तो सारा राज्य तुम्हारा ही हो जायगा । मैं सत्य कह रहा हूँ ।

भीम-दुर्योधन का गदा युद्ध
और
दुर्योधन वध

युधिष्ठिर की बातें सुन वह महाबली अत्यन्त प्रसन्न हुआ, उसने तत्काल लौह कवच धारण कर हाथ में गदा ले वीरता पूर्वक कहा—लो मैं तैयार हूँ, तुम लोगों में जिसकी इच्छा हो हमसे आकर गदा युद्ध करे। युधिष्ठिर की भीषण प्रतिज्ञा ने श्रीकृष्ण को चिन्तित कर दिया। वे क्रोध करते हुये युधिष्ठिर से बोले—धर्मराज! कुरुराज द्वारा एक ही आदमी के मारे जाने पर जीता हुआ राज लौटा देने की तुमने किस साहस पर प्रतिज्ञा की। क्या तुम, अर्जुन नकुल और सहदेव उसकी बराबरी कर सकते हो? भीम यद्यपि बलवान हैं परन्तु गदा युद्ध में उनका उतना अभ्यास नहीं है। हाय! तुम लोगों के भाग्य में न मालूम क्या लिखा है। तुम लोग दुःख भोगने के लिये ही इस संसार में जन्म लिये हो?

इसी समय भीम ने कहा—भगवन्! आप धैर्य धारण कीजिये, मैं आज ही दुर्योधन को मारकर इस भयंकर द्वेषाग्नि को बुझा दूँगा।

इसी समय बलराम जी तीर्थ-यात्रा करते हुये आ पहुँचे।

उनकी सम्मति से कुरुक्षेत्र में ही गदा युद्ध के लिये स्थान निश्चित किया गया। बलराम जी ही गदायुद्ध में दुर्योधन और भीम के आचार्य थे। अतः वे ही मध्यस्थ माने गये। उनके बीच में बैठ जाने पर चारों ओर लोग युद्ध देखने के लिये बैठ गये।

यथा समय दोनों वीर वज्र कवच धारण कर भयंकर गदा लिये आमने-सामने खड़े हुये। पश्चात् गंभीर गर्जन करते हुये पैतरा बदलने लगे। देखते-ही-देखते परस्पर दोनों भिड़ गये। घोर युद्ध होने लगा, गदायें तड़ातड़ एक दूसरी पर गिरने लगीं। ओह! गदाओं के भयंकर प्रतिघात से चिनगारियाँ निकलने लगीं। धीरे-धीरे युद्ध ने बड़ा ही भयंकर रूप धारण कर लिया।

धीरे-धीरे युद्ध बड़ा भीषण हो गया। दुर्योधन के गदा युद्ध की निपुणता देख पाण्डवों के होश उड़ गये। कई बार दुर्योधन ने भीम को मुँहकी खिलायी—परन्तु भीम-महाबली भीम विचलित नहीं हुये। उन्होंने भी एक गदा दुर्योधनके मर्म स्थान पर मारी जिससे दुर्योधन का शरीर शिथिल होगया। इसी समय क्रुद्ध होकर दुर्योधन ने बड़े जोर से प्रहार किया। जिससे भीमसेन का वज्र कवच टूटकर टुकड़े-टुकड़े हो गया। परन्तु फिर भी भीम अधीर नहीं हुये। वे पूर्णवत ही डटे रहे। थोड़ी ही देर में दोनों वीर रक्त से लथ-पथ हो उठे।

दुर्योधन की अपूर्व शक्ति देख श्रीकृष्ण अत्यन्त विस्मित हुये और सोचने लगे—बिना कौशल किये महाबली दुर्योधन

का अन्त नहीं हो सकता। उसी समय उन्हें द्रौपदीचीर हरणसमय कि की हुई भीम की प्रतिज्ञा याद हो आई, उन्होंने अर्जुन से कहा—अर्जुन! यही समय भीम के प्रतिज्ञा पूर्ति की है। इसलिये तुम भीम को संकेत कर दो।

अर्जुन का संकेत पाते ही भीम झट समझ गये। ओह! देखते-ही-देखते भीम का रूप बड़ा भयानक हो गया। इसी समय दुर्योधन में उछल कर भीम पर गदा का प्रहार किया। महाबली भीम ने अपनी चतुराई से उनके प्रहार को रोक लिया और तत्काल ही बड़े जोर से उनकी जाँघपर एक गदा जमा दी। ओह! वज्रांग भीम के उस वज्र गदा ने दुर्योधन की जाँघ तोड़ डाली। कुरुराज आँधी से टूटे हुये पर्वत शिखर के समान धड़ाम से रणभूमि में गिर पड़े। महाबली भीम कुरुराज के मस्तक पर बार-बार लात मार कर कहने लगे—नराधम! कुलांगार! द्रौपदी के अपमान का बदला चुक गया। तुम्हारे भयंकर अपकर्मों तथा छल-कपट पूर्ण अत्याचारों का प्रतिशोध हो गया।

युधिष्ठिर ने कहा—भीम! शान्त हो जाओ, अधर्म न करो। कुरुराज हमारे भाई हैं, इस प्रकार कहते हुये उन्होंने दुर्योधन से कहा—भाई! तुमने अपने कर्मों का यथोचित फल पाया है, अब शोक न करो। वास्तव में हम लोग अभागे हैं। हाय! बन्धु-बान्धव हीन राज्य को लेकर क्या करेंगे? दिन रात विधवा कुल कामिनियो के शोक सन्तप्त अश्रुओं को देखेंगे।

दुर्योधन ने कहा—नीच ! कटि के नीचे गदा प्रहार करना गदा युद्ध नियम के विरुद्ध है।

भीम के इस कार्य को किसी ने प्रशंसा नहीं की। स्वयं बलराम जी बिगड़ उठे और भीम को मारने के लिये झपटे। तब श्रीकृष्ण जाकर उनके अस्त्र को पकड़ लिये और बोले—भाई ! क्षमा कीजिये, कौरवों ने बड़ा अत्याचार किया था उसके अनुरूप उन्हें फल मिला है। पाण्डव हमारे आत्मीय हैं, इनकी उन्नति से ही हमारी उन्नति है और अवनति से अवनति है।

बलरामजी शान्त तो हुये परन्तु यह कहते हुये चल दिये कि नियम अन्य विषय है और आत्मीय दूसरी बात है। भीम ने अनीत की है, वह कूट योद्धा है। भाई के व्यवहार से श्रीकृष्ण अत्यन्त दुखी हुये, परन्तु युधिष्ठिर के द्वारा बहुत समझाने-बुझाने से शान्ति धारण किये।

पाण्डव वीरों का उत्साह बढ़ गया। सभी दुर्योधन को दुर्वचन कहने लगे। श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर ने ऐसा करने से मना किया। इसी समय क्षुब्ध हो दुर्योधन ने कहा—हे कंस के दास-पुत्र ! तुम्हीं ने यह सर्वनाश कराया है, भीम ने तुम्हारी ही सम्मति से अधर्म युद्ध कर हमारी जंघा को तोड़ा है। तुम्हीं ने अश्वत्थामा के मृत्यु की झूठी खबर फैलाकर द्रोण की हत्या कराई। निर्लज्ज ! तुम्हारे ही आग्रह से वीर भूरिश्रवा मारा गया। रथ से उतरे हुये महाबली कर्ण तुम्हारी ही दुष्ट-बुद्धि के कारण मारे गये।

तुम से बढ़ कर निष्ठुर नराधम निर्दय तथा पापी और कोई संसार में नहीं होगा।

श्रीकृष्ण ने कहा—दुर्योधन! तुम लड़कपन से ही दुष्टों के संग में रहे हो। कुमार्गगामी होने से ही तुम्हारा सर्व नाश हुआ है। अपने कर्मों का फल भोगो-व्यर्थ किसी पर दोष न लगाओ।

दुर्योधन ने पुनः कहा—कृष्ण! हमने सर्वत्र वसुन्धरा का उपभोग किया और सर्वत्र अजेय शत्रुओं के शिरों सिंहनाद बजाया। अब तुम धन धान्य हीन तथा बन्धु-बान्धव विहीन श्मशान तुल्य राज्य को भोगो। कृतकृत्य होओ! हम तो अपने बन्धुबान्धवों के सहित वीर लोक की यात्रा कर रहे हैं।

दुर्योधन की बातें सुन धर्मराज शोकित हो उठे। उनका चेहरा उतर गया तथा उदासी छा गई। इस प्रकार उन्हें अधीर होते देख श्रीकृष्ण ने बहुत प्रकार समझा कर शान्त किया।

इधर पांडव लोग शिविर में लौट कर आये और उधर दुर्योधन के मृत्यु की खबर चारो ओर फैल गई।

अश्वत्थामा का सेनापतित्व ।

दुर्योधन के मरने का समाचार सुनते ही कौरव सेना के बचे तीनों वीर अत्यन्त दुखी हुये और उन्हें ढूँढते हुये रण-भूमि में पहुँचे। उन्होंने देखा कि कुरुकुल दिवाकर महाराज दुर्योधन मरणासन्न अवस्था में पृथ्वी पर लोट रहे हैं। चारों ओर वीरों की लाशें पड़ी हैं गृद्ध, कौवे और गीदड़ यथेच्छा-पूर्वक नोच-नोच कर वीरों का मांस खा रहे हैं।

दुर्योधन की दुरवस्था देख तीनों कौरव वीरों का हृदय शोकामर्ष से विदीर्ण हो उठा। वे रथ से उतरकर कुरुराज के पास गये और विलाप करने लगे। इसी समय गुरुपुत्र ने रुँधे हुये कण्ठ से अत्यन्त व्यग्र हो विलाप करते हुये कहा— हे कुरुकुलोत्तम! हाय! आपकी यह दुरवस्था देख हृदय फटा जा रहा है। संसार परिवर्तन शील है, निःसन्देह यह जगत अनित्य तथा निःसार है। हाय! इतना ऐश्वर्य और प्रताप होने पर भी तुम्हारी यह दुर्गति हुई?

प्रिय सखा अश्वत्थामा को इस प्रकार विलाप करते देख दुर्योधन ने उसके आँसुओं को पोछते हुये कहा—वीर! अब और अधिक विलाप कर मुझे पीड़ित न करो। संसार क्षण-भंगुर है। मित्र! यह जगत जन्म और मरण का धाम है, दिन और रात्रि के समान सुख और दुःख होते ही

रहते हैं। विधाता का नियम अटल है, उसी के अनुसार हमारा भी पतन हुआ है, चिन्ता न करो। अश्वत्थामा! अहोभाग्य है कि हमलोग युद्ध से मुँह नहीं मोड़े। आप लोगों ने खूब किया—पापी पांडव बिना अनीति किये मुझे पराजय नहीं कर सके। अब आप लोग शान्ति धारण कीजिये। मैं शीघ्र ही वीर लोक जाना चाहता हूँ।

इतना कहते-कहते दुर्योधन घावों की पीड़ा से व्यग्र हो उठा। उस की दयनीय दशा देख गुरु-पुत्र प्रलयकारी अग्नि के समान जल उठे और कड़कते हुये बोले—महाराज! पांडव बड़े पापी हैं, उन्होंने इस युद्ध में बड़ी नीचता की है। उन लोगों ने भीष्मादि गुरुजनों का छल से ही वध किया है। हाय! सभी मारे गये, परन्तु मुझे इतना शोक नहीं हुआ। आप की ऐसी अवस्था देख हृदय टूक-टूक हुआ जाता है। अब मैं शान्ति-पूर्वक नहीं रह सकता। राजन्! हमने अपने जीवन में जो कुछ धर्म-कर्म, दान-पुण्य तथा पूजा-पाठ एवं सत्याचरण किया है। उन सबों को साक्षी करके शपथ खाता हूँ कि जिस प्रकार हो सकेगा पांडवों से बदला लूँगा। महाराज! शीघ्र आज्ञा दीजिये, मैं विजयी शत्रुओं का संहार करूँ।

अश्वत्थामा की वीरतापूर्ण बातों ने दुर्योधन के शरीर में जान डाल दी। तत्काल ही उन्होंने एक जलपूर्ण कलश मँगवाकर कृपाचार्य के द्वारा वीर अश्वत्थामा के शास्त्र-विधि से सेनापति के पद पर अभिषिक्त कर दिया। इस समय

अश्वत्थामा ने बड़ी उमङ्ग से दुर्योधन को छाती से लगा लिया और बड़े जोर से सिंहनाद किया, जिससे राणांगण की दिशायें गूँज उठीं।

इस प्रकार तीनों महारथी दुर्योधन से मिलकर पांडव शिविर की ओर बढ़े। दिन का अवसान होते देख अपने को छिपाते हुये सभी पांडव शिविर के निकट जा पहुँचे।

विजयोन्मत्त पाण्डव तथा पांचाल वीरों का सिंहनाद सुन कौरव वीरों ने जङ्गल की ओर रथों को बढ़ाया। धीरे-धीरे वे भयानक जङ्गल में पहुँच कर रात्रि होते देख रुक गये और विश्राम करने के लिये एक विशाल बट-वृक्ष की छाया में घोड़ों को खोल दिये।

इति श्रीमहाभारत शल्य-पर्व समाप्त।

सौप्तिक-पर्व।
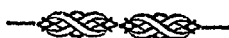
प्रतिशोध का भयानक संकेत

पाठकों! 'अति सर्वत्र वर्जयेत' दुर्योधन के अत्याधिक अत्याचार ने सर्वनाश कर दिया। अधिक रगड़ से चन्दन में भी अग्नि निकल आती है। धर्मात्मा पाण्डव अत्याचारों को सहते-सहते ऊब गये। उन्हें विवश होकर अत्याचारियों का नाश करना पड़ा। हाय! जब देश का शुभ भाग्य बिगड़ जाता है। तब कौन-कौन सी बुराइयाँ उत्पन्न नहीं होते।

धीरे-धीरे दिन का अवसान हो गया। कुछ ही देर में अन्धकार पूर्ण रात्रि हो गई। निर्मल नीलाम्बर नखतों तथा नक्षत्रोंके दिव्य ज्योति से जगमगा उठा। तीनों वीर विश्राम करने के लिये लेट गये। कृपाचार्य और कृतवर्मा विशेष घायल तथा श्रान्त होने के कारण शीघ्र ही सो गये, परन्तु अश्वत्थामा के हृदय में प्रतिहिंसा की ज्वाला धधक

रही थी, वे क्रोधोन्मत्त हो रहे थे—उन्हें नींद नहीं आई। वे पड़े-ही-पड़े प्रतिशोध का उपाय सोचने लगे।

बट-वृक्ष पर हजारों कौवे रहते थे। उस शांति-पूर्ण रजनी में सभी सुख से सो रहे थे, इतने ही में एक उल्लू आया और उन सबका संहार करना आरंभ किया। किसी का पाँव तोड़ दिया, किसी का सिर काट लिया और किसी का पंख उखाड़ डाला। इस प्रकार उस उल्लू ने सभी कौवों को मार डाला।

यह घटना देख—अश्वत्थामा सोचने लगे। ओह! ठीक है—इसी मार्ग के द्वारा हम प्रतिशोध लेकर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर सकते हैं? वलवान विजयोन्मत्त शस्त्रास्त्र-सज्जित पाण्डवों से सन्मुख युद्ध कर विजय प्राप्त करना साधारण काम नहीं है। हाँ! इस भयानक रात्रि में यदि आक्रमण किया जाय तो अवश्य कार्य्य सिद्ध हो सकता है। यह कार्य्य यद्यपि निंद्य है—परन्तु नहीं। पांडव भी महानीच हैं। उन लोगों ने इस युद्ध में भयंकर अन्याय और अत्याचार किया है। उनके साथ ऐसा व्यवहार करना पाप नहीं होगा। इस प्रकार निश्चय कर उन्होंने मामा और कृतवर्मा को जगाकर अपना अभिप्राय कह सुनाया। दोनों ने लज्जा से शिर नीचा कर लिया। कुछ भी उत्तर न दे सके।

दोनों वीरों को इस प्रकार मौन देख अश्वत्थामा ने रोते हुये कहा—मामा! जिस महावली की रक्षा के लिये हमलोग युद्ध में सम्मिलित हुये। उस कुरुराज को नीच भीमसेन ने

अन्याचार-पूर्वक मारा है। हाय! पांडवों ने अत्याचार से ही कौरवों की सेना के धुर्रे उड़ा दिये—महाप्रबल आँधी के समान ही वृक्ष रूपी कुरुदल को तोड़-ताड़ कर फेंक दिये। मामा! सुनो! सुनो! जीत से फूले हुये पाञ्चाल और पाण्डव वीर कैसा सिंहनाद कर रहे हैं? उनके हास्य, हर्ष तथा शंखध्वनि से दिशायें गूँज रही हैं। हाय! अपने पक्ष में हम लोग केवल तीन ही आदमी बच रहे हैं। मामा! मोह में पड़ कर अपनी बुद्धि को भ्रष्ट न करो। शीघ्र निश्चय कर अन्यायी पाण्डवों का नाश कर दो।

कृपाचार्य ने कहा—वत्स! दुर्योधन ने दूरदर्शिता से काम न कर अपने शुभ-चिन्तकों का घोर अपमान किया है। उसने निर्बुद्धियों के माया-चक्र में फँस कर धर्मात्मा पांडवों से व्यर्थ वैर किया। इसी भूल के कारण वह पापी बन्धु-बान्धवों सहित शत्रुओं के हाथ से बुरी तरह मारा गया। उसी दुरात्मा के साथ से पूज्यों का पतन हुआ तथा हमारी और तुम्हारी दुर्दशा हुई। पुत्र! हम दुःख शोक और क्लेश के कारण विवेक-भ्रष्ट हो रहे हैं। हमारी बुद्धि मारी गई है। इस समय हम तुमको उचित सलाह नहीं दे सकते। ऋषियों ने कहा है—विवेक शून्य होने पर इष्ट-मित्रों से परामर्श करना चाहिये। अतः! चलो, बुधिमानों से सलाह लें।

आचार्य की बातें सुनते ही अश्वत्थामा क्रोध के आवेश में उन्मत्त हो उठे, उन्होंने कहा—वीरवरो! शत्रुओं के

नाश से ही शान्ति मिलेगी। पाञ्चालों के रक्त से ही पिता का तर्पण किया जायगा। ओह! प्रतिशोधकी अग्नि धधक रहीहै।

अश्वत्थामा को उत्तेजित होते देख कृपाचार्य ने कहा—पुत्र! जो कुछ तुम कह रहे हो ठीक है। पाण्डवों से बदला लेना और पाण्डवों के रक्त से पितृ-तर्पण करना यथार्थ है, परन्तु रात्रि भर रूको सवेरे रण-भूमि में वीरता दिखाना।

अश्वत्थामा ने कहा—मामा! मैं तो जाता हूँ। अपना अपमान और दुर्योधन के विलाप को देख हमारी निद्रा भाग गई है। मैं क्षुब्ध हूँ, इतना कहकर अश्वत्थामा ने रथ सज्जित किया और बैठकर पांडव शिविर की ओर चल दिया।

अश्वत्थामा को किसी प्रकार रुकते न देख—कृपाचार्य्य ने कहा—बेटा! यह क्या करने जारहे हो? हाय! अपने उज्वल वंश में कलंक न लगाओ। निद्रित अवस्था में शत्रु को मारना भारी पाप और अधर्म है। आचार्य्य-पुत्र! ऐसा न करो।

परन्तु अश्वत्थामा नहीं रुके। उन्होंने भागते-ही-भागते हुये कहा—तात! पापियों और दुष्टों के साथ यही वर्ताव करना चाहिये। कौशल से ही हमारी कामना सिद्ध होगी। यह महासमर आद्योपान्त पाण्डवों के कपटाचार से पूर्ण है—अतः पितृ-हत्या के प्रतिशोध के लिये पाप-पुण्य का विचार नहीं करना होगा। दुरात्माओं तथा गुरुद्रोहियों का नाश कर लेने पर ही धर्म-अधर्म का विचार होगा।
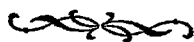
गुरु-पुत्र की नीचता ।

कृपाचार्य की युक्तियाँ विफल हो गईं । अश्वत्थामा आगे बढ़ता ही गया । धीरे-धीरे उसका रथ पांडव शिविर के निकट पहुँच कर धीमी चाल से चलने लगा । इस प्रकार गुरु-पुत्र को अटल देख कृतवर्मा और कृपाचार्य भी उसके पीछे-पीछे चलने लगे । पाण्डव शिविर में घुसते समय दोनों वीरों को पीछे-पीछे आते देख गुरु-पुत्र ने कहा—

वीरों ! मैं शत्रु शिविर में काल के समान भ्रमण करूँगा । आप लोग प्रधान द्वार पर डटे रहें । मेरी प्रार्थना है कि किसी वीर को जीवित बाहर नहीं जाने दें ।

इस प्रकार दोनों को समझा-बुझाकर महाबली अश्वत्थामा साधारण द्वार से चुपके शत्रु-शिविर में घुसे । सबसे पहले वे पांचालों की ओर मुड़े, समाने ही उन्होंने सुन्दर पुष्प की श्वेत शैय्या पर धृष्टद्युम्न को सोते देखा । ओह ! पितृ-हंता के देखते ही गुरु-पुत्र की देह जल उठी । उन्होंने शीघ्र ही लात मार कर जगाया और उसके बालों को पकड़ कर लातों से मारना आरम्भ किया । धृष्टद्युम्नने बहुत उद्योग किया, परन्तु अश्वत्थामा के हाथ से अपने को नहीं छुड़ा सका । अन्त में अधीर होकर कहा—वीर अश्वत्थामा ! मुझे शस्त्रों से मारो जिससे वीर-लोक की प्राप्ति हो—लातों से न मारो ।

धृष्टद्युम्न की बातें सुन गुरु-पुत्र ने गर्जते हुये कहा—नीच कुलांगार ! गुरु हंताओं के लिये वीर लोक नहीं है, मैं तुम्हें लातों से ही मार डालूँगा ।

इस प्रकार कह कर गुरु-पुत्र ने घूँसों से ही धृष्टद्युम्न का अन्त कर दिया ।

पाण्डव-शिविर में भयानक कोलाहल होगया । सभी लोग जाग पड़े, परन्तु भूतों का कृत्य समझ सभी मौन हो रहे । इधर अश्वत्थामा ने एक ओर से सबों का वध करना आरम्भ कर दिया । घायलों के चित्कार से पांचाल वीर उठ दौड़े और अश्वत्थामा को घेर लिये, परन्तु गुरुपुत्र ने रुद्रास्त्र की सहायता से सबों को मार डाला । अब वे काल के समान घूम-घूम कर पांचालों का संहार करने लगे । आचार्य्य-पुत्र का शरीर रक्त से लाल हो उठा । उनके भयंकर स्वरूप को देख लोग राक्षस समझ कर भागने लगे—परन्तु कृपाचार्य और कृतवर्मा ने किसी को निकलने नहीं दिया । सभी द्वार पर मार डाले गये ।

पांचालों का सर्वनाश कर अब अश्वत्थामा पाण्डवों के लिये पाण्डव-शिविर में पहुँचे । सबसे पहले द्रौपदी के पाँचो पुत्र सामने मिले । गुरु-पुत्र ने निर्दयतापूर्वक उन पाँचों का सिर काट लिया । इस कोलाहल और हाहाकार से भयभीत हो हाथी घोड़े और ऊँट बन्धन तुड़ा-तुड़ा कर भागने लगे । और सैकड़ों वीर उन्हीं के पैरों से कुचल गये तथा उस अन्धकार रात्रि में हजारों आपस में ही कट कर मर गये ।

इस प्रकार काल की सहायंता पा अश्वत्थामा ने पाण्डवों के समस्त सैनिकों का नाश कर दिया।

श्रीकृष्ण पांडवों को लेकर अन्यत्र गये हुये थे। अर्जुन के न रहने के कारण ही पांडव सेना की दुर्दशा हो गई। इसी समय कृतवर्मा ने पांडव-शिविर में आग लगा दी। सारा शिविर भयंकर अग्नि की लपटों से धाँय-धाँय करते हुये भस्मीभूत होने लगा। अश्वत्मामा शत्रुओं का नाश कर द्वार पर आये।

इसके अनन्तर तीनों वीर निर्भयता-पूर्वक आगे बढ़े। उनके शरीर रक्त से लथपथ हो रहे थे। उनके मुख-मण्डल पर एक अद्‌भुत तेजका आभास मालूम होरहा था। इस प्रकार अश्वत्थामा पितृ-हन्ता से प्रतिशोध ले प्रसन्नता-पूर्वक मामा और कृतवर्मा के साथ रणभूमि की ओर चले।

दुर्योधन की मृत्यु।

——※-※——
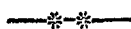
पाण्डवों की समूल सेना का नाश हो गया। कृष्णार्जुन के न रहने पर अश्वत्थामा इस क्रूर कर्म में सफल हो गया। तीनो वीर अपने सौभाग्य की प्रशंसा करते तथा खुशी मनाते कुरु क्षेत्र की रणभूमि में मरणासन्न मूर्च्छित पड़े महाबली कुरुराज के पास जा पहुँचे। सबों ने देखा कि दुर्योधन मूर्च्छित पड़े हैं। उनके मुँह से खून गिर रहा है, अंग-प्रत्यंगसे रक्त की धारा बह रही है तथा मरने में थोड़ी ही देर है। भेड़िये, गीदड़, और कुत्तों ने उन्हें घेर रक्खा है—उनके सर्वाङ्ग शिथिल हो रहे हैं तथापि कष्ट पूर्वक हाथ उठा कर हिंस्रजीवों का निवारण कर रहे हैं।

दुर्योधन की दुरवस्था देख तीनों वीरों का कलेजा काँप उठा। उनके शोक की सीमा न रही तीनों उन्हें घेर कर बैठ गये। इन लोगों के आते ही कुत्ते, गीदड़ और भेड़िये भाग खड़े हुये। धीरे-धीरे कुरुराज भी अचेत हो गये। तब वे तीनों वीर अत्यन्त अधीर हो विलाप करने लगे—हाय! काल की लीला विचित्र है—जिनके चरणों पर राजाओं के मणि जड़ित मुकुट झुकते थे आज वे अनाथों के समान धूलमें लोट रहे हैं—इस प्रकार करुण विलाप करते हुये अश्वत्थामा ने मूर्च्छित दुर्योधन के कान पर मुँह रख कर कहा—कुरु-राज! यदि आप जीवित हैं तो एक प्रिय सुखद सम्वाद

सुनिये—पाण्डवों का नाश हो गया। पाँच पाण्डव, श्रीकृष्ण और सात्यकि के अतिरिक्त और कोई नहीं बचा—हमने वैर का अच्छी तरह बदला ले लिया।

अश्वत्थामा की बात सुनते ही दुर्योधन की गई हुई चेतना पुनः क्षण मात्र के लिये लौट आयी। उन्होंने कहा महावीर जिस कार्य्य को भीष्मादि वीर नहीं कर सके उसे कृपाचार्य्य और कृतवर्मा के साथ मिल कर आप ने कर दिखाया। मैं शत्रुनाश का सम्वाद सुन कर अपने को देवेन्द्र तुल्य भाग्यवान समझता हुआ इस नश्वर लोक से वीर लोक की यात्रा करता हूँ। भगवान तुम्हारा मंगल करें। आचार्य्य पुत्र! अब स्वर्ग में मिलेंगे। इस प्रकार कहते हुये दुर्योधन ने तीनों को हृदय से लगा लिया और शरीर को छोड़ दिया—तीनों वीर भी एक ओर चल पड़े। कृतवर्मा राजधानी को लौट गये, कृपाचार्य्य हस्तिना पुर की ओर गये और अश्वत्थामा भागीरथी के किनारे महर्षि व्यासजी के आश्रम की ओर बढ़े।

भयंकर शोक
और
द्रौपदी की क्रोधाग्नि ।

—:※:—

प्रातःकाल होते ही धृष्टद्युम्न के सारथि के द्वारा भयंकर सर्वनाश का समाचार सुन पाण्डव क्षुब्ध हो उठे। वे तत्काल उसी अवस्था में चल पड़े। शिविर के निकट पहुँचने पर सर्व नाश लीला को देख सभी शोक व्याकुल हो विलाप करने लगे। वीर पत्नी द्रौपदी अपने भाई और पुत्रों को मृत अवस्था में देख आश्चर्य-चकित रह गई और छाती पीट-पीट कर रोने लगी।

अश्वत्थामा के कुकृत्य को सुन द्रौपदी का मुख-मंडल क्रोध से लाल हो उठा। उसने प्रतिज्ञा की कि जब तक पुत्रों और भाई की हत्या करने वाला मार न डाला जायगा तब तक अन्न जल ग्रहण न करूँगी। द्रौपदी बहुत देर तक विलाप करती रही परन्तु शोक विह्वल पाण्डवों में किसी को साहस न था कि आगे बढ़ें। तब द्रौपदी ने भीमकी ओर देखा—भीम द्रौपदी को इस प्रकार विकल देख बोले—देवी ! मैं तुम्हारी प्रतिज्ञा को पूर्ण करूँगा।

देखते-ही-देखते महाबली भीमसेन नकुल को सारथि बनाकर अश्वत्थामा की खोज में चल पड़े। भीम के इस व्यवहार पर श्रीकृष्ण को बड़ी चिन्ता हुई—वे जानते थे कि

अश्वत्थामा के पास 'ब्रह्मशिरा' नाम का एक बड़ा ही भयंकर अस्त्र है—जिसकी काट महाबली वृकोदा के पास कोई नहीं है। उस अस्त्र का प्रभाव साधारण नहीं है यदि उसने भीम पर चला दिया तो उनकी मृत्यु हो जायगी। यह सोच कर शीघ्र ही युधिष्ठिर और अर्जुन को लेकर भीम की सहायता के लिये दौड़ पड़े।

थोड़ी ही दूर पर भीम से भेंट हो गई। बहुत रोकने पर भी भीम नहीं रूके। गंगातट पर पहुँचते ही सबों ने देखा कि अश्वत्थामा व्यासजी के पास बैठे हुये हैं। अब क्या था? भीम ने बड़े जोर से ललकारा—

श्रीकृष्ण सहित पाण्डवों को कालरूप खड़े देख अश्वत्थामा ने'ब्रह्मशिरा' नामक महाअस्त्र को निकाल लिया और 'आ पाण्डवाय स्वाहा' कह कर छोड़ दिया। ओह! ब्रह्मशिरा पृथ्वी और आकाश को अग्नि पूर्ण करता हुआ बड़े वेग से पाण्डवों की ओर बढ़ा। प्रलयकारी ब्रह्मशिरा को भयंकर वेग से बढ़ते देख श्रीकृष्ण की सम्मति से उसके प्रतिकार के लिये धनंजय ने महा भयानक पशुपतास्त्र का प्रयोग किया। इधर पशुपतास्त्र महा प्रलयकारी रूपधारण कर अट्टहास करता हुआ चला—अश्वत्थामा का अस्त्र बीच ही में रूक गया। देखते-ही-देखते दोनों अस्त्र टकरा गये। ओह! दोनों के टकराने से पृथ्वी काँप गई—तथा मेरू हिलने लगे, बिजुलियाँ चमकने लगीं तथा तारे टूट कर गिरने लगे। प्रत्यक्ष प्रलय का दृश्य उपस्थित हो गया।

देवता, दानव, गंधर्व, किन्नर नाग और नर भयभीत हो उठे।

सृष्टि-नाश की आशंका देख व्यास और नारद दोनों अस्त्रों के बीच में आकर खड़े हो गये और बोले—रोको! रोको! शीघ्र ब्रह्मशिरा और पशु-पतास्त्र को रोको—नहीं तो सृष्टि का नाश हो जायगा। ऐसे अस्त्रों का प्रयोग कभी मनुष्य पर नहीं करना चाहिये।

पार्थ ने कहा—देव! हमने केवल अश्वत्थामा के अस्त्र के प्रतीकार के लिये पशुपतास्त्र को छोड़ा है। आप लोग पहले अश्वत्थामा को कहिये—महर्षियों ने अश्वत्थामा को कहा परन्तु वे ब्रह्मशिरा को नहीं लौटा सके—महाबली अर्जुन ने पशुपतास्त्र के बल से ब्रह्मशिरा के शक्ति को क्षीण कर दिया—तथापि वह कालाग्नि के समान ब्रह्मशिरार्चि शिविर में जा पहुँची—और अभिमन्यु के गर्भस्थ बालक पर प्रहार कर बैठी।

ब्रह्मशिरा के विफल हो जाने पर अश्वत्थमा काँप उठा, भीम शीघ्र दौड़ पड़े और उसे बाँध लिये तथा ऊपर लाकर रथ के पीछे बाँध कर उसे शिविर को ले चले।

अलौकिक क्षमा।

—※—※—

अश्वत्थामाको रथ में बाँधे हुये भीमसेन शीघ्र ही शिबिर में आ पहुँचे। भीम ने ज्योंही अश्वत्थामा को रथ से खोला कि सात्यकि और सहदेव क्रोध में दाँतें पीसते हुये आ निकले। उसी क्षण श्रीकृष्ण भी अर्जुन और युधिष्ठिर को लिये हुये आये। सबों के एकत्र हो जाने पर कृष्णा भी शोक में करुण विलाप करती हुई शिबिर से बाहर हुई।

शोकार्त चिन्तामूर्ति द्रौपदी को देख भीम ने कहा—कृष्णा! गुरु-पुत्र जिसने घोर पाप किया है तुम्हारे सामने तैयार है। इसे शीघ्र वध करने की अज्ञा दो।

द्रौपदी जिसका मृत्यु-संबाद सुनने के लिये बेचैन थी हाय! उसे देखते ही एकाएक द्रवित हो उठी। उस वीर बाला ने नेत्रों से आँसू पोंछते हुए कहा—वीरो! अश्वत्थामा ने प्राण-दण्ड का ही कार्य किया है, परन्तु ब्राह्मण है, ब्राह्मणी का हृदय मोम के समान कोमल होता है, वह बिचारी इस शोक को नहीं सह सकेगी। मैं क्षत्राणी हूँ। मेरा हृदय वज्र से भी बढ़कर कठोर है मैं इस भयंकर आघात को सह लूँगी। आप लोग अवश्य गुरु-पुत्र को छोड़ दीजिये।

पांडवों ने अश्वत्थामा को छोड़ दिया, परन्तु प्राण दान के बदले में उसे अपनी मस्तक मणि दे देनी पड़ी। अश्व-

त्थामा ने बड़ी कठिनता से अपनी मस्तक मणि दे दी और शेष जीवन व्यासाश्रम में ब्राह्मण कर्म करते हुये व्यतीत करने का निश्चय किया।

द्रौपदी की अलौकिक क्षमा को देख सभी दंग हो उठे। श्रीकृष्ण ने कहा—द्रौपदी तुम धन्य हो। जब तक सूर्य और चन्द्र विद्यमान रहेंगे, लोग तुम्हारी गुण-गाथायें गाते रहेंगे।

* इति श्री महाभारत सौप्तिक पर्व समाप्त *

स्त्री-पर्व।

कौरव-कुल में महाशोक और विलाप

धर्म का नाश नहीं होता। महाभारत की धधकती हुई अग्नि में अधर्म की आहुती पड़ गई। हाय! अठारह दिनों में अठारह अक्षौहिणी सेना मारी गई। वीरभोग्या वसुन्धरा वीरों से हीन हो गई। भारत—विश्व गुरु वृद्ध भारत! महाभारत ही तुम्हारे अधःपतन का प्रधान कारण हुआ।

महाभारत का सर्वस्व नाशकारी भयंकर संग्राम दुर्योधन की आहुति पड़ते ही समाप्त हो गया। दुर्योधन की मृत्यु का समाचार पाते ही राजमहल में शोक-सागर उमड़ पड़ा। घर-घर में पुत्र-पौत्र, पति, पिता तथाभ्रातृ-हीना अबलाओं के हृदय विदारक विलाप से शोक छा गया। ओह! चारों ओर कोहराम मच गया। सर्वत्र कुल-कामिनियों के करुण-विलाप और आर्त्तनाद से नगरी गूंज उठी।

दुर्योधन की विह्वलकारी मृत्यु को सुनकर प्रज्ञाचक्षु धृतराष्ट्र मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। महात्मा

विदुर भी शोक से विह्वल हो विलाप करने लगे। महाराज धृतराष्ट्र संज्ञा आते ही—हा दुर्योधन! एक मात्र आशा-धार! हाय! तू कहाँ चला गया? भीष्म द्रोणादि तेरे सहायक कहाँ चले गये? पुत्र! चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार है, अब मैं क्या करूँ? कह-कह कर बड़े जोर से विलाप करने लगे। धृतराष्ट्र के विलाप को सुन स्त्रियाँ जोर-जोर से रोने लगीं।

बहुत देर के बाद शोक-वेग कम होने पर महात्मा विदुर ने कहा—महाराज! धैर्य धारण कीजिये। संसार नाशवान है। इसकी सभी वस्तुयें अनित्य और अस्थिर हैं। आप इस समय ज्ञान को न छोड़िये। शरीर चिर-स्थाई नहीं है। जन्म लेना और मरना ही इसका काम है, आप शोक न कीजिये। आप के पुत्र वीरता-पूर्वक रणभूमि में लड़कर मरे हैं। क्षात्र-धर्म पालन करने के कारण निश्चय ही वे स्वर्ग के अधिकारी होंगे।

इतना समझाने पर भी धृतराष्ट्र का शोक दूर होते न देख संजय ने कहा—महाराज! अब आप क्या शोक करते हैं? आपने ही स्वयं अपनी खड्ग-रूप बुद्धि से अपने वंश को काटा है, हठी पुत्र को निरंकुश करने का यही फल है। अब रोने-पीटने से कुछ काम न चलेगा। अब तो मृतकों का अन्तिम संस्कार कर इस शोक-रूपी सागर से पार हों।

संजय की कड़ी चेतावनी ने धृतराष्ट्र को सचेत कर

दिया। महात्मा विदुर ने अत्यन्त शोकाकुल धृतराष्ट्र, पुत्र-शोक से कातर गांधारी-तथा पति पुत्र-हीना-पुत्र-वधुओं को रथों पर सवार कराकर रण-स्थल की ओर प्रस्थान किया। हाय! वे असूर्य्यम्पश्य वधुयें जिनका मुँह कभी देवताओं ने भी नहीं देखा था, जो लक्ष्मी की गोद में पली थीं तथा ऋद्धियाँ और सिद्धियाँ जिनके आगे हाथ बाँधे खड़ी रहती थीं-सबों के सामने मलिन वेष बनाये रोती हुई जा रही हैं—हाय! दुर्दैव काल! तू धन्य है।

प्रिय पाठकों! कुछ दूर आगे बढ़ने पर परिवार सहित शोकाकुल धृतराष्ट्र को भागे आते हुये कृपाचार्य्य, अश्वत्थामा और कृतवर्मा मिले। अपार करुण स्वर तथा शोकदायी दृश्य देख तीनों वीरों का हृदय काँप गया। उन लोगों ने कहा—महाराज! शत्रुओं से संग्राम करते हुये आपके वीर पुत्र वीर लोक को गये। कौरव पक्ष में केवल हम तीन आदमी बचे हैं।

गांधारी को फूट-फूट कर रोते देख कृपाचार्य्य ने कहा—देवी! शोक न करो। तुम्हारे पुत्रों ने युद्ध में अपूर्व कौशल दिखाया है। पाण्डवों ने अधर्म और अन्याय से कौरवों को जीता है। हम लोगों ने भी कुछ कम नहीं किया। शत्रुओं का नाश होगया। पाण्डव पक्ष में केवल पाँचो पांडव, कृष्ण सात्यकि और युयुत्सु ही जीवित बचे हैं। इस प्रकार सबों को समझा-बुझाकर तीनों वीर चल दिये।

महाबली धृतराष्ट्र का क्रोध ।

—:*:—

रानियों सहित वृद्ध धृतराष्ट्र और गांधारी के रणक्षेत्र की ओर आने का समाचार सुन युधिष्ठिर, श्रीकृष्ण, सात्यकि युयुत्सु, भाइयों, द्रौपदी और पाञ्चाल रमणियों को लेकर रोती हुई स्त्रियों से घिरे हुये धृतराष्ट्र के पास पहुँचे। कौरव कामिनियों के हृदय द्रावक करुण-विलाप को सुनकर युधिष्ठिर अत्यन्त शोकित हो उठे। वे तत्काल बालकों के समान रोते हुये धृतराष्ट्र के पावों पर गिर पड़े। परन्तु क्रोधित धृतराष्ट्र ने प्रणाम स्वीकार नहीं किया।

धृतराष्ट्र को इस प्रकार क्रोध पूर्ण देख श्रीकृष्ण ने कहा—महाराज! यह क्या कर रहे हैं? स्वयं अपराध करके दूसरों पर रोप करना कौनसी बुद्धिमानी है। हम सन्धि प्रस्ताव के समय में ही आपको कह दिया था कि पांडवों से सन्धि कर लीजिये—परन्तु आप के अत्याचारी पुत्रों ने न माना। उसी का फल है। तुम्हारे पुत्रों ने अपने कर्मों का फल पाया है। क्या द्रौपदी—चीर हरण वाला अत्याचार प्राणदण्ड से कम है? कौरवों के नाश में पांडवों का कोई दोष नहीं। आप व्यर्थ क्रोध कर रहे हैं।

धृतराष्ट्र बोले—केशव! तुम ठीक कहते हो। परन्तु क्या करूँ? पुत्र शोक के कारण विह्वल हो रहा हूँ। यद्यपि

धृतराष्ट्र ने कृष्ण की खरी बातों को सुन पांडवों को आशीर्वाद दिया—परन्तु उनके मन का मैल नहीं गया। उन्होंने पुनः ऊपरी मन से कहा—कृष्ण! जो होना था हो गया। अब तो पांडवों को ही पुत्र मान कर जीवन व्यतीत करना होगा। जनार्दन! मैं पांडवों से प्रसन्न हूँ। यद्यपि भीम ने ही हमारे सभी पुत्रों को मारा है तथापि मेरा स्नेह उसी पर अधिक है। आप भीम को बुलाइये मैं उस महाबली से मिलूँगा।

श्रीकृष्ण धृतराष्ट्र के भावों को समझ गये। वे पहले से ही जानते थे कि धृतराष्ट्र कहीं अनर्थ न कर डालें। इस लिये उन्होंने भीमकी लौह-मूर्ति तैयार करा रखी थी। उन्होंने शीघ्र उसे धृतराष्ट्र के सामने कर दी। धृतराष्ट्र महाबली थे—लौह मूर्ति को भीम समझ कर उन्होंने छाती से लगा कर बड़े जोर से दबा दिया। ओह! जन्मान्ध धृतराष्ट्र के बल-विक्रम से वहवज्र लौह-मूर्ति चूर-चूर हो गई। धृतराष्ट्र ने प्रतिशोध का यही मार्ग सोचा था परन्तु जनार्दन ने सफल होने नहीं दिया। उन्होंने समझ लिया कि हमने भीमसेन को चूर-चूर कर दिया। ऐसा जानकर उनका मन सन्तुष्ट हो गया तथा क्रोध जाता रहा। कुछ देरके उपरान्त स्थिर होने पर अत्यन्त विह्वल हो हा भीम! हा भीम! कह कर रोने लगे।

श्रीकृष्ण ने धृतराष्ट्र को शुद्ध हृदय होते देख कहा—राजन! शोक न करें। भीम जीवित हैं। आपने भीम के

बदले लौह-मूर्ति को चूर-चूर कर दिया है। मैं पूर्व से ही जानता था कि क्रोधावेश में आप अनिष्ट कर डालेंगे। इसीसे लौह-मूर्ति बनवा रखी थी। महाराज! अब आप ज्ञान का आश्रय लें। युद्ध में एक पक्ष की अवश्य ही विजय होती है। इस प्रलयकारी युद्ध का उत्तरदायित्व आप और आपके पुत्रों पर ही है। आपके पुत्रों की हत्या का दोष भीम पर नहीं है। हमने कितना मना किया था परन्तु भावी वंश आप लोगों की बुद्धि सुपथगामिनी नहीं हुई। अब शोक को त्यागिये। श्रीकृष्ण की बातों से धृतराष्ट्र अत्यन्त लज्जित हुये। उनके मन का मैल जाता रहा। वे बार-बार पांडवों को हृदयसे लगाकर आशीर्वाद देने लगे। पाण्डव भी चरणों में लोट गये।

पाठकों! विनाश काल में बुद्धि विपरीत हो जाती है। विनाश हो जाने के उपरान्त तब उसे ज्ञान होता है। यही हाल धृतराष्ट्र का हुआ। अब उन्हे धर्मा-धर्म और सत्या-सत्य का ज्ञान हुआ।

समय के अनुसार सब कुछ होता है। परिवर्तन शील संसार इसी का उदाहरण है। ऋषियों ने कहा है—काल चक्र ही प्रबल है। उसीके द्वारा संसार अपना रूप बदलता रहता है।

गान्धारी का शाप।

कौरव-कुल-कामिनियों के करुण-क्रन्दन से प्रलय कालीन श्मशान तुल्य रण-भूमि सिहर उठी। भगवान कृष्ण धृतराष्ट्र को शान्त कर पाण्डवों और द्रौपदी को लेकर गान्धारी के पास पहुँचे। पुत्र हंताओं को आते जान गान्धारी का अपार शोक जाता रहा—वह तत्काल कालरूप रणचंडी हो उठी और क्रोधावेश में कड़कते हुये बार-बार शाप देने लगी। इसी समय त्रिकाल दर्शी महर्षि व्यास आ पहुँचे और गान्धारी से बोले—

पुत्री! शान्त होओ। तुम क्यों अनर्थ करने जा रही हो? क्या तुम नहीं जानती कि जहाँ धर्म है वहीं जय है? तुम तो बार-बार पुत्रों को कहा करती थी कि धर्म ही सब कुछ है—पाण्डवों ने धर्म का ही पालन किया है-अतः तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये। बेटी! धर्मात्मा पाण्डवों के अनिष्ट से तुम्हारा क्या कल्याण होगा? धर्म का साथ छोड़ने से ही तुम्हारे पुत्रों की यह दुर्गति हुई है। आओ-मैं तुम्हें दिव्य दृष्टि देता हूँ जिसके द्वारा तुम रण-क्षेत्र में पड़े हुये पुत्रों तथा प्रिय सम्बन्धियों को देख सकोगी।

व्यासजी की बातें सुन गान्धारी ने रोते हुये कहा—भगवन्! मैं प्रतापी पाण्डवों का अनिष्ट नहीं चाहती। इस समय मैं पुत्रः शोक के कारण अत्यन्त व्यग्र तथा किं कर्तव्य हो रही हूँ। इतना कह कर गान्धारी जोर-जोर से

रोने लगी। उसके करुण-विलाप ने युधिष्ठिर को द्रवित कर दिया, वे साहस पूर्वक आगे बढ़ कर हाथ जोड़ते हुये बोले—माता! मैं ही इन सब अनर्थों की जड़ हूँ अतः मुझे ही शाप रूपी दण्ड दीजिये। माता! मुझे इस शोक पूर्ण राज्य तथा धन-धान्य भोगने की इच्छा नहीं है।

धर्मराज की विह्वलवाणी ने गान्धारी को पानी २ कर दिया। क्रोध पर करुणाने विजय पायी। गान्धारी ने पांडवों को हृदय से लगाकर आशीर्वाद देते हुये कहा—बेटा! तुम्हीं हमारे पुत्र हो, तुम्हारा मंगल हो-भगवान कल्याण करें। भावी के अनुसार जो होना था वह हो चुका।

इसके अनन्तर पाण्डव द्रौपदी सहित माता कुन्ती के पास पहुँचे। कुन्ती भी अधीर और व्यग्र होकर रो रही थी। द्रौपदी पाँचो पुत्रों और अभिमन्यु के शोक में रोते हुये बोली—आर्ये! हाय! पुत्र-कलत्र हीना होकर अब मैं इस राज्य को लेकर क्या करूँगी। इस प्रकार रोते-रोते द्रौपदी अधीर हो उठी। पुत्र-शोक संतप्ता द्रौपदी को इस प्रकार विलखते देख गान्धारी ने गोदमें बिठाकर कहा—बेटी! अब और अधिक विलाप कर मुझे दुखी न करो। मुझे स्वयं अपने कर्मों का फल मिल गया है-अब तुम धैर्य्य धारण करो, यदि तुमहीं इस प्रकार अधीर हो उठोगी तो फिर मुझे कौन धीरज देगा।

इस प्रकार सबों को समझाते-बुझाते लोग प्रलयकारी रण-भूमि में पहुँचे। रणांगण का भयानक वीभत्स दृश्य

देख—कौरव पाण्डव तथा पांचाल कुल कामिनियाँ हाहा-
कार करती हुई रथों से कूद पड़ीं और कुररी के समान
विलाप करती हुई पति-पुत्रों और प्रियसम्बन्धियों को ढूँढ़ने
लगीं। महात्मा व्यास के वर प्रसाद से दिव्य दृष्टि प्राप्त
कर गान्धारी इस भयानक वीभत्स दृश्य को देखते ही
सिहर उठी, उसकी आत्मा काँप गई—वह पास ही खड़े
श्रीकृष्ण को सम्बोधित कर बोली—

कृष्ण! यह क्या हो रहा है? महावीरों की लाशों से
रण-भूमि पटी है—कहीं-कहीं पर शवों के ढेर से पर्वत बन
गये हैं। सियार, गीध, कौवे और कुत्ते वीरों के माँस
को नोच-नोच कर खा रहे हैं। ओह! सहस्रों कुल कामि-
नियां बालों को बिखराय हुये पति, पुत्र, पिता और भाइयों
का स्मरण करती हुई शवों की ओर दौड़ी जा रही हैं।
मधुसूदन! सामने देखो—प्रलयकालीन श्मशान तुल्य रण-
भूमि पुत्र हीना पति-हीना वीर माताओं तथा वीर पत्नियों
से भर गई है—ओह! हमारी पुत्र वधुयें किस प्रकार रोती
हुई—विलाप कर रहीं हैं—जनार्दन! वह देखो महा परा-
क्रमी प्यारा अभिमन्यु काल कवलित होकर पृथ्वी पर लोट
रहा है। हाय! सद्यजाता विधवा उत्तरा फूट-फूट कर
रो रही है—वह देखो—जिसके डर के मारे अग्नि समान
परम तेजस्वी पांडव आज तक काँपते रहे। वह दुर्योधन
युद्ध भूमि में अनाथों के समान पड़ा है—हाय! उस
दलदल के पास कर्ण की स्त्री उसके पैरों पर गिरी रो रही

है। कृष्ण ! देखो—कृष्णा महा अधीर होकर विलाप कर रही है।

एकाएक पुनः गांधारीकी दृष्टि दुर्योधन के रक्त रञ्जित शव पर पड़ी। वह तत्काल ही मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। होश आते ही पुत्र के शिर को छाती से लगा कर महारुदन करने लगी। देखते-ही-देखते महावली दुर्योधन की छाती आँसुओं से तर हो गई। समने ही पुत्र-वधुओं को पुत्र तथा पति-शोक से अत्यन्त कातर हो सिर पीटते देख गांधारी की शांति जाती रही। वह पुनः रणचण्डी के समान उग्र हो उठी और गरजते हुये श्रीकृष्ण को सम्बोधन कर बोली—

हे कृष्ण ! मेरे कुल का नाश कराकर तुम तमाशा देख रहे हो ? तुमने ही लड़ा-सिड़ा कर कुरुकुल का नाश कराया है। जाओ, मैं शाप देती हूँ—यादव वंश का भी इसी प्रकार एक दिन संहार होगा।

श्रीकृष्ण ने मुस्कुरा कर नम्रता-पूर्वक महाशाप को शिरोधार्य किया और वे शान्त्वना देते हुये गांधारीसे बोले— देवी ! क्षत्राणियाँ इसी लिये पुत्रों को उत्पन्न करती हैं कि मेरा पुत्र युद्ध में मरेगा। तुम व्यर्थ शोक न करो। तुम्हारे पुत्रों ने क्षात्र-धर्म का पालन किया है। वे अवश्य ही स्वर्ग के अधिकारी होंगे। इस प्रकार श्रीकृष्ण के समझाने पर गान्धारी का अपार शोक वेग कुछ कम हुआ।

अन्त्येष्ठि क्रिया ।

—o:*:o—

अपार शोक-सागर में डूबते हुये धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर से कहा—पुत्र धर्मराज ! अब रोने-धोने का समय नहीं है। शीघ्र ही सबों की अन्त्येष्ठि क्रिया करो। जिनका अग्निहोत्र संचित नहीं है तथा जिनके कुल का नाम नहीं है, वे विशिष्ट अन्त्येष्ठि क्रिया से ही स्वर्ग के अधिकारी होंगे। उनके लिये शीघ्र उचित प्रबन्ध करो।

धर्मराज ने उसी क्षण धृतराष्ट्र की आज्ञा पालन किया। शीघ्र ही अगर, चन्दन, घृत और काष्ठ तथा सुगन्धित द्रव्यों के योग से असंख्य चितायें जलाई गई। उन पर रखते ही दुर्योधनादि महीपों का शरीर भस्म होने लगा। ओह ! देखते ही देखते विशाल कुरुक्षेत्र चिताओं की अग्नि से पूरित हो उठा। साथ ही साम और ऋग्वेद की मन्त्रध्वनि तथा स्त्रियों के करुण विलाप और आर्तनाद से दिशायें और विदिशायें काँप गईं तथा सर्वत्र शोक छा गया।

दोनों ओर के वीरों की दाह-क्रिया समाप्त कर सभी गंगा के किनारे पहुँचे और बन्धु-बान्धवों को तिलांजुलि देने लगे। उस समय माता कुन्ती के द्वारा कर्ण को अपना सहोदर भाई जान युधिष्ठिर अत्यन्त दुखी हुये उन्हें अपार शोक हुआ। वे इस शोक को किसी प्रकार नहीं रोक

सके। उन्होंने कहा—हाय! यदि मैं इसे पहले जान लेता तो यह महा नाशकारी संग्राम ही नहीं होता।

पुत्र धर्मराज को अत्यन्त शोकाकुल तथा अधीर देख कुंती ने कहा—बेटा! भगवान् सूर्य के द्वारा कर्ण मेरे गर्भ से उत्पन्न हुआ था; कुमारी होने के कारण हमने उसे नदी में डाल दिया था, दैवयोग से अधिरथ सारथि ने उसका पालन पोषण किया। महाभारत होने के पूर्व मैं उसके पास गई और बहुत चाहा कि वह भाइयों के पक्ष में आ जाय—परन्तु वह दुर्योधन का पक्ष छोड़ने में असमर्थ हो गया—इस प्रकार हमने उसे दुर्विनीत समझकर भुला दिया।

कुन्ती के इतना कहने पर भी युधिष्ठिर शान्त नहीं हुये वे बार-बार विह्वल हो विलाप करने लगे।

इस प्रकार शोकाकुल होते हुये युधिष्ठिर ने दुखित हृदय से नारि जाति को शाप दिया कि वे कोई भी बात पेट में न पचा सकेंगी। इसके अनन्तर सभी रोते-पीटते हुये नगरी की ओर चले।

इति श्री महाभारत स्त्री पर्व समाप्त।

शान्ति-पर्व ।

धर्मराज का वैराग्य

दुर्दैवकाल ने कितने घरों का दीपक बुझा दिया। हाय! इस संहार कारी युद्ध ने भयानक सर्वनाश किया। हमारे लोभ से कितनी युवतियों की गोद सूनी हो गईं। तथा लाखों ही सौभाग्य वंचित हो रहीं। शोक! इस अपार नर-हत्या से हमारे दोनों लोक बिगड़ गये! इस प्रकार कहते हुये धर्मराज का हृदय पश्चात्ताप से जलने लगा। कर्ण के परिचय से उन्हें राज्य-सुख-सौख्य तथा सौभाग्य से घृणा और संसार से विरक्ति हो गई। अतः प्रायश्चित्त के लिये उन्होंने समस्त-राज्य दान कर बन में जाकर तपस्या करने का विचार प्रकट किया।

अपने भाई धर्मराज को इस प्रकार शोकाकुल एवं विरक्त देख अर्जुन ने कहा—महाराज! ऐसे समय में यह विषाद! आप मूढ़ों के समान यह क्या कह रहे हैं? अपने शत्रुओं को मार कर एकाधिपत्य करें और तुरत ही मूर्खों के समान

उसे त्याग कर भीख माँगते फिरें। क्या आप नहीं जानते, धन से ही सब कुछ होता है? कहिये—अकिंचनों के मनोरथ कभी सफल होते हैं? धन संचय से ही संसार का कल्याण होता है। जिस प्रकार नदियाँ पर्वतों से बाहर हो उपकूलों को खींच कर अन्न उत्पन्न करती है, मेघ सिन्धु से उड कर संसार में वृष्टि कर जीवों को सुखी करते हैं। उसी भाँति संचित राज-कोष के धन से प्रजाओं का उपकार होता है। अतः धन की रक्षा के लिये यदि बली शत्रुओं को मारना पड़े तो कोई पाप नहीं है। आप व्यर्थ 'पाप—पाप' चिल्ला कर प्रायश्चित्त का आयोजन कर रहे हैं।

युधिष्ठिर ने कहा—अर्जुन! तुम मोह में पड़े हो। हम उसकी परिधि को पार कर चुके हैं। भाई! क्या मोह-जाल में फँसना ही यथार्थ सुख है? हाय! यह संसार, दुःख शोक, जन्म-मृत्यु, आधि-व्याधि तथा वृद्धतादि क्लेशों से भरा है। हाय! विषय-वासना के वशीभूत होकर हमने बड़े-बड़े पाप किये। युधिष्ठिर की बातें सुन भीम से न रहा गया। वे बोले—वाह! इस समय तो आप अभागे श्रोत्रियों की सी बातें कर रहे हैं, यदि यही वेदान्त छाँटना था तथा वैराग्य का सहारा लेकर ही सन्तोष करना था तो विपक्षियों का क्यों नाश किया? कर्म त्याग कर वनवासी होने से ही सिद्धि प्राप्ति होती, तो बड़े-बड़े पर्वत कन्दरा और वृक्षादि सिद्ध हो गये होते। यदि उदर पालन में ही मोक्ष

मिलता तो पशु-पक्षी सभी मुक्त ही हैं। महाराज! सच पूछिये तो सुख स्वधर्म पालन से ही मिलेगा।

इसी समय अत्यन्त नम्रता से नकुल ने कहा—महाराज! स्वधर्म छोड़ने से कभी मुक्ति नहीं मिलती। कर्म से ही देवत्व प्राप्त होता है। संसार में रहते हुये जो काम-क्रोधादि दुर्गुणों से दूर है वही यथार्थ-त्यागी और महात्मा है! उसके विपरीत जो धर्मसे रहित हो वनवासी होता है—वह महादुष्ट है, स्वधर्म पालन न करने वाला महापापी है।

भाइयों की बातें सुन धर्मराज मौन हो रहे। उन्हें किसी बात का उत्तर न देते देख द्रौपदी बोली—महाराज! आप क्यों मौन हो रहे हैं? क्या द्वैतवन की बातें भूल गये? वनवास के दुःखों से दुखित होकर क्या आप ने नहीं कहा था कि शत्रुओं से रण भूमि के पट जाने पर जब युद्ध यज्ञ की दक्षिणा प्राप्त होगी तब यह महा दुःख सुख रूप में परिणित हो जायगा। नाथ! आपके आचरणों को देख-देख आपके छोटे भाई पागल हो रहे हैं, तथापि आपके चन्द्रमुख को चातक की तरह निहार रहे हैं। आपको क्या करना चाहिये? हाय! क्या, मैं पुत्र-हीना होकर जीवित रहना चाहती हूँ। ओह! फिर आप राज्य से क्यों मुँह को मोड़ते हैं।

धर्मराज ने भाइयों को सम्बोधन कर कहा—भाइयो! तुम लोग वीर और योद्धा हो, वीरता और पराक्रम का हाल जानते हो। परन्तु धर्मज्ञान की ओर से कोरे हो। मुझसे

अधिक नहीं जानते । तुमलोग तो मूर्खों के समान सुख-ऐश्वर्य को ही सर्वस्व धन मान रहे हो, परन्तु मैं नहीं मानता। सुख और ऐश्वर्य भोग से ही कामना उत्पन्न होती है और इस कामना से सर्वनाश होता है। जीवन के लिये त्याग और ब्रह्मज्ञान ही सर्वश्रेष्ठ है—अतः तुम लोग भी इसी को धारण कर भोग की कामना को त्याग दो, अन्यथा अनर्थ के अधिकारी होगे। कभी तुम लोग शान्ति नहीं पा सकोगे। कामनाओं के उत्पन्न होने पर सुख की आशा करना व्यर्थ है।

इसी समय दैवयोग से महर्षि व्यासजी आ पहुँचे और युधिष्ठिर के भावों को देखकर बोले—धर्मराज ! तुम स्वयं बुद्धिमान होकर ऐसी बातें कह रहे हो। क्या नहीं जानते, कि मामव शरीर क्षण भंगुर हैं। फिर सन्मुख समर में प्राण त्याग करना कितनी गौरव की बात है। समयानुसार सब होता है। तुम्हें शोक और सन्ताप नहीं करना चाहिये। पुत्र ! उन्नति के पश्चात् अवनति, सुख के बाद दुख, संयोग के बाद वियोग और जन्म के पश्चात् मृत्यु होती है। तुम्हारी अभाग्य रजनी बीत गई है। तुम्हारे भाइयों ने उन अत्याचारियों को मार कर जिनके प्रहार से तुमने तेरह वर्ष भयानक दुःखों को झेला है राज्य प्राप्त किया है। अतः उसे कुछ दिन धर्म-पूर्वक भोग कर उनकी आशाओं को पूर्ण करो। यही धर्म है और इसी में तुम्हारा कल्याण है।

धर्मराज बोले—देव ! मुझे राज्य भोगने की तनिक भी

इच्छा नहीं है। हाय! इस शोक-संताप, करुण-विलाप और आर्तनाद तथा वन्धु-बान्धवों और गुरुजनों की हत्या से मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है। अशांन्ति उत्पन्न हो चुकी है। हाय! मुझे धिक्कार है, हम बड़े नीच और लोलुप हैं, हम ने लोभ के कारण वंश का नाश कर दिया। ओह! मुझ से बढ़कर और कौन अधर्मी होगा? इस प्रकार कहते हुये भाइयों को सम्बोधन कर बोले—भाइयों! यदि तुमलोगों की इच्छा है तो राज्य भोग करो। मुझे बन में जाने दो; मैं वहीं अपने पापों का प्रायश्चित् करूँगा।

व्यासजी ने पुनः कहा—धर्मराज! कर्तव्यपालन से ही चिरस्थाई सुख मिलेगा। दृढ़ता-पूर्वक राज-धर्म का पालन करो, तभी शान्त मिलेगी।

इतना होने पर भी धर्मराज को शोकाकुल ही देख श्रीकृष्ण ने हाथ पकड़ कर कहा—राजन्! आप भीष्मादि पूज्यों तथा वीर योद्धाओं के लिये शोक न कीजिये। मृत्यु अनिवार्य है फिर वे सभी वीरगति को प्राप्त हुये हैं। उनके लिये शोक करना व्यर्थ है। अपना कर्तव्य पालन करो।

इस प्रकार कृष्ण के बहुत समझाने पर कुछ शान्त हो धर्मराज ने व्यास से कहा—कर्तव्य पालन ही अनिवार्य्य है, तो उपदेश दीजिये, हम धर्म-पूर्वक प्रजा-पालन कर सकें।

व्यास ने कहा—पुत्र! भीष्म तुम्हें राज-धर्म का उपदेश देंगे। पहले नगरी में जाकर राज-काज सम्हालो।

राम-राज्य की स्थापना।
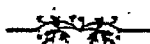
महर्षि व्यास और भगवान कृष्ण के उपदेशों को हृदय में धारण कर महात्मा युधिष्ठिर तारागणों से घिरे हुये सुधाकर के समान भाइयों तथा द्रौपदी सहित नगरी में प्रवेश किये। सारी नगरी उमड़ पड़ी, असंख्य दर्शकों की भीड़ से राज-मार्ग ठसाठस भर गये। सर्वत्र पांडवो के जयनिनाद से दिशायें गूँज उठीं।

सर्वत्र विजेता पांडवों की चर्चा होने लगी, लोग प्रसन्नता पूर्वक कहने लगे-भाइयों! हम लोगों के सौभाग्य से ५ महाराज युधिष्ठिर पराक्रमी कौरवों को परास्त कर सके हैं। ओह! इन धर्मात्माओं ने कितना कष्ट सहा—हाय! दुराचारी कौरवों ने इन पर कितना अत्याचार किया परन्तु नहीं पांडव वीरों ने धर्म से मुख नहीं मोड़ा। यही कारण है कि कुरुक्षेत्र में अजेय और अवध्य वीरों के रहते हुये भी इनकी विजय हुई। अतः यह निर्विवाद सिद्ध हो गया कि-जहाँ धर्म है-वहीं जय है। इस प्रकार सभी कहते हुये बड़े जोर से धार्मिक पाण्डवों की जय कहने लगे।

महात्मा युधिष्ठिर ब्राह्मणों के मंगल आशीर्वाद सुनते हुये इन्द्रलोक के समान राजभवन में पहुँचे। यथा समय मंगल कार्य आरम्भ हुआ। याज्ञिकों ने युधिष्ठिर को अभिषिक्त कर पूर्व की ओर मुँह करा-कर स्वर्ण सिंहासन पर बैठाया।

महात्मा श्रीकृष्ण और सात्यकि सामने ही दिव्यासन पर बैठ गये। पश्चात् भीमार्जुन, नकुल, सहदेव, महात्मा विदुर, महर्षि धौम्य तथा महाराज धृतराष्ट्र भी दिव्यासन पर जा बैठे। इसके अनन्तर मङ्गल वस्तुयें लेकर दर्शनों के लिये प्रजायें आने लगीं।

अभिषेक की सामग्रियों के आ जाने पर श्रीकृष्णजी की आज्ञा से महर्षि धौम्य ने विधि के अनुसार वेदी बनाई। महाराज युधिष्ठिर द्रौपदी सहित उठे और व्याघ्र चर्म बिछे हुये सर्वतोभद्र पर बैठ कर आहुति देने लगे। उसी समय भगवान कृष्ण ने पाँचजन्य में जल लेकर युधिष्ठिर के मस्तक पर तिलक लगाया। इस प्रकार धीरे-धीरे मांगलिक कार्य समाप्त हुआ। महाराज युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों की यथा-विधि पूजा की तथा याचकों को अयाचक कर दिया।

इसके उपरान्त युधिष्ठिर ने भीमसेन को युवराज, महात्मा विदुर जी को मन्त्री, बुद्धिमान संजय को उपदेशक, महावली नकुल को सेनापति, महाबाहो अर्जुन को राज्यरक्षक, सहदेव को शरीर-रक्षक तथा महर्षि धौम्य को देवकार्य का अधिकारी बनाकर कहा—महापुरुषों! आप लोग सदैव महाराज धृत-राष्ट्र की आज्ञा पालन करते रहें। प्रत्येक कार्य महाराज की अनुमति से करें।

यथा समय सब कार्य समाप्त हो जाने पर धृतराष्ट्र ने भीमसेन को दुर्योधन का महल, अर्जुन को दुःशासन का राज-भवन तथा नकुल सहदेव को दुर्योधन के अन्य भाइयों के

हल दिया । अब सब लोग अपने-अपने महल में प्रसन्नता पूर्वक रहने लगे ।

कौरवों का अत्याचार दूर हो गया । लोगों ने सत्याचरण धारण कर लिया । पृथ्वी से पापियों का बोझ दूर हो गया । सर्वत्र धर्मराज्य की स्थापना हो गई । प्रजायें प्रसन्न हो जय जयकार मनाने लगीं ।

धार्मिक पांडवों ने समय को पलट दिया । दिशायें सौम्य हो गईं । पृथ्वी अपरिमित द्रव्य देने लगी । मेघ समय पर वृष्टि करने लगे । सर्वत्र सुख साम्राज्य का श्रोत उमड़ पड़ा । लोगों के दुःख और द्वेष जाते रहे । युधिष्ठिर के सिंहासनारूढ़ होते ही पुनः राम राज्य का आगमन होगया ।

महात्मा युधिष्ठिर सम्पूर्ण पृथ्वी को अधिकार में कर धर्म पूर्वक शासन करने लगे । सब कार्यों से निवृत्त हो एकदिन उन्होंने भगवान कृष्ण से कहा—भगवन् ! आपकी कृपा से हम लोग सुखी हुये हैं । अब किसी दिन महात्मा भीष्म के पास चलिये, उनके उपदेश के द्वारा हम लोग धर्म-पूर्वक राज्य की रक्षा कर सकेंगे ।

यथा समय सभी तैयार हो गये, युधिष्ठिर अपने भाइयों श्रीकृष्ण और सात्यकि सहित रथों पर बैठ कर तेजस्वी महर्षियों से घिरे हुये पितामह भीष्म जी के पास जा पहुँचे ।

भीष्म का उपदेश ।
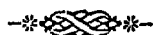
पाँचो पाण्डव श्रीकृष्ण और सात्यकि के साथ रथों से उतर कर महात्मा भीष्म के पास पहुँच कर प्रणाम किये। उन्हें आकाश से गिरे हुए सूर्य के समान देखकर सभी भयभीत हो खड़े रह गये। यह देख देवर्षि नारद ने कहा—महावीरों! महामति भीष्म अब सूर्य्य तुल्य अस्त हो रहे हैं। इन्हें धर्म का अच्छा ज्ञान है। इस समय इनका शारीरिक और मानसिक क्लेश दूर हो गया है, अतः इनके स्वर्ग जाने के पूर्व ही श्रेष्ठ धर्म ज्ञान को जान लो। नारद जी के आदेशानुसार सभी पितामह की ओर बढ़े—परन्तु पूछ न सके। अन्त में युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण से कहा—भगवन्! आपके अतिरिक्त और कौन है जो पितामह से कुछ पूछ सके? आपही उनसे पूछिये।

तब महामति पितामह को प्रणाम कर श्रीकृष्ण ने कहा—महात्मन! बन्धु बान्धवों, इष्टमित्रों तथा पूज्यों के वध के कारण युधिष्ठिर शोकाकुल तथा लज्जित हो आपके सम्मुख आने का साहस नहीं करते। आप कृपाकर अपने धर्मोपदेश के द्वारा उनका अज्ञान दूर कर दें।

पितामह ने कहा—भगवन्! इसमें लज्जा की कौनसी बात है। युधिष्ठिर ने युद्ध में बन्धु-बान्धवों को मारा है। यह तो क्षत्रियों का धर्म ही है।

भीष्म के इस प्रकार कहने पर युधिष्ठिर को कुछ ढाढ़स हुआ और वे बोले—पितामह ! लोग मुझे राज्य करने कह रहे हैं, परन्तु मैं व्यग्र हो रहा हूँ। लोग कहते हैं कि स्व-धर्म पालन से ही मुक्ति मिलेगी परन्तु मुझे बन्धन जान पड़ रहा है। मैं अशक्त हो रहा हूँ। भगवन् ! आपही कहिये मुझे क्या करना चाहिये !

भीष्म ने शान्त्वना देते हुये कहा—युधिष्ठिर ! क्षत्रियों के लिये राजधर्म ही सबसे श्रेष्ठ है। इसी के द्वारा समाज की मर्यादा स्थिर रहती है। और समाज की मर्यादा स्थिर रहने से ही धर्म विकसित होता तथा अधर्म का नाश होता है। प्यारे धर्मराज ! तुम राजधर्म का पालन करते हुये नीति पूर्वक प्रजाओं की रक्षा करो। इसीसे तुम्हारा कल्याण होगा। इस लोक में तुम्हारा यश बढ़ेगा और मरने उप-रान्त स्वर्गादिलोकों की प्राप्ति होगी।

हे कौन्तेय ! क्षात्रधर्मके त्याग देने परतुम भ्रष्ट हो जाओगे-अपना धर्म ही रक्षक है। अन्य धर्म उत्तम होने पर भी त्या-गने योग्य है। निश्चय ही पर-धर्म भय-कारक होता है। क्षात्र धर्म से ही तुम्हारी सद्गति होगी। तुम शीघ्र शोक चिन्ताओं से अपने को रहित कर स्वधर्म पथ पर आरूढ़ कर दो। निःसन्देह तुम्हारा कल्याण होगा।

महात्मा भीष्म की बातों से युधिष्ठिर को बड़ी शांति मिली। उन्होंने पुनः वर्णाश्रम धर्म के विषय में पूछा—

भीष्म ने कहा—धर्मराज ! जिनके द्वारा मङ्गल हो,

सिद्धियाँ प्राप्त हों, इस लोक में सुख-शांति तथा मरने के उपरान्त स्वर्गादिलोकों की प्राप्ति हो—उन्हीं सत्कर्मों को धर्म कहते हैं। धैर्य धारण करना, क्षमा, मनको बुरे विचारों से रोकना। कभी मन, वचन और कर्म से चोरी न करना, शुद्धता—पवित्रता, इन्द्रियों को वशीभूत रखना, स्थिर बुद्धि धारण करना, वेदादि विद्याओं का अध्ययन, सत्य बोलना, और कभी क्रोध न करना ही धर्म का यथार्थ अर्थ है। इन्हीं सत्कर्मों को धर्म कहते हैं। यही मनुष्य मात्र का धर्म है। अब चार वर्णों के धर्म को सुनो—

यद्यपि क्रोध रहित होना, सर्वदा सत्य बोलना, परायी स्त्री को माता के समान समझना, शत्रु को भी सदैव क्षमा करना, पवित्राचरण, वैर विरोध से दूर रहना, नम्र व्यवहार करना आदि चारो वर्णों के लिये उपादेय कर्त्तव्य कर्म हैं तथापि भिन्न-भिन्न वर्णों के लिये शास्त्रों ने भिन्न-भिन्न सत्कर्मों की व्यवस्था की है। अपने-अपने सत्कर्मों के पालन करने पर ही सभी सुखी रह सकते हैं।

युधिष्ठिर! मैंने पूर्व ही कहा है कि स्वधर्म पालन से ही मुक्ति मिलती है अतः अपने वर्ण धर्म का पालन करो। ब्राह्मण का कर्तव्य वेद पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना कराना, तथा संयम पूर्वक इन्द्रियों को आधीन कर तपस्या में लीन होना है। क्षत्रियों का कर्त्तव्य वेद पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना, प्रजाओं की रक्षा करना, आक्रमणकारियों, चोर डाकुओं और लुटेरों का दमन करना, तथा समरभूमि में

पीठ नहीं दिखाना है। वैश्य का कर्त्तव्य—वेद पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना और कृषि वाणिज्य द्वारा धन-उपार्जन करना है। इसी प्रकार उपरोक्त तीनों वर्णों की श्रद्धा-भक्ति पूर्वक सेवा करना ही शूद्र का परम कर्तव्य है।

धर्मराज! अपने कर्म-धर्म पर स्थिर रहना ही मनुष्यता है। तुम वर्ण-धर्म को पालन करो। चारो वर्णों में भूदेव ब्राह्मणों का प्रतिपाल करो। वेदों को जानने वाले ब्राह्मणों की सेवा करो। उनके वाक्यों को वेद वाक्यों के समान प्रमाणित समझो। पुत्र! ब्राह्मणों के आशीर्वाद से तुम्हारा मङ्गल होगा।

महामति भीष्म के उपदेश से युधिष्ठिर का मन कुछ शांत हुआ। इसके उपरान्त युधिष्ठिर के जिज्ञासा करने पर भीष्म जी ने अनेक प्रकार से वर्णाश्रम धर्म, राजधर्म, आपद्धर्म, मोक्ष धर्म तथा राज्य शासन धर्म का वर्णन कर विचित्र युक्तियों से समझाया, जिसे सुनकर युधिष्ठिर परम प्रसन्न हुये।

अनुशासन-पर्व।

पितामह का उपदेश

महाभारत का अनुशासन-पर्व महात्मा पितामह के उपदेशों से भरा है। युधिष्ठिर की शंकाओं को दूर करते हुये पितामह ने कहा—पुत्र! जीवन-संग्राम पूर्ण करने के लिये चतुर्आश्रमों की आवश्यकता है। विना आश्रमों के धारण किये जीवन-युद्ध में विजय पाना अत्यन्त कठिन है। जन्मकाल से आयु के चतुर्थ भाग तक मनुष्य ब्रह्मचर्य धारण करे। वास्तव में ब्रह्मचर्य ही वर्णाश्रमों की जड़ है। ब्रह्मचर्य पुष्ट होने पर ही जीवन सुखदायी हो सकेगा।

धर्मराज! ब्रह्मचर्य से उत्तीर्ण हो गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे। आयु के द्वितीय भाग तक गृहस्थाश्रम का पालन करते हुये वाणप्रस्थ धारण करे—अन्त में सन्यास ले तपस्या में लीन हो कैवल्य का अधिकारी होवे।

युधिष्ठिर ! पुरुषार्थ से ही सभी सिद्धियाँ मिलती हैं। कभी भूल कर भी पुरुषार्थ को न त्यागना चाहिये। पुरुषार्थ सेही वर्णाश्रमों का यथावत् पालन हो सकता है-तुम पुरुषार्थ को अपनाओ। पितामह की बातें सुन युधिष्ठिर ने कहा— महात्मन् ! भाग्य और पुरुषार्थ में क्या भेद है ?

पितामह ने कहा—पुत्र ! मेरी समझ में कोई भेद नहीं है तथापि पुरुषार्थ ही प्रधान है, पुरुषार्थ से ही फलों की प्राप्ति होती है। जो भाग्य के भरोसे बैठ रहते हैं, वे मूर्ख हैं-पुरुषार्थ से ही कर्तव्य-कर्म पूर्ण होता है।

इस प्रकार उपदेश देते हुये पितामह ने कर्म महात्य का वर्णन किया। दान, योग, शील और सेवा द्वारा मेधावी बनने का मार्ग बतलाया तथा तथा अहिंसा द्वारा दीर्घायु प्राप्त करने का साधन कहा। महात्मा भीष्म ने बार-बार कहा—पुत्र ! सात्विक स्वभाव, प्रियवादी, लोभ—क्रोध हीन तथा परोपकारी होओ। दीन-हीनों का उपकार करो। पीड़ितों की सहायता तथा असहायों की रक्षा करो। कभी बुरी कामना न करो। शुभ कामनाओं से ही सुखों की प्राप्ति होती है। धर्मराज ! कर्मों से ही फलाफलों की प्राप्ति है। मनुष्य कर्मों से ही दीन हीन क्षीण और मलिन होता हैं। अतः सत्कर्मों को धारण कर अपने जीवन को सार्थक करो।

इसके उपरान्त राज-धर्म की मीमांसा करते हुये पितामह कहा—युधिष्ठिर, राज्य प्राप्त कर धर्मानुसार प्रजाओं का

पालन करने पर निःसन्देह स्वर्ग की प्राप्ति होती है। नीति पूर्वक प्रजा-पालन ही राजाओं का धर्म है। निरन्तर प्रजा की सेवा में लगे रहना ही राजा का सत्कर्म है। जिस राजा के राज्यमें प्रजा दुखी रहेगी वह अवश्य नरक का अधिकारी होगा।

राजा ईश्वर का प्रतिनिधि है। परमेश्वरने उसे जनता की सेवा करने के लिये भेजा है। जो राजा अपनी प्रजाओं को पुत्रों तथा प्राणों के समान नहीं मानता, वह नीच है। धर्मराज ! प्रजाओं को सन्तुष्ट रक्खो। उचित परामर्श को विवेक के द्वारा सिद्ध कर कर्तव्यपालन करते हुये उन्हें सुखी और सम्पन्न रखो। इसी के द्वारा धन-बल की वृद्धि होगी। धन-बल से ही कल्याण होता है। प्रजाओं के सम्पन्न तथा सन्तुष्ट रहने पर तुम भी सम्पन्न और सन्तुष्ट रह सकोगे। वास्तव में प्रजाओं के कल्याण से ही राजाओं का कल्याण है।

इस प्रकार पितामह कई दिन तक उपदेश देते रहे। सभी लोग उनकी विलक्षण बुद्धि वैभव तथा अपार पाण्डित्य की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे।

भीष्म के उपदेशों से युधिष्ठिर को बड़ी शान्ति मिली। वे गद्गद् हो भाइयों तथा श्रीकृष्ण—सात्यकि सहित राजधानी में लौट आये। तारागणों के समान महर्षियों घिरे हुये चन्द्रमा-समान महात्मा भीष्म प्राण त्यागने के लिये उत्तरायण सूर्य्य की प्रतीक्षा करने लगे।

पितामह भीष्म का प्राण त्याग।

सूर्य उत्तरायण होने पर भीष्म का मृत्युकाल निकट जान युधिष्ठिर भाइयों तथा श्रीकृष्ण के साथ महर्षियों से घिरे हुये पितामह के पास पहुँचे। रथोंसे उतर कर सभी उन्हें प्रणाम किये और बैठ गये। इसी समय भीष्म की संस्कृति अग्नि लेकर पुरोहित तथा अग्नि संस्कार के लिये मूल्यवान रत्न, घी, सुगन्धित द्रव्य, रेशमी वस्त्र, चन्दन-अगर आदि लेकर मंत्री गण आ पहुँचे। यथा समय धृतराष्ट्र गान्धारी और कुन्ती भी आ पहुँची।

सबों के आ जाने पर पितामह ने युधिष्ठिर का हाथ पकड़ कर कहा—वत्स! तुम्हें परिवार तथा मन्त्रियों सहित आया देख हम बड़े प्रसन्न हैं। आज मुझे शर शैय्या पर सोये हुये अट्ठावन दिन बीत गये। पवित्र माघ मास का शुक्ल पक्ष आ गया है। सूर्य उत्तरायण होने के कारण अब हम प्रसन्नता पूर्वक प्राण त्याग करेंगे।

इसके पश्चात् भीष्म ने धृतराष्ट्र को सम्बोधन कर कहा-राजन्! तुम तत्वज्ञ तथा धर्मज्ञ हो, तुम्हें शोक न करना चाहिये। धर्मानुसार पाण्डव लोग तुम्हारे पुत्र समान हैं अतः धर्म परायण होकर उनका पालन करो इतना कहते-कहते भीष्म जी रुक गये। वे तत्काल समाधिस्थ हो गये। देखते ही देखते उनका प्राण प्रज्ज्वलित उल्का के समान ब्रह्मरन्ध्र से निकल कर आकाश में विलीन हो गया। ओह! बाल-

ब्रह्मचारी महात्मा 'द्यू' वसु की आत्मा स्वर्ग में जा पहुँची । वशिष्ठ के शाप से मुक्त हो गई ।

इधर विदुर और पांडवों ने सुगन्धित द्रव्यों के योग से चिता बनाई । भीष्म को रेशमी वस्त्रों से ढँककर सभी लोग छत्र तथा चँवर लेकर यथास्थान खड़े हो गये । नियमानुसार श्राद्ध तथा हवन करते हुये, ब्राह्मण गण सामवेद का गाण करने लगे । सुगन्धित द्रव्यों के साथ भीष्म का शरीर चिता पर रक्खा गया । यथा समय अग्नि लगा दी गई । अन्त्येष्टि क्रिया समाप्त हो जाने पर सभी गङ्गा के किनारे गये और जलाञ्जलि देकर निवृत हुये ।

इस समय युधिष्ठिर पुनः व्याकुल हो उठे । वे शीघ्र ही पृथ्वी पर गिर पड़े । श्रीकृष्ण के संकेत से भीम ने उन्हें तुरत उठा लिया । इस प्रकार युधिष्ठिर को विकल देख कृष्ण ने पुनः हाथ पकड़ कर कहा—धर्मराज ! धैर्य्य धारण करो । अधीर न होओ । युधिष्ठिर की अवस्था जान धृतराष्ट्र ने ने भी बहुत कुछ समझाया । फिर भी उन्हें उदास ही देख श्रीकृष्ण ने कहा—महाराज ! वीर लोक प्राप्त हुये वीरों के लिये शोक न करो । तुम किसी बड़े यज्ञ को करो । जिससे देवता, पितर और भूदेव तृप्त हो जायँ ।

युधिष्ठिर ने कहा—हे कृष्ण ! तुम मुझे बहुत चाहते हो अतः ऐसा मार्ग बताओ जिसके द्वारा हम घोर पापों से मुक्त हों तथा हमारी अन्तरात्मा पवित्र हो जाय ।

——*—*——

महर्षि व्यासजी का आदेश ।

युधिष्ठिर को पुनः शोकाकुल देख व्यास ने कहा—ओह ! तुम फिर घबड़ा गये। भीष्म के मोहहारी उपदेशों को सुन कर भी तुम्हारा मोह नहीं गया। तुम केवल प्रायश्चित्त-प्रायश्चित्त रट रहे हो। अच्छा सुनो—अश्वमेध यज्ञ करो,

धर्मराज ने कहा—भगवन् ! निश्चय ही अश्वमेध पवित्र करने वाला यज्ञ है, परन्तु इस समय हम उस महायज्ञ को कैसे कर सकते हैं ? संग्राम के पश्चात् कोष खाली हो गया है। धन ही इस यज्ञ की पूर्ति का कारण है।

व्यास ने कहा—बेटा ! चिन्ता न करो, हम उत्तम उपाय बताते हैं सुनो—एक समय महाराज मरुत ने हिमालय पर बड़ा भारी यज्ञ किया था। उन्होंने ब्राह्मणों को इतना धन दिया कि वे नहीं ले जा सके। अब तक सोने का ढेर वहाँ पड़ा है। उस के द्वारा यज्ञ सहज ही में पूर्ण हो जायगा।

व्यासदेव की बातें सुन युधिष्ठिर को कुछ शांति हुई, वे बन्धु वियोग का दुःख भूल कर बोले—भगवन् ! हम अवश्य यज्ञ करेंगे। इसी समय महर्षि सब के सामने अन्तर्ध्यान हो गये। युधिष्ठिर मृत बन्धु-बान्धवों तथा पूज्यों के पारलौकिक कल्याणके लिये उचित प्रबन्धकर ब्राह्मणों को अमित दान दे धृतराष्ट्र को आगे कर सबके साथ नगरीमें लौट आये और धर्म-पूर्वक राज्य करने लगे।
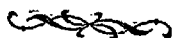
श्रीकृष्ण का द्वारिका गमन ।

पाण्डवों का राज्य निरूपद्रव तथा युधिष्ठिर को शान्तदेख श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा—धनंजय ! अब मैं द्वारिका जाना चाहता हूँ । बहुत दिन हो गये पिता जी तथा आत्मीयों के दर्शन नहीं हुये । अतः द्वारिका जाने की हमारी इच्छा है । तुम चल कर हमारी ओर से महाराज से कहो कि कृष्ण द्वारिका जाना चाहते हैं ।

श्रीकृष्ण के कथनानुसार अर्जुन ने महाराज युधिष्ठिर से कहा—युधिष्ठिर अत्यन्त प्रसन्न होते हुये श्रीकृष्ण से बोले—भगवन् ! आप द्वारिका जाकर पिता जी का दर्शन कीजिये । बहुत दिन से मामा और वसुदेव जी का दर्शन नहीं हुआ है । उनसे हम लोगों का प्रणाम कहियेगा । भगवन् ! हम लोगों को भूल न जायेंगे । यज्ञ के समय अवश्य पधारेंगे ।

यथा समय श्रीकृष्ण सबों से मिल कर सात्यकि और सुभद्रा सहित रथ पर बैठ कर वन-पर्वतों को पार करते हुये द्वारिका के निकट पहुँचे । इस समय रैवतक पर्वत पर बहुत बड़ा महोत्सव हो रहा था । श्रीकृष्ण और सात्यकि वहीं रथ से उतर पड़े और पर्वत पर पहुँचे । पश्चात् उनके साथ सभी घर चले ।

श्रीकृष्ण ने पिता जी को प्रणाम किया । कुशल समाचार के उपरांत चारों ओर यादव वीर घेर कर बैठ गये । श्रीकृष्ण के विश्राम ले चुकने पर उनके पिता बोले—बेटा !

हमने बहुत आदमियों के मुँह से कौरवपाण्डवों की लड़ाई का हाल सुना है। परन्तु तुमने इस अद्भुत युद्ध को स्वयं देखा है। हम तुमसे ही सुनना चाहते हैं। कहो—भीष्म, द्रोण, कर्ण, शल्यादि वीरों का पांडवों के साथ किस प्रकार युद्ध हुआ।

श्रीकृष्ण ने कहा—पिता जी! कौरव पांडवों के युद्ध में क्षत्रियों ने न मालूम कितने अद्भुत कर्म किये—उनका हाल कोई वर्ष में भी नहीं कह सकता। श्रीकृष्ण ने भीष्म, द्रोण कर्ण आदि वीरों के मारे जाने की घटनायें कह सुनाईं, परन्तु पिताजी को शोकातुर होने के डर से उन्होंने अभिमन्यु की वीरता का वर्णन नहीं किया। इसी समय पास ही बैठी सुभद्रा बोल उठी। भाई! अभिमन्यु के वीरता का कुछ भी वर्णन नहीं किया। इतना कहते-कहते वह बेहोश होकर गिर पड़ी। कन्या को इस प्रकार व्याकुल देख वसुदेव जी सभी बातें समझ गये, और अपार शोक के कारण मूर्च्छित हो गये।

होश आने पर वसुदेव जी देर तक शोक करते रहे। उन्हें अत्यन्त शोक करते देख श्रीकृष्ण ने अभिमन्यु की वीरता का वर्णन करते हुये कहा—आप लोग शोक न करें। अभिमन्यु ने वीर धर्म का पालन किया है। इसके अनन्तर वसुदेव जी ने शोक को त्याग कर नाती का श्राद्ध किया। सभी यादव वीर अभिमन्यु के वीरता की कथायें गाने लगे।

अश्वमेध-पर्व ।

परीक्षित का जन्म ।
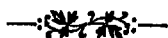
धर्मात्मा धर्मराज का धर्मराज्य दिशाओं को पुलकित कर रहा था। अत्याचारियों के अत्याचार से दबी हुई पृथ्वी पुनः धर्म को स्थापित होते देख हर्षित हो रही थी। सर्वत्र सुख सौख्य तथा शान्ति का साम्राज्य छा रहा था। तथापि महाराज युधिष्ठिर का मन सुख-भोग एवं राज-ऐश्वर्य्य में न लगता था। एक दिन उन्होंने भाइयों एवं मंत्रियों को बुलाकर कहा—

वीरो! महामति व्यास, पितामह भीष्म तथा सहायक श्रीकृष्ण ने जिस महायज्ञ का विधान बताया था, उसका समय निकट आ गया है। उसकी पूर्ति के लिये राजा मरुत का धन लाना आवश्यक है।

भीम ने शान्त्वना देते हुए कहा—महाराज! आप चिन्ता

न करें, हम लोग भगवान व्योमकेश को प्रसन्न कर उस अपार धन को ले आवेंगे। शंकर के सन्तुष्ट हो जाने पर शिवगण, यक्ष, किन्नर अथवा असुर जो उस धन के रक्षक होंगे हमारा कुछ न कर सकेंगे। भीमकी बात का सब ने समर्थन किया।

धर्मात्मा युयुत्सु को राज्य सौंप पाँचो पाण्डव सेना सहित हिमालय की ओर चल पड़े। आगे-आगे महर्षि धौम्य ऋत्विजों के साथ उपासना करते हुये चले। निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच कर पांण्डवों ने उपवास किया पश्चात् कुशासन पर बैठ धर्म-चर्चा करते हुये दिवस व्यतीत किया। दूसरे ही दिन अनुष्ठान तथा उपासना से आशुतोष को प्रसन्न कर महर्षि धौम्य ने पांडवों से कहा—धर्मात्माओं! राजा मारुत के उस अपार धन को खोदो। अब किसी प्रकार का भय नहीं है।

तत्काल सभी खोदने में जुट गये। ओह! थोड़ी ही देरमें पर्वत के समान स्वर्ण-ढेर मिला। पांडवों ने वह अपार धन लाखों हाथी, घोड़ा, ऊँटों, खच्चरों, रथों और गाड़ियों पर लादकर नगरी की ओर प्रस्थान किया।

इधर अश्वमेध यज्ञ का समय जान श्रीकृष्ण-बलराम सुभद्रा, प्रद्युम्न, युयुधान, चारुदेष्ण, कृतवर्मादि यादव वीरों को लेकर हस्तिनापुर पहुँचे ही थे कि अश्वत्थामा के ब्रह्मशिरा के प्रभाव से उत्तराने मृत पुत्र प्रसव किया। हाय! पितरों को पिण्ड दान देने वाला तक शेष न रहा। पांडव

रमणियाँ विलख-विलख कर रोने लगीं। सर्वत्र शोक छा गया। पांडव वंश की रक्षा इसी बालक पर अवलंबित थी।

कुन्ती, सुभद्रा, कृष्णा और उत्तरा के करुण-विलाप को सुन श्रीकृष्ण का जी भर आया; वे इस कातर करुण-क्रन्दन को नहीं सह सके। तत्काल सूतिका गृहमें जा पहुँचे। श्रीकृष्ण को सन्मुख देख शोकाकुल कुन्ती ने कहा—वत्स! यह मैं क्या देख रही हूँ? तुम्हारे रहते कुरुवंश का सर्वनाश हो। कृष्ण! इस कुरुकुल के एक मात्र दीप की रक्षा करो।

कुन्ती की बातों ने कृष्ण को द्रवित कर दिया। उन्होंने तत्काल आचमन कर उस मृत शिशु को अपने हाथों में उठा लिया। श्रीकृष्ण के विचित्र व्यापार को देख शोकाकुल रमणियाँ आश्चर्य्य चकित हो उठीं और उनकी ओर देखने लगीं। उसी समय श्रीकृष्ण ने कहा—यदि मैंने कभी असत्य भाषण नहीं किया, युद्ध में कभी पीठ नहीं दिखाई, धर्म तथा ब्राह्मणों का सत्कार किया हो, विजय प्राप्त करने पर भी कभी हिंसा नहीं की हो, यदि सत्य और धर्म मुझमें वास करते हों तो अभिमन्यु का यह मृत बालक जीवित हो जाय। यदि मैंने धर्म की रक्षा की है तो धर्म इस बालक को पुन जीवित कर दे। ओह! इतना कहते ही बालक जी उठा। सभी श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगे। बालकका नाम परीक्षित रखा गया। सभी प्रसन्न हो उठे। हस्तिनापुर वासियों के आनन्द का ठिकाना न रहा।

इस प्रकार एक माह बीत जाने पर पांडव लोग अपार धन लेकर लौटे। प्रजाओं, मन्त्रियों तथा यादवों ने उनका अपूर्व स्वागत किया। पाँचो पांडव श्रीकृष्ण से मिलकर अत्यन्त प्रसन्न हुये और परीक्षित जन्म की कथा सुन सभी आनन्द विभोर हो बार-बार श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगे। धीरे-धीरे आनन्द उत्सव में कुछ दिन बीत गये। अचानक एक दिन व्यास जी आये। पाण्डवों ने उनकी विधिवत पूजाकर पूछा—भगवन्! पुनीत अश्वमेध यज्ञ की तिथि कब निश्चय की जाय? व्यास जी ने युधिष्ठिर से कहा—वत्स! चैत्र पूर्णिमा ही इसके लिये उत्तम योग है-तुम शीघ्र यज्ञ सामग्री संग्रह करने की आज्ञा दो। समय थोड़ा है, अब विलम्ब न करो।

महामति व्यास की बात सुन धर्मराज ने तत्काल भाइयों को बुलाकर कहा—धर्मात्माओं यज्ञ काल निकट है, शीघ्र सामग्रियों को एकत्र करो। चैत्र पूर्णिमा ही पुनीत तिथि है। महात्मा धर्मराज की बात सुन सभी अपने-अपने कामों में लग गये।

अश्वमेध यज्ञ

धर्मराज ने श्रीकृष्ण से कहा—भगवन् ! आपकी कृपा से ही सुख की प्राप्ति हुई है । अतः आपही यज्ञ की दीक्षा लें । इससे हमारे सौभाग्य और मङ्गल की वृद्धि होगी ।

युधिष्ठिर की प्रिय वाणी सुनकर श्रीकृष्ण बोले—धर्मराज ! आप इसके पूर्ण योग्य हैं । राजन् ! आपके द्वारा यज्ञ होने से हम लोगों को भी सिद्धि का फल मिलेगा ।

शीघ्रही यज्ञ सामग्रियाँ प्रस्तुत होगईं । अश्व-विद्या पारंगत ब्रह्मर्षियों का समुदाय आ उपस्थित हुआ । ऋत्विजों, पुरोहितों ने यथा समय धर्मराज को यज्ञ के लिये दीक्षित किया । इसके अनन्तर महर्षि धौम्य ने कहा—राजन् ! यज्ञ कार्य आरम्भ कीजिये । पश्चात् एक श्याम घोड़ा छोड़ना चाहिये । जो समुद्र पर्य्यन्त पृथ्वी पर तुम्हारे चमकते हुये यशश्चन्द्र को फैलाकर लौटेगा । तब यज्ञकी पूर्णाहुति होगी ।

यज्ञ कार्य्य आरम्भ हो गया । दीक्षित युधिष्ठिर यज्ञ वस्त्र, दण्ड, मृग चर्म तथा पुष्प माला धारण कर ऋत्विजों के सन्मुख जा बैठे, यथा समय यज्ञ विधि सम्पन्न हो जाने पर व्यासदेवने श्यामकर्ण घोड़े को छोड़ दिया । अर्जुन उसकी रक्षाके लिये श्वेत घोड़े पर चढ़कर पीछे-पीछे चल पड़े ।

अश्वमेध का पवित्र घोड़ा पहले उत्तर दिशा की ओर बढ़ा । मार्ग में कई राजाओं ने उसे रोका परन्तु अर्जुन ने सब को परास्त कर दिया । त्रिगर्त्त-देशके राज-पुत्रों ने भी

विफल प्रयास किया। वे शीघ्रही अर्जुन के वज्र की तरह लौह वाणों से पीड़ित हो शरण में आये और बोले—अर्जुन! आजसे हम लोग आपके दास हुये। क्षमा कीजिये। इस प्रकार यज्ञ में उपस्थित होने का आदेश दे विजयी विजय आगे बढ़े। कुछही दूर बढ़ने पर पुरानी शत्रुता स्मरण कर प्राग-ज्योतिष नरेश भगदत्त के पुत्र वज्रदत्त ने घोड़े को पकड़ लिया। बड़ी लड़ाई हुई। वज्रदत्त विशाल हाथी पर चढ़ कर आगे बढ़ा परन्तु अर्जुन ने एकही वाण में हाथी को मार गिराया। वज्रदत्त को परास्त कर पार्थ आगे बढ़े।

घोड़ा आगे बढ़ता हुआ सिन्धुदेश में पहुँचा। अर्जुन का नाम सुन सिन्धुदेश के राजपुत्र जल उठे और एकाएक दौड़ पड़े। घोर युद्ध होने लगा। ओह! कुछही देर में रण-स्थल अशान्त अर्णव के समान क्षुब्ध हो उठा। देखते ही देखते अर्जुन के प्रलयकारी वाणों ने प्रलय मचा दी। सिंधु देश वालों की बड़ी दुर्दशा हुई। यह वृत्तान्त सुन धृतराष्ट्र की पुत्री दुःशला पौत्र को लेकर रोती हुई अर्जुन के पास आकर खड़ी हो गई। वहन को देखते ही अर्जुन ने गांडीव रख कर कहा—वहन क्या चाहती हो?

दुःशला वोली—भाई! पिताकी मृत्यु से तुम्हारा भञ्जा सुरथ रात दिन व्याकुल रहा करता था, आज तुम्हारे आने का समाचार सुनते ही—हाय! पृथ्वी पर गिर पड़ा और मर गया। मैं उसके पुत्र को लेकर तुम्हारे शरण में आई हूँ।

अर्जुन ने अभयदान देकर कहा—वहन! क्षत्रियों का धर्म

बड़ा कठिन है। हाय ! अपने धर्म के कारण हमें बंधु-बांधवों को मारना पड़ता है। इस प्रकार उन्होंने समझा-बुझाकर दुःशला को लौट जाने की आज्ञा दी।

इस भाँति द्रुतगामी यज्ञ-अश्व पृथ्वी-परिक्रमा करता हुआ मणिपुर पहुँचा। अर्जुन-तनय बभ्रुवाहन पिता के आने का समाचार सुन ब्राह्मणों को आगे कर भेंट की अमूल्य सामग्रियों के साथ शरण में उपस्थित हुआ। परन्तु अर्जुन ने रुष्ट होकर कहा—हम शस्त्र लेकर अश्व की रक्षा करते हुये इस समय आये हैं। अतः वीर अर्जुन के पुत्र को कायरों के समान कर्म नहीं करना चाहिये।

पिताके तिरस्कार ने पुत्रको किंकर्तव्य विमूढ़ बना दिया। वह कर्तव्य स्थिर ही कर रहा था कि एकाएक उसे उदास देख नागकन्या उलूपी आ पहुँची और बोली—बेटा ! मैं तुम्हारी विमाता उलूपी हूँ। तुम्हें पिताके साथ लड़ना चाहिये। जाओ मैं आज्ञा देती हूँ। वीरों को युद्ध से पीछे न हटना चाहिये।

विमाता के उपदेश से उत्तेजित हो बभ्रुवाहन लड़ने के लिये तैयार हो गया। शीघ्रही शस्त्रास्त्र-सज्जित हो पिता पर आक्रमण किया। अर्जुन ने भी गांडीव को उठा लिया। ओह ! देखते ही देखते पिता पुत्र का वह युद्ध देवासुर संग्राम के समान भयंकर हो उठा।

बभ्रु ने बड़ी वीरता दिखाई। उसने एक ऐसा बाण चलाया कि अर्जुन बेहोश हो गये। होश आने पर उन्होंने

कौतुक पूर्वक पुत्रके रथ की ध्वजा काट दी तथा घोड़ों को मार गिराया। इससे बभ्रु के क्रोध का ठिकाना न रहा। उसने शीघ्र ही एक प्रलयकारी वाण धनुप पर चढ़ाया और छोड़ दिया। ओह! देखते ही देखते वह कराल वाण अर्जुन की छाती में घुस गया। पिता को गिरते देख बभ्रु भी वेहोश होकर गिर पड़े।

पुत्र-पतिके गिरने का समाचार पातेही चित्रांगदा समर भूमिमें आई और उलूपी को धिक्कारती हुई अत्यन्त विलाप करने लगी। उसने संकल्प कर लिया कि मैं भूखी प्यासी रहकर मर जाऊँगी। इतने में ही बभ्रु को होश हुआ, माता का इस प्रकार मरने के लिये तैयार देख वह भी निराहार रहकर मरने के लिये प्रस्तुत हो गया। इसी समय उलूपी आई और नागलोक की संजीवनी मणि देकर बोली—बेटा! शोक न करो, उठो, यह मणि अपने पिता की छाती पर रख दो। मैंने तुम्हारे पिताकी प्रसन्नता के लिये तुम्हें युद्ध करने लिये कहा था।

संजीवनी के प्रभाव से अर्जुन उठ बैठे। उन्होंने वीर पुत्र को हृदय से लगाकर कहा—बेटा! यज्ञ के अवसर पर माता, विमाता तथा मन्त्रियों के सहित आना। इस प्रकार प्रसन्नता पूर्वक पुत्र से विदा हो मगध, चेदि, द्वारिका और गांधार होते हुये दिग्विजय कर अर्थात् संसार के सभी राजाओं को आधीन कर हस्तिनापुर लौटे।

यज्ञ की समाप्ति ।

—*—

अर्जुन के सकुशल लौटने की सूचना पाते ही युधिष्ठिर ने यज्ञ कार्य्य आरम्भ किया। उत्तम स्थान को सोने से मढ़ कर वेदियाँ बनाई गईं। बड़े-बड़े सभा भवन तथा लाखों महल और घर बनवाये गये। इस प्रकार कुछ ही दिनों में अपूर्व यज्ञ-स्थली रत्न और मणियों से विभूषित हो उठी। सर्वत्र स्वर्ण-कलश, चित्र-विचित्र सुनहले तोरण और नील हरित मणियों के वृक्ष जगमगाने लगे।

पूर्ण प्रबन्ध हो जाने पर चारों दिशाओं में दूत निमन्त्रण लेकर भेजे गये। भिन्न-भिन्न देशों के राजा नाना प्रकार के धन, रत्न, वाहन, वस्त्रादि भेंट ले-लेकर आने लगे। बड़ी धूम मच गई। उस विशाल भीड़ को देख जान पड़ने लगा कि सारा जम्बू-द्वीप उतर पड़ा है।

बड़ा समारोह हुआ। युधिष्ठिर ने वेद-विधि से यज्ञ आरम्भ किया। ओह! स्वर्ण का पहाड़ लग गया। रत्नों और मणियों से बड़े-बड़े मैदान भर गये, चारों ओर घी और दूध की नदियाँ बहने लगीं। असंख्य ब्राह्मणों का भोजन होने लगा। एक लाख ब्राह्मणों के भोजन कर चुकने पर एक दुन्दुभी बजती थी इसी प्रकार दिन में सैकड़ों बार दुन्दुभी बजने लगी।

पाण्डवों ने अपूर्व कार्य्य किया। अर्जुन के अहुँचते ही

सभी बहुत प्रसन्न हुये। बभ्रु को माता और विमाता के साथ देख लोगों के हर्ष का ठिकाना न रहा। इस प्रकार व्यास देव तथा श्रीकृष्ण की अनुमति के अनुसार पुनीत यज्ञ सम्पन्न हुआ। धर्मराज ने इस अवसर पर अपना सम्पूर्ण राज्य व्यासजी को दान कर दिया, परन्तु व्यासजी ने याचकों को अयाचक कर देने के लिये कहकर राज्य लौटा दिया। यज्ञ समाप्त हो जाने पर सभी निमन्त्रित राजे कुशल-पूर्वक अपने-अपने घरों को लौट गये। भगवान कृष्ण भी कुछ दिन रहकर यादवोंके साथ द्वारिका चले गये।

इति श्रीमहाभारत अश्वमेध-पर्व समाप्त

आश्रमवासिक-पर्व

वन-गमन

महा यज्ञ के उपरान्त पाण्डव धर्म-पूर्वक राज्य करने लगे। पाँचों पाण्डव, विदुर संजय और युयुत्सु धृतराष्ट्र की सेवा में लीन रहने लगे। कुन्ती, द्रौपदी, सुभद्रा और उत्तरा आदि स्त्रियाँ गान्धारी की सेवा करने लगी। युधि-ष्ठिर ने राजाज्ञा निकाल दी कि पुत्र-विहीन दुखी धृतराष्ट्र की सभी आज्ञा पालन करें। उनकी निन्दा करने वाला तथा अवज्ञा कर उन्हें कष्ट पहुँचाने वाला हमारा शत्रु समझा जायगा। वे जो कुछ आज्ञा दें शीघ्र पालन किया जाय। राजा धृतराष्ट्र पाण्डवों के हार्दिक प्रेम से प्रसन्न रहने लगे। गांधारी भी पुत्रों का शोक त्याग पाण्डवों पर पुत्रों सा स्नेह रखने लगी।

परन्तु भीमसेन उन्हें प्रसन्न नहीं रख सके। वे इतना होने पर भी धृतराष्ट्र के अनीत को नहीं भूल सके। धृत-राष्ट्र को देखते ही वे जल उठते थे। परन्तु बड़े भाई की अज्ञा के अनुसार उनको कष्ट भी नहीं देते थे। यदि स्वयं सेवा न करते तो सेवकों के द्वारा करा देते थे। भीम का मनोभाव धृतराष्ट्र से छिपा न रहा। अतः वे भी मन-ही-मन भीम से अप्रसन्न रहा करते थे।

पन्द्रह वर्ष बीत गये। एक दिन धृतराष्ट्र और गांधारी को अपने पुत्रों तथा कर्ण की प्रशंसा करते सुन भीम जल

उठे। वे कुन्ती और युधिष्ठिर को न देख उत्तेजित हो कटु-वाक्य कहते हुये दुर्योधनादि की निन्दा करने लगे। भीम की बातों ने धृतराष्ट्र और गांधारी के शोक को पुनः जाग्रत कर दिया। गान्धारी तो शान्त हो रही, परन्तु धृतराष्ट्र इस वेग को नहीं रोक सके। उन्होंने लोगों को बुलाकर कहा—वीरो! मेरे ही कारण कुरुवंश का ध्वंस हुआ है। अब मुझे ज्ञात हुआ है कि हमने कितना बड़ा पाप किया है। आज पन्द्रह वर्ष बीत गये। हम एक बार ही भोजन करते हैं। गांधारी भी नियम रक्षा के लिये हमारे साथ मृग-चर्म धारण करती तथा पृथ्वी पर सोती है। धर्मराज को दुखी होने के भय से हम आज तक किसी पर प्रकट नहीं किया। मुझे स्वर्गवासी पुत्रों के लिये कुछ नहीं करना है। परन्तु अपना परलोक सुधारने के लिये मैं तप करना चाहता हूँ। इस प्रकार कह कर युधिष्ठिर से बोले—धर्मराज! मुझे आज्ञा दो। मैं वन में जाकर तप करूँ। तुम आनन्द-पूर्वक राज्य-सुख-भोग करो।

युधिष्ठिर दुःखित होते हुये बोले—राजन्! आपका वियोग हम कैसे सह सकेंगे। राज्य कार्य में लीन रहने से हमसे बड़ी भूलें हुई हैं। हाय! पन्द्रह वर्ष से आप एकाहार कर रहे हैं। इसका महापाप हमीं को लगेगा। हाय! मुझे धिक्कार है। हे कौरवनाथ! हम आपके बिना कैसे रहेंगे। हम भी आपके साथ ही वन में चलेंगे। इस प्रकार कहकर युधिष्ठिर विलाप करने लगे।

धृतराष्ट्र ने कहा—बेटा! शोक न करो, चतुर्थ अवस्था में वनवासी हो शरीर त्याग करना तो हमारा कुल धर्म है, अब तप करना ही हमारा कर्तव्य है। इतना कहते-कहते धृतराष्ट्र थक गये, उनका मुँह सूख गया। वे एकाएक अचेत हो गान्धारी के शरीर पर लुढ़क गये।

धृतराष्ट्र की यह दशा देख युधिष्ठिर अत्यन्त अधीर होते हुये बोले—हाय! यह सब कुछ हमारे ही कारण हुआ है। जिनमें हाथियों का बल था वे आज इस प्रकार लुढ़के पड़े हैं। हा! धिक्कार है हमारी बुद्धि को। इस प्रकार अपने को बार-बार धिक्कारते हुये युधिष्ठिर ने कहा—यदि महाराज धृतराष्ट्र और पतिव्रता गांधारी भोजन न करेंगी, तो मैं भी आज से उपवास करूँगा।

इस भाँति विलाप करते हुये धर्मराज धृतराष्ट्र के शरीर पर हाथ फेरने लगे। कुछ ही देर में युधिष्ठिर के कोमल-शीतल करों के स्पर्श से धृतराष्ट्र होश में आ गये। इस प्रकार युधिष्ठर के स्नेह से पूर्ण स्वस्थ हो धृतराष्ट्र ने उन्हें छाती से लगा लिया। चाचा-भतीजा के इस अपूर्ण करुण स्नेहालिंगन ने लोगों के ह्रयद में करुण-रस का संचार कर दिया।

इसके उपरान्त उन्होंने बहुत कुछ कहा। परन्तु युधिष्ठिर ने स्वीकार नहीं किया—इसी समय वेदव्यास जी आये और युधिष्ठिर से बोले—वत्स! वृद्धपति-पत्नी ने बड़ी दृढ़ता से पुत्र शोक को सहन किया है—अब इनकी

सद्गति के लिये इन्हें वन में जाने की आज्ञा दो। इतना कह कर व्यासदेव चले गये। गान्धारी और धृतराष्ट्र महलमें जाकर भोजन किये और यात्राकी तैयारीमें लग गये।

व्यासजी के आदेशानुसार युधिष्ठिर की अनुमति पा धृतराष्ट्र वन-गमन के लिये तैयार हुये। यह समाचार सुनते ही सभी नगर-निवासी दौड़ पड़े और द्वार पर आ पहुँचे। सबों को सन्मुख देख धृतराष्ट्र ने कहा—भाइयों! अब हम वन यात्रा करना चाहते हैं। आप लोगोंने पूर्व से जैसी प्रीति रक्खी हैं—अब भी वैसी ही रखेंगे। हमने दुर्योधन से बढ़ कर युधिष्ठिर के राज्य में सुख पाया है अब मेरे लिये तपस्या ही उत्कृष्ट तथा उपादेय मार्ग है। हमारे पूर्वजों ने आप लोगों को सदा सुखी रक्खा, हमने और दुर्योधन ने भी कभी कष्ट नहीं दिया। हाँ! हमारी अनीति ने भयंकर नाश किया है अतः हम क्षमा चाहते हैं—हमारे दुष्कर्मी पुत्रों के दुष्कर्मों को भूल कर मुझे प्रसन्नता पूर्वक वन जाने की अनुमति दें।

धृतराष्ट्र के कातर वचन को सुन प्रजा-प्रतिनिधि महात्मा साम्ब ने कहा—महाराज! आपका कोई दोष नहीं। आपने तथा आपके पुत्रों ने पूर्वजों के समान ही शासन किया है—राजन्! दैवयोग से ही कौरवों का नाश हुआ है—आप चिन्ता और शोक त्याग कर तपस्या कीजिये। हम लोगों और पाण्डवों के लिये चिन्ता न करें। महात्मा पाण्डव अवश्य ही हम लोगों का पालन करेंगे।

इसके अनन्तर सभी लोग विदा हुये—महाराज धृत-राष्ट्र भी राज-महल में चले गये। दूसरे दिन धृतराष्ट्र-पुत्रों तथा इष्ट-मित्रों का श्राद्ध करने के लिये तैयार हुये। युधिष्ठिर और अर्जुन ने आज्ञा पाते ही अपार धनराशि देने की आज्ञा दे दी—परन्तु भीम अप्रसन्न हो बोले—महामति द्रोण, पितामह भीष्मादि पूज्यों का श्राद्ध हम करेंगे—दुर्योधनादि कुलांगारों के श्राद्ध के लिये धन देना व्यर्थ है। उन्हें अपने कर्मों का फल भोगने देना चाहिये।

भीम की उक्ति सुन धर्मराज ने बहुत फटकारा और अर्जुनादि भाइयों ने समझाया तब वे शान्त हुये। धृतराष्ट्र अपार धन प्राप्त कर कार्तिक पूर्णिमा तक मुक्त-हस्त होकर दान पुण्य करते रहे। दश दिन बीत जाने पर अग्नि होत्र से निवृत हो मृगचर्म धारण कर गान्धारी सहित घर से निकल पड़े।

धृतराष्ट्र वन-गमन ने सबको शोक-सागर में डाल दिया—युधिष्ठिर विकल हो पृथ्वी पर गिर पड़े और रोने लगे—यह देख मंत्रियों सहित अन्यान्य पाण्डव भी विलाप करने लगे। देखते-ही-देखते प्रजाओं तथा कौरव वंश की स्त्रियों के करूण विलाप से नगरी गूँज उठी। सारी नगरी रोती हुई उमड़ पड़ी। पाँचो पांडव, कृपाचार्य्य, विदुर, संजय, महर्षि धौम्य और मन्त्रीगण रोते-रोते उनके पीछे चले। पाण्डवों की माता कुन्ती और आँखों पर पट्टी बाँधे हुये गान्धारी अपने कंधे पर उनके दोनों हाथ रखे हुये साथ २

चलीं। अन्तःपुर की रमणियाँ तथा सुभद्रा कृष्णा और उत्तरा आदि रानियाँ अत्यन्त करूण विलाप करती हुई पीछे-पीछे चलने लगीं। सारी नगरी शोक सागर में डूब गई—

ओह! विचित्र कोहराम मच गया। धृतराष्ट्र रथ पर बैठ कर बड़ी कठिनता से नगर के प्रधान द्वार पर पहुँच कर लोगों को लौट जाने का आग्रह करने लगे। बहुत कहने सुनने पर कृपाचार्य और युयुत्सु लौट गये परन्तु संजय और विदुर नहीं लौटे। धृतराष्ट्र की आज्ञा से धर्मराज ने कुन्ती को भी बहुत लौटाया परन्तु नहीं लौटीं-वह रोती हुई युधिष्ठिरसे बोलीं-बेटा! चारों भाइयोंकी रक्षा करना तथा द्रौपदी को सदैव प्रसन्न रखना। आज से कुरुकुल का सम्पूर्ण भार तुम्हारे ऊपर ही आ गया है। पुत्र! अपने भाई महात्मा कर्ण का भी स्मरण रखना। हाय मैं ही उसके वध की अपराधिनी हूँ—मैं वन में रहकर तपस्या तथा वृद्ध महाराज और महारानी गान्धारी की सेवा करूँगी।

माता की बात सुन युधिष्ठिर अत्यन्त दुखी हो बोले— माँ! यह क्या कह रही हो? माता! मुझ पर प्रसन्न हो। हाय! हम लोगों को युद्ध के लिये उत्साहित कर अब क्यों छोड़ती हो, हम कैसे वियोग सह सकेंगे? इतना कहने पर भी कुन्ती ने न माना—वह धृतराष्ट्र के पीछे-पीछे चलने लगी। भीमसेन ने भी बहुत कुछ समझाते हुये कहा कि— जननी! यदि तुम्हें वन ही जाना था तो पुत्रों को उत्साहित

कर इतने वीरों को क्यों मरवाया। फिर भी वह विचलित नहीं हुई। इस प्रकार माता को न लौटते देख पाँचो पाण्डव विलाप करते हुये द्रौपदी-सुभद्रा को साथ लिये उनके पीछे-पीछे चलने लगे।

पुत्रों को रोते हुये आते देख कुन्ती ने कहा—पुत्र! वन-वास काल के तुम्हारे दुःखों को देखकर, पराक्रम और तुम्हारे कुल-मर्य्यादा को जान कर—विशेष कर नकुल सहदेव और द्रौपदी के दुःख को निहार कर मैं ने श्रीकृष्ण के द्वारा तुम लोगों को उत्तेजित किया था। मुझे राज्य सुखकी इच्छा नहीं है मैं अब उस पवित्र लोक में जाना चाहती हूँ जहाँ तुम्हारे पूज्य पिता गये हैं। अतः मैं वन में रह कर अन्ध-राज और गान्धारी की सेवा करते हुये तपस्या के द्वारा अपने पापों का नाश करूँगी। तुम लोग राजधानी लौट जाओ और सुख पूर्वक राज्य भोग करो। भगवान तुम्हारा मंगल करें। सद्‌बुद्धि प्रधान करें। तुम संसार का कल्याण करो।

माता की बातें सुन पाण्डव लोग अत्यन्त लज्जित हुये और विवश हो चिन्तित हृदय से प्रणाम तथा प्रदक्षिणा करके लौटने लगे। इसी समय अन्धराज ने महात्मा विदुर और गान्धारी से कहा—कि कुन्ती देवी को लौट जाने के लिये कहो—इस दुर्गम वन में उसे बड़ा कष्ट होगा। उसे कहो-कि राजधानी में रहकर ही दानव्रतादि द्वारा उत्तम तप करे। हम उसकी सेवा से प्रसन्न हैं। परन्तु कुन्ती नहीं

लौटी । शोकातुर होते हुये पाण्डव, स्त्रियों और बन्धु-बान्धवों तथा प्रजाओं को लेकर लौट आये ।

महाराज धृतराष्ट्र उस दिन गंगा के किनारे विश्राम किये । वे कई दिन तक गंगा तीर पर ठहरे रहे । दिन में स्नान-ध्यान पूजा-पाठ तथा याज्ञिकों की बनाई हुई वेदियों में हवन करते और रात्रि में कुशासनों पर सोते थे । इस प्रकार वहाँ से निवृत्त हो कुरुक्षेत्र को ओर चढ़े । वहाँ पहुँच कर महाराज ने महर्षि शतयूप से दीक्षा और उपदेश लिया । कल्याण के लिये सभी मृगचर्म धारण कर तपस्या में लीन हो गये ।

इधर पांडव लोग महाशोक के कारण नगर में अधिक दिन तक नहीं रह सके । पूज्यों तथा बन्धु-बान्धवों का स्मरण कर अत्यन्त दुखी होने लगे । धीरे-धीरे उनका मन उचाट हो गया । एक दिन उन लोगों ने निश्चय किया कि वन जाकर गुरुजनों के दर्शन करने चाहिये ।

दूसरे ही दिन सभी प्रबन्ध ठीक कर युयुत्सु और महर्षि धौम्य को राज्य की रक्षा के लिये छोड़ स्त्रियों को आगे कर युधिष्ठिर भाइयों के साथ नगरी से चले । महाराज धृतराष्ट्र का आश्रम जब कुछ दूर रह गया तभी लोग रथोंसे उतर पड़े और पैदल चले । निकट ही सुन्दर मृगों से पूर्ण और केलों से शोभित धृतराष्ट्र के आश्रम में जा पहुँचे । वहाँ महाराज को न देख युधिष्ठिर ने आश्रम वासियों से पूछा । उन लोगों ने कहा—राजन् ! इस समय वे यमुना नहाने गये हैं । पांडव

लोग नदी की ओर चले। कुछही दूर गये थे कि उन्होंने लागों को दूर से आते देखा। सहदेव झट दौड़ पड़े और कुन्ती के चरणों में जा गिरे। कुन्ती गद्गद् हो उठी और सहदेव को उठाकर गांधारी से बोली—आर्य्य! सहदेव आये हैं।

इसी समय चारों भाई आ पहुँचे। चारों ने माता, गान्धारी और महाराज को प्रणाम किया। महाराज ने हाथ से छूकर तथा बोली से पांडवों को पहचान कर कुशल समाचार पूछा—

विदुर का शरीर त्याग।

महाराज के आश्रम में आते ही सभी लोग उठ खड़े हुये। राजस्त्रियाँ और नगर-निवासी वनवासी महाराज को एकटक देखने लगे। धर्मराज युधिष्ठिर ने लोगों का नाम और गोत्र बताकर सबों का परिचय कराया। इसके अनन्तर महात्मा विदुर को न देख अत्यन्त व्याकुल हो युधिष्ठिर बोले—महात्मा विदुर कहाँ हैं?

धृतराष्ट्र ने कहा—पुत्र! बुद्धिमान विदुर इस समय निराहार रहकर बड़ी कठिन तपस्या कर रहे हैं। उनके शरीर में केवल अस्थि और चर्म ही रह गया है। वे इसी वन के एक ऐसे स्थान में रहते हैं जहाँ मनुष्य शीघ्र नहीं जा

सकते। कभी-कभी श्रेष्ठ ब्रह्मर्षि लोग उनके दर्शन के लिये आया करते हैं। धृतराष्ट्र अभी कह ही रहे थे कि धूल-धूसरित, जटाजूट धारण किये, दिगम्बर स्वरूप विदुर जी आश्रम में दिखायी पड़े। परन्तु तत्काल ही एक ओर चल दिये। युधिष्ठिर भी उनके पीछे-पीछे उठ दौड़े। देखते ही देखते महात्मा विदुर बीहड़ वन में घुस गये। युधिष्ठिर भी यह कहते हुये कि हे महात्मा! हम आपके प्यारे धर्मराज हैं, आपसे मिलने के लिये आये हैं—ठहरिये! ठहरिये! उनके पीछे-पीछे बड़ी तेजी से दौड़ने लगे। कुछ ही दूर पर महात्मा विदुर एकाएक एक पेड़ के नीचे रुक गये। युधिष्ठिर निकट पहुँच कर कुछ कहना ही चाहते थे कि उन्होंने देखा कि उनकी आँखें निश्चल हैं। शरीर प्राण हीन है उनकी देह एक वृक्ष के आश्रय खड़ी है।

युधिष्ठिर लौट आये। यह आश्चर्य-जनक हाल सुन कर लोग अत्यन्त विस्मित हुये। महाराज विदुर की योगियों के समान गति प्राप्त होते जान किसी ने शोक न किया और न किसी ने उनके शरीर को ही दग्ध करने की चेष्टा की।

इस प्रकार सबों के मिलने पर धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर से कहा—पुत्र! भगवान तुम्हारा मङ्गल करें। तुम्हारा कल्याण हो। तुमने पुत्र की तरह काम किया। तुम्हारे अनुग्रह से हमारा शोक संताप दूर हो गया है। बेटा! इस समय तुम लोगों को निकट देख मुझे मालूम हो रहा है कि हम हस्तिनापुर में ही हैं। अब तुम शीघ्र राजधानी को लौट जाओ और

प्रजाओं का पालन करो। तुम लोगों के स्नेह के कारण हमारी तपस्या में विघ्न पहुँचेगा।

युधिष्ठिर ने कहा--पिता! हम बड़े अपराधी और दोषी हैं। आप मुझे न त्यागिये। मुझे यहीं रहकर आप लोगों की सेवा करने की आज्ञा दीजिये।

गांधारी ने कहा--बेटा! तुम्हीं एकमात्र कुरुवंश के आधार हो। तुमने तो हम लोगों की बड़ी सेवा की है। अब तुम्हें शीघ्र राजधानी लौट जाना चाहिये। इसी समय सहदेव ने रोते हुये युधिष्ठिर से कहा--राजन्! आप लौट जाइये, हम तो यहीं रहकर तपस्या करते हुये माता, गांधारी और महाराज धृतराष्ट्र की सेवा करेंगे।

सहदेव की बातें सुन कुन्ती ने हृदय से लगाकर कहा--बेटा! मेरी प्रिय आज्ञा मान राजधानी को लौट जाओ, यहाँ रहने से तुहारे स्नेह-बन्धन के कारण हमारी तपस्या शिथिल हो जायगी, हम लोगों के परलोक यात्रा में देर नहीं है।

इसके अनन्तर पांडवों ने कहा--महाराज! हम लोग आपकी तपस्या में विघ्न डालना नहीं चाहते और न अवज्ञा ही करने का विचार है, किन्तु नश्वर संसार को देखकर जान लिया कि राज्य भोग की अपेक्षा तप ही श्रेष्ठ है। इतना कहकर सबों ने प्रणाम किया और बार-बार प्रदक्षिणा करके महाराज के पुनीत आश्रम से विदा हो स्त्रियों पुरजनों और मन्त्रियों के सहित सकुशल प्रस्थान किया।

वनवासियों का स्वर्ग-गमन ।

धीरे-धीरे दो वर्ष बीत गये। एक दिन अचानक देवर्षि नारद जी आये। धर्मराज ने उनकी विधिवत पूजा कर कुशल समाचार के अनन्तर पूछा—भगवन्! कुछ दिन पहले हमने गंगा तट वासी महर्षियों से सुना था कि महराज धृतराष्ट्र बड़ा ही उग्र तप कर रहे हैं। आप उसी ओर से आ रहे हैं यदि वे मिले हों तो उनका समाचार कहिये।

नारद ने कहा—पुत्र! हम वही सुनाने के लिये तुम्हारे पास आये हैं। तुम्हारे लौट आने पर सभी गंगाद्वार जाकर केवल वायु पीकर कठोर तप करने लगे। छः मास के पश्चात् लोग महावन में आगे बढ़े। संजय, महाराज को और तुम्हारी माता गान्धारी को सहारा देती हुई ले चलीं। अचानक उस वन में आग लग गई। दावाग्नि-प्रेरित महावन धाँय-धाँय करते हुये जलने लगा। धृतराष्ट्र, गांधारी और कुन्ती आहार त्याग देने के कारण अत्यन्त दुर्बल हो गई थीं अतः वे अपनी रक्षा नहीं कर सकीं।

भयंकर अग्नि को अट्टहास करते देख, संजय ने कहा—महाराज! अग्नि द्वारा अकाल मृत्यु होने पर सद्गति न होगी। अतः शीघ्र इससे बचने का उपाय बताइये। धृतराष्ट्र ने कहा—संजय! जब हम लोगों ने संसार को त्याग दिया है, तो घबड़ाने की कोई बात नहीं, तुम शीघ्र अपनी रक्षा करो। इतना कहकर महाराज, गांधारी और कुन्ती सहित इन्द्रियों को रोककर पूर्व की ओर मुँह कर निश्चल भाव से बैठ गये।

संजय ने शीघ्र ही उनकी प्रदक्षिणा की और बड़ी कठिनता से अग्नि को पार कर बाहर आये। महाराज का समाचार ऋषियों से कह कर तपस्या के लिये हिमालय चले गये।

यह दुःखमयी वृतान्त सुन पांडव बड़े दुखी हुये। सर्वत्र भयंकर आर्तनाद होने लगा। अन्तःपुर में हाहाकार मच गया। छोटे, बड़े और बूढ़े सभी विलाप करने लगे।

सबों को अत्यन्त शोकाकुल देख नारदजी ने शान्त्वना देते हुये कहा—धर्मात्माओं! शोक न करो। वे लोग स्वयं अपनी इच्छा से शरीर त्याग किये हैं तो अवश्य ही स्वर्ग पायेंगे। तुम लोग शोक न करो, इस प्रकार शोक-वेग कुछ कम होने पर युधिष्ठिर ने कहा—भगवन्! इससे और अधिक दुःख क्या होगा? कि हम लोगों के रहते हुये महाराज अनाथों के सामान बन में अग्नि के द्वारा जलकर शरीर त्याग किये। हाय! माता कुन्ती और सती गांधारी को याद करते ही हृदय में शोकाग्नि धधक उठती है।

नारदजी ने पुनः समझाते हुये कहा—युधिष्ठिर! तुम शोक न करो। उन आत्माओं ने अपनी सिद्धियों के कारण स्वर्ग लाभ किया हैं। अपना कर्तव्य कर्म स्थिर करो। इस समय तुम उनकी जलांजलि देकर स्वधर्म पालन करो।

पांडव शोक-सागरमें डूबते उतराते बंधुबान्धवों के सहित गंगा तटपर पहुँचे। भागीरथीमें स्नान कर सबोंने तिलांजलि दी। बारह दिन नगर से बाहर रहकर श्राद्धादि किये और राजधानी में लौट आये।

—*—

मौषल-पर्व ।

यदुवंश-संहार

दीर्घ काल व्यतीत हुआ। धीरे-धीरे पांडवों को धर्म-पूर्वक राज्य करते छत्तीस वर्ष बीत गये। देश देशान्तरों में उनकी वीरता धर्म परायणता तथा नीतिज्ञता की धाक जम गई। सर्वत्र उनका गुणगान होने लगा।

उस युग में महात्मा श्रीकृष्ण ने एक से एक बढ़कर अलौकिक कार्य किया। उनके असम्भव कृत्यों तथा अद्भुत कार्यों को देख-देख लोग उन्हें अवतार मानने लगे। उनका गीता-ज्ञान विश्व के कोने-कोने में फैल गया। एक बार सारा विश्व उनके अपूर्व ज्ञानालोक से जगमगा उठा। दूर-दूर से लाखों मुमुक्षु द्वारिका आने लगे और यथा योग्य उपदेश पाकर कृत्य २ होने लगे। संसार योगेश्वर श्रीकृष्ण को साक्षात् भगवान समझ कर उनकी पूजा करने लगा।

परन्तु शोक! इधर जिन श्रीकृष्ण के दर्शन और उपदेश से जहाँ मुमुक्षुओं का उद्धार हो रहा था, उधर वहीं उनके स्वजन अपार वैभववान यादवों में दुर्नीति का प्रादुर्भाव

हो रहा था। ओह! प्रत्यक्ष यादव राजपुत्र गण धर्म-कर्म तथा विवेक की तिलांजलि दे विषयों और दुर्व्यसनों में लीन हो रहे थे। अंधक तथा भोजकुल के राजपुत्र मदोन्मत्त हो महाकुकर्म करते हुये निकृष्ट जीवन बिता रहे थे। धीरे-धीरे धर्म-प्राण द्वारिका अत्याचार और अविचार से पूर्ण हो गया। महर्षि, महात्मा और ब्राह्मणों का अपमान होने लगा। सभी यादवों का अकाण्ड-ताण्डव और अधर्माचरण देख हटने लगे। भक्तवर ऊद्धवजी वद्रिकाश्रम चले गये। श्रीकृष्ण ने यादवों को बहुत समझाया परन्तु कुछ लाभ नहीं हुआ।

यादवों की बुद्धि विपरीत हो गई। प्रत्यक्ष भ्रष्टाचरण करने लगे। उन लोगों ने लोक-लज्जा को तिलांजलि दे दी। एक दिन दैवात कण्व, विश्वामित्र और नारदजी आये। दुराचारी यादवों ने महर्षियों की दिल्लगी उड़ाने के लिये एक षडयंत्र रचा। पापियों ने साम्बको स्त्री के कपड़े पहना कर महर्षियों के सामने लाकर पूछा—महात्माओं! आपलोग त्रिकालदर्शी हैं—कहिये, इसके गर्भ से क्या होगा? पापियों के कुकृत्य से रुष्ट होकर महर्षियों ने कहा—ठीक है, पापियों! इस पापी साम्बके गर्भ से कल ही एक मूसल पैदा होगा और उसी से तुम दुराचारी कुलांगार उन्मत्त यादवों का सर्वनाश होग। 'सचमुच ही दूसरे दिन साम्ब के गर्भ से एक मूसल पैदा हुआ।

साम्ब के गर्भ से मूसल होते देख पापियों का दल घबड़ा उठा और समस्त वृत्तान्त वसुदेव से कह सुनाया। वसुदेव

ने उन लम्पटों को बहुत डराया-धमकाया और मूसल को चकनाचूर कर समुद्र में डलवा दिया। हाय! ब्रह्मनिष्ठ महर्षियों के शाप से जहाँ मूसल चूर्ण-विचूर्ण कर फेंका गया था वहाँ तेज धार वाला 'सरपता' जम गया। कुछ ही दिनों में वह समुद्र के किनारे-किनारे दूर-दूर तक फैल गया। अचानक एक दिन एक व्याध उस ओर आया और एक सरपत लेकर अपने तीर का फला बना लिया।

महा अमंगल हुआ। नित्य भयंकर अपशकुन होने लगे। भीषण-वृष्टि, उल्कापात, भूकम्प, धूम्राच्छन्न सूर्य-मण्डल तथा रविमंडल में कबन्ध देख अनिष्ट की आशंका होने लगी। धीरे-धीरे द्वेष और अहिंसा का पाप बढ़ने लगा। इसी समय त्रयोदशी में अमावस्या का संयोग हुआ। इस दुर्योग को देख श्रीकृष्ण ने सोचा कि यादव वंश का अब शीघ्र अन्त होगा।

इसी दुर्योग पर सभी यादव प्रभास तीर्थ में एकत्र हुये। प्रभास में ही सागर और सरस्वती का संगम हुआ था। उस सुन्दर स्थान पर यादवों ने आनन्द मनाने का विचार कर डेरा डाल दिया। ब्राह्मणों तथा दीनों के लिये आया हुआ अन्न सड़ा कर मदिरा बना ली गई। एक दिन सबों ने महामद्योत्सव मनाया। सब लोगों ने डट-डट कर शराब पी और परस्पर हास-परिहास होने लगा। धीरे-धीरे वह हास-उपालम्भ बड़ा ही विषम हो गया। सात्यकि ने कृतवर्मा को लक्ष्य कर कहा—देखो जी, कृतवर्मा बड़ा ही निर्दय हृदय तथा पिशाच वृत्ति वाला है। इसने सोते हुये पाण्डवों के

पाँच वालकों को मारा है। प्रद्युम्न ने सात्यकि का समर्थन किया। इस पर कृतवर्मा ने क्रोध करते हुये कहा—पापी सात्यकि! भग्नवाहु भूरिश्रवा को मार कर वीरता वघारता है। श्रीकृष्ण ने शांति के लिये वक्रदृष्टि से कृतवर्मा की ओर देखा। इसी समय सात्यकि ने पुनः कहा—वीरो! इसी नीच पापी ने स्यामन्तक मणि की चोरी कराई। इसी राक्षस ने सत्राजित को मरवाया। आज मैं इसे विना मारे न छोड़ूँगा। इतना कहते-कहते सात्यकि ने खड्ग चला दिया। ओह! देखते-ही-देखते महावीर कृतवर्मा का सिर पृथ्वी पर लोटने लगा। वस फिर क्या था? भोज और अन्धक वीर एक साथ ही सात्यकि पर टूट पड़े। प्रद्युम्न अनिरुद्ध सात्यकि की रक्षा में जुट गये। लड़ाई आरम्भ हो गई। यादव वीर आपस में कट-कट कर मरने लगे। देखते-ही-देखते प्रलयकालीन दृश्य उपस्थित हो गया। प्रद्युम्न और अनिरुद्ध को मरते देख श्रीकृष्ण को क्रोध आ गया। उन्होंने तत्काल ही एक सरपत उखाड़ कर भोज और अन्धक कुल का नाश करना आरम्भ किया। देखा-देखी सभी वीर सरपत ले-लेकर घोर संग्राम करने लगे। वड़े-वड़े वीर काम आये। अन्त में श्रीकृष्ण ने काल रूप धारण कर समस्त यादवों का संहार कर डाला। भयंकर ब्रह्मशाप ने यादवों का समूल नाश कर दिया। सभी वीर इस संग्राम की भीषण-अग्नि में पतिंगों के समान जल गये।

श्रीकृष्ण लीला संवरण।

ओह! भयंकर सर्वनाश। प्रतापी यादवों को परस्पर मरते देख महात्मा बलराम पवित्र धाम प्रभास से चल पड़े और एक वन में पहुँचकर अखंड समाधि लगाकर बैठ गये। परन्तु श्रीकृष्ण डटे ही रहे। यादवों के सर्वनाश हो जाने पर वे द्वारका लौटे। इस युद्ध में श्रीकृष्ण, वभ्रु और दारुक के अतिरिक्त और कोई नहीं बचा।

शोक! द्वारिका की दिशायें विधवाओं के विलाप से गूँज उठी। सर्वत्र कोहराम मच गया। चारों ओर से दुःख शोक और निराशा के उद्गार निकलने लगे। देवताओं को लज्जित करने वाली सुन्दर नगरी श्मशान के समान भयानक हो गई। परन्तु योगेश्वर कृष्ण पर इसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। उन्होंने स्त्रियों को यथा स्थान पर पहुँचा कर दारुक को बुलाकर कहा—तुम शीघ्र हस्तिनापुर जाओ और अर्जुन से कहो कि यादवों का ध्वंस हो गया। शीघ्र बालकों और स्त्रियों को हस्तिनापुर लिवा ले जायँ। मैं वनमें जाकर बलराम जी के पास तप करता हूँ।

दारुक को विदा कर भगवान कृष्ण पिताके पास गये और बोले—हे पिता! हमने दारुक को हस्तिनापुर भेजा है, जब तक अर्जुन न आयें आप स्त्रियों की देख-भाल कीजियेगा।

श्रीकृष्ण ने वन में आकर देखा कि बलराम जी का शरीर

काठ की तरह पड़ा है। वे अपने प्राण को ब्रह्मलीन कर चुके हैं। ओह! यह देखते ही श्रीकृष्ण के शोक का ठिकाना न रहा। वे एकाएक उसी वनमें ब्रह्मासन लगाकर लेट गये और योग निद्रा में मग्न हो गये। इसी समय वह 'जरा' व्याध जिसने 'सरपत' को अपने तीर का फला बनाया था आखेट करता हुआ आ निकला और श्रीकृष्ण के तलवे को देख मृग का मुँह समझ उसी सरपत वाले तीर को चला दिया। पश्चात् हरिन को ढूँढ़ता हुआ वहाँ आया परन्तु उस दृश्य को देखता अवाक् हो रह गया और चरणों में लेटकर महा विलाप करने लगा। भगवान ने शान्त्वना देते हुये कहा—जरा! डरो मत। यह सब कार्य्य मेरी इच्छा से ही हुआ है। देखते ही देखते श्रीकृष्णने परम धाम को प्रस्थान किया। उनकी यह लोक-लीला समाप्त होगई। ओह! पृथ्वी का असह्य भार उतर गया। देवता आकाश से पुष्प बरसाने लगे।

इधर भगवान कृष्ण का सारथि दारूक हस्तिनापुर पहुँचा और प्रभास तीर्थ का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। यदुवंश ध्वंस होने का समाचार सुनते ही पांडवों के दुःख का ठिकाना न रहा। अर्जुन तत्काल दारूक के साथ चल दिये। शोक-पूर्ण द्वारिका को देख उन्हें बड़ा ही दुःख हुआ। सभी लोग उन्हें घेर कर रोने लगे। अर्जुन ने बड़ी व्याकुता से वह रात विताई। दूसरे ही दिन वसुदेवजी भी हा कृष्ण! हा बल-देव! कहते हुये प्राण त्याग दिये। अर्जुन ने तत्काल उनकी अन्त्येष्टि क्रिया की और प्रयास तीर्थ पर जाकर मरे हुये यादवों

तथा संस्कार कर स्त्रियों, बालकों और पुरजनोंको रथोंपर विठा- कर हस्तिनापुर प्रस्थान किया । ओह ! इसी समय एक महा आश्चर्य हुआ । सबोंके देखतेही देखते श्रीकृष्ण द्वारा निर्मित रत्नपुरी द्वारिका उनके न रहने पर रत्नेश में डूब गई ।

अर्जुन आगे बढ़े । परन्तु शोक ! गांडीव धर के रहते हुये मार्ग में दस्युओं ने द्वारिका से लाया हुआ धन लूट लिया ।

ओह ! महावीर अर्जुन कुछ न कर सके । उनका गांडीव व्यर्थ सिद्ध होगया । उन्होंने कुरुक्षेत्र पहुँच कर भोज कुल की स्त्रियों को मार्तिकावत में ठहरा दिया । सात्यकि के पुत्रों को सरस्वती नगरी का राज्य दिया । तथा कृष्ण पुत्र वज्रको इन्द्रप्रस्थ के सिंहासन पर बैठाया । श्रीकृष्ण की स्त्रियों में रुक्मिणी, गान्धारी, शैब्या, हेमवती और जामवंती सती हो गईं तथा सत्यभामा आदि अन्य यादव स्त्रियों के साथ वन में जाकर तप करने लगीं ।

इस प्रकार सबोंको यथा-स्थान कर अर्जुन अत्यन्त लज्जित होते हुये व्यासाश्रम में पहुँचे । व्यासदेव समाधिस्थ हो ध्यान- मग्न थे, अर्जुन ने अपना नाम कहकर परिचय दिया । व्यासदेव ने आँखें खोल दी । वे प्रिय पौत्र अर्जुन को दीना- वस्थामें खड़े देख बोले—पुत्र ! इतने निस्तेज क्यों हो रहे हो ? अर्जुन ने रोते हुये यदुवंश-ध्वंस तथा श्रीकृष्ण लीला संवरण का वृत्तान्त कह सुनाया । इसके उपरान्त बड़ी कठिनता से उन्होंने दस्युओं द्वारा अपनी पराजय का हाल भी कहा— अन्तमें बोले—पितामह ! कृष्णके गमन करते ही मेरे गांडीव

का तेज जाता रहा। मैं कृष्ण विहीन तथा वीरता और तेजस्विता रहित जीवन कैसे बिता सकता हूँ ?

व्यास जी ने अर्जुन को धैर्य्य देते हुये कहा—वत्स ! दुराचारी यादवों का ब्रह्मशाप से ध्वंस हुआ है। तुम श्रीकृष्णके लिये दुखी न हो। तुम लोग देवकार्य सम्पन्न करने के लिये आये थे अब तुम लोगों के स्वर्ग जाने का समय आया है।

व्यास जी का उपदेश सुन अर्जुन राजधानी में आये और आद्योपान्त घटना धर्मराज तथा भाइयों से कह सुनाये। सभी अत्यन्त दुखी हो परिवर्तन शील संसार पर सोच करने लगे।

इति श्री महाभारत मौषल-पर्व समाप्त !

महाप्रस्थानिक-पर्व ।
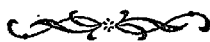
महाप्रस्थान

संसार के विचित्र परिवर्तनों को देख पांडवों ने निश्चय किया कि अब इस संसार में रहना व्यर्थ है। अतः संसार त्याग करने के लिये महाप्रस्थान की तैयारी करनी चाहिये। उन्होंने परीक्षित को राज्य दे युयुत्सु और कृपचार्य्य को राज्य सौंप सुभद्रा को समझा कर प्रजाओं से अपने अच्छे-बुरे कर्मों के लिये क्षमा माँगी। पांडवों की बात सुन प्रजा के लोग वियोग व्यथित हो ढाड़ें मार-मार कर रोने लगे। परन्तु दृढ़ निश्चयी पांडवों ने उन्हें किसी प्रकार शान्त किया।

पश्चात् पाँचों पांडव और द्रौपदी वल्कल वस्त्र धारण कर जप-यज्ञ, अग्नि-होत्र से निवृत्त हो बाहर निकले। उन्हें इस प्रकार जाते देख नगर निवासी रोते हुये उनके पीछे-पीछे चलने लगे। धर्मराज ने बड़ीकठिनता से समझाबुझा कर लोगों को पीछे लौटाया, परन्तु एक कुत्ता बराबर साथ रहा।

पाँचो पाण्डव पहले पूर्व दिशा की ओर बढ़े। अनेक नद-नदियाँ, पर्वतों वनों तथा नगरों को पार करते हुये लोहित सागर के निकट पहुँचे। इतने में ही एक दिव्य-देह-धारी पुरुष आकर बोला—अर्जुन ! मैं अग्निदेव हूँ। गांडीव और अक्षयतूण मुझे दे दो। अर्जुन ने तत्काल ही दे दिया। पांडवों ने सम्पूर्ण भारत की परिक्रमा कर समुद्र में डूबी हुई द्वारिका के दर्शन किये।

धर्मराज की परीक्षा ।

पांचों पांडव हिमालय पार करनेकी इच्छासे यम नियम-पूर्वक योग-परायण हो हिमालय की पर्वत माला में घुसे। कुछ ही दूर पर सुमेरु दिखाई देने लगा। धीरे-धीरे मार्ग दुर्गम हो गया। भयानक तुषार के कारण कोमलांगी कृष्णा योगभ्रष्ट हो निस्तेज होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। द्रौपदी के शरीर को निर्जीव होते देख भीम ने युधिष्ठिर से पूछा—राजन्! पतिव्रता कृष्णा तो बड़ी धार्मिका थी। इसका पतन क्यों हुआ?

धर्मराज ने कहा—भीम! ठीक है, पतिव्रता थी, परन्तु पाँचों भाइयों की पत्नी होकर भी अर्जुन पर अधिक स्नेह रखती थी। पतिव्रत-धर्म के विरुद्ध आचरण से पतन हुआ।

कुछ ही दूर बढ़े थे कि सहदेव गिर पड़े। भीम ने इनके पतन का कारण पूछा। धर्मराज ने कहा—भीम! सहदेव अपने पांडित्य पर बड़ा अभिमान करते थे। कुछ ही आगे बढ़ने पर नकुल भी गिर पड़े। भीम ने पुनः पूछा—धर्मराज ने बताया कि नकुल को अपने स्वरूप का अभिमान था।

इस प्रकार थोड़ी ही दूर और आगे बढ़ने पर अर्जुन भी धड़ाम से उस तुषार पर गिर पड़े। उन्हें देखते ही भीम अत्यन्त शोक विह्वल हो धर्मराज से बोले—महात्मन्! महावीर अर्जुन के गिरने का क्या कारण है? धर्मराज ने कहा—भीम! अर्जुन को अपनी शूरता का जितना अभिमान था उतना काम वे नहीं कर सके। इसलिये उनका पतन हुआ।

इस प्रकार युधिष्ठिर की बातें सुनते ही सुनते भीम भी गिर पड़े। उन्होंने चिल्लाकर पूछा—धर्मराज! मैं आपका प्रिय होकर क्यों गिर पड़ा? युधिष्ठिर ने कहा—तुम भी बड़े अभिमानी थे, उसी से तुम्हारा भी पतन हुआ।

अब केवल धर्मराज और उनका साथी वह कुत्ता शेष रहा। वे कुछ ही दूर बढ़े थे कि आकाश से एक दिव्य विमान आते दिखाई दिया। विमान शीघ्र नीचे उतरा। देवराज इन्द्र उस विमान से उतर कर धर्मराज से बोले—हे धर्मराज! हम आपको इन्द्रपुरी ले चलेंगे। आपके पुण्य दर्शन के लिये देवता लालायित हो रहे हैं, चलिये। परन्तु धर्मराज ने कहा—मेरे चारों भाई और पत्नी पीछे तुषार में गिरी पड़ी हैं। उन लोगों के विना मैं नहीं जा सकता। इन्द्र ने कहा—वे लोग स्वर्ग पहुँच गये, आप चलिये। धर्मराज ने कहा—देवराज! मैं आपके साथ चलूँगा, परन्तु यह कुत्ता भी मेरे साथ चलेगा।

इन्द्र बोले—युधिष्ठिर! तुम अपने धर्म के द्वारा सदेह स्वर्ग जा सकते हो। इस भ्रष्ट कुत्ते के लिये क्यों हठ करते हो? परन्तु धर्मराज ने न माना। धर्मराज की दृढ़ता देख कुत्ता रूपी धर्म दिव्य रूप धारण कर बोले-बेटा! तुमने धर्म का पालन किया है, इस परीक्षा में तुम्हें उत्तीर्ण देख मैं तुम्हें वर देता हूँ कि तुम सदेह स्वर्ग में जाकर रहो।

स्वर्गारोहण–पर्व।

स्वर्ग में।

महात्मा धर्मराज उस दिव्य विमान पर बैठकर स्वर्ग में पहुँचे। उन्होंने भाइयों को न देख इन्द्र से पूछा—इन्द्र ने कहा—धर्मराज! आप के समान आज तक कोई धर्मात्मा नहीं हुआ। आप के समान पुण्य प्रतापी न होने के कारण वे नहीं आ सकते। तब धर्मराज ने कहा—वे जहाँ हों मुझे वहीं ले चलिये। देवेन्द्र दूसरी ओर ले चले। वहाँ दुर्योधन को आनन्द पूर्वक देवताओं के साथ विहार करते देख युधिष्ठिर ने कहा—यहाँ भी हमारे भाइयों का पता नहीं है। मैं स्वर्ग मेंभी इस दुर्वृत्त के साथ नहीं रह सकता। जिसके द्वारा पूज्यों तथा बन्धु-बांधवों का नाश हुआ। इस समय देवर्षियों ने मृत्युलोक के राग-द्वेषों को दूर करने का उपदेश देते हुये कहा—दुर्योधन सन्मुख समर में मारा गया है इस लिये इसे स्वर्ग मिला है। परन्तु युधिष्ठिर ने न माना तब एक देवदूत धर्मराज को लेकर नरक की ओर चला।

ओह! नरक का मार्ग बड़ा ही भयानक था, मार्ग रक्त-वसा तथा मांसोंके कीचड़ से भरा था। सड़कके दोनों किनारे बड़ी-बड़ी नदियाँ अग्नि स्फूलिंगों को निर्गत करते हुये बह रही थीं। ठौर-ठौर पर लाखों यमदूत पापियों को दण्ड दे रहे थे। ओह! भयानक दुर्गन्धमय तम पूर्ण नरक को देखतेही धर्मराज घबड़ा उठे। उन्होंने देवदूत से कहा-शीघ्र पीछे हटो।

धर्मराज के लौटते ही चारो ओर करुण-क्रन्दन होने लगा। उन्होंने परिचित स्वरकण्ठ ज्ञात कर खड़े हो पूछा—तुम लोग कौन हो? सभी एक साथ बोल उठे। हम भीम हैं! अर्जुन हैं, कर्ण हैं, नकुल सहदेव हैं, आदि-आदि।

धर्मराज दुखित हो बोले—ओह! देवताओं ने बड़ा ही अन्याय किया। इन धर्मात्माओं को नरक में डाल दिया। यह सुनते ही देव दूत इन्द्र के पास जाकर सब हाल कह सुनाया। तत्काल देवताओं सहित देवराज वहाँ आ पहुँचे। देखते ही देखते वह काल्पनिक नरक अदृश्य हो गया। स्वर्ग के समान दिशायें प्रकाशित हो उठीं। चारो ओर मन्द-मन्द सुगन्ध फैलने लगी। धर्मराज अत्यन्त विस्मित हो उठे।

धर्मराज को विस्मित देख इन्द्रने कहा—धर्मराज! चलिये देवनदी मन्दाकिनी में स्नान कर अपने सन्ताप तथा राग-द्वेषादि मानुषिक विकारों से दूर हो स्वर्ग में भाइयों से मिलिये। आपने अश्वत्थामा के मृत्यु का असत्य संवाद फैलाकर द्रोण वध में सहायता की थी। इसलिये नरक के दर्शन करने पड़े।

धर्मात्मा धर्मराज शीघ्र मन्दाकिनी में स्नान कर दिव्य मूर्ति प्राप्त कर शोक सन्ताप तथा राग मोहों से निवृत हो स्वर्ग में जा पहुँचे।

* इति *

——*—*——

सिर्फ टायटिल-श्री विश्वेश्वर प्रेस, काशी में मुद्रित।